ISSN 2349 - 137X
UGC CARE-listed, Peer Reviewed Journal

प्रतिध्वनि कला एवं संस्कृति की

अनहद लोक

वर्ष–9, अंक – 18, 2023
(जुलाई–दिसम्बर)

ISSN 2349-137X
UGC CARE-Listed Peer Reviewed

अनहद लोक

(प्रतिध्वनि कला एवं संस्कृति की)

वर्ष-9, अंक-18, 2023
(जुलाई - दिसम्बर)
(अर्धवार्षिक शोध पत्रिका)

सम्पादक

डॉ० मधु रानी शुक्ला

सम्पादक मण्डल

डॉ० राजश्री रामकृष्ण, डॉ० मनीष कुमार मिश्रा,
डॉ० धनंजय चोपड़ा, डॉ० ज्योति सिन्हा

सह सम्पादक

सुश्री शाम्भवी शुक्ला

व्यंजना

आर्ट एण्ड कल्चर सोसाइटी
109 डी/4, अबुबकरपुर, प्रीतम नगर, सुलेम सरांय
प्रयागराज - 211011

अनहद लोक

(प्रतिध्वनि कला एवं संस्कृति की)

सम्पादक : डॉ॰ मधु रानी शुक्ला
सम्पादक मण्डल : डॉ॰ राजश्री रामकृष्ण, डॉ॰ मनीष कुमार मिश्रा, डॉ॰ धनंजय चोपड़ा, डॉ॰ ज्योति सिन्हा
सहायक सम्पादक : सुश्री शाम्भवी शुक्ला
मल्टीमीडिया सम्पादक : श्रेयस शुक्ला

प्रकाशक एवं वितरक :
व्यंजना (आर्ट एण्ड कल्चर सोसाइटी)
109 डी/4, अबुबकरपुर, प्रीतम नगर
सुलेम सरांय, प्रयागराज - 211 001
मो॰ : 9838963188, 8419085095
ई-मेल : anhadlok.vyanjana@gmail.com
वेबसाइट : vyanjanasociety.com/anhad_lok

मूल्य : 300/- प्रति अंक, पोस्टल चार्जेज अलग से
सदस्यता शुल्क
वार्षिक : 700/-
तीन वर्ष : 2,100/-
आजीवन : 15,000/-

संगीत नाटक अकादेमी के सहयोग से प्रकाशित

© सर्वाधिकार सुरक्षित
- रचनाकारों के विचार मौलिक हैं
- समस्त न्यायिक विवाद क्षेत्र इलाहाबाद न्यायालय होगा।

मुद्रक :
गोयल प्रिन्टर्स
73 A, गाड़ीवान टोला, प्रयागराज
फोन - 0532-2655513

मार्गदर्शन बोर्ड :

डॉ॰ सोनल मानसिंह, पं॰ विश्वमोहन भट्ट, प्रो॰ ऋत्विक् सान्याल, प्रो॰ चित्तरंजन ज्योतिषि, पं॰ रोनू मजुमदार, पं॰ विजय शंकर मिश्र, प्रो॰ दीप्ति ओमचारी भल्ला, प्रो॰ के॰ शशि कुमार, प्रो॰ (डॉ॰) गुरप्रीत कौर, डॉ॰ राजेश मिश्रा

सहयोगी मण्डल :

प्रो॰ संगीता पंडित, प्रो॰ लावण्य कीर्ति सिंह 'काब्या', प्रो॰ निशा झा, प्रो॰ प्रभा भारद्वाज, प्रो॰ अर्चना अंभोरे, डॉ॰ राम शंकर, डॉ॰ इंदु शर्मा, डॉ॰ सुरेन्द्र कुमार, प्रो॰ भावना ग्रोवर, डॉ॰ स्नेहाशीष दास, डॉ॰ शान्ति महेश, डॉ॰ कल्पना दुबे, डॉ॰ बिन्दु के॰, डॉ॰ अभिसारिका प्रजापति, डॉ॰ पारुल पुरोहित वत्स, डॉ॰ मिठाई लाल

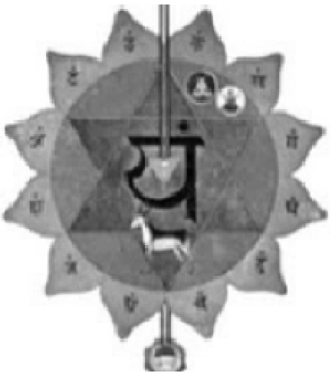

सम्पादकीय

'अनहद लोक' अंक 18 आप सभी के शुभ हाथों में सौंपते हुए अपार हर्ष एवं संतुष्टि का अनुभव हो रहा है। आप सभी की सकारात्मक प्रतिक्रियाओं से हमें निश्चित रूप से बल मिला है तथा निष्ठा व लगनपूर्वक कार्य करने की प्रेरणा मिलती है। जनवरी माह का प्रारंभ नए वर्ष के रूप में होता है और प्रारंभ होता है, त्योहार, उत्सवों तथा मेलों का, जो आपसी सौहार्द जागृत कर उत्सवधर्मी मन का सृजन करते हैं साथ ही पर्यटन को विस्तार देते हैं।

सांस्कृतिक और भौगोलिक विविधताओं के देश में व्यक्ति को विभिन्न प्रकार की संस्कृतियों, मेलों और त्योहारों का आनंद और अनुभव करने का अवसर मिलता है और भारत ऐसे अनुभवों का प्रतिनिधि है। एक ऐसा देश जहाँ हर कोस के बाद आपको एक नई बोली-भाषा की सांस्कृतिक पहचान मिलती है, आपको विविध पृष्ठभूमि, मान्यताओं और विरासत का आनंद लेने का मौका मिलता है। ये मेले और त्यौहार हमारे समाज के आंतरिक सांस्कृतिक ताने-बाने के साथ-साथ हमारी विरासत की निरंतरता का भी हिस्सा हैं। भारत के कुछ जीवंत, आकर्षक और सबसे खूबसूरत मेलों और त्योहारों का विवरण अद्भुत है, जो पूरे देश में आयोजित किए जाते हैं। भारत अनेक जाति, धर्मों, संस्कृतियों, परंपराओं की विविधताओं वाला देश है, सम्पूर्ण विश्व में भारत ही एक मात्र ऐसा देश है जहाँ सांस्कृतिक और धार्मिक मेला होता है, इसलिए भारत को मेले और त्यौहारों की भूमि भी कहा जाता है। इन मेलों का आयोजन प्राचीन समय से चला आ रहा है जो देश-दुनिया के लोगो के लिए आकर्षण का केंद्र होते हैं। देश के सभी भाग से लोग इन प्रसिद्ध मेलों में घूमने आते हैं, जो देश की संस्कृति, परम्पराओं और विविधताओं को उजागर करते हैं, इनका धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक महत्व होता है, ये मेले नवम्बर से मई माह के मध्य में लगते हैं, बारिश के मौसम को उपयुक्त नहीं माना जाता। कृष्ण लीला तथा दधिकाँदों जैसे मेले इस मौसम में भी लग जाते हैं। इन मेलों में गुब्बारे, खिलौने, कपड़े, जूते, कलाकृतियां, बर्तन, रसोई के उपकरण, घरेलू उपकरण, फर्नीचर आदि मिलते हैं, पुस्तक मेला में पुस्तकें, व्यापार मेला में व्यापारिक वस्तुएँ, पशु मेला में गाय, भैंस, बकरी, घोड़े, ऊँट आदि मिलते हैं।

- देश का सबसे महत्वपूर्ण और सबसे बड़ा धार्मिक आयोजन '**कुंभ मेला**' हर तीन साल में एक विशेष स्थान पर ग्रह के अनुसार होता है, यह मनुष्यों का सबसे बड़ा जमावड़ा होने के साथ-साथ रंगों से भी भरा हुआ त्योहार है क्योंकि देश के विभिन्न हिस्सों से नागा साधु अपने अखाड़ों के साथ मेला स्थल तक यात्रा करते हैं। यह उत्सव इलाहाबाद, नासिक, हरिद्वार और उज्जैन में आयोजित किया जाता है, जहाँ दुनिया भर से श्रद्धालु इन स्थानों में प्रवाहित होने वाली पवित्र नदियों में डुबकी लगाने और मेला स्थल पर विभिन्न साधुओं के उपदेश सुनने आते हैं। इसे दुनिया के सबसे विशाल आध्यात्मिक ज्ञानवर्धक त्योहारों में से एक माना जाता है।

- साल के सबसे बड़े धार्मिक आयोजनों में से एक '**पुरी रथयात्रा**' सबसे भव्य पैमाने का एक दृश्य है। रथयात्रा के दौरान हर साल पुरी के प्रसिद्ध जग्गनाथ मंदिर के पास दस लाख से अधिक श्रद्धालु एकत्रित होते हैं। यात्रा में तीन विशाल मंदिर के आकार के रथों को खींचकर गुंडिचा मंदिर तक ले जाया जाता है और नौ दिन बाद वापस जग्गनाथ मंदिर में ले जाया जाता है। यह यात्रा जून या जुलाई के महीने में आयोजित की जाती है और इसे हिंदू धर्म के सबसे पवित्र आयोजनों में से एक माना जाता है।
- देश के सबसे उत्तरी कोने में लद्दाख के ठंडे रेगिस्तानों के बीच रंगों, सुंदरता और पूजा का त्योहार मनाया जाता है जिसे **हेमिस फेस्टिवल** के नाम से जाना जाता है। स्वामी पद्मसंभव की मृत्यु के उपलक्ष्य में मनाया जाने वाला त्योहार लद्दाख की संस्कृति और बौद्ध धर्म को समझने के लिए एक बेहतरीन जगह है। यह उत्सव हर साल जून या जुलाई में लेह के प्रसिद्ध मठ 'हेमिस जांगचुब चोलिंग' में आयोजित किया जाता है। त्यौहार का मुख्य आकर्षण लामाओं द्वारा किया जाने वाला मुखौटा नृत्य है, जो रंगीन पोशाक और ड्रैगन मुखौटे पहनते हैं।
- महान ऐतिहासिक प्रासंगिकता का स्थान, मामल्लपुरम एक खूबसूरत तटीय शहर है जो मध्यकाल में पल्लवों के गृहनगर के रूप में जाना जाता है। खूबसूरत समुद्रतटीय शहर में भारत की कुछ सबसे लुभावनी चट्टानी मूर्तियां हैं और इसी पृष्ठभूमि में **मामल्लपुरम नृत्य महोत्सव** हर साल दिसंबर-जनवरी के दौरान तीन दिनों के लिए होता है। नृत्य के विभिन्न विद्यालयों के शास्त्रीय नर्तक लगातार तीन दिनों तक अपनी प्रतिभा का शानदार प्रदर्शन करने के लिए एकजुट होते हैं।
- बंगाल का **पौष मेला**, कटाई के मौसम के अंत का प्रतीक है, यह किसान और बंगाल की ग्रामीण जीवन शैली का उत्सव है। इसकी विशिष्टता बंगाल के शहरी और ग्रामीण पक्षों का एक साथ आना है। जो बंगाली लोक संगीत, विशेष रूप से बाऊल संगीत और लोक नृत्यों के माध्यम से बंगाली संस्कृति का जश्न मनाता है। राज्य भर से ग्रामीण कलाकार अपनी कलाकृतियों के साथ यहां इकट्ठा होते हैं और इसे बिक्री के लिए रखते हैं।
- हर साल जनवरी के आखिरी हफ्ते या फरवरी के पहले हफ्ते में आयोजित होने वाला मदुरै का **फ्लोट् फेस्टिवल** एक बहुत पुराना त्योहार है, जो शहर में लंबे समय से मनाया जाता रहा है। इस त्यौहार में मदुरै मंदिर के देवी-देवताओं को शहर की झील में नाव की सवारी के लिए ले जाया जाता है, यह परंपरा 17वीं शताब्दी के तमिल राजा द्वारा शुरू की गई थी। लेकिन सवारी से पहले, देवी-देवताओं को भोर में उनके मंदिर से एक जुलूस में बाहर निकाला जाता है, जिसके पीछे हजारों भक्त होते हैं और फिर झील के किनारे एक मंडप पर रखा जाता है, जहां भक्त अपनी प्रार्थना कर सकते हैं। बाद में देवताओं को झील के उस पार नाव की सवारी पर ले जाया जाता है।
- समृद्ध जनजातीय विरासत और परंपराओं वाला क्षेत्र का '**हॉर्नबिल फेस्टिवल**' उत्तर-पूर्वी राज्य नागालैंड में मनाया जाने वाला एक अनोखा लोक त्योहार है।, नागालैंड पर्यटन विभाग के द्वारा आयोजित यह त्योहार नागालैंड की संस्कृति और सुंदरता को दुनिया के सामने लाने का एक प्रयास है। प्रतिवर्ष 1 से 7 दिसंबर तक मनाया जाने वाला यह त्योहार, नागा जीवन शैली की एक अद्भुत प्रदर्शनी है, जो हजारों पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करती है।

- जैसलमेर के लाल बलुआ पत्थर शहर **रेगिस्तान उत्सव** जो फरवरी माह में तीन दिनों तक राजस्थान के रेगिस्तानी जीवन का एक आकर्षक उत्सव है। यह भारतीय रेगिस्तान की लोक संस्कृति, संगीत, वस्त्र, आभूषण और खानाबदोश जीवन की परंपराओं की झलक दिखलाता है जहाँ लोककथाओं, संगीत और नृत्य प्रस्तुतियाँ होती हैं, रेगिस्तान का सबसे महत्वपूर्ण जानवर सजाया गया ऊँट इस उत्सव का मुख्य आकर्षण है।
- राजस्थान राज्य का सबसे बड़ा मेला और दुनिया के सबसे बड़े पशुधन मेलों में से एक **पुष्कर मेला** खानाबदोश संस्कृति और राजस्थान के सबसे खूबसूरत शहर का एक आकर्षक संगम है। यह मुख्य रूप से एक ऐसा स्थान है जहां ऊंटों और पशुओं की खरीद-फरोख्त होती है, लेकिन हाल के दिनों में विदेशी पर्यटकों के बीच इसकी बढ़ती लोकप्रियता के साथ 'मटका फोड़', 'ब्राइडल गेम्स' और 'सबसे लंबी मूंछें' जैसी प्रतियोगिताएं लोकप्रिय कार्यक्रम बन गई हैं। यात्रियों के लिए राजस्थान की खानाबदोश जीवन शैली को जानने का उत्तम अवसर है।
- एशिया का सबसे बड़ा पशु मेला '**सोनपुर मेला**', लगभग दो हजार वर्षों से अधिक मौर्य साम्राज्य के समय से जारी है। यह मेला मूलतः पक्षियों, कुत्तों, बकरियों, भैंसों, गधों और घोड़ों जैसे विभिन्न प्रकार के पशुओं की बिक्री और खरीद के लिए है। लेकिन मेले का मुख्य आकर्षण हाथी बाजार है, जहाँ गंगा नदी के तट पर सैकड़ों हाथी बिक्री के लिए पंक्तिबद्ध नजर आते हैं। इसके अलावा, क्षेत्र के प्रसिद्ध कलाकारों द्वारा संगीत और नृत्य का प्रदर्शन भी होता है।
- एक शाही जानवर के लिए **शाही त्योहार**, जयपुर में होली के अवसर पर आयोजित हाथी महोत्सव, लोगों द्वारा पसंद किया जाने वाला एक विशेष त्योहार है। यह त्योहार हाथियों को समर्पित है, जिसमें उन्हें सिर से पैर तक सबसे भव्य तरीके से सजाया जाता है। कार्यक्रम की शुरुआत खूबसूरती से सजाए गए हाथियों, घोड़ों और ऊंटों के जुलूस से होती है। यह आयोजन बहुत प्रतिष्ठित माना जाता है, जिसमें सबसे अच्छे से सजाए गए हाथी को पुरस्कार मिलता है। जुलूस के अलावा, हाथी दौड़, हाथी नृत्य और हाथियों और मनुष्यों के बीच रस्साकसी जैसे कार्यक्रम भी होते हैं।
- **बीकानेर ऊँट महोत्सव** राजस्थान के रेगिस्तान में सबसे अधिक पसंदीदा जानवर ऊँट का उत्सव है। "***रेगिस्तान का जहाज***", जैसा कि वे उन्हें कहते हैं, त्योहार में ऊंटों को सुंदर कढ़ाई वाली पोशाकों में सजाया जाता है। यह हर साल जनवरी के महीने में एक बड़ी सभा की उपस्थिति में आयोजित किया जाता है। यह त्यौहार जूनागढ़ किले में सबसे सुंदर ढंग से सजाए गए ऊंटों के एक रंगीन जुलूस के साथ शुरू होता है, वहां से जुलूस पोलो ग्राउंड तक जाता है जहां ऊंट नृत्य जैसे अन्य कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं।
- **काला घोड़ा कला महोत्सव** कला, संगीत और संस्कृति का नौ दिवसीय महोत्सव है, जिसमें न केवल मुंबईकर अपने इतिहास के एक हिस्से का आनंद लेने और इसकी सुंदरता को पहचानने के लिए बड़ी संख्या में आते हैं, बल्कि दुनिया भर से लोग भी आते हैं। यह उत्सव हर साल जनवरी के आखिरी सप्ताह या फरवरी के पहले सप्ताह में मुंबई के सांस्कृतिक केंद्र काला घोड़ा जिले में होता है, जहां मुंबई की कुछ सबसे शानदार इमारतें और कला केंद्र हैं। काला घोड़ा जिला अपने संग्रहालयों, कला दीर्घाओं, कैफे और रेस्तरां के लिए जाना जाता है।

- अंगूर के बागानों, मदिरा, भोजन और मोहक संगीत का, फरवरी के पहले सप्ताहांत में आयोजित होने वाला **सुला उत्सव** अपने पिछले संस्करणों से बेहतर होने के वादे के साथ अपने सातवें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। सुला अंगूर के बागों में आयोजित होने वाला उत्सव नासिक की पहाड़ियों, अंगूर के बागों के बीच आनंद लेने, शराब बनाने और इसे पीने के साथ-साथ कुछ उत्कृष्ट संगीत के साथ मनोरंजन करने का एक विशेष स्थान है।
- गोवा खूबसूरत समुद्र तटों, आरामदायक छुट्टियों और अद्भुत समुद्र तट का पर्याय है। गोआ में **कार्निवल** राज्य सरकार की मदद से पूरे राज्य में मनाया जाता है। इसमें पुर्तगाली विरासत का रचनात्मक झांकियों से भरी आकर्षक परेड का आनंद लेने, नृत्य करने और पूरी रात पार्टी करने के लिए लोग सड़कों पर आते हैं, कार्निवल पूरे राज्य में घूमता है। यह सांस्कृतिक कार्यक्रम मार्च में होता है।
- भारत का सबसे बड़ा नृत्य महोत्सव, **कोणार्क नृत्य महोत्सव** हमारी शास्त्रीय नृत्य विरासत का प्रतीक है। विश्व धरोहर स्थल - सूर्य मंदिर की पृष्ठभूमि में इसे आयोजित किया जाता है। फरवरी के महीने में आयोजित होने वाला यह उत्सव देश के सबसे बड़े सांस्कृतिक उत्सवों में से एक है क्योंकि यह मंदिर के गौरवशाली अतीत और इसकी परंपराओं का जश्न मनाने के लिए देश के सर्वश्रेष्ठ नृत्य कलाकारों के एक साथ आने का गवाह बनता है।
- **बोट रेस** भारत में सबसे अच्छे सांस्कृतिक कार्यक्रमों में से एक है। हर साल अगस्त महीने के दूसरे शनिवार को केरल में पुन्नमदा झील के बैकवाटर शहर अल्लापुझा में मनाया जाने वाला एक प्रसिद्ध त्योहार है। इस उत्सव में विभिन्न आकृतियों और आकारों की खूबसूरती से तैयार की गई नावें पुरस्कार राशि के लिए प्रतिस्पर्धा करती हैं, जिसमें मुख्य आकर्षण साँप नौका दौड़ होती है, जिसके विजेता को प्रतिष्ठित नेहरू ट्रॉफी से सम्मानित किया जाता है।
- **मोढेरा** सूर्य मंदिर के प्रांगण मनाया जाता है, यह नृत्य उत्सव, गुजरात के पर्यटन विभाग की ओर से हमारी मध्ययुगीन संस्कृति को सहेजने का उपक्रम है, हर साल जनवरी में आयोजित होने वाला इस सांस्कृतिक उत्सव में कला और स्थान का जश्न मनाने के लिए देश की बेहतरीन शास्त्रीय नृत्य उपासक प्रस्तुति देते हैं।
- **किला रायपुर महोत्सव** मूल रूप से एक खेल उत्सव है, जिसे ग्रामीण ओलंपिक के रूप में भी जाना जाता है। हर साल फ़रवरी के पहले सप्ताह में जालंधर के पास किला रायपुर गांव में आयोजित होने वाले इस उत्सव में हजारों लोगों की भीड़ आती है, जहाँ पंजाबी ग्रामीण इलाकों के विभिन्न हिस्सों से कबड्डी, ऑक्स रेसिंग, कुश्ती और कई अन्य कार्यक्रमों का आनंद लेने के लिए आते हैं।
- एशिया के सबसे भव्य साहित्यिक आयोजन, **जयपुर लिटरेचर फेस्टिवल** में साहित्य और विचार की दुनिया के सबसे प्रतिभाशाली नाम एक साथ आते हैं, जो तीन दिनों के बौद्धिक आनंद के लिए जयपुर के प्रसिद्ध डिग्गी पैलेस में एकत्रित होते हैं। इस महोत्सव ने सर्वश्रेष्ठ लेखकों को आकर्षित करने के लिए काफी प्रतिष्ठा हासिल की है, जो अपने बेहतरीन काम को दर्शकों के सामने पढ़ते और चर्चा करते हैं। जयपुर साहित्य महोत्सव जनवरी के अंतिम सप्ताह में आयोजित किया जाता है और कई लोग इसे गुलाबी शहर की खोज करने के साथ-साथ अपनी साहित्यिक भावनाओं का आनंद लेने के अवसर के

रूप में भी उपयोग करते हैं। इसी प्रकार जश्न-ए-रेख़्ता, लखनऊ लिटरेचर फेस्टिवल, गोरखपुर लिटरेरी फेस्ट जैसे देश के प्रतिष्ठित शहरों में पुस्तक मेला में ज्ञान वर्धन करने के लिए अनेक शहरों के लोग एकत्रित होते हैं।

- **लखनऊ महोत्सव** के दौरान हर दिसंबर में आयोजित होने वाला एक अनूठा उत्सव, **विंटेज कार फेस्टिवल** पूरे भारत से लोगों के विंटेज कार संग्रह का उत्सव है। 1904 में शुरू हुआ यह उत्सव लखनऊ की संस्कृति और विरासत का हिस्सा रहा है। यह उत्सव कुछ बेहतरीन विंटेज कार मॉडलों के प्रदर्शन के साथ देश भर से बहुत सारे कार प्रेमियों को आकर्षित करता है। इसी प्रकार आगरा महोत्सव, गंगा महोत्सव, मीरा महोत्सव, शिल्प मेला आदि का आयोजन देश के विभिन्न भागों में होता रहता है।
- भारत के सबसे आकर्षक आदिवासी मेलों में से एक, **तरनेतर मेला** गुजरात के तरनेतर गांव में आयोजित किया जाता है। भारत के सबसे बड़े स्वयंवरों में से एक है जहां आदिवासी पुरुष दुनिया में सबसे विस्तृत और सुंदर कढ़ाई वाली छतरियां लेकर शानदार कपड़े पहनकर मेले में आते हैं जिनके आधार पर कन्या वर का चयन करती है साथ ही सामान्य मनोरंजन के लिए लोक संगीत और नृत्य प्रदर्शन सांस्कृतिक उत्सव होता है।

डॉ॰ मधु रानी शुक्ला

अनुक्रम

गान

1. Hindustani Classical Music is a path of Prayer and Worship- Padma Bhushan Pandit Sajan Mishra — *Sanghamitra Chakravarty* 3
2. आगरा घराना एवं विशेषताएं — *अमित आनन्द* 7
3. श्री नरिन्दर नरूला : संगीत और शिक्षा को समर्पित : एक व्यक्तित्व — *निर्मल कौर* 11
4. संगीतकार सुरेन्द्र नेगी : कृतित्व एवं व्यक्तित्व — *यशवन्त* 17
5. ग्वालियर घराना एवं विशेषताएँ — *राहुल सहोता, डॉ॰ लता* 22

नर्तक

6. 'कथक नृत्य में कज्जलिका' - नृत्य रचना — *डॉ॰ हंस कुमारी* 29
7. कथक नृत्य में लोक तत्व — *डॉ॰ नीमा कलौनी* 34
8. Representation of Rama in The South Indian Dance- Drama Tradition of Kathakali — *Konduparti Maalyada, Dr. Beena. G* 39
9. विष्णुधर्मोत्तर पुराण में नृत्यकला के तत्व — प्रियंका तिग्गा, *डॉ॰ खिलेश्वरी पटेल* 45
10. भारतीय नृत्य कलाओं में प्रस्तुतिकरण तथा नवीन प्रवृत्तियाँ — *डॉ॰ एस. गौरीप्रिया, सविता मौर्या* 52
11. कथक नृत्य के प्रस्तुति क्रम में लय व ताल का सौन्दर्य — *सुचि कौशल, रंजना उपाध्याय* 58

थाती

12. Dara Festival: An Emerging Landmark of the Cultural Heritgae of Rajasthan — *Dr. Abhishek Srivastava* 65
13. मध्य भारत के जनजातीय नृत्य परम्परा में सांस्कृतिक तत्व — *डॉ॰ शैलेन्द्र कुमार* 70
14. *Bhands :* The Traditional Folk Musicians of Kashmir — *Dr. Javid Ahmad Moochi* 75

15. काँगड़ी लोकगाथाओं में इतिहास, प्रकृति प्रेम एवं चिंतन *डॉ. नेहा मिश्रा* 79
मंजना कुमारी

16. लोक वाद्यों एवं लोक नृत्य में लोक-जीवन की व्याख्या *श्रेया पांडेय* 86
डॉ0 रामशंकर

17. हिमाचल प्रदेश की लोक संस्कृति में बसंत *मनोज कुमार* 92
डॉ॰ अंकित भट्ट

18. Ustad Mohammad Abdullah Tibetbaqal Their Contribution towards Sufiana Music of Kashmir *Asif Farooq* 97

19. कुम्भकारी लोक कला-एक ऐतिहासिक अध्ययन *पल्लवी सोनी*
(पुरातन से अद्यतन काल तक) *प्रो॰ पाण्डेय राजीवनयन* 103

20. Festivals of the Kumaun Region : Unveiling Cultural and Communal Significance *Prerna Rana* *Dr. Ranjana Upadhyay* 110

अंकन

21. Modernism in Indian Sculpture and Ramkinkar Baij : A Study *Dr. Ganesh Nandi* 121

22. राजस्थान की लोक कला के विशेष सन्दर्भ में कला और लिपि का अन्तर्सम्बंध गोंड जनजाति का चित्र संस्कार *डॉ॰ सुरेश चन्द्र जाँगिड़* 126

23. गोंड जनजाति का चित्र संस्कार *डॉ॰ किरन मिश्रा* 133

24. Public Sculpture of Assam With Special Reference to Guwahati, Jorhat, And Cachar : An Overview *Dr. Binoy Paul* 138

25. जलरंग का ऐतिहासिक परिचय *रजनी बाला*
प्रो॰ (डॉ॰) राम विरंजन 145

26. मृण्मयी शिल्प का स्वरूप : तकनीक व मान्यताओं के संदर्भ में *राम मनोज*
प्रो॰ सरोज रानी 160

साहित्यकी

27. Revamping Mythological Space : A Critical Study of Rama Chandra Series by Amish Tripathi *Dr. Manchusha Madhusudhanan* 171

28. Destruction of Lavish Architecture and Lush Green Beauty : A Reading of the Poem Ruins of a Great House *Dr. Rakhi Chauhan* 177

29. From Awe to Aww : A Discursive Study of The Evolution of Monsters in Literature and Films *Dr. Sarath S.* *Aswathy V.N.* 182

30. Work-Life Balance of Urban Middle-Class Women : Social and Cultural Perspectives from Bengali Literary Works of Post-Partition Era — *Jayasree Das* 190

31. 'कवितावली में वर्णित शंकर-स्तवन का भाव' — *प्रो॰ राजेश तिवारी*, *कु॰ शालिनी* 205

32. Traumatized Cyborgs : A Posthumanist outlook in Pat Cadigan's *Synners* — *C. Fansta Fernando*, *Dr. Beena. G* 212

33. अवैध संबंधों के यथार्थ को उजागर करता नाटक 'दूसरा आदमी दूसरी औरत' — *देवानंद यादव* 218

34. Exploring the Impact of Violence and Gender Power Dynamics in Barbara Kingsolver's *Unsheltered* — *Kowsalya RM*, *Dr. Prem Shankar Pandey* 223

35. दाम्पत्य के अनंत आतंक में प्रतिरोधी स्त्री-पुरुष मन — *प्रियंका श्रीवास्तव*, *डॉ॰ रीता सिंह* 227

36. 'एक थी मैंने एक था कुम्हार' : उपन्यास में खेती से पलायन किसान विवशता — *मधु बाला* 237

37. Exploring the Revolutionary Essence of Badal Sircar in Indian Literature — *Sadaf Mushtaq Nasti*, *Yawer Ahmad Mir* 241

38. Magic in the Mundane: An Analysis of Magical Realism in Salman Rushdie's Midnight's Children — *Yawer Ahmad Mir* 247

39. Contextualizing The Channel of Status Quo Through Environmental Power Dynamics in The Select Novels of Barbara Kingsolver — *Kowsalya R M*, *Dr. Prem Shankar Pandey* 252

व्यक्तित्व

40. गुरुनानक की साधना - पद्धति (नाम - मार्ग) — *डॉ॰ हरजिंदर कौर* 263

41. 18वीं एवं 19वीं शताब्दी में लख़नऊ के प्रमुख संगीतज्ञों पर संक्षिप्त चर्चा एवं उनका योगदान — *अमित कुमार* 269

42. An Allegory at Play : A Study of Jogen Chowdhury's Selected Works — *Somaditya Datta* 274

43. बाबासाहेब डॉ॰ भीमराव अम्बेडकर के पत्रकारिता सिद्धांत (पत्रकारिता शिक्षण से संबद्ध विद्यार्थियों पर विशेष अध्ययन) — *शालिनी श्रीवास्तव*, *प्रो॰ गोपाल सिंह* 281

44 Signifying Nothing : Imageries of Cultural Trauma in the Poetry of Mona Zote — *Xavier Menezes* 290

प्रकीर्णक

45. "कुछ परिवर्तनों के साथ संभव है शास्त्रीय संगीत का व्यापक प्रचार एवं प्रसार" — *डॉ. शिप्रा मणिपद सरकार* 299

46. "The Study of Sustainable Development of Pisoli Village – Haveli Taluka, Pune District" — *Prof. Deepika Mirchandani* 303

47. इलेक्ट्रॉनिक एवं सोशल मीडिया का संगीत पर प्रभाव एक विश्लेषणात्मक अध्ययन — *डॉ॰ चित्रा चौरसिया* 310

48. Twitter - a Public Sphere of Image Building through Political Communication — *Dr. Gaurav Shah* 314

49. Gender Norms, Culture, Structural Violence : An Analysis of Devadasi System in India — *Dr. Jyotasana* 321

50. मीरा स्त्री विमर्श — *डॉ॰ खुशबू* 328

51. Role of Tamilnadu Eminent Martyrs' in Indian Freedom Struggle — *Mr. A. Selladurai*, *Dr. (Mrs.) R. Padmavathi* 332

52. The Children's Film Society, India : Trends, Challenges and Opportunities for growth — *Jyoti Kushwaha* 340

53. "The Study of Stress Management At Workplace In India" — *Prof. Deepika Mirchandani*, *Ms. Priyanka Mall* 348

54. Interpreting Sacrifice as Signs of Omen : A Study of the Sacrificial Practices of the *Boroks* faith in Tripura — *Rati Mohan Tripura* 361

55. Music therapy for Parkinson's disease on the basis of Biorhythm theory of Ayurveda — *Riyana Sreedharan*, *Dr. Karuna Nagarajan* 365

56. A Study of Antiquity of Hemp in Global and Indian context along with Ethnographic Findings in Uttarakhand — *Madhushree Barik* 376

57. Analyzing Social Media Dependency of Youth : A Multicultural Review Study — *Naveen Kumar*, *Dr. Vijay Kumar* 381

58. E-Marketing in Tourism : A Necessity after Covid-19 — *Divyajit*, *Ritu Rani*, *Dr Amit Kumar Singh* 390

59. *The Bhagavad Gita* for Engineering Students : Nurturing Leadership Skills — *Dr. Ram Avtar*, *Dr. Rakhi Sharma* 401

60. Collaborative Nature and Challenges of Folkloristic Study as Historical Science — *Amit Kumar*, *Abhishek Prasad* 409

61. Feminist Concerns: Elevating and Enriching the Consciousness of Women through the celebration of Female Solidarity and Sisterhood in the Works of Suniti Namjoshi — Meena Shanker, Dr. S. Kalamani — 422

62. Social and Psychological Trauma among The Transgenders : A Study on the Selected Life Writings — *Muktha Manoj*, *Pranamya Snehajan*, *Shilpa M. Chandran* — 428

63. शास्त्रीय एवं उपशास्त्रीय संगीत विधा में होली और धमार (गायन शैली) के विविध आयाम — *प्रेरणा अग्रवाल* — 437

64. The Socio-cultural Significance of Ladishah in Kashmir, A Study of the Evolution of a Satirical Folk Song — *Yasmeena Bano*, *Ishtaiq Ahmad Raina* — 444

गान

Hindustani Classical Music is a path of Prayer and Worship - Padma Bhushan Pandit Sajan Mishra

Sanghamitra Chakravarty
Research Scholar
Swami Vivekanand Subharti University, Meerut

Pt. Sajan Mishra

In the world of Indian Classical Music, Pt. Sajan Mishra needs no introduction. Popular as Rajan & Sajan Mishra, brothers, singers of the Khyal style were awarded the Padma Bhushan, Sangeet Natak Akademi Award, the Gandharva National Award and the National Tansen Samman. Unfortunately, Pt. Rajan Mishra passed away on April'2021 in Delhi during the period of Covid-19. Both the brothers were born and brought up in Varanasi, where they received their initial training from their grandfather's brother, Bade Ramdas ji Mishra along with their father Hanuman Prasad Mishra and from their uncle, sarangi exponent, Gopal Prasad Mishra. Sajan Mishra happens to be the younger brother of Pt. Rajan Mishra. The Mishra brothers carried a three hundred years old legacy of Khayaal singing of the Banaras gharana. They have been performing across the globe. Sharing here an interactive session with Pt. Sajan Mishra in his Delhi residence.

Keywords :

Hindustani Classical Music, spirituality, divinity, worship, Self-realisation, Pandit Sajan Mishra.

Q. Pandit ji, how do you visualise Hindustani Classical music as a whole?

A. Music for me is completely a worship. Life is to be lived as an art and the art stays in remaining as a wet mud. My ancestors of Banaras gharana taught me to be justified towards music. Hindustani Classical music is completely spiritual in all aspects. We have been taught to start our music with mindfulness and devotions towards Goddess Saraswati, then towards the Guru(teacher) and proceed accordingly. The poetry and compositions of the verses in Hindustani Classical Music emerged from various influences namely, 'Braj', 'Awadhi' and even the Mughals which were basically composed for worship towards the Supreme.

Q. Starting from the 13th century, can you please comment about Hindustani Classical Music and its changes till now?

A. As I have mentioned before, Hindustani Classical Music, was based on Kirtan (a devotional form of music), worshipping towards the deity since the 13th century. It is well known that Indian classical music as its roots from the folk music/ sangeet which was usually sung by the common man. I remember a speech by renowned Musicologist, Dr. Ashok Ranade in London who mentioned that there were 127 styles and forms in vocal music. Among them, more than 100 hundred forms have become extinct. Roots of Hindustani Classical music are tremendously strong; hence, it is alive till date with other various forms namely, Dhrupad, Dhamaar, Kajri, Khyal, Thumri, Tarana, Chaiti etc. Though change is the only constant in life which needs to be accepted in any form. Ustad Nisar Hussain Khan sahab mentioned that the music earlier was peaceful but today's music generates restlessness. This is indeed correct. But it is necessary to walk through the changes in time. The internet today, has an availability of all the variations of music by numerous performers, making the audience aware about the diversifications. Figuratively speaking, in the earlier times, a musician could only present a bouquet consisting of limited flowers, unlike today where musicians are capable of showcasing an entire garden with endless variety of flowers. The vital tool in order to learn, practice and perform Hindustani Classical Music is .... delicacy. Music teaches love and not hate. It has been noticed since a while that musicians or vocalists sometimes plagiarise various traditional and authentic compositions and present them, claiming their own. This is a huge malpractice in the field of music which needs to be looked upon and stopped.

Being a musician requires purity of heart, mind and grasping of culture. Whoever practices this with humility and honesty, has a stronger hold than the ones who opt music through finesse or shortcuts. Whoever bows down to it, receives it more. Intentions matter a lot when it comes to learning music and art in general, anyone with pure and honest intentions gets to learn the best of it whereas some-

one who pursues it with greed and takes it for granted doesn't end up realising and knowing its worth and concept. In my 50 years of career in music, after so many experiences, I still pray with folded hands to Goddess Saraswati *'Hey Ma, saccha sur lagado'* (Oh Mother! Please provide my voice the purest notes). In Hindustani Classical Music, each *swara* is like an individual personality, and singing them requires genuineness and depth. This is something that needs to be culminated by the musicians in today's era.

A still from the interview with Pt. Sajan Mishra

Q. Pandit Ji, please throw some light on 'Naad Brahman' and your own experiences relevant to it.

A. This experience cannot be put into words, it can only be felt when one passes through the journey perfection and harmony while practicing the *swaras*. Yet, I would like to share my experience related to this, that might inspire the learners of this art form. Once, my elder brother, Pt. Rajan Mishra and I visited Germany for our performance. Reaching there, we got to know that the place of our performance is actually a meditation hall and not an auditorium like usual, clapping was even forbidden there. Taking the situation and environment into consideration, we decided to present Raag- 'Shree'. The performance created a sense of depth and trance among us and the audience, so much so that it gave us goosebumps and left everyone speechless afterwards, away from the present state. I have felt the similar way quite a few times during my practice and performances, not with so much depth. But I definitely want to experience more of it in the coming future. My guru Pt. Bade Ramdas Ji used to say that practicing music and make someone visualise variety of colours, that is 'Naad', which cannot be seen or heard through bare human eyes or ears. I remember Pt. Kishan Maharaj ji's words, saying........ this is a vidya (knowledge) in which requires a human to use its head to toe. Practitioners like this, earlier, possessed extreme austerity and penance within them. I have seen my ancestors, digging mud, fixing a *shivling* on it (an abstract idol representing Lord Shiva) and pouring milk over it, filling up the mud. They would continue with their riyaaz(practice) till the milk dries out and seeps into the mud completely. Pt. Ramsahay Ji, while playing his instrument, would create sounds with so much weight and resonance, that even a stone slab would crack because of it. Pt. Vishwanath Ji, the great tabla maestro of Banaras gharana was skilled in the bol *'Gi-din-*

na', playing of which created a heavy and intimidating atmosphere around him, even turning of a lantern because of the sound. This act was very entertaining among children back in his time. All these situations reveal the Naad Brahman if and only if. Music is accepted and practiced with deep dedication and passion. Unfortunately, musicians today are unable to reach such heights, even if they want to, because of the fast-paced lifestyle and capitalism around.

Q. Music today, has become a mere mode of entertainment. But Hindustani Classical music is said to be one of the forms which leads to Self-Realisation. What are your views on it?

A. This is absolutely true, Hindustani Classical music holds the depth to make a person reach that state of perfection or Self-Realisation, provided it should be practiced performed in a similar way. As times have flied by, we can see a lot of gimmicks in this field, where the audience uses whistling as a form of appreciation even in classical performances. I agree that an artist might and has to customise its presentation to make it interesting and catchy for the public, but this isn't very ethical in Indian Classical music. Classical artists today, in hunger of a larger audience, end up diluting their music, leading to injustice and insult to this art form. Quality matters over quantity in this field, not everyone can develop a taste for this genre. Its better to have less but genuine audience rather than billions of people viewing but not appreciating the depth and originality of this music. Hence, I think the practitioners in Hindustani Classical music have a huge responsibility towards promoting and presenting it the ethical and original way and create a positive impact among people.

Pt. Sajan Mishra(right) and Sanghamitra Chakravarty(left)

Q. Many are pursuing Ph. D programs/ research work in music nowadays. How do you view this?

A. I appreciate that educational institutions recognise music and give equal importance to it like other fields of study. But unfortunately, whatever research is done till date, mostly is locked up in the libraries of colleges and universities instead of promoting and presenting it to the public. These underrated works deserve the audience's support and acknowledgement. As a benefit, this will also create awareness and knowledge among the society, normalising music even more and not just thinking of it as an extra-curricular activity.

आगरा घराना एवं विशेषताएं

अमित आनन्द
टीचिंग असिस्टेंट-तबला इंस्टीट्युट ऑफ म्यूज़िक एण्ड फाइन आर्ट्स
जम्मू यूनिवर्सिटी, जम्मू

सारांश

यह सच है, आज हर क्षेत्र, हर जगह की सोच में बदलाव आया है और लोग कम मेहनत करके ज्यादा से ज्यादा हासिल करना चाहते हैं। इसी प्रकार संगीत की शास्त्रीयता में भी बदलाव आया है। लेकिन जहां तक संगीत-शिक्षण और प्रशिक्षण का सवाल है, संगीत अभी भी अभ्यास का विषय है। घराने संगीत जगत में मौजूदा शैलियों के संरक्षक और उन्हें जीवित रखने का मुख्य आधार रहे हैं। ये वो परिवार हैं जिन्होंने हमारी विरासत को उसकी स्थापना से लेकर आज तक संभालकर रखा है। घराना संगीत हमारे संगीत की नींव है, जिस नींव पर यह आज तक खड़ा है। यही चीज़ उसके जीवन को ईंधन देती है और उसे जीवित रखती है। यदि आधुनिक हिंदुस्तानी संगीत को इस घरानेदार संगीत का समर्थन और प्रोत्साहन न मिला होता तो यह निष्प्राण हो गया होता। बिना पूरे रियाज और बिना पूरे प्रशिक्षण के यह कला नहीं पनपती, इसलिए इस कला का अभ्यास करना जरूरी है। इस रियाज़ को आगरा घराने में आज भी संजोया जाता है, आज भी इस घराने में संगीत सीखने और सिखाने में अनुशासन की परंपरा है। इसीलिए आगरा घराना आज भी जीवित है। 'घराना' एक विशेष शैली या रीति-रिवाज का प्रतीक है। जो कलाकार या उस्ताद इस शैली या शैली का अभ्यास करता है, उसे इस 'शैली' का संस्थापक कहा जाता है और उसके नाम तथा उसकी गायकी के गुणों के आधार पर उस शैली या शैली को घराना कहा जाता है। इस घराने के शिष्यों का समुदाय उस घराने की गायकी को बढ़ावा देता है। भरत ने अपनी पुस्तक 'नाट्यशास्त्र' में संगीत-गुरु या कलाकार के गुणों का वर्णन करते समय एक गुण के रूप में 'शिष्य प्रवेश' गुण का भी उल्लेख किया है, जिसका अर्थ है गुरु द्वारा अपने शिष्यों में अपने परिवार के गुणों का प्रचार करना। यानी जो शिष्य उस घराने से संबंध रखता है उसे गुरु एक तरह से आकार देते हैं, तब कहीं जाकर शिष्य गुणों से भरता है। शिष्य अपने गुरुओं की परंपरा को बड़ी मेहनत, लगन और निष्ठा से ईमानदारी से आगे बढ़ाता है।

बीज शब्द :

संगीत, आगरा, घराना कलाकार, विशेषताएँ

आगरा घराना की शुरुआत :

आगरा घराना गायकों के प्रतिष्ठित घरानों में आगरा घराने का बहुत नाम हुआ है। जहाँ तक गायकी का सम्बन्ध है इस घराने की गायकी का बड़ा गहरा सम्बन्ध ग्वालियर की गायकी से रहा है। परन्तु इसके पहले कि हम इस तथ्य पर प्रकाश डालें, इस घराने के जन्म के बारे में भी थोड़ा-बहुत बताना आवश्यक है। इस घराने का जन्म कैसे हुआ यह भी एक दिलचस्प कहानी है। सच तो यह है कि घरानों के जन्म में संयोग का बहुत हाथ होता है। किसी भी

घराने का जन्मदाता उसके उज्ज्वल भविष्य के बारे में पहले से कुछ नहीं कह सकते। घरानों का विकास कभी-कभी कुछ विशेष परिस्थितियों में होता है। ऐसा मालूम पड़ता है मानो कुछ अच्छी शक्तियाँ ही उनकी उत्पत्ति का कारण बन जाती हैं। जो कुछ भी हो घरानों के जन्मदाता ही उसके मार्गदर्शक भी बन जाते हैं।

यह तो हम जानते हैं कि आगरा घराने के आदि पुरुष अकबर युग के हाजी सुजान खाँ थे, जो ध्रुपद और धामार शैलियों के विशेषज्ञ थे। इन्हीं के वंश में 1780 में श्याम रंग नाम के एक गायक हुए जो नौहार बानी के ध्रुपद के माने हुए विशेषज्ञ थे। यह आलाप, ध्रुपद और होरी धामार ऐसी शैलियों का ही अधिक सदुपयोग करते थे। इन्होंने बहुत से शिष्यों को संगीत की शिक्षा दी थी जो दूर-दूर तक फैल गये थे। इनके एक और भाई थे जिनका नाम सरसरंग था और वह भी बड़े अच्छे गायक थे। यह दोनों भाई काशी नरेश वीरभद्र सिंह के यहाँ नौकरी करते थे, जिनका निवास स्थान उस समय आगरा था। श्याम रंग को हिन्दी का भी अच्छा ज्ञान था और वह हिन्दी में कविता भी करते थे। दोनों भाईयों में बहुत प्रेम था और यह दोनों आगरा छोड़कर नहीं गये।[1] इस घराने के पं. भास्कर राव बखले का नाम भी बहुत उच्चकोटि के संगीतज्ञों में लिया जाता है। इनके शिष्यों में गोबिन्द राव टेंबे तथा दिलीप चन्द्र बेदी का नाम प्रमुख है। श्री जगन्नाथ बुआ पुरोहित, श्री कृष्ण नारायण राताजंकर, खादिम हुसैन खाँ तथा लताफ हुसैन खाँ भी इसी घराने की परम्परा के सुप्रसिद्ध गायक रहे हैं। आधुनिक काल में सुमति मुटाटकर, सी. आर. व्यास, श्रीमती ललित जे. राव, प्रो. यशपाल, उल्लास कशालकर एवं पदमा तलवकर इस घराने के प्रसिद्धि प्राप्त कलाकार हुए हैं। इस घराने की गायिकी का ग्वालियर घराने की गायिकी से बड़ा गहरा सम्बन्ध है।[2] इसलिए आगरा घराने की बहुत सी विशेषताएँ ग्वालियर घराने से मिलती हैं, क्योंकि आगरा घराने की ख्य़ाल शैली के अन्वेषक घग्गे खुदाबख्श ने ख्य़ाल की शिक्षा ग्वालियर घराने के मूल पुरुष नत्थन पीरबख्श से प्राप्त की थी।[3] हाजी सुजान खाँ तानसेन के दामाद थे। ये मूलतः राजपूत थे और नौहार वाणी के प्रणेता थे। हाजी सुजान खाँ किसी कारण से मुसलमान हो गए और इस प्रकार वे सुजान दास या सुजान सिंह नौहार से सुजान खाँ बन गए। आपके चार पुत्र थे- अलखदास, मलुकदास, खलकदास और लवनादास। इसी वंश-परम्परा में जहांगीर के समय में कादिरशाह और शाहजहां के समय में हैदरशाह हुए। औरंगजेब के समय में दायम खाँ हुए, जो 'सरसरंग' के नाम से प्रसिद्ध हुए। 'सरसरंग' मलुकदास के पुत्र थे। मोहम्मद शाह रंगीले के समय में कायम खाँ हुए, ये ही कायम खाँ 'श्यामरंग' के नाम से जाने जाते हैं। घग्गे खुदाबख्श को इन्हीं श्यामरंग का छोटा पुत्र माना जाता है। आगरा घराने की गायिकी के प्रचार-प्रसार और उसे समृद्ध करने का श्रेय घग्गे खुदाबख्श को ही जाता है। 'घग्गे खुदाबख्श के दो पुत्र कल्लन खाँ और गुलाम अब्बास खाँ थे। इन्होंने भी संगीत जगत में गायन के क्षेत्र में बहुत प्रशंसा प्राप्त की थी। इन दोनों भाईयों ने अपने पिता घग्गे खुदाबख्श से शिक्षा ग्रहण की। गुलाम अब्बास खाँ घग्गे खुदाबख्श के बड़े पुत्र थे। इनका जन्म आगरा में सन् 1822 ई. और सन् 1825 ई. के मध्य हुआ था।[4] इन्होंने संगीत के क्षेत्र में बहुत नाम कमाया था। नत्थन खाँ गुलाम अब्बास खाँ के भतीजे और विलायत हुसैन खाँ के पिता थे।[5] नत्थन खाँ ने भास्कर राव बखले से शिक्षा लेकर आगरा घराने की गायिकी में विलक्षण योग्यता प्राप्त की थी। उस्ताद फैय्याज खाँ के साथ रहते हुए विलायत हुसैन खाँ को गुलाम अब्बास खाँ साहब से भी शिक्षा प्राप्त हुई, जोकि उस्ताद फैय्याज खाँ साहब के नाना थे। उस्ताद फैय्याज खाँ इस परम्परा के महान गायक कलाकार हुए हैं। डॉ. सुशील कुमार चौबे के अनुसार- 'फैय्याज खाँ के वर्णन के बिना आगरा घराने का वर्णन अधूरा माना जाता है। ये आलाप, होरी, धमार, ख्याल, टप्पा, ठुमरी, ग़ज़ल और दादरा जैसी शैलियों के बेजोड़ गवैये थे।[6] 18 मई सन् 1962 ई. को

उस्ताद विलायत हुसैन खाँ साहब का देहान्त हो गया था।[7] उस्ताद विलायत हुसैन खाँ के पुत्र युनुस हुसैन खाँ गायकों की इस पीढ़ी में 11वीं पीढ़ी के गायक हैं, जिसका आरम्भ उस्ताद सुजान खाँ से हुआ था।

उस्ताद विलायत हुसैन खाँ ने कल्लन खाँ से शिक्षा प्राप्त की थी। उस्ताद विलायत हुसैन, खाँ ने भी अनेक उस्तादों से शिक्षा प्राप्त की थी, जिनमें करामत हुसैन खाँ, मुहम्मद बख्श तथा अल्लादिया खाँ के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके शिष्यों में अंजनीबाई जम्बोलीकर, मोगुबाई कुर्डीकर, गिरिजाबाई केलकर, पं. जगन्नाथ बुआ पुरोहित तथा राम मराठे आदि के नाम प्रसिद्ध हैं। विलायत हुसैन खाँ के पुत्र युनुस हुसैन खाँ तथा आगरा घराने के आधुनिक प्रतिनिधि और एक अच्छे गायक थे। आगरा घराने के कुछ अन्य शिष्यों में भास्कर बुआ बखले और बाबली बाई के नाम आते हैं, जो गुलाम अब्बास के शिष्य थे। भास्कर बुआ बखले ने अल्लादिया खाँ साहब से भी उनकी कठिन गायिकी की शिक्षा लेकर दोनों का मिश्रण करने का प्रयत्न किया। इस प्रकार ग्वालियर की सीधी सरल गायिकी और आगरा की लय प्रधान गायिकी के साथ अल्लादियां खाँ की सूक्ष्म व पेंचदार गायिकी को मिलाकर उन्होंने एक नई गायिकी का निर्माण किया।

आगरा घराना की विशेषताएं :

ग्वालियर घराने की गायकी से यद्यपि आगरा घराना बना, फिर भी अपनी निजी विशेषताओं के कारण आगरा घराना स्वतंत्र तथा सर्वमान्य घराना रहा है।

- आगरा घराना मूलतः ध्रुपद-धमार का घराना होने के कारण ख्याल गायकी में भी नोम-तोम के आलाप व लयकारी का प्रभाव रहता है।
- इस घराने के गायकों के स्वरों का लगाव गहरा तथा बुलन्द है। बन्दिश के बोलों के साथ पल्टों की बढ़त करना और ताल के विभिन्न खण्डों से तान की उपज शुरु करना, इस घराने की विशेषता है।
- आगरा घराने में ध्रुपद, धमार की परम्परा पहले भी थी और आज भी सुरक्षित है, इसलिए यहाँ के ख्याल गायक भी विभिन्न लयों में नोम-तोम का आलाप करते हैं।
- फैय्याज खाँ के नाना चूँकि 'रंगीले घराने' के थे अतएव इस घराने के प्रतिनिधि गायकों में भी यही रंग और रसीलापन वंशानुक्रम से प्राप्त था। जोरदार और खुली आवाज में गायन इस घराने की विशेषता रही है।
- आगरा घराने के कलाकारों का स्वर-लगाव खड़ा व खुला हुआ है। इसमें कण स्वरों का उच्चारण वर्जित, नोम-तोम तथा लयकारियाँ, स्वरों की बढ़त क्रमानुसार, बोल-बांट और बोलतान, आड़ा चौताल, सुलताल, झूमरा व रूपक आदि तालों का प्रभावपूर्ण ढंग से प्रयोग करते हैं।
- आगरा घराने की बोल तानें इतनी सुन्दर तथा प्रभावी हैं कि दूसरे घरानों के गायक शीघ्र ही प्रभावित हो जाते हैं। इस घराने की मूल-परम्परा ध्रुपद-धमार की थी और इसमें नौहार वाणी प्रमुख रही है।
- आगरा घराने गायिकी में सरलता के साथ ही संयम और संतुलन की भावना भी रही है। खुली एवं जोरदार आवाज़ में एक के बाद एक आक्रामक तानें इसकी अन्य विशेषताओं में से एक हैं।
- विलायत हुसैन खाँ का कहना था कि नत्थन खाँ ने एक निराला ढंग आरम्भ किया, वह था अति विलम्बित लय रखकर उसमें चौगुन, अठगुन व आड़ी लय में फिरत करके बंधी हुई तानों व बोल-तानों को लेना।
- आगरा घराने में बिलम्बित तीनताल में बहुत सी चीजें गाई जाती हैं। द्रुत तीनताल में सब गा लेते हैं, पर विलम्बित तीनताल में जमकर गाना आगरा घराने की विशेषता है।

- लयकारी के साथ ही बोल-अंग का विस्तार और बोलों के साथ पल्टों की बढ़त तथा ताल के विभिन्न खण्डों से तान की उपज शुरू करना आगरा घराने की खास विशेषता है।[8]
- गायन आरम्भ करने से पहले 'नोम-तोम' करने का प्रचार है। आगरा घराने की गायिकी ने ग्वालियर घराने की गायिकी के लक्षणों और उनकी मुख्य विशेषताओं को अपनाया और उन पर अपने घराने की छाप लगाई। ऐसा करके आगरा घराने ने अपनी गायिकी को सुरक्षित रखा।
- डॉ. शन्नों खुराना के अनुसार आगरा घराने को सदैव अन्य घरानों की गायिकी की विद्या ग्रहण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इसका परिणाम यह हुआ कि आगरा घराने की गायिकी में सभी अंग व रंग आ गए। यदि कोई पूछे कि आगरा गायिकी क्या है? तो यह कहा जा सकता है कि 'लयबद्ध बोलतान और चीज़ के बोल-बनाव' यही इस गायिकी की विशेषता है।[9]

निष्कर्ष :

आगरा घराना भी एक प्रसिद्ध घराना है। मूलतः यह घराना ध्रुवपद-धमार गायकी का घराना है। इसीलिए ध्रुवपद-धमार के नोम-तोम के आलाप और लयकारी का प्रभाव आगरा घराने की ख्याल गायकी में भी रहता है। इस घराने पर ग्वालियर घराने की गायकी का प्रभाव है। आगरा घराने के कई प्रमुख कलाकार इसे विख्यात करते हैं, जैसे कि उस्ताद फैय्याज़ खान, उस्ताद इमरत खान, और उस्ताद विलायत खान आदि। इन कलाकारों ने आगरा घराने को उच्चतम स्तर पर पहुँचाया और इसकी धारोहार को बनाए रखने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। आगरा घराने के गायक रागों की गहराईयों में उनकी भावनाओं को बयां करने की कला में माहिर होते हैं और उनकी तान प्रदानी तकनीक उनके गायन को विशेष बनाती है। आगरा घराने का प्रमुख लक्ष्य गायन में भावुकता और भक्ति की भावना को प्रकट करना है, जो उनके संगीत को अद्वितीय बनाती है। समरसता, गहराई, और भावनाओं की समृद्धि के साथ, आगरा घराना भारतीय शास्त्रीय संगीत की धरोहर का महत्वपूर्ण हिस्सा है और यह संगीत प्रेमियों के बीच विशेष मान रखता है।

संदर्भ सूची :

1. डॉ. सुशील कुमारी चौबे, संगीत के घरानों की चर्चा, उत्तर प्रदेश ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ, 2014, पृष्ठ-93-94
2. डॉ. सुशील कुमार चौबे, हमारा आधुनिक संगीत, उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ संस्थान, लखनऊ, 1983, पृष्ठ-29
3. वही, पृष्ठ-97
4. डॉ. सुशील कुमार चौबे, हमारा आधुनिक संगीत, उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ संस्थान, लखनऊ, 1983, पृष्ठ-98
5. वंदना चौबे, गायन के विभिन्न घराने तथा उसकी विशेषताएं, संगीत, घराना अंक-1982, पृष्ठ-53
6. डॉ. सुशील कुमारी चौबे, संगीत के घरानों की चर्चा, उत्तर प्रदेश ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ, 1977, पृष्ठ-106
7. लक्ष्मी नारायण गर्ग, हमारे संगीत रत्न, संगीत कार्यालय हाथरस, उत्तर प्रदेश, 1978, पृष्ठ-140
8. डॉ. सुशील कुमार चौबे, हमारा आधुनिक संगीत, उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ संस्थान, लखनऊ, 1983, पृष्ठ-226
9. यमन अशोक कुमार, संगीत रत्नावली, अभिषेक पब्लिकेशनज, चण्डीगढ़, 2015, पृष्ठ-497

श्री नरिन्दर नरूला : संगीत और शिक्षा को समर्पित : एक व्यक्तित्व

निर्मल कौर
फार्मर अस्सिटेंट प्रोफेसर
डिपार्टमेंट ऑफ म्यूज़िक
मेहर चंद महाजन डी.ए.वी. कॉलेज फॉर वूमेन, चंडीगढ़

सारांश

मनुष्य ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति की है। अपनी कल्पना शक्ति को व्यवहारिक रूप प्रदान कर अपनी मेधा का परिचय दिया है। दुनिया में कुछ ऐसे व्यक्तित्व, कुछ ऐसी शख्सियतें होती हैं, जो खुद को होम कर आने वाली पीढ़ियों का मार्ग प्रशस्त कर देती हैं और हमेशा के लिए एक मापदण्ड के रूप में स्थापित हो जाती हैं। ऐसे लोगों की जीवनी सामान्य तौर पर किसी क्षेत्र विशेष में उनके योगदान से सम्बन्धित जानकारी तो देती ही हैं साथ ही उन लोगों के लिए प्रोत्साहन के रूप में निर्देशिका भी बन जाती है, जो जीवन में किसी कारण निराश, हताश, शिथिल या किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं। एलैक्ज़ैन्डर पोप के अनुसार 'The proper study of mankind is man.' अर्थात मनुष्य जाति का सबसे उपयुक्त अध्ययन का विषय मनुष्य ही है। साधारण शब्दों में निरंतर आगे बढ़ना इंसान का नैसर्गिक गुण है और इसके लिए दूसरों को प्रेरित करना और दूसरों से प्रेरणा लेना मानवीय प्रवृत्ति। संगीत के क्षेत्र में ऐसे ही एक प्रेरणादायक व्यक्तित्व है- श्री नरिन्दर नरूला जी। प्रस्तुत शोध-पत्र में श्री नरिन्दर नरूला जी के व्यक्तित्व एवं संगीत में योगदान के बारे में चर्चा की गई है।

मुख्य शब्द :

संगीत, सितार, व्यक्तित्व, घराना, इटावा

सामान्य परिचय :

श्री नरिन्दर नरूला का जन्म 15 जुलाई, 1948 को पंजाब में स्थित पटियाला घराने के शास्त्रीय संगीत से सम्बन्धित एक परिवार में हुआ है। इनके पिता का नाम श्री जगदीश राय नरूला है जोकि (सिद्धहस्त वॉयलिन वादक) थे। पटियाला घराना के मुख्य कलाकार उस्ताद 'आशिक अली' के गन्डा बंद शिष्य में से एक थे और माता श्रीमती ज्ञान कौर गुरमत संगीत से संबंधित थी। घर में इनके अतिरिक्त इनकी दो बहनें है और दो भाई थे। आप अपने माता-पिता की तीसरी संतान हैं। बड़े भाई अनिल नरूला (वायलिन वादक) व छोटे भाई राजन नरूला (तबला वादक) थे और इनकी बड़ी बहन सुरिन्दर कपिला (शास्त्रीय गायन) और छोटी बहन डेज़ी वालिया (कथक नृत्य) से संबंध रखती हैं। 31 जनवरी 1975 में आपकी शादी सुधा नरूला से हुई जो एक नृत्य अध्यापिका के साथ-साथ एक अच्छी सितार वादिका भी है। इनके घर दो पुत्रों (यमन नरूला, कुणाल नरूला) ने जन्म लिया। यमन नरूला (USA) में सॉफटवेर इंजीनियर है और छोटा बेटा कुणाल नरूला अच्छे सितार वादक की भूमिका निभा रहा है।

सांगीतिक शिक्षा :

श्री नरिन्दर नरूला ने भारतीय शास्त्रीय संगीत में बहुत छोटी आयु में प्रवेश किया। बचपन से ही गायन व वादन की शिक्षा अपने माता-पिता से ग्रहण करनी प्रारंभ कर दी और अपने भाई-बहनों से भी आप संगीत की शिक्षा प्राप्त करते रहे हैं।

बचपन से ही आपको संगीत के प्रति बहुत लगाव था। पिता जी ने आपको वॉयलिन की शिक्षा देनी आरंभ की। 5 वर्ष की आयु में, 5 से 7 घंटे रियाज़ करते थे। आपका झुकाव वॉयलिन से ज्यादा सितार की ओर था। जब पिता को इस बात का ज्ञात हुआ तो आपको सितार में मेहनत करने को कहा। श्री नरूला को लय की समझ बाल्यकाल से ही थी और सुर का ज्ञान आपको माता के गायन को सुन-सुन कर हुआ।

श्री नरिन्दर नरूला की स्कूल शिक्षा भी संगीत के साथ-साथ जारी रही। आपने 11वीं कक्षा तक की शिक्षा 'आधुनिक वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, पटियाला' से पूरी की। आपके जन्म से पूर्व सन् 1922 में पटियाला शहर में सबसे पहली वाद्ययंत्रों की दुकान आपके पिता की ही थी, यहाँ पर उच्च कोटि के महान कलाकारों का आना-जाना लगा रहता था। जैसे- बड़े गुलाम अली खाँ, अब्दुल अजीज़ खाँ (बीनकार), किशोरी अमोणकर, अमानत अली, सलामत अली, फतेह अली और बम्बई से कई संगीतकार जे.एस. कोहली, हुसन लाल इत्यादि आते रहते थे। जब आप स्कूल से घर आते थे, पिता जी ने आपको अपने साथ दुकान पर ले जाते थे और वहीं सारा दिन बैठा कर सितार का रियाज़ करवाते रहते थे।

श्री नरिन्दर नरूला को कई घरानेदार उस्तादों से भी संगीत की शिक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। पिता जी ने छह वर्ष की आयु में आपको भाई लाल सिंह (पटियाला घराना) के पास भेजा, आपने उनसे लगभग दो वर्ष तक सितार की शिक्षा प्राप्त की। भाई लाल सिंह जी के बाद आपने उस्ताद विलायत खां साहब के शागिर्द मकसूद अली खां जोकि बंबई से आये थे, आपको कुछ समय उनसे संगीत की शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हुआ।

10 वर्ष की आयु में पहली बार आप ने किला चौक पटियाला में सितार वादन की प्रस्तुति दी और आपके साथ तबले पर उस्ताद शान्ति स्वरुप (पंजाब घराना) ने संगत की। वहां पर आपने बहुत वाह-वाही प्राप्त की और उसके बाद आपने प्रतियोगिताओं में भाग लेना प्रारंभ कर दिया। इसके बाद भाई सवर्ण सिंह (पटियाला घराना) से तीन वर्ष तक आप संगीत की शिक्षा ग्रहण करते रहे।

स्कूल शिक्षा के उपरान्त आपने सनातक (गवर्नमेंट महिन्द्रा कॉलेज, पटियाला) से और स्नातकोत्तर (पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला) से संगीत विषय में प्राप्त की। आपने कई Youth Festival प्रतियोगिताओं में भाग लिए और हर बार प्रथम स्थान हासिल करते रहे। उस समय आप एक अच्छे कलाकार के रुप में उभर रहे थे, आपके मुकाबले में सितार वादन करने वाला कोई भी विद्यार्थी नहीं होता था। इसके बाद आपने संगीत विशारद (गायन और तबला की शिक्षा) गन्धर्व महाविद्यालय (पूना) से प्राप्त की।

उस्ताद विलायत खां के शिषय के रूप में :

''मैंने सन् 1962-63 में उस्ताद विलायत खां साहिब को पहली बार हरिवल्लभ संगीत सम्मेलन जालन्धर (पंजाब) में सुना था तो मेरा मन उस्ताद जी से सीखने की तरफ हो गया। उस समय मैं, भाई सवर्ण सिंह जी से सितार की शिक्षा ले रहा था तो मैंने अपने रियाज़ का समय 8 से 18 घंटे तक बढ़ाया हुआ था जिससे मेरी सुझ बूझ बहुत बढ़ी। घरानेदार गुरूओं से शिक्षा प्राप्त करने का जो अनुभव कलाकारों को मिलता है, वही अनुभव और उसी दौर से मुझे भी गुजरना पड़ा। घरानेदार गुरु से शिक्षा प्राप्त करना पहले इतना सरल नही था, कठिन साधना की कसौटी से गुज़रना पड़ता था। उस्ताद जी को मैं रेडियो पर सुनता रहता था और मिलने के लिए दो वर्ष तक ऐसे ही भटकता रहा, सीखने की इच्छा भी प्रबल होती गई।''

सन् 1965 में उस्ताद विलायत खां साहिब जी ने अपने पास आने का समय दिया और बोले अपने रहने-सहने का बन्दोबस्त करके आना। तब उस्ताद जी शिमला में रहते थे जब मैं उस्ताद जी के पास वहां पहुँचा और सितार सुनाया तो वो बोले तू कहीं नहीं जाएगा मेरे पास घर में ही रहेगा। उस समय मेरी आयु 17 वर्ष की थी। सन् 1965 से 1970 तक खां साहब के घर में रहकर ही संगीत की शिक्षा ग्रहण की। पूरे पाँच वर्ष तक इटावा घराने की विशेष बारीकियों को निष्ठापूर्वक सीखा।

उस्ताद विलायत खां जी का आपके साथ बहुत प्यार था। जिस कारण आपको उस्ताद जी ने सन् 1965 में कोलकाता से सितार बनवा कर उपहार के रूप में दिया। आपने यह सितार पहली बार (गोटीथिऐटर) शिमला में बजाकर 'ऑल इंडिया' ओपन संगीत प्रतियोगिता में पहला स्थान प्राप्त किया था।

एक प्रसिद्ध कलाकार के रूप में :

श्री नरिन्दर नरूला जी का जीवन सरल व सहज रहा है, आप अपने युग के सर्वोत्कृष्ट लोकप्रिय कलाकार माने जाते हैं। आप 25 वर्षों तक ऑल इंडिया रेडियो (1986) जालंधर में श्रेणीबद्ध कलाकार रहकर अपनी प्रस्तुतियाँ देते रहे हैं और रोहतक रेडियो पर भी सितार वादन के कार्यक्रम प्रस्तुत करते रहे हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न टी.वी. चैनलों में आपके अनेकों सितार वादन के कार्यक्रम सुनने को मिलते रहे हैं।

सन् 2016 में पंजाब स्कूल शिक्षा बोर्ड द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'संगीत वादन' में 12वीं कक्षा के पाठयक्रम के लिए आप का जीवन परिचम भी डाला गया है। विश्वविख्यात हरिवल्लभ संगीत सम्मेलन 1995 जालन्धर (पंजाब) में काफी बार कलाकार के रूप में सितार वादन की प्रस्तृति दी और विधार्थियों की प्रतियोगितायों में निर्णायक की भूमिका भी निभाई है। श्री भैनी साहिब (पंजाब) में आप जी ने अनेकों बार आपने सितार वादन के कार्यक्रम प्रस्तुत किए हैं।

सन् 1990 में (बसंत दरबार) पटियाला में मंच प्रदर्शक के लिए उस्ताद बिस्मिल्लाह खां, पंडित जसराज और पटियाला घराने के बकुर हुसैन खां पहुँचे हुए थे उस समय उबिस्मिल्लाह खां की मंच प्रस्तुति के बाद नरूला जी ने आपने सितार वादन शैली के ज़ोहर दिखाए। आपकी वादन शैली में एक ऐसी कशिश है जो श्रोताओं के दिलों को छू लेती है। आपने 6 दिसम्बर 2011 को पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाला 'संगीत उत्सव' समारोह में तोड़ी राग का प्रस्तुतिकरण किया और श्रोताओं के दिलों को जीता। आपने विश्वविद्यालयों व महाविद्यालयों में सांगीतिक वर्कशॉप के द्वारा अनेकों विधार्थीओं को संगीत की शिक्षा दी और भारत के विभिन्न इलाकों में जैसे- बंबई, दिल्ली, बनारस, कुरूक्षेत्र, शिमला, चंडीगड़, कोलकाता, इलाहाबाद, राजस्थान आदि में सफलतापूर्वक प्रोग्राम प्रस्तुत किए। आपने भारत में ही नहीं अपितु विदेशों में भी सितार वादन के प्रचार व प्रसार में अच्छी भूमिका निभाई है।

विदेशों में सितार वादन का प्रचार-प्रसार :

सन् 1988 में आपको पहली बार इंडियन कौंसिल फॉर कल्चरल रिलेशसं (I.C.C.R.) की तरफ से सितार वादन के प्रचारक एवं अध्यापक के तौर पर तीन वर्ष के लिए टॉप ग्रेड फीज़ी में नियुक्त किया गया है, जहाँ (इण्डियन कल्लरल मयुज़िक सैंटर) में प्रोग्राम करते रहे और बच्चों को भारतीय शास्त्रीय संगीत की जानकारी देते रहे। आज भी यहाँ पर अपको (Sitarist of the South Specific) के रूप में जाना जाता है। इसके इलावा आपने विदेशों में भी बहुत से कार्यक्रम किए हैं। जैसे- अमरीका, न्युजीलैंड, सिंगापुर, सुवा, कनाड़ा, दुबई, पोर्ट विला, न्यू केलिफोर्निया, हॉलैंड आदि।

Rock Lord University Illinois (USA) के द्वारा आपको सांगीतिक कार्यक्रम के लिए आमंत्रित किया गया और आपने सितार वादन के जादू से श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया। आपको Rock

Lord University Illinois (USA) के द्वारा पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया है। Kiwanians Club Ilinois (USA), Rock Velly कॉलेज़ अमेरिका में आपने Workshop लगाई वहां के बच्चों की कक्षाएं भी ली और भारतीय शास्त्रीय संगीत के बारे भरपूर जानकारी दी। St. Mary's Catholic Primary School Mackay-Australia, Unified School Kenosha (USA), Northern Illinois University (USA) और Sullivan University in Louis ville Kentucky में आपने सितार वादन के कार्यक्रम प्रस्तुत किए।

सन् 2000 में Birmingham विश्वविद्यालय इंग्लैंड में आपके द्वारा सितार वादन कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया। 28 मई 2009 में अमर संगीत अकादमी (UK) में इनको सितार वादन कार्यक्रम के लिए बुलाया गया। सन् 2017 में Berth University, Australia में भी आपने मंच प्रदर्शन किया और Coventry University (UK) में आप को कई बार बुलाया गया।

श्री नरिन्दर नरूला जी के सितार वादन के साथ अनेकों तबला वादकों ने संगत की है। जैसे- सुखविन्द्र सिंह (पिंकी), उस्ताद तारी खां, पंडित पवन कुमार वर्मा, काले खां (पंजाब घराना) आदि। विदेशों में कहीं भी ऐसी जगह नहीं जहां पर भारतीय शास्त्रीय संगींत का प्रचार-प्रसार न किया गया हो, आपकी कलाकारी के बारे में, दा ट्रिव्यून, इंडियन एक्सप्रैस, जनसत्ता, हिन्दोस्तान टाईम्स समाचार-पत्रों ने भी आपकी प्रशंसा में काफी लिखा है।

शिक्षक के रूप में :

आप जब 8वीं कक्षा में थे, उस समय सनातक कक्षा के विद्यार्थी आपसे सितार की शिक्षा लेने आते थे। आपने 31 मई सन् 1968 में गवर्नमेंट अमृतसर कॉलेज़ में लगभग तीन माह तक बच्चों को संगीत की शिक्षा दी। सन् 1970 में गवर्नमेंट महाविद्यालय गुरदासपूर में स्थायी पद पर दो वर्षों तक संगीत के लैक्चरार के रूप में कार्यरत रहे, इसके बाद सन् 1973 में आप संगरूर के महाविद्यालय में शिक्षक के तौर पर नियुक्त हुए।

सन् 1980 से 1988 तक गवर्नमेंट महाविद्यालय लुधियाना में भी संगीत लेक्चरार के पद पर रहे और 1988 में आपकी गवर्नमेंट वूमेन महाविद्यालय पटियाला में स्थानांतरण हो गई, साथ ही आपको सन् 1988 में (I.C.C.R.) फीज़ी में अध्यापक के तौर पर चुना गया। वहां आपने अपनी सांगीतिक सेवाएं निभाई। फीजी से आने के बाद गवर्नमेंट वूमेन महाविद्यालय पटियाला में ही प्रधानाचार्य के रूप में नियुक्त हो गए। सन् 2004 से 2006 तक गवर्नमेंट महाविद्यालय (सुनाम) में भी शिक्षक की भूमिका निभाई और सन् 2006 में गवर्नमेंट महाविद्यालय (सुनाम) से आप सेवा मुक्त हुए। आपने 36 वर्षों तक एक सफल शिक्षक के रूप में संगीत की सेवा निभाई अरुर अनेकों शिष्य पैदा किए।

शिष्य परम्परा :

श्री नरिन्दर नरूला जी जितने महान संगीताचार्य कलाकार हैं, उतने ही सहज, नेक, गुणी, विचारक, रचनाकार शिक्षक भी हैं। आपके हाथों में एक अलग ही सुरीलापन और कंठ में सरस्वती विराज़मान है।

श्री नरूला जी ने अपने सितार वादन की शैली से विशिष्ट प्रकार से अलंकार व राग बनाए हैं और शिष्यों को पूर्ण रूप से शिक्षा प्रदान की है। आपके अनेकों शिष्य भारत और विदेशों में विभिन्न पदों पर कार्यरत हैं। जैसे-डॉ. मनमोहन शर्मा, सरनजीत कौर, आशा पांडे, दीपिका वालिया, मीनाक्षी शर्मा (यू.एस.ए.), सुरिन्दर कौर, परमवीर सिंह (इंग्लैंड), सुखविन्दर सिंह नामधारी, प्रेम महाराज, मालती महाराज (न्यूजीलैंड), गुरुचरण सिंह (सिंघापूर), शरण सिंह, डॉ. रविन्द्र कौर, योगेश शर्मा, परमिंदर कौर, गॉडफ्रायड शैखर् (जर्मन), मिनिस्टर माइक (यू.एस.ए.), मिनिस्टर टाइचल, डॉ. हरजिन्दर कौर, पूजा (डी.एस.पी.)

दिल्ली, दिनेश संगरूर, डॉ जसवीर कौर, मुकेश लुधियाना, डॉ. शोभा शर्मा, सुदर्शन कौर, धर्मवीर सिंह (UK)।

रचनाकार के रूप में :

श्री नरूला जी ने बहुत सारी बंदिशों की विभिन्न रागों में रचना की है जोकि इनके द्वारा रेडियो पर भी बजाई गई हैं और शिष्यों को भी सिखाई गई हैं। आपके द्वारा कई राग भी रचित किए गए हैं। जैसे- राग सुदेश्वरी, राग पीलूकौंस आदि। राग पीलूकौंस में पीलू और कौंस का मिश्रण देखने को मिलता है। राग पीलूकौंस का परिचय निम्नलिखित प्रकार से है। जैसेः-

राग पीलूकौंस :

थाट - खमाज + काफी

आरोह - सा ग म प ध नि सां

अवरोह - सां नि ध प, म प नि ध ध प, प नि रे सां रें नि ध प म ग म, ग सा

जाति - षाड्व संपूर्ण

गायन समय - रात्रि 8 से 12 बजे तक

राग की पकड़- सा, ग म ध ध, म ग ग म

स्वर विस्तार :

सा, ध़ नि स ध़ नी स म ग ग, स नी ध़, ध़, नी ध़ ध़ म ग़ म़, म़ नी ध़ नी ध़ म ग

म, म़ ध़ ऩी स, स ग म ध, प म ग प म, ग म प ऩी ध, ध नी, ध़ ध़ म ग म, म ध

सं नी म, सं नी सं ग सं, सं नी ध, ध नी ध ध म ग म, ग म ग सं।

प्रस्तुत रागों के अतिरिक्त नरुला जी द्वारा ओर भी अनेकों रागों की रचना की गई है।

सांगीतिक उपलब्धियाँ :

श्री नरिन्दर नरूला जी को संगीत सेवा के लिए अनेकों पुरस्कार से सम्मानित किया जाता रहा है। आपकी वादन शैली में गायकी अंग का पूर्ण रूप दिखाई देता है एवं इटावा घराने के साथ-साथ, पटियाला घराने की विशेषताओं की भी झलक देखने को मिलती है। आपकी वादन शैली में दोनों घरानो का मिश्रण नज़र आता है। आप रूह को छूने वाला आलाप, लयकारी, तोडे, झाला, मींड, मुर्की व कृन्तन आदि का प्रयोग करते हुए ख्याल अंग का मुख्य प्रयोग करते हैं। ताल और लय पर आपका विशेष अधिकार है शास्त्रीय संगीत के साथ-साथ आप सुगम संगीत के स्पर्श से दिल में एक कशिश पैदा कर देते हैं। आपने सैंकडों ही चित्रपट गीतों को सितार पर बजाया है। आपको निम्नलिखित पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। जैसेः-

- सन् 1968 में 'गेटीथिऐटर' शिमला में ऑल इंडिया ओपन संगीत-समारोह में आपको सर्वश्रेष्ठ वादन पुरस्कार प्राप्त हुआ।
- राजस्थान सरकार द्वारा आपको संगीत के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान के लिए 'संगीत-भारती' पुरस्कार दिया गया।
- पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला से फरवरी 2014 में 'पंजाब संगीत रत्न' पुरस्कार से सम्मानित किया गया।
- बीकानेर के द्वारा आप को 'कलाश्री' अवॉर्ड प्रदान किया गया।
- Rock Ford University Illinois, (USA) द्वारा भी आपको पुरस्कार प्राप्त हुआ है।
- Kiwanians Club Illinois (USA) द्वारा आपको पुरस्कार से सम्मानित किया गया है।

श्री नरूला जी की उपलब्धियो ं का दौर अभी निरन्तर प्रवाहमान है और आज भी यह देश-विदेशों में सितार का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं।

निष्कर्ष :

आधुनिक काल में सितार वाद्य के अनेकों कलाकार संगीत का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं। श्री नरिन्द्रर नरूला जी भी उन्हीं कलाकारों में से एक प्रसिद्ध कलाकार हैं

जिन्होनें भारतीय शास्त्रीय संगीत में सितार वादन के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ भारत ही नहीं बल्कि विदेशों में भी अनेक शिष्य तैयार किए हैं। उत्तरी भारत का कोई भी ऐसा स्थान नहीं जहां आपके द्वारा संगीत समारोहों में मंच प्रस्तुति न दी गई हो, बल्कि देश-विदेशों में भी सितार वादन का प्रचार-प्रसार किया। नरूला जी ने आपना सारा जीवन शास्त्रीय संगीत को समर्पित किया हैं। भारतीय शास्त्रीय संगीत को अनुपम देन के लिए संगीत जगत आपका सदा आभारी रहेगा। श्री नरिन्दर नरूला जी, आने वाली युवा पीढ़ी के लिए प्रेरणा स्त्रोत हैं। एक अच्छा कलाकार होने के साथ-साथ एक अच्छा व्यक्तित्व होना भी आवश्यक है यह दोनों गुण श्री नरिन्द्रर नरूला जी में विद्यमान है।

सन्दर्भ सूची :

1. श्री नरिन्दर नरूला से किए गए साक्षात्कार से उदधृत, तिथि 25.07.2018।
2. डा. सुरिन्दर कपिला से किए गए साक्षात्कार से उदधृत, तिथि 7.10.2018, पटियाला।
3. डा. डेजी वालीया से किए गए साक्षात्कार से उदधृत, तिथि 5.10.2018, पटियाला।
4. डा. राजन नरूला से किए गए साक्षात्कार से उदधृत, तिथि 19.08.2018, पटियाला।
5. डा. यरुगेश शर्मा से किए गए साक्षात्कार से उदधृत, तिथि 4.08.2018, लुधियाना।
6. डा. मनमरुहन शर्मा से किए गए साक्षात्कार से उदधृत, तिथि 06.09.2018, पटियाला।
7. प्रो. आशा पांडे से किए गए साक्षात्कार से उदधृत, तिथि 03.08.2018, कुरुक्षेतर।
8. डा. दीपिका वालीया से किए गए साक्षात्कार से उदधृत, तिथि 22.09.2018 हरयाणा।
9. प्रो. सरनजीत कौर से किए गए साक्षात्कार से उदधृत, तिथि 25.09.2018, पटियाला।
10. गुणजना अरुण से किए गए साक्षात्कार से उदधृत, तिथि 24.09.18, बनारस।
11. मीनाक्षी शर्मा से किए गए साक्षात्कार से उदधृत, तिथि 6.08.2018, यू.एस.ए.।
12. नवनीत कौर से किए गए साक्षात्कार से उदधृत, तिथि 24.09.18।
13. सुधा नरूला से किए गए साक्षात्कार से उदधृत, तिथि 5.08.2018, यू.एस.ए.।

संगीतकार सुरेन्द्र नेगी : कृतित्व एवं व्यक्तित्व

यशवन्त

(पीएच.डी. शोधार्थी)

परफॉर्मिंग आर्ट्स ऑफ म्यूज़िक

लवली प्रोफेशनल युनिवर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब

सारांश

हिमाचल प्रदेश अपनी संस्कृति के लिए विश्वभर में प्रसिद्ध है। संगीत के क्षेत्र में ऐसे बहुत कम व्यक्ति हुए हैं जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन संगीत की साधना में बिताया हो। संगीतकार सुरेन्द्र नेगी जी संगीत जगत् की एक ऐसी विभूति है जोकि अपने सांगीतिक कार्यों से अपनी आभा को बिखरते हुए अग्रसर हो रहे हैं। नेगी जी का लक्ष्य हिमाचली लोक संगीत का विकास व उसे प्रतिष्ठा दिलवाने का रहा है। संगीत के साथ इनकी साधना व परिवेश पर भी शोध की आवश्यकता है। कला एवं संस्कृति को सुरक्षित व प्रचारित रखने के लिए शोधकार्य सरल माध्यम है।

बीज शब्द :

हिमाचल प्रदेश, संगीतकार, व्यक्तित्व, संस्कृति, लोक संगीत।

शोध कार्य विधि :

विषय से संबंधित समस्त कार्य वर्णनात्मक विधि से किया जाऐगा एवं सम्पूर्ण दत्त सामग्री को साक्षात्कार व प्रश्नावली के माध्यम से एकत्र किया जाऐगा।

परिचय :

हिमाचल प्रदेश एक उत्तर भारतीय राज्य है जो बाहरी रिवाजों से काफी हद तक प्रभावित नहीं हुआ। हिमाचल प्रदेश अपनी संस्कृति, लोक-कला, त्यौहारों के लिए विश्व भर में प्रसिद्ध है। स्थानीय संगीत और नृत्य राज्य की सांस्कृतिक पहचान को दर्शाता है। हिमाचल प्रदेश के लोग अपनी रंग-बिरंगी संस्कृति पर गर्व करते हैं। हिमाचल प्रदेश की संस्कृति समृद्ध असाधारण और पारंपरिक है। हिमाचल प्रदेश की संस्कृति न केवल हिमाचल के लोगों के भौतिक दृष्टिकोण में बल्कि उनके त्यौहारों, उत्सवों, संगीत की धुनों, लयबद्ध नृत्य के रूपों और सरल जीवन शैली में भी अतिरंजित है। हिमाचल प्रदेश के वासी शुरू से ही नृत्य और संगीत के शौकीन रहे हैं। त्यौहार और मेले, हिमाचल प्रदेश की संस्कृति का एक अभिन्न हिस्सा है। ये त्यौहार धार्मिक संस्कारों और सांस्कृतिक प्रथाओं से भरे हुए हैं। हिमाचल प्रदेश की संस्कृति लोगों की सादगी और पारंपरिक रीति रिवाजों और उनके जीवन-जांच के तरीके से अच्छी तरह से जुड़ी हुई है। हिमाचल प्रदेश के लोग मुख्य रूप से कृषि समुदायों से संबंधित हैं और एक सरल परेशानी मुक्त जीवन जीते हैं। बदलते समय के साथ उचित शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं और इसलिए अन्य व्यवसायों में स्थानांतरित हो रहे हैं। हिन्दी भाषा हिमाचल प्रदेश राज्य की भाषा मानी जाती है जबकि कई लोग पहाड़ी भाषा भी बोलते हैं। पहाड़ी की कई बोलियाँ हैं और संस्कृत भाषा में इनकी उत्पत्ति हुई

मानी जाती रही है। लोगों द्वारा बोली जाने वाली अन्य भाषाएँ कांगड़ी, किन्नौरी, हिन्दी, पंजाबी, पहाड़ी और डोगरी आदि हैं। जब भी हिमाचल प्रदेश के लोक संगीत के विकास, लोक गायन के संरक्षण की बात की जाती है तो एक कुशल संगीतकार के रूप में सुरेन्द्र नेगी जी का ही नाम ही लिया जाता है। इनका लोक गायन के संरक्षण में सर्वश्रेष्ठ योगदान रहा है। संगीत के क्षेत्र में अपनी अलग पहचान बनाने वाले सुरेन्द्र नेगी जी वर्तमान में एकमात्र ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने लोक गायन के वास्तविक रूप को कायम रखा तथा उसे शुद्ध रूप में लोगों तक पहुंचाया। नेगी जी ने अपने ध्वन्याकंन व प्रस्तुतिकरण के कार्य द्वारा लोक गायन का संरक्षण किया।

सुरेन्द्र नेगी का जीवन परिचय :

सुरेन्द्र नेगी जी हिमाचल प्रदेश के कल्पा गांव से संबंध रखते हैं। जिला किन्नौर अपनी प्राकृतिक सुन्दरता के लिए काफी प्रसिद्ध है, साथ ही यह क्षेत्र अपने खान-पान, रीति-रिवाज़, पहनावा, संस्कृति के लिए भी पूरे हिमाचल प्रदेश में अपनी अलग पहचान बनाए हुए है। कल्पा हिमाचल प्रदेश के किन्नौर जिले में 2960 मीटर की उँचाई पर बसा हुआ एक खूबसूरत पर्वतीय गाँव है। हिमाचल प्रदेश की राजधानी शिमला से यह गांव लगभग 230 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। सुरेन्द्र नेगी जी मध्य वर्ग के परिवार से संबंध रखते हैं। संगीत में नेगी जी की रूचि बचपन से ही थी। पारिवारिक परिवेश संगीतमय नहीं था, फिर भी इन्होंने संगीत को सीखा सुरेन्द्र नेगी जी का शिमला के शोघी में अपना रिकॉर्डिंग स्टूडियो है। जब भी हिमाचल प्रदेश के लोक संगीत के विकास, लोक गायन के संरक्षण की बात की जाती है तो एक कुशल संगीतकार के रूप में इन्हीं का ही नाम आता है। इनका लोक गायन के संरक्षण में सर्वश्रेष्ठ योगदान रहा है।

बाल्यकाल एवं पारिवारिक पृष्ठभूमि :

जिला किन्नौर के खूबसूरत पर्वतीय गांव में स्वर्गीय श्री ज्ञानचन्द नेगी के घर पर 13 अगस्त 1971 को सुरेन्द्र नेगी का जन्म हुआ। सुरेन्द्र नेगी किसान परिवार से संबंधित हैं। स्वर्गीय श्री ज्ञानचन्द नेगी व्यवसायिक तौर पर कृषि का कार्य करते थे। सुरेन्द्र नेगी का एक बड़ा भाई व एक बड़ी बहन है। इनके पिता ने खेती करके ही अपने बच्चों का पालन-पोषण किया। श्रीमती शीला देवी नेगी गृह कार्य के साथ-साथ कृषि में भी अपने पति ज्ञानचन्द नेगी का भरपूर सहयोग देती थी। सुरेन्द्र नेगी जी रोजाना गांव के मन्दिर में बजते भजनों व संगीत को सुना करते थे। मन्दिर में बजते संगीत को सुनकर सुरेन्द्र नेगी काफी प्रभावित हुए, जिससे संगीत के प्रति इनकी रूचि और अधिक बढ़ने लगी। बचपन में सुरेन्द्र नेगी जी काफी नटखट स्वभाव के रहे हैं और बचपन में इनकी मित्रता भी ऐसे ही नटखट स्वभाव वाले बालकों से रही। संगीत के साथ-साथ इन्हें खेल में भी रूचि रही। प्रतिवर्ष स्कूल में इन्होंने कई खेलकूद प्रतियोगिताओं में हिस्सा लिया। संगीत के क्षेत्र में अपनी अलग पहचान बनाने वाले सुरेन्द्र नेगी जी वर्तमान में एकमात्र ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने लोक गायन के वास्तविक रूप को कायम रखा तथा उसे शुद्ध रूप में लोगों तक पहुंचाया। सुरेन्द्र नेगी जी का सपना सबसे पहले अच्छा वैज्ञानिक बनने का रहा। परन्तु आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारन इनका यह सपना पूरा न हो सका। सुरेन्द्र नेगी जी के कार्य की विशेषता यह है कि इन्होंने जिस भी जिले के लोक-गीतों में कार्य किया, उस जिले के लोक-गीत की मौलिकता को हमेशा बनाए रखा। अकादमिक शिक्षाः सुरेन्द्र नेगी जी ने प्राथमिक व उच्च शिक्षा स्थानीय स्कूल कल्पा से ही प्राप्त की। नेगी जी का स्कूल में हमेशा अच्छा प्रदर्शन रहा, जिससे इनके घर के सदस्य इनसे प्रसन्न थे। स्कूल की प्रत्येक गतिविधियों में नेगी जी बढ़-चढ़ कर भाग लेते रहे हैं। जब सुरेन्द्र नेगी ने शिक्षा लेना शुरू किया, उस समय जिला किन्नौर विकास की दृष्टि से कोसों दूर था। आर्थिक स्थिति ठीक न होने व सुविधाओं के अभाव के बावजूद भी इनके परिवार का इन्हें शिक्षित करने के लिए भरपूर सहयोग मिला। स्कूल में संगीत की शिक्षा नहीं दी जाती थी,

फिर भी इन्होंने अपने अंदर के संगीत प्रेम को जीवित रखा। बचपन से ही नेगी जी की अच्छे व्यक्तियों से मित्रता रही है। ये काफी मिलनसार व्यक्ति है।

सांगीतिक शिक्षा :

वर्ष 1971 में जब सुरेन्द्र नेगी का जन्म हुआ, उस समय जिला किन्नौर विकास की दृष्टि से अन्य जिलों की भांति काफी पीछे था। संगीत के प्रति इनके प्रेम व संगीत सीखने की चाह ने इनकी भेंट स्वर्गीय श्री लोकिन्दर कंवर जी से करवाई। स्वर्गीय श्री लोकिन्दर कंवर जी से नेगी जी ने कई वर्षों तक संगीत गायन, वादन की तालीम ली। कंवर जी से कुछ समय संगीत सीखने के पश्चात् सुरेन्द्र नेगी ने श्री सोमदत्त बटटू जी से संगीत की शिक्षा लेना शुरू किया। श्री सोमदत्त बटटू हिमाचल प्रदेश के उच्च कोटि के शास्त्रीय गायक व संगीत के ज्ञाता है। कई वर्षों तक सुरेन्द्र नेगी ने इनसे भी संगीत सीखा, नेगी जी संगीत गायन व वादन दोनों कलाओं में निपुण हैं। नेगी जी ने डॉ. परवीण जरेट से भी संगीत की शिक्षा ली। इन्होंने संगीत की शिक्षा कई संगीत ज्ञाताओं से ली है, जो कि पूर्णरूप से इस कला में निपुण थे। वर्तमान में भी ये अपने गुरूओं से जाकर संगीत को सीखते रहते हैं।

ध्वन्याकंन एवम् प्रस्तुतिकरण की शिक्षा :

आधुनिक समय को ध्वन्याकंन एवं प्रस्तुतिकरण का माना जाता है। जब सुरेन्द्र नेगी जी छोटे थे, उस समय हिमाचल में ध्वन्याकंन एवम् प्रस्तुतिकरण के क्षेत्र में श्री सोमदेव कश्यप का नाम सुप्रसिद्ध था। इनके द्वारा किए गए ध्वन्याकंन के कार्य से नेगी जी प्रभावित हुए और नेगी जी ने इनसे ध्वन्याकंन एवं प्रस्तुतिकरण के कार्य को सीखना चाहा, नेगी जी ने ध्वन्याकंन एवं प्रस्तुतिकरण के कार्य की प्रारम्भिक शिक्षा सोमदेव कश्यप से लेनी शुरू की। कुछ समय तक इन्होंने कश्यप जी से ध्वन्याकंन का कार्य सीखा और उसके पश्चात् सुरेन्द्र नेगी ने अपना रिकॉर्डिंग स्टूडियो स्थापित किया। सर्वप्रथम इन्होंने किन्नौरी एलबम की रिकॉर्डिंग की जिसे लोगों द्वारा काफी पसंद की गई। स्पैकट्रल इण्डियन अकादमी दिल्ली से सुरेन्द्र नेगी ने तकनीकी सॉफ्टवेयर की शिक्षा प्राप्त की और लोक-गीतों की मौलिकता को ध्यान में रखते हुए इन्होंने ध्वन्याकंन एवं प्रस्तुतिकरण के कार्य को किया जो वर्तमान समय में पूरे हिमाचल प्रदेश में ध्वन्याकंन एवं प्रस्तुतिकरण के अच्छे कार्य के लिए जाने जाते हैं। हिमाचल प्रदेश से बाहर भी लोगों द्वारा इनको काफी पसंद किया जा रहा है।

वैवाहिक जीवन :

सुरेन्द्र नेगी का विवाह वर्ष 1991 में श्रीमति विद्या कुमारी से हुआ। सुरेन्द्र नेगी जी मध्य वर्ग के परिवार से संबंध रखते हैं। श्रीमति विद्या कुमारी जी किन्नौर जिले की ही रहने वाली है। पारिवारिक समस्याओं के चलते नेगी जी को शीघ्र ही अपना विवाह करना पड़ा। सुरेन्द्र नेगी के दो पुत्र एवं एक पुत्री है। विवाह वाले वर्ष से ही इन्होंने अपने ध्वन्याकंन एवं प्रस्तुतिकरण के कार्य की शुरूआत की। सुरेन्द्र नेगी का बड़ा बेटा वर्तमान में आई. आई. टी. गोहाटी से जैव प्रौद्योगिकी में स्नातकोतर की उपाधि प्राप्त कर रहा है। सुरेन्द्र नेगी की तरह ही इनके छोटे बेटे की भी संगीत में रूचि है। नेगी जी की बेटी प्रौद्योगिकी में स्नातक की शिक्षा प्राप्त कर रही है। सुरेन्द्र नेगी जी अपने वैवाहिक जीवन से बेहद खुश हैं। परिवार के सभी सदस्यों का इनके कार्य में सहयोग रहता है। अपनी कामयाबी का सम्पूर्ण श्रेय सुरेन्द्र नेगी जी अपने परिवार को देते हैं। सुरेन्द्र नेगी अपने आप को बेहद भाग्यशाली मानते हैं कि उन्हें श्रीमती विद्या कुमारी जैसी अच्छी अर्धांगिनी मिली।

व्यक्तित्व की विशेषताएँ :

इसमें कोई भी अतिश्योक्ति नहीं है कि एक कलाकार ही कला का संरक्षण करता है। हिमाचल प्रदेश के जाने-माने संगीतकार सुरेन्द्र नेगी एक महान् व्यक्तित्व के धनी है। इन्होंने हिमाचली लोक गायन के संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, इस बात में कोई भी संदेह नहीं है। सुरेन्द्र नेगी का सरल पहनावा साधारण व्यवहार व विनम्र स्वभाव है। अपने ध्वन्याकंन के कार्य द्वारा इन्होंने लोक-संगीत के शुद्ध

रूप को कायम रखा। कलाकार चाहे छोटा हो या बड़ा सभी के साथ इनका व्यवहार एक समान रहता है। हिमाचल प्रदेश में लोक-संगीत के क्षेत्र में ध्वन्यांकन एवं प्रस्तुतिकरण के कार्य के लिए (अच्छे कार्य के लिए) इनका नाम सबसे पहले स्थान पर है। इतनी ख्याति मिलने पर भी इन्हें लेषमात्र भी घमण्ड नहीं है। जितने भी अन्य व्यक्ति हिमाचल में ध्वन्यांकन एवं प्रस्तुतिकरण का कार्य कर रहे हैं ये सभी के कार्य की सराहना करते हैं। सुरेन्द्र नेगी जी का स्वभाव मिलनसार है। इनके लिए कोई भी व्यक्ति छोटा-बड़ा नहीं है। ये बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। सुरेन्द्र नेगी जी अच्छे विचारों वाले व्यक्ति हैं, ये सबसे बहुत जल्दी घुल-मिल जाते हैं। इनका व्यवहार स्टूडियो में और स्टूडियो से बाहर सभी के साथ एक समान रहता है। इनके मन में कभी ईर्ष्या का भाव नहीं होता।

संघर्षमय जीवन :

सुरेन्द्र नेगी जी बहुत परिश्रमी संगीतकार हैं। गीतों को गाना स्वंय उनका संगीत तैयार करना, ये सब इन्हें बहुत प्रिय है। कार्य का कोई भी क्षेत्र क्यों न हो, उसमें पारंगत होने के लिए परिश्रम तो करना ही पड़ता है। नेगी जी ऐसे क्षेत्र से संबंध रखते हैं जो काफी पिछड़ा हुआ था। जहां संगीत को सीखने की ज्यादा सुविधाएं नहीं मिल पाई परन्तु फिर भी इन्होंने अपने अंदर के संगीतकार को जीवित रखा और संगीत की तालीम ली। कुछ वर्षों पूर्व हिमाचल प्रदेश में कुछ ऑडियो व विडियो कम्पनियों ने लोक-गीतों के साथ छेड़-छाड़ करके उसका विकृत रूप को लोगों तक पहुंचाया। लोक गायन के संरक्षण के लिए इन्होंने अपनी जी जान लगा दी। हिमाचल प्रदेश के सुरेन्द्र नेगी अकेले ऐसे संगीतकार हैं जिन्होंने इन कम्पनियों के विरूद्ध कार्य किया। इन्होंने लोगों के समक्ष लोक गायन, लोक-गीतों का शुद्ध रूप प्रस्तुत किया, जिसमें ये सफल रहे। इनकी कड़ी मेहनत से ही आज लोक गायन शैलियों का शुद्ध रूप देखने व सुनने को मिलता है।

संगीतकार के रूप में :

सुरेन्द्र नेगी जी पिछले कई वर्षों से संगीत जगत से जुड़े हुए हैं। वर्ष 1991 से वर्तमान समय तक लगभग 16 हजार से अधिक गानों में नेगी जी संगीत दे चुके हैं। संगीत निर्देशक के द्वारा सर्वप्रथम लोकगीत का निर्देशन किया जाता है और उसी आधार पर उसका गायन व संगीत तैयार किया जाता है। सुरेन्द्र नेगी के द्वारा स्वरबद्ध की गई रचनाओं को लोगों द्वारा बहुत पसंद किया गया। संगीत के क्षेत्र में सुरेन्द्र नेगी पूरे हिमाचल प्रदेश में काफी लोकप्रिय हैं।

सुरेन्द्र नेगी के कार्य की विशेषताएँ :

ध्वन्याकंन एवं प्रस्तुतिकरण के क्षेत्र में कार्य कर रहे सुरेन्द्र नेगी का लोक संगीत के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। नेगी जी के कार्य की विशेषता है कि ये अपने ध्वन्याकंन व प्रस्तुतिकरण के कार्य से लोकगीत की मौलिकता को बनाए रखते हैं, उसके शुद्ध व वास्तविक रूप को कायम रखते हैं। ये जिस भी क्षेत्र के लोकगीत में संगीत देते है उस गीत के साथ वहां पर प्रयोग होने वाले लोक वाद्यों का ही प्रयोग करते हैं। इन्होंने लोक-गीतों, लोक-गायन के शुद्ध रूप को अपने संगीत व ध्वन्याकंन के कार्य द्वारा कायम रखा है। नेगी जी अकेले ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने साक्षरता अभियान के लिए भी गीतों को बनाया है। इनके द्वारा तैयार किए गए गाने को राष्ट्रीय स्तर पर भी बजाया गया है, जो कि सभी के लिए गर्व की बात है। वर्तमान में हम पारम्परिक लोक-गीत का जो पुराना रूप देखते हैं वो इनके द्वारा किए गए प्रयासों का ही सफल कार्य है।

निष्कर्ष :

विषय के गहन अध्ययन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष सामने आता है कि सुरेन्द्र नेगी ने संगीत की गायन व वादन विधाओं की शिक्षा प्राप्त कर हिमाचल लोक-संगीत के क्षेत्र में प्रमुख स्थान अर्जित किया है। नेगी जी का पूरा बचपन किन्नौर के कल्पा गाँव के

प्राकृतिक दृश्यों, माता-पिता, भाई-बहन व मित्रों के साथ संस्कारों से पोषित होते हुए बीता। वर्ष 1991 से नेगी जी ने ध्वन्याकंन व प्रस्तुतिकरण का कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। नेगी जी ने निरन्तर ध्वन्याकंन के कार्य द्वारा लोक-संगीत के वास्तविक रूप को बनाए रखा। इसी कार्य के द्वारा इन्हें लोक-संगीत व रिकॉर्डिंग के क्षेत्र में प्रमुखता प्राप्त हुई है। इनके संगीत के कार्यों में वास्तविकता है, रिकॉर्डिंग के कार्य द्वारा इन्होंने लोक-संगीत के शुद्ध रूप को लोगों के सामने प्रस्तुत किया। हिमाचली लोक गायन की मौलिकता, शुद्धता व वास्तविकता केवल मात्र इनके कार्यों में ही देखने को मिलती हैं।

सन्दर्भ सूची :

1. पं. सोमदत्त बटटू जी से किए गए साक्षात्कार, पटियाला घराना।
2. संगीतकार सुरेन्द्र नेगी जी से किए गए साक्षात्कार, क्ल्पा, किन्नौर।
3. डॉ. परवीन जरेट जी से किए गए साक्षात्कार, कोटगढ़।
4. लोक गायक गौरी शंकर जी से किए गए साक्षात्कार, सोलन।
5. हीरा सिंह ठाकुर जी से किए गए साक्षात्कार, शौघी, शिमला।

ग्वालियर घराना एवं विशेषताएँ

राहुल सहोता
विद्यार्थी
स्कूल ऑफ ज़र्नालिज़्म, फिल्म एण्ड क्रिएटिव आर्ट्स
लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, पंजाब

डॉ॰ लता
असिस्टेंट प्रोफेसर
स्कूल ऑफ ज़र्नालिज़्म, फिल्म एण्ड क्रिएटिव आर्ट्स
लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, पंजाब

सारांश :

यह बात सही है, आज हर क्षेत्र, हर जगह और व्यक्ति की सोच में बदलाव आया है, व्यक्ति कम परिश्रम करके, अधिक से अधिक प्राप्त करने की चाहत रखता है। उसी प्रकार संगीत की शास्त्रीयता में परिवर्तन आया है। लेकिन जहाँ तक संगीत-शिक्षण और तालीम का सम्बन्ध है, आज भी संगीत साधना का विषय है। घरानें, संगीत जगत में विद्यमान विधाओं के संरक्षक और उन्हें जीवंत रखने का मूल आधार रहें हैं। घरानों ने ही अपने आविर्भाव काल से वर्तमान समय तक हमारी धरोहर को सहेजा। घरानेदार संगीत हमारे संगीत की नींव है, जिसके आधार पर वह अब तक खड़ा है। वहीं उसके जीवन को प्रोत्साहित करता है और उसे जीवित रखता है। यदि आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत को इस घरानेदार संगीत का सहारा न मिलता और न उसको कोई प्रोत्साहन ही मिलता तो वह सचमुच निर्जीव अथवा बेजान बन जाता। बिना पूरा रियाज और बिना पूरी तालीम किए इस कला में चमक नहीं आ पाती है, इसीलिए इस कला की साधना आवश्यक है। इस रियाज़ का पोषण आज भी ग्वालियर घराने में किया जाता है आज भी इस घराने में संगीत सीखने और सिखाने के अनुशासन की परम्परा है। इसीलिए ग्लालियर घराना आज भी जीवन्त है। 'घराना' एक विशेष शैली या रीति का सूचक है। यह शैली या रीति जिस कलाकार या उस्ताद द्वारा व्यवहार में लाई जाती है, वही इस 'रीति' का संस्थापक कहलाया जाता है और उसी के नाम से तथा उसकी गायकी के गुणों के आधार पर वह रीति या शैली घराना नाम से प्रचलित होती है। इस घराने के शिष्य-समुदाय ही उक्त घराने की गायकी का संवर्धन करते हैं। भरत ने अपने ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' में संगीत-आचार्य या कलाकार के गुणों का वर्णन करते हुए एक गुण 'शिष्य निष्पादन' भी एक गुण बताया है, जिसका अर्थ है गुरु के द्वारा अपने घराने के गुणों का संवर्धन अपने शिष्यों में करना। अर्थात् उस घराने से सम्बन्ध रखने वाले शिष्य को गुरु एक प्रकार से तराशता है, तब कहीं शिष्य गुणों से भरता है। शिष्य बड़े परिश्रम, श्रद्धा और भक्ति से अपने गुरुओं परम्परा को ईमानदारी से आगे बढ़ाता है।

मुख्य शब्द :

घराना, संगीत, ग्वालियर, ख्याल, ध्रुवपद

भूमिका :

ख्याल गायकी के संदर्भ में ग्वालियर घराना सर्वप्रसिद्ध घराना माना जाता है। इस घराने की शुरुआत नत्थन पीरबख्श (लगभग 18वीं सदी) से मानी गई है डॉ. परांजपेजी के अनुसार, 'ग्वालियर घराना लखनऊ घराने से निकला। लखनऊ के प्रसिद्ध कव्वाली गायक गुलाम रसूल के प्रपौत्र शक्कर खाँ और मक्खन खाँ लखनऊ के प्रसिद्ध गायक थे। इनके पुत्र मुहम्मद खाँ और नत्थन पीरबख्श अपने

समय के उत्कृष्ठ कलाकार थे। लखनऊ का वातावरण इनके लिए उचित नहीं रहा अतएव मुहम्मद खाँ और नत्थन पीर बख़्श ग्वालियर दरबार में जा पहुँचे एक घराने के इन दोनों कलाकारों की शैलियों में अन्तर था फिर भी दोनों के गंगा-यमुनी संयोग से ग्वालियर घराना बना ग्वालियर घराने के प्रसिद्ध ख्याल गायक हस्सू हद्दू खाँ इन्हीं के पौत्र थे हस्सू हद्दू खाँ की शिष्य परम्परा को इन्हीं के शिष्यों ने ग्वालियर घराने का विस्तार किया इन्हीं का प्रभाव जयपुर और आगरा घराने के संस्थापक कलाकारों पर भी पड़ा। ग्वालियर घराने का जितना प्रसार व प्रचार देश में हुआ, उतना किसी भी घराने का नहीं हुआ हस्सू हद्दू खाँ से लेकर आजतक इस घराने का नाम है, और अनेक कलाकारों ने अपनी गायकी से इस घराने का विस्तार किया। ग्वालियर घराने की शिष्य परम्परा में निसार हुसैन खाँ, नजीर खाँ, रामकृष्ण बुवा बझे, शंकर पंडित वासुदेवराय जोशी देवजी परांजपे, बालकृष्ण बुवा इचलकरंजीकर, पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर पंडित ओंकारनाथ ठाकुर और अन्याय शिष्यों की लम्बी कतार रही है।'[1]

ग्वालियर घराना अपनी शिक्षण-पद्धति और अनुशासन के लिए आज भी अन्य घरानों से अधिक मान्य है। यह घराना ध्रुवपद गायकी के लिए प्रसिद्ध है। ध्रुवपद शैली की हर बारीकी यहाँ सीखी जा सकती है, लेकिन ख्याल गायन भी इस घराने की विशेष गायन शैली है।

ग्वालियर घराने की विशेषताएँ :

हालाँकि प्राचीनता की दृष्टि से 'दिल्ली घराना' सबसे पुराना घराना माना जाता है, लेकिन ग्वालियर घराना और इसके कलाकार आज भी अपनी शिक्षा प्रणाली के लिए पहचाने जाते हैं। इस घर में निम्नलिखित विशेषताएं देखी जा सकती हैं

1. ग्वालियर घराना ध्रुवपद की परम्परा के कारण तानसेन का सेनिया घराना भी कहलाता है, जहाँ स्वर-ताल-लय आदि अंगों की भिन्नता से इसकी पहचान बनती है।
2. इस घराने के ख्याल संस्थापक पीरवख़्श जैसे निष्णात गायक रहे हैं, जिनका सम्बन्ध लखनऊ के कव्वाल गायक गुलाम रसूल से था। इस घराने को 'कव्वाल बच्चों' का घराना भी कहा जाता है।
3. 'ग्वालियर घराना' अपनी तालीम के लिए प्रसिद्ध है तथा ध्रुवपद-ख्याल-ठुमरी-टप्पा जैसी चारों पट की गायकी के लिए भी प्रसिद्ध है। ख्याल गायन में अष्टांग गायकी इस घराने की पहचान है। जिसमें जोरदार खुली आवाज, स्पष्ट शब्दोच्चारण, स्वर-लय-ताल पर पूरा अधिकार, तथा गमक आदि के प्रयोग, इस घराने की विशेषता है।
4. ग्वालियर घराने का संगीत आज इसलिए अनुकरणीय है क्योंकि यहाँ संगीत तालीम में किसी भी प्रकार की ढिलाई नहीं बरती जाती, बल्कि वेद-पाठन की तरह यहाँ संगीत-शिक्षण को महत्त्व दिया जाता है।
5. ग्वालियर घराने में विष्णु दिगम्बर और भातखण्डे दोनों संगीतकारों का योगदान है। कुछ कलाकारों पर पंडित विष्णु दिगम्बर जी की और कुछ में पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे जी की तालीम की छाप है। नारायण राव व्यास, पंडित नारायण पटवर्धन, श्री देवधर आदि विष्णु दिगम्बर शैली के कहे जा सकते हैं बल्कि पटवर्धन जी राग-विज्ञान संगीत की पाँच पुस्तकें विष्णु दिगम्बर लिपि में प्रकाशित है जो उसके प्रमाण है। जबकि राजाभैया पूछवाले, बाबा साहब आदि भातखण्डे से सीखे हुए कलाकार हैं। इस घराने में दोनों संगीतकारों के गुण वहाँ की तालीम में दिखाई देते।[2]
6. इस घराने की प्रमुख विशेषता जोरदार और खुली आवाज का प्रयोग है। प्रारम्भ में राग वाचक स्वरों में आलाप गाकर तत्पश्चात् बन्दिश को गाया जाता है। इस घराने की अधिकतर विलम्बित ख़्याल की चीजें- झूमरा, आड़ाचारताल,

तिलवाड़ा, विलम्बित एक ताल इत्यादि में निबद्ध होती हैं। इसके साथ ही द्रुत ख़्याल की बंदिशों में भी काफी विविधता पाई जाती है। राग का विस्तार क्रमानुसार किया जाता है। बोल-आलाप और बालतानों में बंदिश के शब्दों के अर्थ के अनुसार ही लयकारी की जाती हैं। बंदिश का साहित्य भी विविधता पूर्ण होता है। विलम्बित रचना के शब्दों के अनुसार ही द्रुत रचना के शब्द होते हैं। बोल आलाप दुगुन व चौगुन लयकारियों का प्रदर्शन करते हुए किया जाता है। यह घराना केवल ख़्याल गायन में ही उच्च नहीं है, अपितु ध्रुपद व धमार आदि सभी में उल्लेखनीय है।[3]

7. इस घराने की खास विशेषता, आवाज को दबाना या छिपाना मना है, इसीलिए इस घराने के गायकों की आवाज खुली जोरदार और बुलन्द होती है। आवाज को तीनों सप्तकों के लिए तैयार करने में विशेष प्रकार की साधना या रियाज किया जाता है। बन्दिश गाने से पहले राग के स्वरूप को दिखाने के लिए आलाप गायन आवश्यक होता है। स्थायी तथा अन्तरा गाने के पश्चात् ही गायकी आरम्भ करना ग्वालियर घराने की विशेषता है।[4]

8. डॉ. शरतचन्द्र श्रीधर परांजपे के अनुसार "ख़्याल गायन आरम्भ करते समय आरम्भिक स्वर आकार में खुला व बुलन्द आवाज के साथ किया जाता है। इस घराने में आवाज को दबाना निषिद्ध है। आवाज को तीनों सप्तकों में घुमाया जाता है। इस घराने में ख़्याल में अति विलम्बित लय का प्रयोग बहुत कम किया जाता है। स्थाई व अंतरा गाने की अपनी विशेष शैली है तथा स्थाई के बाद आलाप व स्वरों की बढ़त धीरे-धीरे करते हुए तार सप्तक में पहुँचकर अन्तरे के आलाप, तानों और बोलतानों का प्रयोग गमक तथा जबड़े की तानों आदि के साथ किया जाता है।[5]

9. डॉ. शन्नों खुराना के अनुसार इस घराने की गायिकी अष्टांग गायिकी है, जिसमें आलाप, बोल आलाप, बहलावा, तान, बोलतान, लयकारी, गमक, खटका, कण, मुर्की, मींड तथा सूत का प्रयोग किया जाता है।[6]

10. इस घराने की तालीम में प्रारम्भिक स्वर खूब खुला और बुलन्द लगाया जाता है। आवाज को दबाना इस घराने में वर्जित है। प्रारम्भ से ही आवाज को मन्द्र-मध्य और तार, इन तीनों सप्तकों में तैयार करने की स्वर साधना की दीक्षा दी जाती है। गायन में स्थाई-अन्तरा पूरा गाने के पश्चात् ही आलापचारी, बोल-आलाप आदि किए जाते हैं। स्वरों की बढ़त धीरे-धीरे करते हुए तार सप्तक के स्वरों का गायन किया जाता है। बोल-तान और तानों का विशेष गायन होता है। जिसमें सीधी-सपाट तान, पल्लेदार और दानेदार तानों को स्पष्ट तथा बुलन्द स्वरों द्वारा करना इस घराने की विशेषता है। तानें लय के अनुसार की जाती है। उसमें एक क्रम, एक सिलसिला होता है। यहाँ गमक और जबड़े की तानों का भी खूब प्रयोग किया जाता है।[7]

11. ग्वालियर घराना तानों की स्पष्टता और बुलन्दी के लिए प्रसिद्ध माना जाता है। तानें लय के अनुसार लीं जाती हैं गमक तथा जबड़े की तानें भी ली जाती हैं सीधी पल्लेदार एवं दानेदार 'तान' इस घराने की विशिष्टता है। कहा जाता है कि 'ग्वालियर की गायकी की गति दरबारी सवारी की तरह धीर-गम्भीर, डौलदार और भव्य होती है। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण ग्वालियर घराना आज भी अपनी गुणवत्ता बनाए हुए है।[8]

12. इस घराने की एक और महत्वपूर्ण विशेषता, यहाँ के संगीत को सदा से ही राजाओं-महाराजाओं का संरक्षण प्राप्त हुआ है। 'ग्वालियर' को संगीत

की भूमि कहा गया है। उसका संरक्षण सरकार की अपेक्षा संगीत प्रेमी राजाओं-महाराजाओं ने कलाकारों के साथ-साथ संगीत एवं इसके विकास में भरपूर योगदान दिया। ध्रुवपद गीत शैली का विकास 15वीं शती के राजा मानसिंह तोमर के समय हुआ तो ख्याल गायन शैली के विकास में सिन्धिया वंश के राजाओं का योगदान रहा। इसी कारण ग्वालियर घराने के ध्रुवपद और ख्याल गायकी की पताका सम्पूर्ण भारत में लहराती रही। इसीलिए आज अन्य घरानों को अपेक्षा ग्वालियर घराना उसकी शिक्षण विधि और उसके कलाकारों की गायकी के लिए प्रसिद्ध है।[९]

निष्कर्ष :

वर्तमान समय में ग्वालियर घराने का ही प्रचार-प्रसार अपेक्षाकृत अधिक है क्योंकि संगीत के दोनों महान उद्धारक पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर एवं पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे इसी घराने से सम्बंधित थे। ग्वालियर घराना पेचीदी, गुत्थेदार तानों के लिए प्रसिद्ध है। वर्तमान में यह घराना ख़्याल गायन के प्रमुख घरानों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इस प्रकार ख़्याल गायन का ग्वालियर घराना संगीत की निधि को संरक्षित एवं सर्वर्धित करने में निरन्तर सफल प्रयास करता रहा है।

संदर्भ सूची :

1. डॉ. महारानी शर्मा, संगीत मणि (भाग-1), श्री भुवनेश्वरी प्रकाशन, इलाहाबाद, 2014
2. डॉ. महारानी शर्मा, संगीत मणि (भाग-2), श्री भुवनेश्वरी प्रकाशन, इलाहाबाद, 2014
3. डॉ. शन्नों खुराना, ख्य़ाल गायिकी में विविध घराने, सिद्धार्थ पब्लिकेशन नई दिल्ली, 1995
4. डॉ. महारानी शर्मा, संगीत मणि (भाग-1), श्री भुवनेश्वरी प्रकाशन, इलाहाबाद, 2014
5. डॉ. शरतचन्द्र श्रीधर परांजपे, संगीत, घराना अंक, जनवरी-फरवरी, 1982
6. डॉ. शन्नों खुराना, ख्य़ाल गायिकी में विविध घराने, सिद्धार्थ पब्लिकेशन नई दिल्ली, 1995
7. डॉ. महारानी शर्मा, संगीत मणि (भाग-2), श्री भुवनेश्वरी प्रकाशन, इलाहाबाद, 2014
8. डॉ. महारानी शर्मा, संगीत मणि (भाग-1), श्री भुवनेश्वरी प्रकाशन, इलाहाबाद, 2014
9. डॉ. महारानी शर्मा, संगीत मणि (भाग-2), श्री भुवनेश्वरी प्रकाशन, इलाहाबाद, 2014

नर्तक

‘कथक नृत्य में कज्जलिका’ - नृत्य रचना

डॉ॰ हंस कुमारी
सहायक प्रध्यापक
कथक नृत्य, प्रदर्शन कला विभाग
एकलव्य विश्वविद्यालय, दमोह (म॰प्र॰)

‘कज्जलिका’ संस्कृत भाषा का शब्द है, जिसका हिन्दी अर्थ ‘कजरी’ है। कजरी शब्द हिन्दी के ‘कजरा’ से बना है। कजरी पूर्वी उत्तर-प्रदेश का प्रसिद्ध लोकगीत है। यह अर्द्ध-शास्त्रीय गायन की विधा के रूप में भी विकसित हुआ है। कजरी गीतों में अधिकतर- ‘वर्षा ऋतु’ का वर्णन, ‘विरह-वर्णन’ तथा ‘राधा-कृष्ण की लीलाओं’ का वर्णन मिलता है। कजरी में श्रृंगार-रस की प्रधानता रहती है। उत्तर-प्रदेश के बनारस जिले में कजरी-गायन का प्रचार अधिक पाया जाता है। कजरी-गीत पर भाव प्रदर्शन कजरी-नृत्य कहलाता है ।

सावन का महीना आते ही हर तरफ हरियाली छा जाती है, पेड़ों पर झूले पड़ने लगते हैं। इस खास मौके पर गाया जाने वाला गीत ‘कज्जलिका’ अर्थात् ‘कजरी’ कहलाता है। ‘लोकगीतों की रानी’- ‘कज्जलिका’ उर्फ ‘कजरी’ सिर्फ गीत मात्र ही नहीं है अपितु यह सावन की सुन्दरता व उल्लास भी दिखाती है, जिस पर नृत्य-संयोजन की परम्परा भी कथक-नृत्य में रही है। नगरीय सभ्यता में पले-बसे लोग भले ही अपनी सुरीली धरोहरों से दूर होते जा रहे हैं, परन्तु शास्त्रीय व उपशास्त्रीय बंदिशों में रची ‘कज्जलिका’ अभी भी उत्तर-प्रदेश के कुछ अंचलों की खास लोक-संगीत विधा है। कजरी के मूलतः तीन रूप हैं-

1- बनारसी कजरी,

2- मिर्जापुरी कजरी, तथा

3- गोरखपुरी कजरी।

ऐसा नहीं है कि ‘कजरी’ अर्थात् ‘कज्जलिका’ सिर्फ बनारस, मिर्जापुर तथा गोरखपुर तक ही सीमित है अपितु इलाहाबाद तथा अवध भी इसकी सुमधुरता से अछूते नहीं हैं। मध्य प्रदेश एवं छत्तीसगढ़ के कुछ अंचलों में तो रक्षाबन्धन पर्व को ‘कजरी-पूर्णिमा’ के नाम से भी मनाया जाता है।

कज्जलिका का इतिहास :

उमड़ते-घुमड़ते एवं गरजते काले-काले बादलों का शोर, झूमते पवन की पुरवाई ही ‘कज्जलिका की उपज’ है। हर काल में ‘कज्जलिका’ अर्थात् कजरी रची तथा गायी गई है। विरह, प्रेम, मिलन और मनुहार को शब्दों व सुरों के जरिये व्यक्त करने के लिए कजरी कंठ में कब समाईए यह बताना थोड़ा कठिन है, लेकिन इसके प्रसंग महाभारत काल से ही मिलते आ रहे हैं। कजरी की उत्पत्ति महाभारत काल से बतायी जाती है। ऐसा कहा जाता है कि, वसुदेव अपनी आठवीं संतान की रक्षा के लिए भादों की अंधेरी रात में नंदबाबा के घर कृष्ण को पहुँचाकर जब नन्दजा को ले आये थे और कंस ने जब नंदजा को पटकने की कोशिश की तब वह उसके हाथ से छूटकर विंध्याचल में जा गिरी थी। वही नंदजा, ‘विंध्याचली देवी’ के नाम से पूजी जाती हैं। इनका एक नाम ‘कज्जला’ भी है, इसी से ‘कज्जलिका’ की उत्पत्ति मानी जाती है। भादों कृष्णपक्ष की द्वितीया को मिर्जापुर एवं बनारस में ‘कज्जला देवी’ (विंध्यवासिनी)

का जन्मोत्सव 'कजरी-उत्सव' के रूप में मनाया जाता है। लोकगीतों में 'कजरी' ही एक ऐसी विधा है जिसमें अनेक धुनें पायी जाती हैं।

सावन माह में नयी ब्याहि बेटियाँ अपने पीहर वापस आती हैं और बागीचों में अपनी भाभी व बचपन की सहेलियों के संग कजरी गाते हुए झूला झूलती हैं। छेड़-छाड़ भरे इस माहौल में जिन महिलाओं के प्रिय बाहर गये होते हैं, वे भी विरह में तड़पकर गुनगुना उठती हैं जिससे कजरी की गूँज उनके प्रीतम तक पहुँचे और शायद वे लौट आयें।

'कज्जलिका'

''सखि रेकिमिदं नियति-विधानम्, सजनो नैव समायातः।
पीडायाः न हि किमपि निदानम् सजनो नैव समायातः।
दिगञ्चनं चञ्चलं न मुञ्चत्यधुना पयोमुचः क्षिप्रम्
नभसि तन्वते तमो-वितान सजनो।
दिवा-निशम् दुर्दिनम् कम्पयति, नितरां साधुकुटीर
र म ा ् ।
भाति स्मृतौ वञ्चनाख्यानम् सजनो।
रचयति झञ्झा झम्पातालम् नृत्यति सुखी शिखी विपिने।
मनो दुनोति चातकी गानम। सजनो नैव समायातः।
ज्वराञ्चित्तेऽपि शरिरे जनयति सरससमीरो रोमाञ्चं।
धत्ते धरां नवं परिधानं सजनो नैव समायातः।
कज्जलिका गीतयोङ्गनाभिः सामोदं सङ्गीयन्ते।
परिक्षीयत धैर्य-निधानम्। सजनौ नैव समायातः।
स्वयं नागतो नापि पत्रिका, प्रहिता कापि वैरिणा मे।
शुष्यति साम्बुकल्पनोद्यानं सजनो।
गर्जति तत्र कथन्न घनोऽयं निवसित यत्र निर्ममो मे।
कुरूते अत्रैव दुन्दुभिध्वानम्। सजनो।
समागतेऽपि निर्दये, सद्यो वार्तामपि न
करिष्येऽहम्। सजनो नैव समायातः॥
रचयिष्यामि दुस्त्यजं मानं सजनो नैव समायातः॥''

..........(आचार्य कान्ता प्रसाद त्रिपाठी)

प्रस्तुत संस्कृत रचना- ''कज्जलिका'', सुप्रसिद्ध रचनाकार ''आचार्य श्री कान्ता प्रसाद त्रिपाठी'' जी द्वारा रचित है। जिसका हिन्दी अनुवाद इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ के संस्कृत विभाग की आदरणीय सहायक प्रध्यापिका - 'श्रीमति पूर्णिमा केलकर जी' द्वारा किया गया है। आचार्य श्री कान्ता प्रसाद त्रिपाठी जी की इस वियोग श्रृंगार में रचित विरह-वेदी रचना को मैंने अर्थात् डॉ॰ हंस कुमारी ने, एक कथक नृत्यांगना की दृष्टि से नृत्यमय भावाभिव्यक्ति हेतु नृत्य-संरचना में बांधने का प्रयास किया है।

नायिका से परिचय :

प्रस्तुत कज्जलिका में 'विरहोत्कंठिता नायिका' का वर्णन है। जो आयु के अनुसार- 'मध्या' तथा धर्म से 'स्वकीया' है। नायिका की जाति- 'चित्रिणी' तथा प्रकृति- 'मध्यमा' है। नायिका, जिसका प्रिय समागम के पश्चात् कहीं चला गया है और जाने के बाद से नायक ने कोई पत्र-व्यवहार भी नहीं किया है। नायक ने वापस आने की जो तिथि बतायी थी वह गुजरने पर भी नायक वापस नहीं लौटा है, जिससे नायिका अति-व्यथित है।

कुल दृश्यों की संख्या-दो (2)

वातावरण :

सावन का महीना है, चारों ओर हरियाली छायी है। आकाश में अनायास ही घनघोर बादल गरजते रहते हैं। आसमान में कड़कती बिजली भी अक्सर चमक-चमक कर अपने होने का भान कराती रहती है। हर तरफ वर्षा की फुहारें हैं। घनघोर बादलों ने सूरज को छिपा ही दिया है, जिससे दिन भी संध्या प्रतीत होने लगा है। स्त्रियाँ 'कजरी-उत्सव' हेतु सज-संवरकर एकत्रित हो सावन के हर्षोल्लास में कजरी गीत गा रही हैं। पेड़ों पर झूले पड़े हैं। जिन सुहागनों के प्रीतम उनके पास हैं, वह स्त्रियाँ अपने प्रिय व अन्य सखियों के साथ झूलों पर कजरी गुनगुना रही है। इन सुंदरियों के मनमोहक गीत व सावन के

मदमस्त वातावरण से आनन्दित हो मयूर भी वन में नृत्य कर रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो बरखा की बूंदें लय बनी हों और बादलों की गरज ताल, जिस पर मयूर मस्त होकर नृत्य कर रहे हैं।

हर तरफ हरियाली है, सावन के हर्षोल्लास से प्रकृति और भी निखर गयी है परन्तु सावन की इस हृदयस्पर्शी अनुभूति के बीच भला किसका मन प्रिय मिलन हेतु न तड़पेगा। चारों दिशाओं से आती बारिश की ये फुहारें विरहिणी-नायिका के हृदय को और भी अधिक जला रही हैं। नायिका की सखि जो साज-श्रृंगार के साथ नायिका से मिलने आयी है, उसे अपने साथ कजरी-उत्सव का आनन्द लेने हेतु ले जाना चाहती है परन्तु विरहिणी-नायिका अपनी सखि को अपने पास रोककर उसे अपनी विरह-वेदना सुना रही है।

दृश्य क्रं० - 01

''सखि रेकिमिदं .... वञ्चनाख्यानम् सजनो।''

(पर्दा उठता है)

नायिका अपनी कुटीर में अपने प्रीतम के वापस आने की बेसब्री से प्रतिक्षा कर रही है। वह गृह-कार्य करते-करते, बार-बार झरोखे से बाहर झाँककर देखती है कि, 'प्रिय प्रीतम आ रहे हैं या नहीं'। प्रीतम को आता न पाकर निराश हो पुनः अपने गृह-कार्य में लग जाती है। इस बार दरवाजे पर दस्तक होती है, नायिका इस आशा में कि शायद दरवाजे पर नायक हो, वह खुश होकर दरवाजा खोलती है परन्तु सामने प्रीतम की जगह अपनी सखि को पाकर निराश व उदास हो जाती है। सखि, नायिका को उदास देखकर समझाती है तथा कजरी-उत्सव में चलने को कहती है। इस पर नायिका, सखि से अपनी व्यथा कहती है-

नायिका : ''हे सखि! पता नहीं मेरे भाग्य में क्या लिखा है? मेरे प्रीतम अभी तक नहीं आये हैं। मेरे इस दुःख का तो कोई भी उपाय नहीं है। चारों ओर बरखा की फुहारें हैं। आकाश में भी अंधेरा फैल रहा है। हे सखि! ऐसे हाल में तुम तो मुझे अकेला छोड़कर मत जाओ। मेरे इस भले घर में दिन-रात अमंगल के संकेत मिल रहे हैं। मुझे यह घर कम्पित होता सा प्रतीत हो रहा है। बार-बार, रह-रहकर मुझे अपने प्रीतम की बातें याद आ रही हैं परन्तु वह अभी तक नहीं आये हैं।''

नायिका को अति दुःखी देखकर सखि उसे प्रेमपूर्वक समझाकर अपने साथ उत्सव में ले जाने लगती है। नायिका व सखि कुटीर र से कजरी-उत्सव-स्थान को प्रस्थान करती हैं।

(पर्दा गिरता है)

पात्र -   नायिका व सखि।

वेशभूषा - नायिका ने पीले रंग के लहंगा-चोली तथा हरी ओढ़नी पहनी है। नायिका अपने प्रिय की विरह-वेदना में पीली पड़ गई है। नायिका के केश खुले हैं, माथे पर लाल रंग की छोटी सी बिंदी लगाई है। नायिका ने साधारण सा श्रृंगार किया है, कानों में छोटी-छोटी बालियाँ, हाथों में एक-एक कंगन तथा गले में सफेद मोती की माला पहने है।

सखि ने हरे तथा लाल रंग का लहंगा-चोली तथा लाल ओढ़नी ली है। सखि पूर्णं साज-श्रृंगार के साथ कजरी-उत्सव मनाने जा रही है। गले में चंद्र हार, कानों में बड़े-बड़े झुमके, माथे पर बड़ी सी लाल बिंदी तथा मांग टीका, हाथों में हरी व लाल काँच की चूड़ियाँ तथा पैरों में बजनी पायल पहने है, जो उसके चलने पर छम-छम की ध्वनि उत्पन्न करती है।

मंच सज्जा - मंच पर नायिका की कुटीर र को कार्डबोर्ड की सहायता से प्रदर्शित किया गया है। पार्श्व में सफ़ेद रंग के पर्दे पर काले-घने बादलों के बीच बिजली व बरखा का दृश्य उकेरा गया है । मंच पर कुटीर के आस-पास 1-2 हरे पेड़ों को भी कार्डबोर्ड की सहायता से दिखाया गया है तथा हरे रंग का कार्पेट मंच पर बिछा है।

प्रकाश व्यवस्था - मंच पर मध्यम, डिमर लाईट द्वारा नीले रंग के प्रकाश द्वारा बारिश का वातावरण दिखाया गया है। नायिका व सखि को

बिन्दु-प्रकाश (स्पॉट लाईट) की सहायता से उजागर किया गया है। बीच-बीच में बिजली के चमकने का प्रकाश ब्लिंकिंग-लाईट द्वारा दिखाया गया है।

ध्वनि व्यवस्था - कॉलर-माइक द्वारा नायिका के संवादों को प्रेक्षागृह में प्रसारित किया गया है। संवादों के मध्य, यदा-कदा बादलों की गरज व बिजली कड़कने की आवाज रिकॉर्डिड ध्वनि द्वारा प्रसारित की गयी है। बारिश की ध्वनि भी रिकॉर्डिड ध्वनि द्वारा बजायी गयी है।

पार्श्व संगीत - पार्श्व संगीत में मंच पर प्रथम दृश्य के आरम्भ के साथ ही मल्हार राग में निबद्ध रचना सितार व जल-तरंग पर बजायी गयी है, साथ में तबला व हारमोनियम पर संगत चल रही है।

दृश्य क्रं॰ - 02

''रचयति झञ्झा .... समायातः।''

(पर्दा उठता है)

नायिका, अपनी सखि के साथ कजरी-उत्सव हेतु बागीचे की ओर आ रही है। मार्ग में हरी धरती व हरे-हरे पेड़-पौधों जो देखकर रोमांचित होती है। बागीचे के समीप पहुँचने पर उत्सव-स्थान से आती स्त्रियों के कजरी गायन की ध्वनि सुनाई पड़ती है, जिसे सुनकर नायिका और भी भावुक हो जाती है। बागीचे में पहुँचने पर नायिका मोर-मोरनी को नृत्य करते देख आनन्दित हो उठती है तथा सखि को इंगित कर कहती है- ''वन में मोर इस घनघोर बारिश में अति आनंदित हो झम्पाताल में नृत्य कर रहे हैं और मेरा मन चातक पक्षी की तरह गान करते हुये मानो मचल रहा है, पर मेरे प्रीतम तो यहाँ नहीं हैं। विरह-अग्नि में तपते मेरे इस तन में शीतल-पवन रोमांच उत्पन्न कर रही है। समग्र धरती ने नवीन वस्त्र धारण कर लिये हैं, धरा पर हरियाली छायी है। सावन के हर्षोल्लास में स्त्रियों द्वारा प्रसन्नतापूर्वक गाया जाने वाला कजरी गीत सुनकर मेरा धैर्य अब समाप्त हो रहा है परन्तु मेरे प्रीतम अभी तक नहीं लौटे हैं। न जाने उनका मुझसे क्या वैर है, न तो वह खुद आ रहे हैं और न ही कोई पत्र भेज रहे हैं। ऐसा लगता है जैसे उन्होंने मुझे छोड़ ही दिया है। जल से युक्त सरोवर जैसे सूख गया हो, मेरा धैर्य भी अब वैसे ही समाप्त हो रहा है। वहाँ घनघोर बादल दुन्दभि के समान तेज गर्जना कर रहे हैं, तब भी मेरे प्रिय यहाँ लौटकर नहीं आ रहे हैं, (नायिका गहरी श्वास छोड़ते हुए उदास भाव से कहती है) वह कितने निष्ठुर हैं।''

नायिका कुछ क्रोधित हो आगे कहती है, - ''हे सखि! अब उनके वापस आने पर मैं अपना मान नहीं छोडुगीं, क्योंकि जाने के बाद से उस निर्दयी ने मुझसे किसी भी प्रकार से कोई बात नहीं की है और वह स्वयं भी अभी तक नहीं आये हैं। (नायिका विह्वल होकर धरा पर बैठ जाती है)।

(पर्दा गिरता है)

पात्र - नायिका, सखि व मोर-मोरनी।

वेशभूषा - नायिका व सखि पूर्ववत् तथा मोर-मोरनी की पोषाक में दो अन्य साथी।

मंच सज्जा - दृश्य दो में मंच से कुटीर को हटा दिया जाता है तथा उसके स्थान पर 2-3 और वृक्ष झूलों सहित कार्डबोर्ड की सहायता से प्रदर्शित किये जाते हैं। मंच पर हरे रंग का कार्पेट बिछा है, जो धरा पर हरियाली का आभास करा रहा है।

प्रकाश व्यवस्था - मंच पर पूर्ववत मध्यम, डिमर लाईट द्वारा नीले रंग का प्रकाश दिखाया गया है। नायिका व सखि को बिन्दु प्रकाश (स्पॉट लाईट) द्वारा उजागर किया गया है। मयूर गत के समय दूसरे बिन्दु प्रकाश (स्पॉट लाईट) से मोर-मोरनी को भी उजागर किया गया है। बीच-बीच में बिजली के चमकने का प्रकाश ब्लिकिंग लाइट द्वारा दिखाया गया है। दृश्य के अंत में पर्दा गिरने के साथ-साथ प्रकाश को मध्यम करते हुये बन्द किया गया है।

ध्वनि व्यवस्था - नायिका के संवादों को कॉलर माइक द्वारा प्रसारित किया गया है। दृश्य क्रं॰-2 में पर्दा उठने के साथ-साथ पक्षियों के चहचहाने की

आवाज़, कोयल, पपीहे तथा मोर की आवाज़ रिकॉर्डिड ध्वनि द्वारा बजायी जायेगी। बागीचे में मोर-मोरनी के नृत्य के समय मयूर गत बजायी जायेगी। दृश्य के बीच-बीच में बादल गरजने व बिजली कड़कने की रिकॉर्डिड ध्वनि बजायी जायेगी।

पार्श्व संगीत - दृश्य क्रं॰-2 में मेघ-मल्हार राग में निबद्ध कजरी गीत- 'उपर्युक्त संस्कृत पंक्तियाँ' पार्श्व गायिका द्वारा गायी जायेंगी, साथ में सितार, बांसुरी व जल तरंग पर मधुर संगीत के साथ तबला व हारमोनियम की संगत चल रही होगी। संस्कृत कज्जलिका के पश्चात् मयूरगत का संगीत समस्त प्रस्तुत वाद्यों के प्रयोग से बजाया जायेगा। मयूरगत के पश्चात् मल्हार राग की रचना जिसमें करूण रस प्रधान हो शहनाई व जल तरंग पर बजायी जायेगी। (दृश्य के अंत में करूण रस में आलाप द्वारा समापन किया गया है, जोकि पर्दा गिरने के पश्चात् भी कुछ क्षण तक चलता रहेगा)।

उपसंहार :

'कज्जलिका' अर्थात् 'कजरी' लोक-संस्कृति की जड़ है। यदि हमें लोक-जीवन की उर्जा और रंगत को बनाये रखना है तो इन तत्वों को सहेज कर रखना होगा। कजरी भले ही पावस-गीत के रूप में लिखी व गायी जाती है पर लोकरंजन के साथ ही इसने लोक-जीवन के विभिन्न पक्षों में सामाजिक चेतना की अलख जगाने का भी कार्य किया है। कजरी सिर्फ राग, विराग, श्रृंगार और विरह के लोक-गीतों तक ही सीमित नहीं है बल्कि इसमें चर्चित समसामायिक विषयों की भी गूँज सुनायी देती है। 'कजलिका' को कथक नृत्य में नृत्य-रचना द्वारा बाँधने का मैंने छोटा सा प्रयास किया है। आधुनिक समय में भी कजरी जैसी पारम्परिक रचना का संस्कृत साहित्य में लिखा जाना अपने आप में अद्भुत कृति है।

सन्दर्भ सूची :

1. त्रिपाठी, प्रसाद, कान्ता, आचार्य - शाश्वती (संस्कृत) - दुर्गा प्रकाशन, नयी दिल्ली।
2. आजाद, तीर्थराम, पं॰ - कथक दर्पण (हिंदी) - नटेश्वर कला मंदिर, विकास मार्ग, दिल्ली।
3. सिंह, मांडवी, डॉ॰ - भारतीय संस्कृति में कत्थक परंपरा (हिंदी) - स्वाति पब्लिकेशन, दिल्ली।
4. गर्ग, लक्ष्मीनारायण, डॉ॰ - भारत के लोकनृत्य (हिंदी) - संगीत कार्यालय हाथरस ।

कथक नृत्य में लोक तत्व

डॉ॰ नीमा कलौनी

असि0 प्रो0 संगीत

रामचन्द्र उनियाल राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय उत्तरकाशी।

सारांश :

कथन नृत्य में लोक तत्व का अध्ययन करने का उद्देश्य इस प्रकार है कि लोक शब्द अत्यन्त प्राचीन काल से व्यवहार में प्रचलित है इस शब्द का प्रचलन जन सामान्य के अर्थ में होता है इस शब्द के लिए ऋग्वेद में जनशब्द का प्रयोग किया गया है उपनिषदों में अपने स्थान पर लोक शब्द का व्यवहार किया गया है। भरतमुनि में नाट्यशास्त्र के चौदहवे अध्याय में अपने नाटयकर्मी एवं लोकधर्मी प्रवृतियों का उल्लेख किया गया है।

लोक जीवन की परिधि है तथा राष्ट्र की अमूलय निधि है लोक तत्व परम्परा से चले आ रहे उन भावो-विचारों और अनुमूतियों के प्रतीक होते है। जो सामान्य जन मानस से युर्गो से अपनी गहरी जड़े जमाए चले जा रहे है, परम्पराएं लोक जीवन में ही पनपती है, संगीत का इतिहास उनता ही पुराना है जितना मानव सभ्यता का लोक नृत्यों से ही कथ नृत्य का उद्भव विकास एवं पल्लवन हुआ। लोक में मानव की सृजनात्मक शक्ति के स्त्रोत निहित है, प्रत्येक कथक नृर्तक अपने अलग-अलग अन्दात में नृत्य आरम्भ करता है और अपनी रुचि के अनुसार उसका संयोजन करता है, कथक नृत्य पर दृष्टिपात करने पर हमें जो लोक साहित्य लोक तत्व दृष्टिगत होता है वे इस प्रकार विद्यमान है लोक परम्परा लोक साहित्य लोक जीवन में मुद्रा एवं भाव लोक जीवन के रस एवं सहज सचरण इत्यादी पाये जाते है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कथक नृत्य में लोक परम्परा सहज संचरण सहज मुद्रा एवं लोक कथा लोक जीवन के रस आदि के रुप में लोक तत्व के दिग्दर्शन होते है, आन्तरिक अनुभूतियों के कला का सृजन होता है, कलाकार यह अनुभूति लोक जीवन से प्राप्त करता है अतः किसी भी कला में लोक जीवन में प्रतिविम्बों का होना स्वाभाविक है। कथक का मनभावन रुप से ही प्रेरणा ग्रहण कर जनमानस को अनुरंजित और अनुप्रमाणित कर रहा है इस प्रकार कहा जा सकता है कि कथक नृत्य में लोक तत्व विद्यमान है।

प्रधान शब्द :

भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, कुहुक, पल्लवन, कोमलकान्त, भावभगिमा पीताम्बर।

लोक शब्द अत्यन्त प्राचीन काल से व्यवहार में प्रचलित है, इस शब्द का प्रचलन जनसामान्य के अर्थ में होता आया है, वैसे शाब्दिक दृष्टि से इसका अर्थ देखने वाला होता है।[1] इस शब्द के लिए ऋग्वेद में जन शब्द का प्रयोग हुआ है, उपनिष्दों में अपने स्थान पर लोक शब्द का व्यवहार किया गया है। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र के चौदहवं अध्याय में अपने नाट्यधर्मी एवं लोकधर्मी प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है।

महर्षि व्यास ने महाभारत की विशेषताओं के वर्णन में लोक शब्द का व्यवहार साधारण जनता के अर्थ में किया है। उन्होंने कहा कि अज्ञान रुपी अंधकार से अंधा होकर व्यथित लोक साधारण जनता की ऑखों को ज्ञानरुपी अंजन की सलाका लगाकार खोल देता है। व्यास ने महाभारत में लोक यात्रा का भी उल्लेख किया है उन्होंने कहा कि जो व्यक्ति लोक को स्वतः अपने चक्षुओं से देखता है वहीं उसे सम्यक रुप से जान सकता है।[2]

डॉ० श्याम परमार के अनुसार - आधुनिक साहित्य की नवीन प्रवृत्तियों में लोक का प्रयोग गीत, कथा, वार्ता, संगीत आदि से युक्त होकर साधारण-जन समाज जिसमें पूर्व संचित परम्पराऍ विश्वास और आदर्श सुरक्षित है। तथा जिसमें भाषा और साहित्यगत सामग्री ही नहीं अपितु अनेक विषयों के अनगढ़ किन्तु ठोस रत्न छिपे रहते हैं।[3]

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार- लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है, उसमें भूत, भविष्य और वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है।[4]

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते है लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम नहीं है बल्कि गॉवों और नगरों में फैली हुई वह समूची जनता है जिसके व्यावहारिक ज्ञान आधार पोथियॉ नहीं है।[5]

कला लोक की परिधि में - लोक की अपनी एक परम्परा होती है और उस परम्परा के कारण ही हमारा जीवन कियाशील रहता है, मानव पहली बार अपनी ऑखों को इस लोक में खोलता है और मूँदने तक इस लोक को देखता है इस अवधि में मनुष्य जीवन और संसार के कई अनुभवों से गुजरता है, मनुष्य अपने आस-पास इसी अनुभव के आधार पर जो जीवन का ताना-बाना बुनता है, वहीं लोक है इस प्रकार जन और समुदाय जो देखने का कार्य करता है और जिसे देखा जाता है वह सब लोक परिधि में आता है।[6] लोक जीवन की परिधि है तथा राष्ट्रट्ठ की अमूल्य निधि भी है, लोक तत्व परम्परा से चले आ रहे उन भावों-विचारों और अनुभूतियों के प्रतीक होते हैं जो सामान्य जन मानस में युगों से अपनी गहरी जड़े जमाए चले जा रहे है।[7] परम्पराएं लोक-जीवन में ही पनपती है इसलिए हर कला का आधार लोक जीवन ही होता है।

प्रत्येक कला का मुख्य ध्येय यह होता है कि वह सम्यक् अनुभूति करती रहे अतः कोई भी शास्त्रीय या अभिजात कला लोक से ही अलौकिक आलोक प्राप्त करती है।

संगीत का इतिहास उतना ही पुराना है जिनती मानव सभ्यता का। आज भी एक अबोध बच्चा किसी पक्षी को नाचता देख दोनों हाथ उठाकर एक वृत्त में धूमने लगता है। कोयल की कुहुक सुनकर उसी के स्वर में स्वर मिलाकर कुहू-कुहू टेरने का दृश्य आज भी दृष्टिगत होता है। ऐसे ही प्रकृति जन्य, ध्वनि, दृश्य आदि को देखकर संगीत जन्मा होगा। जिसे मानव ने अपनी कल्पना दिन-प्रतिदिन सजाया-सॅवारा और विकसित किया तथा इसी संगीत को नियमबद्ध कर शास्त्रीय संगीत के रुप में परिणत किया।[8]

किसी भी कला में जब मानव मन की सहज संवेदनाओं की अभिव्यक्ति नहीं होगी वह कला कितनी ही पॉडिचयपूर्ण क्यों न हो वह उसी प्रकार व्यर्थ है, जैसे एक भूखे व्यक्ति को मुक्ता-माणिक थाल में परोस दिया जाए। हमारी लोक परम्परा हमारे शास्त्रीय नृत्य शैलियों की झलक लोक नृत्य में देखने को मिलती है। जो प्रमाण है इस बात का कि आज की विकसित शास्त्रीय संगीत की परम्परा का यह स्वरुप लोक संगीत परम्परा का ही परिष्कृत या नियमवद्ध रुप है। शास्त्रीय संगीत को अपनी संपोषित तथा जीवनदायिनी शक्ति इसी समृद्ध लोक धारा से मिलती है।[9]

कथक - लोक नृत्यों से ही कथक नृत्य का उद्भव विकास एवं पल्लवन हुआ है।[10] सामान्यतः कथक का अर्थ (कथा कहे सो कथक कहावे) से लिया गया है।[11] तथा यह शब्द एक जाति विशेष को सम्बोधित भी करता है।[12] यह जाति नट, चारण,

भाट, सूत, शैलालि, शैलुष, कृशाश्व आदि की तरह जन समुदाय को मनोरंजन का कार्य करती थी, काल चक्र के परिवर्तनानुसार नृत्य शौली कथक नृत्य के रुप में प्रचलित हुई।[13] यह नृत्य जनमानस के मध्य से इस्लामी सभ्यता को भी आत्मसात करता हुआ वर्तमान तक की यात्रा तय कर चुका है नटुवा नृत्य, रास नृत्य, तटवरी नृत्य तथा अन्य लोकनृत्यों की सामग्रियों को एकत्रित कर अपने को समृद्ध करता हुआ यह नृत्य आज समस्त विश्व में प्रचारित एवं प्रसारित हो चुका है।[14]

कथक नृत्य में दृष्टिगम लोक तत्व - लोक में मानव की सृतनात्मक शक्ति के स्त्रोत निहित है। रचनाशीलता की प्रवृति के कारण ही मानव लोक के उपदानों से अपनी कला को समृद्ध और गतिमान बनाता है। वर्तमान समय में कथक नृत्य परम्परागत शास्त्रीय नृत्यों के प्रमुख स्थान रखता है, प्रत्येक कथक नृर्तक अपने अलग-अलग अन्दाज में नृत्य आरम्भ करता है, और अपनी रुचि के अनुसार उसका संयोजन करता है।[15]

प्रस्तुतीकरण में यह स्वतंत्रता इस नृत्य में लोक से ही आई है। कथक नृत्य पर दृष्टिगत करने पर हमें जो लोक तत्व दृष्टिगत होता है उसे निम्न भागों में विभक्त कर अध्ययन किया जा सकता है।

1. लोक परम्परा
2. लोक साहित्य
3. लोक जीवन में मुद्रा एवं भाव
4. लोक जीवन के रस
5. सहज संचरन।

1. **लोक परम्परा -** परम्परा का सम्बन्ध साधारण तथा समाज के कुछ ऐसे तत्वों से होता है जो पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होते रहते हैं।[16]

   इसमें पीढ़ियों का ज्ञानानुभाव समाहित होता है तथा इससे ही लोक-संस्कृति का निर्माण होता है कथक नृत्य में लोक परम्परा निम्न रुप में देखी जाती है।

(क) **देवी-देवता की पूजा तथा गुरु की अर्चना -** भारतीय कला वैदिक काल से ही धर्म से मर्यादित, शील से सुवासिर्त आर समकालीन सत्ता से समानान्तर विकसित होती रही है हमारी संस्कृति में किसी कार्य के करने से पहले अपने ईष्ट को याद करते है यह परम्परा इस नृत्य में भी दृष्टिगत है, इस नृत्य का प्रारम्भ स्तुति या वंदन से होता है परम्परा के अनुसार गणेश, शिव, गुरु आदि की वंदना की जाती है।[17] यह वंदना अर्चना या मंगलाचरण की परम्परा लोक से ही आई है।

(ख) **वस्त्राभूषण -** इस नृत्य में परम्परागत वस्त्राभूषण रुप सज्जा के लिए व्यवहृत है जैसे कृष्ण बनने के लिए रेशमी पीताम्बर हरे रंग का पटका, मोतियों का हार, भुजाओं में जड़ाऊ़, बाजूबंद कलाइयों में सुनहरी कड़े, कानों के कुंडल, सिर पर मोर मुकुट आदि तथा राधा के लिए लंहंगा, चोली, दुपट्टा, कड़े, झुमके, अंगूठी, हार, पायजेब आदि।[18] इस नृत्य के वस्त्राभूषण पर इस्लामी लोक संस्कृति सें भी प्रभाव दृष्टिगत है जैसे चूड़ीदार पजामा, जाकेट और दपट्टा जिसे पेशवाज कहा जाता है।[19] इस प्रकार इस नृत्य के पोशाक या वस्त्राभूषण में प्राचीन तथा मध्ययुगीन लोक संस्कृति का सौन्दर्य और माधुर्यमय जीवन धारा का प्रत्यक्ष अवलोकन होता है।

(ग) **रीति-रिवाज -** लोक के परम्परागत रीति-रिवाज के दर्शन इस नृत्य में होते है, भारतीय जीवन में रीति-रिवाज का सर्वोपरि स्थान है विवाह, पर्व, त्यौहार, पूजा आदि में रीति-रिवाज का पालन किया जाता है।हमारे समाज में बधुओं को धूँधट में रहना पड़ता है, यह धूँधट का रिवाज कथक नृत्य में मुख्य रुप से दर्शाया जाता है। पर्व-त्यौहार में होली एक महत्वपूर्व पर्व है, इसका भी चित्रण इस नृत्य में प्रस्तुत

किया जाता है, इस नृत्य की कथा वस्तु में धार्मिकता की झलक लिए जो कृष्ण, शिव, आदि की दंत कथाओं के भावांकन एवं मुद्रांकन से भी हमारे परम्परागत रीति-रिवाज के दर्शन होते है।

(2) **लोक साहित्य -** इस नृत्य में प्रयुक्त कवित्त, सवैया, ठुमरी।[20] आदि की भाषा हमारे लोक जीवन की भाषा है। इसके एक-एक बोल शब्द सुलभ सुगंध मर्यादित प्राणों का पुलकित करती है।मधुरता प्राणों में समा जाती है, मधुर तथा कोमलकान्त पदावली का एक-एक मर्मभाव प्रदर्शन से प्रकाशित होता है लोक भाषा के कारण ही इस नृत्य में एक विचित्र प्रवाह और गति होती है तथा इस नृत्य के सारे भाव हमारे बीच में लगते हैं।

लोक में प्रचलित संश्लिष्ठ कथानक।[21] ही इस नृत्य का आधार है। इस नृत्य में लोक भाषा के बहुत से शब्द पारिभाषिक शब्द के रुप में व्यवह्त है, जैसे चलन या चाल फिरन, धुमरिया, कसम-मसक।[22] आदि इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कथानक कवित्त ठुमरी आदि का भावलोक से ही आया है।

(3) **लोक जीवन के मुदा एवं भाव -** इस नृत्य के भाव, भंगिमा मानवीय अनुमूति से कटे नहीं होते है, इसमें प्रेम, विरह, आशा, निराश, मिलन प्रतीक्षा सुख-दुख आदि भावों को प्रकट किया जाता है, देश भक्ति और धार्मिक भावना तथा ऐसे ही दूसरे भाव हैं इसके अन्तर्गत देखे जा सकते है, मुद्राओं का लालित्य और सौकुमार्य के भाव इस नृत्य में लोक तत्व के पोषक है।

नर्तक को इस नृत्य की गम्भीरता में भी सहत-स्वाभाविक गति और स्वच्छता के भाव लोक से ही प्राप्त हुए है। नर्तक अपनी समग्र प्रस्तुति में व्यक्तित्व के माध्यम से मार्मिक अभिव्यक्ति देता है यह अभिव्यक्त भाव साधारणी कृत और मानवीय होता है। जिस कारण से सह्रदय दर्शक उसके प्रत्येक भाव में अपनी ही भावनाओं और अनुभूतियों का भागीदार भी पाता है, अनुभूति की सरल या सधन अभिव्यक्ति इस नृत्य के लक्षण है। सहजता और सरलता के कारण इस नृत्य के वैविध्यपूर्ण विस्तार प्रस्तार को दायरों में बॉधना कठिन हैं क्योंकि यह लोक अनुभूति के लगभग सभी अवयवों को छूता है अतः भाव सम्पदा मुद्रा गति और ध्वनि रंजित बहुविध, अभिव्यक्ति में लोकतत्व दृष्टिगत होता है।

(4) **लोक जीवन के रस -** मानव जीवन का अर्थ लोक में ही उपलब्ध है। लोक जीवन के रसन से ही यह नृत्य शैली रसात्मक है मानवीय संवेदनाओं के आबद्ध जीवन के लगभग हर एक आयामों को यह नृत्य प्रस्तुत करता है जैसे पनघट पर छेड़-छाड़ माखन चोरी माखन मन्थन होली खेलने आदि।

(5) **सहज सचरण -** सहजता लोक का गुण है, शास्त्रीय नृत्यों को तुलनात्मक रुप से देखा जाए तो यह स्पष्ट होता है, कि कलाकार सहज रुप से खड़ा होकर इस नृत्य को प्रस्तुत करता है, इस नृत्य में हाव-भाव मुद्रा या हस्ताभिनय ततकार, आमद सालमी गत आदि का सहज सचंरण मिलता है यह सहज का भाव लोक से ही आया।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कथक नृत्य में लोक परम्परा सहज संचरण, सहज मुद्रा एवं भाव लोक जीवन के रस आदि के रुप में लोक तत्व के दिग्दर्शन होते है। आन्तरिक अनुभूतियों के कला का सृजन होता है कलाकार यह अनुभूति लोक जीवन से प्राप्त करता है। अतः किसी भी कला में लोक जीवन के प्रतिबिम्बों का होना स्वाभाविक है। कथक का मनभावन रुप लोक से ही प्रेरणा ग्रहण कर जनमानस को अनुरंजित और अनुप्राणित कर रहा है।

सन्दर्भ सूची :

1. पं॰ राहुल सांकृत्यायन एवं कृष्ण देव उपाध्याय द्वारा रचित हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास पोडश भाग (ना॰प्र॰स॰) प्रस्तावना।
2. डॉ॰ अंजना गांगुली पूर्णिया अंचल के लोकगीतों का संगीत शास्त्रीय अध्ययन पृ॰-19।
3. डॉ॰ श्याम परमार भारतीय लोक साहित्य पृष्ठ-11।
4. डॉ॰ वासुदेवशरण अग्रवाल लोक का प्रत्यक्ष दर्शन सम्मेलन पत्रिका लोक संस्कृति विशषांक पृष्ठ-06।
5. बसंत निरगुणे लोक संस्कृति पृष्ठ-23।
6. बसंत निरगुणे लोक संस्कृति पृष्ठ-22।
7. राजनाथ शर्मा साहित्यिक निबंध पृष्ठ-948।

8, 9. वीना सिंह शास्त्रीय नृत्य शैलियों के लोकनृत्य की प्रासंगिकता कला वसुधा पृ॰-56।

10. डॉ॰ विधि नागर कथक नर्तक भाग-2, पृ॰-27।
11. डॉ॰ विधि नागर कथक नर्तक भाग-2, पृ॰-13।
12. सुरेशव्रत राय संगीत के जीवन पृ॰-208।
13. डॉ॰ विधि नागर कथक नर्तक भाग-2, पृ॰-18।
14. डॉ॰ विधि नागर कथक नर्तक भाग-2, पृ॰-27।
15. डॉ॰ पुरु दाधीच कथक नृत्य शिक्षा प्रथम भाग पृ॰-28।
16. डॉ॰ सत्यवती शर्मा संगीत का समाज शास्त्र पृ॰-74।
17. डॉ॰ लक्ष्मी नारायण गर्ग कथक नृत्य पृ॰-245।
18. डॉ॰ लक्ष्मी नारायण गर्ग कथक नृत्य पृ॰-180।
19. डॉ॰ पुरु दाधीच कथक नृत्य शिक्षा प्रथम भाग पृ॰-20।
20. डॉ॰ लक्ष्मी नारायण गर्ग कथक नृत्य पृ॰ 162-176 तथा महाराज विरजू (सं॰) रस गुंजनां
21. डॉ॰ लक्ष्मी नारायण गर्ग कथक नृत्य पृ॰-99।
22. डॉ॰ पुरु दाधीच कथक नृत्य शिक्षा प्रथम भाग पृ॰ 97-98।

Representation of Rama in The South Indian Dance-Drama Tradition of Kathakali

Konduparti Maalyada
Research Scholar
School of Arts, Humanities and Social Sciences
REVA University, Bengaluru

Dr. Beena. G
Professor
School of Arts, Humanities and Social Sciences
REVA University, Bengaluru

Abstract

Rama is not just a religious identity but a mythological one, a universal concept that has been accepted in India and many other countries. His journey, the Ramayana is a live tradition in performing arts that has been well-curated and narrated with some major and minor changes in the theme. This paper reflects on the representation of the character of Rama in the South Indian Dance Drama tradition of Kathakali. Unlike many other dance drama traditions, Rama is represented as a mere mortal and King and not as a divine personality with spiritual powers. In Kathakali, the Aharya abhinaya (mode of expression through makeup, costumes, and jewellery) plays a predominant role in the construction and representation of a character. With reasons from the Valmiki Ramayana narrative and the age-old Kerala Mural paintings, the Rama representation in Kathakali is fascinating.

Key Words :

Rama, Ramayana, Kathakali, Pacha vesham, Mural.

Introduction :

The Performing Arts genre of music, dance, and theatre have always been an integral part of the cultural fabric of ancient India as an innate expression of humankind. Music, dance, and theatre are together termed as Drama or 'Natya' in Samskritam. The Science of this Dramaturgy was believed to be first documented by Sage Bharata in his treatise Natya Sastra. The treatise said to belong to the period between the 5th century BCE to 5th century CE.[1] Prior to the existence of verbal language, human expressions have been through various sounds, body gestures, and storytelling through paintings that we see in prehistoric rock paintings like Bhimbetka caves in Madhya Pradesh that belong to 10,000 BCE[2]. Even in the later stages of the Vedic period, the aspect of Vedic ritual tradition closest to dance and the theatre was a rigorous system called yajna. Various types of sacrifices and divine personifications through yajnas were held at different astronomical confluences.

Originating from an innate urge to imitate, drama is one of the finest expressions of man's creative genius. Natya or drama has evolved as an organic merging of dance, music, and theatre that were inseparable right from the earliest stages. It was in the later stages that these art forms became distinct with their own grammar and techniques. Drama as an art form is relevant in terms of its functionality and entertainment, making for delightful teaching at the end. The performance-based tradition became assimilated in the folklore and ethnic cultural spheres where it took a unique form, interwoven with indigenous flavours, developing a plurality of local, sub-regional styles.[4]

The vigorous spread of Bhakti movement after the 10th century resulted in greater accessibility of religion by the lower classes of society for whom the highly formalized Vedic religion was out of reach. To propagate and spread the message of Bhakti among the common people, existing folk music, dance, and drama, as well as regional literary styles and performances, were adapted to create new forms of performing arts. However, besides all these, there were some forces that helped in the development of dance-drama like the Epic Recitation.[5] The actors taking the role of the characters and narrating the story was an audio-visual treat to all classes of people of the Ancient and Medieval Bharat. The term Kusilava that came to be synonymous with Actor in the ancient Bharat has come from the "Uttara Kanda" of Ramayana, where Kusa and Lava (sons of Sita and Rama) were famous for narrating, singing, and dancing to the stories of Sri Rama as nomads.[6]

Ramayana Natya :

Unlike Mahabharata, Ramayana's main plot and sub-plots have gained much popularity both in the oral traditions as a household name and as an epic. Additionally, in the Performing Arts genre these stories stand as an epitome of Dharma. As the Ramayana recitation gained popularity and became imbibed as an art form into the indigenous traditions, a unique form of story and performance manifested through visual forms.[4] The Ramayana-based performances became recognized as a popular source of entertainment since they were performed during festivities, commemorating a sacred event, and regarded as part of cyclical gatherings.

In India, some of the popular indigenous dance-drama traditions representing the Ramayana are Yakshagana of Karnataka, Jatra of West Bengal, Chhau of Odisha, Kathakali of Kerala, Kuchipudi in Andhra to name a few.

This paper will discuss the representation of Rama in the dance-drama tradition of "Kathakali" from Kerala. This genre, which originated in the 17th century, has established itself as an institution in the later centuries.[6] It strictly follows the Valmiki Ramayana for the story plots though the Ezhuthachan's Ramayana is locally available in Malayalam.[14] The reason is that when Ezhuthachan's Ramayanam was composed, there was not much existence of Dance-drama tradition except for Koodiyattam Theatre.[7]

The origins of Kathakali are from the stories of Rama called "Ramanattam" which were composed by the Kottakara Thampuran.[8] He has composed 8 sections

of plays from Valmiki Ramayana like *puthrakameshti (*Bala Kanda)*, sita swayamvaram* (Bala Kanda)*, vicchinnabhishekam* (Ayodhya Kanda)*, kharavadham* (Aranya Kanda)*, balivadham* (Kishkinda Kanda)*, thoranayudham* (Sundara Kanda)*, sethubandhanam* (Yuddha Kanda) *and yuddham* (Yuddha Kanda).[7] All the six kandas of Valmiki Ramayana have a place in the Kathakali repertoire which is a unique aspect of this Dance-drama tradition.

Rama's representation in Kathakali :

Among the 4 types of Abhinaya or modes of expression from the Natya Sastra, Aharya Abhinaya focuses on expressing characters and emotions using different makeups, costumes, jewellery, hairdos, and so on. Aharya Abhinaya is significant because the masses can understand the character without much effort through the accessories that they wear, in comparison with understanding the technicalities of dance and drama like the hand gestures and intricate expressions both facial and literary.

Rama completely suits the character of "Uttama Purusha" as described in the Natya Sastra of Bharata[1]:

1. Full control over sense organs
2. Wise and Skilled in various arts and crafts
3. Never utter a lie
4. Willing to help and console others
5. Conversant with the Sastras
6. Grave and Patient

If examined in the Valmiki Ramayana, there are various ways in which the physical attributes of Rama are described by Valmiki, let us see a few:

तं चन्द्रमिव पुष्येण युक्तं धर्मभृतां वरम्।
यौवराज्ये नियोक्तास्मि प्रीतः पुरुषपुङ्गवम्।। 2.2.12

"Joyfully, I shall appoint Rama, who shines like the moon together with Pushya star, who is the best among the protectors of righteousness and who is an excellent man, to the realm of prince."[9]

इच्छामो हि महाबाहुं रघुवीरं महाबलम्।
गजेन महता यान्तं रामं छत्रावृताननम्।। 2.2.22

All of us want to see Rama, with long arms, the hero with great might born in the clan of Raghu his face protected by a white umbrella, moving on a great elephant." [9]

तेषामायाचितं देव त्वत्प्रसादा त्समृद्ध्यताम्।
राममिन्दीवरश्यामं सर्वशत्रुनिबर्हणम्।।
पश्यामो यौवराज्यस्थं तव राजोत्तमाऽअत्मजम्।2.2.53

"Oh best of kings, Dasaratha! We shall see Rama adorned with a princely kingdom. Your son Rama has the complexion of a black lotus flower and annihilates all his enemies. Let the wish of the people be fulfilled by your grace."[9]

(Courtesy: Dr. Kalamandalam Sudeep A Mohan in Rama Attire for a Kathakali performance)

If one reads and notices the Valmiki Ramayana, nowhere in it has Valmiki mentioned that Rama is in blue colour as we see today. Rama in Valmiki Ramayana was a mere mortal and a king and was of dark complexion. This is exactly what Hanuma also explains in Sundara Kanda to Sita.[9] It is in post Bhakti period and Tulsidas's Ramacharithmanas that Rama was elevated to the level of God and as an incarnation of Vishnu, and we see the iconography of Rama in blue colour.

In Kathakali dance-drama that exactly follows Valmiki Ramayana, Rama is shown as a King and not as a God, and for this reason he is not ascribed to the regular blue colour of Vishnu. The Kathakali makeup is not imitative. It does not attempt to establish the identity of any character. This is similar also to Karnataka Yakshagana. The Kathakali makeup has no similarity in the physical world to draw from.[10]

A green facial makeup is used for Rama in all the dance dramas of Kathakali. Natya Sastra denotes the green colour with the erotic sentiment (Sringara)[1] and thus the heroes (Nayaka) are given a green colour called Pacha vesham and Rama is also not an exception to that. This has been also mentioned by Dr. Kalamandalam Sudeep A Mohan in an interview conducted by the researcher.[7]

(A traditional Kerala Mural painting showcasing Rama Pattabhishekam – Coronation of Rama in Ayodhya after 14 years of exile)

Another point to be noted is that in Kathakali virtuous and noble characters are represented in green like Nala, Arjuna, Yuddhistira, and Rukmangada. The reason for the colours particularly chosen in Kathakali is the Kerala Mural paintings that had a royal patronage in Medieval South India. The tradition of mural painting in Kerala is unique in the world, and it is extremely rich with symbolism. Kerala Mural Art paintings are traced back to 8th century[11]. Made only with natural mineral pigments, the colours represent the qualities of the three gunas- sattva, rajas and tamas. Sattva is purity, which is usually represented by the colour green; the figures painted with green are those for whom knowledge is the chief characteristic. Those in whom rajas, the spur to activity, are predominant, are painted in golden yellow. Tamas, inertia, the least pure is, curiously, represented by white.[12]

The green colour that is used for the makeup was traditionally taken from juice of a plant locally called Eravikkara[11] Art forms like Kathakali, Tholpavakoothu, Theyyam, Koodiyattam, have also deeply influenced the mural artists. The Kathakali mudras were akin to the poses struck by figures in the Mural paintings. The male upper garment of Kathakali called Kavacham is similar to the Mural paintings.[11] It is only in the contemporary mural paintings of Kerala that Rama is represented in Blue, but, traditionally Rama was showcased in green only.

Another unique aspect of Rama representation in Kathakali is that Rama and Krishna are dressed similarly.[7] Rama and Krishna have yellow skirt and Blue shirt and the makuta (crown) used is similar for both Rama and Krishna that has peacock feathers (shown in picture below).

(Source: https://www.outlookindia.com/outlooktraveller/travelnews/story/66990/the-art-of-kathakali)

One Krishnan Thambi (20th century) composed an episode of Ramayana for Kathakali from Raghuvamsa of Kalidasa and in this Rama is represented as a Sringara Purusha.[7] Otherwise in the traditional Kathakali performances, Rama is represented only as a Maryada Purusha.[7] Rama is usually shown in a calm demeanor and is an example of Sattva character. When Ravana, the anti-hero instigates Rama, his power boosts up and he shows his powers. Otherwise in Kathakali, Rama does not showcase any supernatural and spiritual powers.

Conclusion :

Eminent Kathakali artists such as Padmashri Kalamandalam Gopi Ashan, Sri Kalamandalam Balasubramanian Ashan, Sri Kalamandalam Shanmukhan to name a few, are famous for their Rama vesham. The regional varieties that are mentioned as Vritti and Pravritti in the Natya Sastra of ancient India have enabled the art forms of Performing Arts to take on the regional flavours of the areas that they belong to. The mode of presentation might be different, and the stories might be different, but the objective of all performing art forms is one. It is to show people the right path and teach philosophy through storytelling and singing. Of course, the aesthetics of the art forms also have their own medium of expression to get deeper into the thoughts of the people and make the art more appealing, heart-touching, and understandable. Ramayana will always be an integral part of the dance-drama tradition of Bharat and will keep teaching the nuances of righteousness to all the generations ahead.

References :

1. Sri Rama Appa rao, P. (2000). *Natya Sastramu-Guptabhava prakshika sahithamu (Telugu)* (2nd ed.) [Review of *Natya Sastramu -Guptabhava prakshika sahithamu (Telugu)*]. Ajanta Printers. (Original work published 1959)

2. Javid, A., Ali Javid & Tabassum Javeed. (2008). *World Heritage Monuments and Related Edifices in India*. Algora Publishing.
3. *Yakshagana Kendra, Udupi | School of Yakshagana – Yakshagana Kendra, Udupi*. (n.d.). Retrieved August 29, 2023, from http://yakshaganakendra.in/
4. *Visual Expressions of the Ramayana*. (n.d.). Sahapedia. Retrieved August 29, 2023, from https://www.sahapedia.org/visual-expressions-ramayana
5. Ghosh, Manomohan. *Contributions to the History of Hindu Drama*. 1957.
6. Vikram Singh, M. (1989). *6. A Historical Study of Theatre in Ancient India upto 700 AD* [Ph. D Thesis *6. A Historical Study of Theatre in Ancient India upto 700 AD*].
7. Sudeep A Mohan, D. K. (2023, August 22). *Rama in Kathakali* (M. K, Interviewer) [Review of *Rama in Kathakali*].
8. Ragini Devi. (2002). *Dance dialects of India*. Delhi Motilal Banarsidass.
9. Srimad Valmiki-Ramayana. (2008). *Srimad Valmiki-Ramayana (with Sanskrit Text and English Translation).*
10. Bharatha Iyer, K. (n.d.). Kathakali [Review of *Kathakali*]. In *The Cultural Heritage of India*. Ramakrishna Mission.
11. *The murals of Kerala: Origin and evolution*. (n.d.). OnManorama. https://www.onmanorama.com/lifestyle/news/2020/12/11/murals-of-kerala-origin-and-evolution.html
12. Ravi, S. (2015). 12. Colour, Culture, and Identity: Influence of Colours on Kerala Mural Art [Review of *12. Colour, Culture, and Identity: Influence of Colours on Kerala Mural Art*]. *IJASOS- International E-Journal of Advances in Social Sciences*, *1* (3).

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में नृत्यकला के तत्व

प्रियंका तिग्गा
शोध छात्रा, नृत्य विभाग
संगीत एवं मंच कला संकाय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ0 खिलेश्वरी पटेल
सहायक आचार्या, नृत्य विभाग
संगीत एवं मंच कला संकाय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सारांश :

नृत्यकला का उल्लेख न सिर्फ कला साहित्य में है, अपितु इनकी जड़े धार्मिक पृष्ठभूमि से भी जुड़ी हुई हैं, जैसे- वेद, पुराण, महाभारत, रामायण, संस्कृत ग्रंथ इत्यादि। भारतीय नृत्य कलाएं विशेष रूप से भरत मुनि द्वारा रचित नाट्यशास्त्र का अनुसरण करती है। वैसे तो नृत्यकला से संबंधित प्राचीनतम ग्रंथ नाट्यशास्त्र है, परंतु इसके अतिरिक्त अन्य प्राचीन ग्रंथों में भी नृत्यकला का विस्तार से उल्लेख प्राप्त होता है। जिससे यह प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में ही मानव जीवन के विकास के साथ नृत्य का उद्भव हुआ होगा। विभिन्न पुराणों में भी नृत्य से संबंधित उल्लेख प्राप्त होता है, जैसा कि प्रस्तुत लेख में विशेष रूप से विष्णुधर्मोत्तर पुराण में निहित नृत्य तत्वों को सूक्ष्मता से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में नृत्य के तत्वों को विभिन्न चरणों में विभाजित कर 'नृत्तसूत्रम' के अंतर्गत पिरोया गया है। इसके अतिरिक्त रामायण, महाभारत तथा प्राचीन संस्कृत ग्रंथों जैसे - कालिदास की शाकुंतलम, मेघदूतम तथा शूद्रक की मृच्छकटिकम् तथा वात्स्यायन की कामसूत्र आदि अन्य ग्रंथों में भी नृत्य तत्वों का विस्तार से विवरण प्राप्त होता है। इस प्रकार भारतीय संस्कृति के कण-कण में कला के प्रति निष्ठा, प्रेम, एकरूपता तथा समर्पण की भावना परिलक्षित होती है।

मुख्य शब्द :

विष्णुधर्मोत्तर पुराण, नृत्य, संस्कृति, धर्म, पौराणिक ग्रंथ, नाट्यशास्त्र, कला साहित्य, नृत्तसूत्रम।

प्रस्तावना :

भारत के प्राचीन ग्रंथ के रूप में 'पुराण' का महत्वपूर्ण स्थान है। पुराण हिन्दू संस्कृति के विशिष्ट धार्मिक ग्रंथों में से एक है। यह पुराण साहित्य भारतीय संस्कृति का दर्पण है। इस ग्रंथ में न केवल व्याकरण, विज्ञान, औषधि, दान, धर्म, देवी-देवताओं आदि अन्य का उल्लेख है, अपितु कला संबंधी विशेष उल्लेख भी प्राप्त होते हैं। पुराण में नृत्य, वाद्य, गीत, चित्र, प्रतिमा आदि अन्य कलाओं का विस्तार से वर्णन किया गया है। भारतीय कलाओं में नृत्यकला एक अनूठी दृश्य-श्रव्य प्रधान कला है, जो आदिम काल से चली आ रही है। नृत्यकला में आंगिक अभिनय द्वारा भावाभिव्यक्ति अथवा भावों और विचारों को अभिव्यक्त किया जाता है। इसमे विभिन्न हस्त भेद, पाद विन्यास, गति प्रचार तथा रस-भाव आदि अन्य तत्वों का समावेश है।

यह नृत्यकला न केवल मानव जाति को प्रिय है, बल्कि देवी-देवताओं को भी अत्यंत प्रिय है। भगवान शिव स्वयं 'नटराज' (नृत्य रूप) कहे जाते हैं, जो नृत्य की सृष्टि, उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार

का प्रतीक है, वहीं दूसरी ओर भगवान विष्णु के दस अवतारों में से एक कृष्ण अवतार हैं, जो सभी अवतारों में सबसे श्रेष्ठ और सभी कलाओं (64 कलाओं) में निपुण माने जाते हैं। इन्हीं कलाओं में से एक नृत्यकला में पारंगत भगवान कृष्ण के नृत्यावतार को 'नटवर' भी कहा जाता है। भारतीय संस्कृति की धार्मिक पृष्ठभूमि में ऐसे कई प्रमाण मिलते हैं, जिसमे नृत्यकला को उत्तम, सर्वमान्य तथा श्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। भारतीय कला न सिर्फ मनोरंजन का साधन है, अपितु आध्यात्म और भक्तिभावना से भी जुड़ा हुआ है। यह धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष तथा परमानन्द की प्राप्ति का साधन है। इस प्रकार भारतीय कला संस्कृति तथा धर्म एक ही सिक्के के दो पहलू है।

शोध प्रविधि एवं उद्देश्य :

इस शोध लेख में धार्मिक ग्रंथ विष्णुधर्मोत्तर पुराण में निहित नृत्य तत्वों का विश्लेषण किया गया है। यहाँ डॉ॰ प्रियाबाला शाह की ''श्री विष्णुधर्मोत्तर पुराण (संस्कृत), तृतीय खंड'' को मुख्य आधार ग्रंथ के रूप में प्रयोग किया है तथा विषय को गहराई से समझने हेतु अन्य ग्रंथों की सहायता ली गयी है।

इस लेख का उद्देश्य पुराण में निहित नृत्यकला के इस व्यापक क्षेत्र को नियोजित ढंग से प्रस्तुत करना तथा नृत्यकला का धार्मिक पृष्ठभूमि के साथ संबंध को प्रदर्शित करना है।

विषय प्रवेश :

अट्ठारह उपपुराणों में से एक विष्णुधर्मोत्तर पुराण है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण के रचयिता महर्षि वेदव्यास को माना जाता है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में तीन खंड है। प्रथम खंड में 269 अध्याय है, इसमे पौराणिक गाथाओं का वर्णन है। द्वितीय खंड राजधर्म विषय से संबंधित 183 अध्याय तथा तृतीय खंड में कला साहित्य का वर्णन है, इसमे 355 अध्याय है। इसी तृतीय खंड में नृत्य संबंधी विभिन्न प्रयोगों का विस्तृत वर्णन मिलता है, जिसे 'नृत्तसूत्रम' कहा गया है। तृतीय खंड में ऋषि मार्कण्डेय तथा राजा वज्र की कला संबंधी संवादों का वर्णन किया गया है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में नृत्य, गीत, वाद्य, चित्र, मूर्ति (प्रतिमा) आदि अन्य कलाओं को एक दूसरे का पूरक बताया गया है । यह सभी कलाएं एक दूसरे के बिना अधूरे या अपूर्ण है ।

''चित्रसूत्रं न जानाति यस्तु सम्यड् नराधिप।
प्रतिमालक्षणं वेत्तुं न शक्यतेन कर्हिचित्॥
विना तु नृत्यशास्त्रेण चित्रसूत्रं सुदुर्विदम्।
आतोद्यं यो न जानाति तस्य नृत्तं सुदुर्विदम्॥
आतोद्येन विना नृत्त विद्यते न कथञ्चन।
न गीतेन विना शक्यं ज्ञातुमातोद्यमच्युत॥''[1]

अर्थात् चित्रसूत्र के ज्ञान के बिना मूर्तिकला (प्रतिमा) का बोध नही हो सकता, और नृत्तशास्त्र के अध्ययन के बिना चित्रसूत्र के अर्थ को नही समझा जा सकता, वाद्य के बिना नृत्तशास्त्र का ज्ञान सम्भव नही है, तथा गीत के बिना वाद्य का ज्ञान नही हो सकता। अतः सभी कलाएँ एक दूसरे से अंतर्संबंधित हैं। विष्णुधर्मोत्तर पुराण के तृतीय खंड के 20वें अध्याय से 34वें अध्याय तक नृत्यकला का विशेष उल्लेख प्राप्त होता है। नृत्य संबंधी सभी अध्यायों में भिन्न-भिन्न तत्वों का वर्णन किया गया है। इन तत्वों का अध्यायीकरण इस प्रकार है -

नृत्तसूत्रम से संबंधित बीसवें अध्याय को 'सामान्याध्यायः' कहा गया है। इस अध्याय में नृत्य संबंधी तत्वों का सामान्य रूप से उल्लेख किया गया है। इसमें नाट्य, तांडव लास्य, नाट्य मंडप, नाट्य प्रस्तुति क्रम, नायक भेद, अभिनय, रेचक, गति, मंडल भेद, छत्तीस अंगहार, 108 करण, वृत्ति-प्रवृत्ति, सिद्धियां तथा नृत्य के गुण का सामान्य रूप से वर्णन किया गया है।

शयन के विभिन्न अवस्थाओं से सम्बन्धित इक्कीसवें अध्याय को 'शय्यासनस्थानम्' कहा गया है। इसमे शय्यासन के छह रूपों की स्थिति और प्रयोग का विस्तार से उल्लेख किया गया है। छः रूप इस प्रकार हैं -

''समाकुञ्चितकं चैव प्रसारितविवर्तिते।
उद्वाहितं नतं षोढा शय्यास्थानानि निर्दिशेत्।।''[2]

बाईसवें अध्याय को 'आसीकासनध्याय' कहा गया है। इस अध्याय में बैठने की अलग-अलग स्थितियों का वर्णन किया गया है। आसन के नौ भेद बताये गये हैं। तत्पश्चात पात्रानुसार बैठने की विभिन्न स्थितियों का वर्णन किया गया है। देवताओं के लिए भद्रासन, राजाओं के लिए सिंहासन, ज्योतिषियों (संवत्सर) के लिए रूप्पासन (चांदी का आसन), मंत्री और सचिवों के लिए वेत्रासन (बेंत का आसन), सेनापति और युवराज के लिए मंडासन, ब्राह्मणों (द्विज), ब्रह्मचारियों और व्रत का पालन करने वाले अन्य लोगों को वर्सी का आसन, स्थानीय व्यक्तियों, प्रमुख व्यक्तियों तथा व्यापरियों के लिए पीठिका (लकड़ी का आसन) अर्पित करना चाहिए।

तेईसवें अध्याय में स्त्री तथा पुरुष के विभिन्न रूप से खड़े होने की स्थितियों का उल्लेख किया गया है, और इस अध्याय को 'उत्स्थिपुंस्त्रीस्थानकम्' कहा गया है। पुरुष के खड़े होने के छः भेद और स्त्री के खड़े होने की तीन स्थितियों का वर्णन किया गया है।

चौबीसवें अध्याय में आंगिक अभिनय के अंतर्गत अंगों के विभिन्न क्रियाओं का विशेष उल्लेख किया गया है। अतः इस अध्याय को 'अंगकर्माध्याय' कहा गया है। इसमे शिर, ग्रीवा, मुखज, वक्षाभिनय, पार्श्व, उदर, कटि, उरु, जंघा तथा पाद कर्म आदि का विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है।

पच्चीसवें अध्याय को 'उपांगिकाध्याय' कहा जाता है, इसमे सभी उपांगो के भेद बताये गये हैं। रसजा दृष्टि के नौ प्रकार बताये गये हैं -

''कान्ता भयानका हास्या करुणा ह्यद्भुता तथा।
रौद्रा वीरा च वीभत्सा विज्ञेया शान्ता च रसदृष्टया।।''[3]

इसके पश्चात स्थायी भाव दृष्टि (9) तथा सञ्चारी दृष्टि (18) का वर्णन किया गया हैए इस प्रकार ये सभी दृष्टि भेदों की कुल संख्या छत्तीस (36) हो जाती है। तत्पश्चात पुट, तारा, दृष्टि, भ्रुवो, कपोल, नासा, दन्त, अधरोष्ठ कर्म आदि का विस्तृत विवरण दिया गया है।

नृत्य में उपयुक्त विभिन्न हस्तों का वर्णन छब्बीसवें अध्याय में किया गया है, इसमे हस्त के नाम, अर्थ और प्रयोग का विस्तार से उल्लेख किया गया है। अतः इस अध्याय को 'हस्ताध्याय' कहा गया है। इस अध्याय में बाईस प्रकार के असंयुत हस्त, तेरह प्रकार के संयुत हस्त तथा अन्य नृत्त हस्त का वर्णन किया गया है। असंयुत हस्त इस प्रकार है -

''पताकस्त्रिपताकश्च तथा वै कत्तरीमुखः।
अर्धचन्द्रो ह्यरालश्च शुकतुण्डस्तथापरः।।

मुष्टिश्च शिखराख्यश्च कपित्थः खटकामुखः।
सूच्यास्यः पद्मकोशश्च श्चोर मृगशीर्षो मृगस्य च।।

कांगूलश्चः कोलपद्मश्च चतुरो भ्रमरस्तथा।
हंसास्यो हंसपक्षश्च संदंशो मुकुलस्तथा।।

असंयुताः करा ह्येते द्वाविंशतिरुदाहृताः।''

संयुत हस्त का वर्णन कुछ इस प्रकार है -

''अञ्जलिश्च कपोतश्च कर्कटः स्वस्तिकस्तथा।
खटकावर्धमानश्च उत्संगो निषधस्तथा।।

दोलः पुष्पुटश्चैव तथा मकर एव च।
गजदन्तोऽवहित्थश्च वर्धमानस्तथैव च।।

एते वै संयुता हस्ता मया प्रोक्तत्तास्त्रोदश।''[5]

सर्पशीर्ष को यहाँ 'अह्शिर हस्त' कहा गया है। नृत्तसूत्रम तथा नाट्यशास्त्र में वर्णित असंयुत हस्त में समानताएं देखने को मिलती है, किन्तु नाट्यशास्त्र में वर्णित ऊर्णनाभ, ताम्रचूड़ आदि असंयुत हस्त का उल्लेख विष्णुधर्मोत्तर पुराण में उल्लेखित नही है। पुराण में वर्णित असंयुत तथा संयुत हस्त का नृत्य में समान रूप से प्रयोग देखने को मिलता है।

अभिनय के चार अंगों में से आहार्य अभिनय का वर्णन सत्ताईसवें अध्याय में किया गया है, और इस अध्याय को 'आहार्याभिनय' कहा गया है। आहार्य अभिनय, वेषभूषा तथा साजसज्जा से संबंधित है।

पुस्त, अलंकार, अंग-रचना तथा सञ्जीव आदि आहार्य अभिनय के चार प्रकारों का वर्णन किया गया है।

अट्ठाइसवें अध्याय को 'सामान्याभिनयः' कहा गया है, इसमे सामान्य रूप से किए जाने वाले अभिनय का वर्णन किया गया है। सामान्याभिनय अर्थात् स्वयं से उत्पन्न अभिनय तथा प्राकृतिक रूप से किया गया अभिनय है। सामान्य अभिनय को ध्वनि, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध आदि पाँच इंद्रिय गुणों के आधार पर अभिनय किया जाना चाहिए, इन इंद्रिय गुणों में इष्ट, अनिष्ट तथा मध्यस्थ आदि तीन मुख्य भाव होते हैं। इस अध्याय में सामान्य अभिनय के विविध रूपों का विधिवत् वर्णन किया गया है, जैसे- प्रातःकाल, सायंकाल, दिन-रात, आकाश, वर्षा, आदि के संकेत के लिए हाथों को स्वस्तिक रूप से बगल मे रखकर और ऊपर की ओर सिर उठाकर देखना, बच्चे को इंगित करने के लिए हंसपक्ष हस्त (दाहिने हाथ मे), वाक्य सुनने के लिए अराल हस्त (बायीं ओर), क्रोध दिखाने के लिए उठी हुई आँखें तथा माला फेंकने का संकेत, मृत्यु के क्षण को अंगों की गतिहीनता द्वारा दर्शाना चाहिए तथा अलग-अलग ऋतुओं और मौसम को दर्शाने हेतु विभिन्न संकेतों का उल्लेख किया गया है, तथा आकाश वचन, आत्मगत वचन, अपवारितक, जानान्तिक आदि वचन क्रियाओं का भी उल्लेख किया गया है।

उन्नतीसवें अध्याय में विभिन्न अवस्था तथा पात्रानुसार गति भेदों का वर्णन किया गया है और इस अध्याय को 'गतिप्रचारः' कहा गया है। स्थिर गति, त्वरित गति, श्रृंगारित गति, रौद्र गति, वीभत्सिका गति, शिथिल गति, रथ गति, अश्व गति, ऋज्वा गति, स्खलित गति (फिसलन भरी चाल), मत्त गति, उन्मत्त गति तथा पशु गति आदि अन्य विभिन्न अवस्थाओं में उपयुक्त गति का विस्तृत उल्लेख किया गया है।

तीसवें अध्याय को 'रसाध्याय' कहा गया है, इसमे नाट्य में उपयुक्त विभिन्न रसों का विस्तृत विवरण दिया गया है। इसमें शान्त रस को स्वतंत्र रस कहा गया है, जबकि हास्य को श्रृंगार से उत्पन्न, करुणा को रौद्र से उत्पन्न, अद्भुत को वीर से उत्पन्न और भयानक को वीभत्स से उत्पन्न बताया गया है, इस प्रकार नौ रस का वर्णन किया गया है। इन सभी रसों के रंग, अधिदेवता के साथ-साथ सात्विक अभिनय का भी विवरण प्राप्त होता है। नौ रस का वर्णन कुछ इस प्रकार है -

''हास्यश्रृंगार करुणवीररौद्रभयानकाः।
वीभत्साद्भुतशांताख्या नव नाट्ये रसाः स्मृता।।''[6]

यहाँ शांत रस को प्रमुखता प्रदान की गई हैं। पुरू दधीच के अनुसार 'नृत्तसूत्रम का धार्मिक ग्रंथ का अंश होने के कारण शांत रस को मोक्ष प्राप्ति मार्ग के प्रवर्तक के रूप में प्रधानता दिया जाना सहज है।'[7]

इकत्तीसवें अध्याय को 'भावाध्यायः' कहा गया है, इसमे विभिन्न भावों, मनोदशाओं तथा रस आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है। भाव के अंतर्गत स्थायी भाव और सञ्चारी भाव का वर्णन किया गया है, इसमे भावों की कुल संख्या पचास में एक कम उनचास (49) बतायी गयी है।

''भावाध्यायमतो वच्मि तन्मे निगदत श्रणु।
हासाद्या कथिता भावा पञ्चाशत्त्वेक्वर्जिता।।''[8]

उनचास भावों के कुछ नाम इस प्रकार है - निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, मद, आलस्य, दैन्य, मोह, स्मृति, धृति, व्रीड़ा, चपलता, हर्ष, आवेग, विषाद, औत्सुक्य, निद्रा, वैवर्ण्य, रोमाञ्च, स्वेद, चिन्ता, जड़ता, स्तम्भ, वेपथु, स्वरभेद, गर्व, वितर्क, मति तथा अन्य भाव आदि।

नाट्य में प्रयोग किए जाने वाले कुछ ऐसे हस्त जिनका स्पष्ट उल्लेख या विवरण प्राप्त नही है, इस अध्याय में इन्हीं रहस्यात्मक हस्त के विषय में बताया गया है। अतः इस अध्याय को 'रहस्यमुद्राध्यायः' कहा गया है। इस अध्याय में ओमकार मुद्रा, ताल मुद्रा, मकर मुद्रा, पद्म मुद्रा, गरुड़ मुद्रा, चक्र मुद्रा, धनुष मुद्रा, वनमाला मुद्रा, गदा मुद्रा आदि अन्य रहस्य मुद्राओं तथा हिंदी वर्णमाला के स्वर-व्यंजन के विभिन्न वर्गों को इंगित करने हेतु संकेत एवं नरसिंह,

वराह, वामन, त्रिविक्रम, मत्स्य, दशरथ, परशुराम, कृष्ण, बलदेव आदि के संकेत तथा पंचतत्व तथा सत्व, रजस, तमस इन तीन गुणों के संकेतों एवं चार वेदों के साथ-साथ व्याकरण, कल्प, ज्योतिषी तथा छंद आदि के संकेतों का उल्लेख इस अध्याय में प्राप्त होते हैं।

तैंतीसवें अध्याय को 'नृत्तशास्त्रमुद्राध्याय' कहा गया है। इस अध्याय के अंतर्गत भस्म' जटा' शशांक' वैराग्य' ऐश्वर्य' पद्म' सकल' निष्कल-रुपिणी' देवी' स्कंद' विघ्नराज' वज्र' दण्ड' शक्ति (नौ रूप), खड्ग, गदा, वैष्णवी, धृत, गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, महामुद्रा, अमृत, चण्डीश, अस्त्र, शिव, नमस्कार, ध्वज, मुकुल-पंकज, अवनि, निष्ठुर, विसर्जन, जीर्ण, विश्व, रवि, सोम, भौम, जीव, शुक्र, शनि, राहु, केतु, क्रोध, वराह, भैरवी, पाताल-भञ्जनी, स्तंभनी, क्रोधिनी, बीज, शंख, शिक्षा, कवच, नेत्र, वासुदेव, आदि अन्य नृत्तशास्त्र मुद्राओं का विस्तार से वर्णन किया गया है। सर्वोच्च सिद्धि (उपलब्धि) के इच्छुक व्यक्तियों को मंत्र, देव और विधि के अनुसार ही इन मुद्राओं का प्रयोग किया जाना चाहिए। इस अध्याय में एक ही मुद्रा के विभिन्न लक्षण प्राप्त होते हैं। यहाँ स्तंभिनी, भस्म, जटा, पाताल भञ्जनी आदि अन्य बहुत सी ऐसी मुद्राएं हैं जिनका उल्लेख शैव तंत्र में किया गया है, परंतु वैष्णव तंत्र में इनका उल्लेख प्राप्त नहीं होता है।

32वें तथा 33वें अध्याय के अंतर्गत प्रकृति में उपस्थित हर एक वस्तु के लिए मुद्राओं के प्रयोग का उल्लेख हमें यहाँ प्राप्त होता है। मुद्राओं का प्रयोग न सिर्फ नृत्य तथा योग में देखने को मिलता है, बल्कि यह शैव, वैष्णव, बौद्ध तथा जैन आदि के तंत्र कार्यों में समान रूप से लोकप्रिय है। इन दोनों अध्याय में वर्णित मुद्राओं का संबंध तंत्र तथा नृत्त हस्तों से है। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि यह नृत्य में उपयुक्त हस्ताभिनय तथा तंत्र मुद्राओं को एकरूपता से परस्पर आदान-प्रदान की संभावना को उजागर कर तुलनात्मक रूप से विचार करने की ओर संकेत करता है। नृत्तसूत्रम में वर्णित विविध मुद्राओं का संग्रह अन्य कलाओं के साथ अंतरसंबंधता को भी प्रदर्शित करता है। नृत्य तथा तंत्र में कुछ ऐसी मुद्राओं का प्रयोग किया जाता है, जिनका उल्लेख अन्य ग्रंथों में प्राप्त नहीं होता है। अतः यहाँ विष्णुधर्मोत्तर पुराण में उन्हीं रहस्यात्मक मुद्राओं का विवरण प्राप्त होता है।

नृत्य संबंधी इस चौत्तीसवें अध्याय को 'नृत्तसूत्रम्' कहा गया है। इस अध्याय में नृत्त उत्पत्ति कथा का वर्णन किया गया है, इसके अंतर्गत भगवान विष्णु द्वारा मधू-कैटभ वध की पौराणिक कथा को नृत्योत्पत्ति कथा के रूप में निरूपित किया है। जिसमें विभिन्न अंगहार, करण और अंग-संचालन से युक्त नृत्य को भगवान विष्णु द्वारा उत्पादित माना गया है। विष्णु द्वारा उत्पन्न नृत्त को ब्रह्म ने ग्रहण किया, इसके बाद ब्रह्म ने रुद्र (भगवान शंकर) को प्रदान किया। तत्पश्चात रुद्र ने चक्र और गदा धारण कर विष्णु के समक्ष नृत्य किया और रुद्र नृत्य के देवता 'नटेश्वर' के नाम से संबोधित किए गए। तत्पश्चात इस अध्याय में यह बताया गया है कि जब संगीत (नृत्य, गीत तथा वादन) के साथ पूजा की जाती है, तो देवता प्रसन्न हो कर मानव कल्याण को बढ़ावा देते हैं। इससे यह कहा जा सकता है कि संगीत का एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार :

अर्धचंद्र हस्त

अहिशर हस्त (सर्पशीर्ष)

मकर हस्त

असंयुत तथा संयुत हस्त, चित्र संख्या - 1

कौस्तुभ हस्त (3/32/पृ०107)

स्तंभिनी हस्त (3/33/99)

त्रिदेव हस्त (3/32/पृ०107)

नमस्कार हस्त (3/33/72)

जटा हस्त (3/33/2)

वनमाला हस्त (3/32/पृ०107)

भैरवी हस्त (3/33/97)

गदा हस्त (3/33/114)

मुकुलहस्त (3/33/74)

पंकज हस्त (3/33/74)

रहस्य मुद्रा तथा नृत्तशास्त्र मुद्रा, चित्र संख्या - 2

निष्कर्ष :

पुराण के अंतर्गत 15 अध्यायों में निरूपित नृत्य संबंधी तत्वों को एक विशेष सूत्र के अंतर्गत पिरोकर जिस प्रकार व्यवस्थित ढंग से संरक्षित किया गया है, इससे प्रतीत होता है कि पुराण में वर्णित यह तत्व न सिर्फ कला और धर्म का संबंध प्रदर्शित करती है, बल्कि कला की प्राचीन स्थितियों तथा विधियों का दर्पण स्वरूप है। पुराण में वर्णित सभी नृत्य तत्वों का प्रयोग नृत्य में पूर्ण रूप से देखने को मिलता है। विशेष रूप से, नृत्य में उपयुक्त रहस्यात्मक मुद्रा अर्थात् जिनका उल्लेख नृत्य ग्रंथों में नहीं है, उन मुद्राओं का विवरण नृत्तसूत्रम में प्राप्त होता है।

कला के संबंध में विष्णुधर्मोत्तर पुराण पर नाट्यशास्त्र के कला तत्वों का विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है, मुख्य रूप से नृत्तसूत्रम में अंतर्गत वर्णित 'रहस्यमुद्राध्यायः' तथा 'नृत्तशास्त्रमुद्राध्याय' आदि अध्यायों के तत्व नवीनता लिए हुए हैं, जो अन्य ग्रंथों में प्राप्त नहीं होता है। दोनों ग्रंथों में अन्य सभी नृत्य संबंधी प्रयोग व लक्षण नाट्यशास्त्र से मिलते जुलते प्रतीत होते हैं। धार्मिक ग्रंथों में वर्णित इन नृत्य तत्वों का व्यापक क्षेत्र नृत्यकला को अधिक परिष्कृत, सूक्ष्म बनाता है और एक विशिष्ट स्थान प्रदान करता है।

पुराण में निहित इन नृत्य तत्वों पर शोधकार्य किए जाने की अनेक संभावनाएं हैं, जिससे नृत्य से संबंधित ग्रंथों के अतिरिक्त धार्मिक ग्रंथों और पुराणों में वर्णित नृत्य तत्वों के माध्यम से नृत्य क्षेत्र का व्याकरण और अधिक विकसित हो सके एवं एक नई दिशा प्राप्त हो। इन धार्मिक ग्रंथों को हम सिर्फ धर्म से जोड़े रखते हैं, इनके अंतर्गत वर्णित अन्य तत्वों तक हम शायद ही पहुँच पाते हैं। नृत्य ग्रंथों की अधिक महत्त्वता के कारण पुराण में वर्णित इन सभी नृत्य तत्वों को हम अनदेखा कर देते हैं। देखा जाए तो प्रकृति में उपस्थित सभी सारगर्भित तत्व हमें इन धार्मिक ग्रंथों में प्राप्त होता है। अतः पुराणों अथवा अन्य धार्मिक ग्रंथों में वर्णित नृत्य विषयक तत्व, नृत्यकला के क्षेत्र को और अधिक व्यापकता प्रदान कर सकती हैं ।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :

1. शाह, डॉ0 प्रियाबाला (1958), विष्णुधर्मोत्तर पुराण (संस्कृत), तृतीय खण्ड, प्रथम भाग, बड़ौदा, ओरिएंटल इंस्टीट्यूट, 3/2/2-8।
2. शाह, डॉ0 प्रियाबाला (1958), विष्णुधर्मोत्तर पुराण (संस्कृत), तृतीय खण्ड, प्रथम भाग, बड़ौदा, ओरिएंटल इंस्टीट्यूट, 3/21/1।
3. शाह, डॉ0 प्रियाबाला (1958), विष्णुधर्मोत्तर पुराण (संस्कृत), तृतीय खण्ड, प्रथम भाग, बड़ौदा, ओरिएंटल इंस्टीट्यूट, 3/25/1।
4. शाह, डॉ0 प्रियाबाला (1958), विष्णुधर्मोत्तर पुराण (संस्कृत), तृतीय खण्ड, प्रथम भाग, बड़ौदा, ओरिएंटल इंस्टीट्यूट, 3/26/1-4।
5. शाह, डॉ0 प्रियाबाला (1958), विष्णुधर्मोत्तर पुराण (संस्कृत), तृतीय खण्ड, प्रथम भाग, बड़ौदा, ओरिएंटल इंस्टीट्यूट, 3/26/5-6।
6. शाह, डॉ0 प्रियाबाला (1958), विष्णुधर्मोत्तर पुराण (संस्कृत), तृतीय खण्ड, प्रथम भाग, बड़ौदा, ओरिएंटल इंस्टीट्यूट, 3/30/1।
7. दधीच, डॉ0 पुरू (1990), नृत्तसूत्रम, उज्जैन, बिन्दु प्रकाशन, पृष्ठ-160।
8. शाह, डॉ0 प्रियाबाला (1958), विष्णुधर्मोत्तर पुराण (संस्कृत), तृतीय खण्ड, प्रथम भाग, बड़ौदा, ओरिएंटल इंस्टीट्यूट, 3/31/1।
9. द्विवेदी, डॉ0 पारसनाथ (2017), नाट्यशास्त्र का इतिहास, वाराणसी, चौखम्बा सुभारती प्रकाशन।
10. बंसल, रुनझुन (1997), विष्णुधर्मोत्तरपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, दिल्ली, विद्यानिधि प्रकाशन।
11. गहरवार, नीता (2015), भारतीय संस्कृति में नृत्य, प्रथम संस्करण, दिल्लीए बी0 आर0 रिदम्स।
12. Shah, Dr. Priyabala (1961), *Vishnudharmottara Purana, Third khanda, Volume 2nd (introduction, appendixes, indexes etc.), (A study on a Sanskrit text of Ancient Indian Arts),* Baroda, Oriental Institute.
13. Shah, Dr. Priyabala (1990), *Shri Vishnudharmottara (A text on Ancient Indian Arts),* New Edition, Ahmdabad, The New Order Book

भारतीय नृत्य कलाओं में प्रस्तुतिकरण तथा नवीन प्रवृत्तियाँ

डॉ॰ एस. गौरीप्रिया
असिस्टेंट प्रोफेसर एवं
प्रमुख भारतनाट्यम् विभाग
राजा मानसिंह तोमर संगीत एवं कला विश्वविद्यालय,
ग्वालियर (मध्य प्रदेश)

सविता मौर्या
शोधार्थी
नृत्य संकाय-भरतनाट्यम् विभाग
राजा मानसिंह तोमर संगीत एवं कला विश्वविद्यालय,
ग्वालियर (मध्य प्रदेश)

शोध सारांश :

समाज में व्याप्त समस्त कलाएँ एवं संगीत लोक कलाएँ कहलाते है। लोक से तात्पर्य है; साधारण जन और जन से मिलकर बना 'समाज' अर्थात् 'लोक'। संगीत कलाओं से उद्धत्त समाज की विशेषताओं से लोकनृत्य आच्छान्दित हुए। इन्हीं का परिष्कृत रूप कालान्तर में शास्त्रीय नृत्य कहलाया तथा आज के समय का नृत्य समकालीन नृत्य कहलाया। नृत्यों के विकास की इसी श्रृंखला में समकालीन नृत्य प्रारूप उभरा जिसमें एक से अधिक नृत्य विशेषताओं का समावेश होने के साथ-साथ पुरानें नृत्य को नये नृत्य से जोड़ने वाले गुण होते है। विद्वानों के अनुसार इसके आरम्भ का समय 21वीं सदी से माना जाता है। नृत्य कला के क्षेत्र में आधुनिकता का परिणाम ही समकालीन नृत्य है। आधुनिकता के समय की द्योतक प्रत्येक क्षेत्र में नवीन सोच और तेजी से स्थापित होती 'तकनीकी' से है। विकास की डगर में नवीन सोच का परिणाम ही है कि इस तकनीकी के अर्न्तगत आधुनिक दृश्य-श्रृव्य व संचार उपकरणों का प्रयोग आरम्भ हुआ। समकालीन नृत्यों में सांस्कृतिक विभिन्नता के विश्वस्तरीय अंश व्याप्त होते है।

लोक व शास्त्रीय नृत्यों के स्वरूप में नवीन आचार-व्यवहार हो या इनके प्रस्तुतिकरण में आये नवाचार हां, देश की सस्कृति की समृद्धता का परिचय देती लोक कलाएँ हो या फिर इन कलाओं के पूर्व स्वरूप की अपेक्षा वर्तमान समय में इनके परिवर्तित स्वरूप की बात होय सभी नृत्यों में प्रस्तुतिकरण का विशेष स्थान हैं। प्रस्तुतिकरण किसी भी कला को दर्शकों के समक्ष विशेष सौष्ठव के साथ प्रस्तुत करने का ढ़ंग है। शास्त्रीय कलाकारों के लिये मंच प्रस्तुतियाँ शास्त्रीय नृत्यों की प्रगति और लोकप्रियता का प्रतीक हैं। शास्त्रीय नृत्यों के प्रस्तुतिकरण में भी नवीन प्रवृत्तियों के अर्न्तगत रेडियों द्वारा सूचनाएँ प्रेषित होना, ऑडियो-विडियो रिकार्डस् संरक्षित करना, दूरदर्शन पर अत्यधिक संख्या में प्रस्तुतियों के द्वारा शास्त्रीय नृत्यों को जनमानस तक पहुँचाना और इनके विषय में परिचय प्रदान करना है। इस प्रकार की नवीन प्रवृत्तियों के प्रचार-प्रसार एवं संरक्षण द्वारा शास्त्रीय नृत्यों में अत्यधिक रचनात्मकता तथा दूरदर्शिता आयीं।

अतएव शास्त्रीय नृत्यों के प्रस्तुतिकरण में नवीन प्रवृत्तियों के समावेश द्वारा लोक नृत्यों और समकालीन नृत्यों की विभिन्नता में एकता का स्वरूप प्राप्त होना अनिवार्य है। इन समस्त अंगां का आपस में मिला-जुला प्रयोग ही परिवर्तनशीलता एवं गतिशीलता का प्रतीक होने के साथ इन कलाओं की प्रगति का परिचायक है।

कुंजी बिन्दु :

भारतीय, नृत्य कला, प्रस्तुतिकरण, नवीन, आधुनिकता

भारत हो या सम्पूर्ण विश्व हर जगह कलाओं का एक पक्ष प्रदर्शनात्मक होता है। विभिन्न कलाओं के सृजन श्रृंखला के मध्य एक कला 'नृत्य' भी है जिसके कई पक्ष हुए जैसे लोक नृत्य, शास्त्रीय नृत्य एवं समकालीन नृत्य। इन तीनों का ही अपना विशिष्ट क्षेत्र एवं इतिहास है। इन समस्त नृत्यों की विकास श्रृंखला उसी प्रकार विकसित हुई, जिस प्रकार एक व्यवस्थित प्रक्रिया के अन्तर्गत कच्चे माल के द्वारा एक तैयार वस्तु विशेष को बनाया जाता है। ठीक इसी प्रक्रिया के आधार पर लोक में व्याप्त विभिन्न कलाओं से लोक नृत्यों का सृजन हुआ; लोक नृत्यों से शास्त्रीय नृत्यों का सृजन हुआ और जिस नृत्य कला में इन सभी नृत्यों की कुछ-कुछ विशेषताओं का भाग समाहित होने के साथ-साथ अन्य नृत्यों के कुछ अंश समाहित हो वह समकालीन नृत्य की परिधि में आते हैं।

लोकनृत्य सोच-समझकर नहीं अपितु जनसाधारण द्वारा उनके दैनिक कार्यों को रोचक व मनोरंजक बनाने एवं थकावट को दूर करने हेतु सृजित हुए। लोक नृत्यों में प्रत्येक समाज की विशेषताओं के लक्षण परिलक्षित होते है उदाहरण स्वरूप लोकनृत्यों की वेशभूषा, गीतों की भाषा, दैनिक कार्यों में प्रयुक्त वस्तुएं (टोकरी, कुल्हाड़ी, लट्ठ, मोरपंख, डाण्डिया छंड़, फावड़ा इत्यादि) एवं दैनिक कार्यों के प्रसंग जैसे कि तीज-त्यौहारों के रीति-रिवाजए खेतों में फसलों का काम, विवाह एवं जन्म उत्सव आदि अवसरों पर समूहों में सम्पन्न होने वाल नृत्य इत्यादि दैनिक जीवन की विशेषताएं लोक नृत्यों के प्रमुख लक्षण हैं।

प्रान्तीय क्षेत्रों के विशेष नृत्यों को शास्त्रीय नृत्य होने के माप-दण्डों के मूल्यांकन की कसौटी पर प्रखरित होने के बाद ही देश के कुल आठ नृत्य प्रकारों को शास्त्रीय नृत्यों की वीथिका में स्थान दिया गया है। इन शास्त्रीय नृत्यों में उत्तर प्रदेश का कथक, आन्ध्र प्रदेश का कुच्चीपुड़ी, केरल राज्य का कथकली एवं मोहिनीअट्टम, तमिलनाडु राज्य का भरतनाट्यम, ओडिशा राज्य का ओडिसी, मणिपुर राज्य का मणिपुरी, असम राज्य का सत्रिय नृत्य आते हैं।

शास्त्रीय नृत्यों के विशेष सौष्ठव एवं विशेष प्रस्तुतिकरण की प्रक्रिया ने इन्हें इनके आधार स्वरूप अर्थात् लोक नृत्यों से ऊपर उठाकर शास्त्रीय नृत्यों के महत्वपूर्ण स्थान पर पहुँचाया। नृत्य सम्बन्धी प्रदर्शनकारी कलाओं का निरन्तर परिष्कृत होने की दिशा में कार्यरत होना ही उनके प्रगतिशील नवीनता की ओर उन्मुखता का द्योतक है।

कुछ लोकनृत्यों का शास्त्रीय नृत्यों में परिवर्तित होना ही उनके नवीन प्रस्तुतिकरण की प्रवृत्तियों का प्रथम एवं नवीनतम् कदम था क्योंकि साधारण जन-जीवन की स्वाभाविकता जो लोकनृत्यों का मूल रूप थी वह धीरे-धीरे मंचों पर प्रतिष्ठित होकर अगली पीढ़ी के लिये संरक्षित की जाने लगी क्योंकि प्रत्येक क्षेत्र में नित नवीन तकनीकों के प्रयोग ने मनुष्य की जीवन शैली को बदल दिया व उसके दैनिक कार्यों से लेकर मनोरंजन तक के संसाधनों को भी प्रभावित किया।

नवीन प्रवृत्तियों के रूप में आधुनिक तकनीकों जैसे ध्वनि एवं विडियो मुद्रण की सुविधाओं का नृत्य के क्षेत्र में उपयोग किया जाने लगा है। इन तकनीकों का प्रयोग करके लोक नृत्यों एवं शास्त्रीय नृत्यों के पूर्व स्वरूप एवं वर्तमान स्वरूप को भविष्य की पीढ़ियों के लिये सैद्धान्तिक रूप से अक्षुण एवं अडिग बनाया जा रहा है अर्थात् पारम्परिक गुरू-शिष्य प्रणाली के अन्तर्गत रचित मूल नृत्य रचनाएँ अपने पुरानें स्वरूप में आगे आने वाले कलाप्रेमियों एवं कलामर्मज्ञों के लिए Audio-Video के रूप में सुरक्षित रखा जा रहा हैए साथ-साथ नित नवीन रचनाओं पर निरन्तर कार्य किये जा रहे है।

अतएव आधुनिक प्रगति के पथ पर मनुष्य चन्द्रमा और मंगल ग्रह पर पहुँचने के साथ-साथ 7G के युग में ही क्यों न प्रवेश करने वाला हो, परिवर्तन के लिये सदैव 'आधार' की परमेव् आवश्यकता होती है। जिस प्रकार मकान की मजबूती उसकी नींव की गहराई पर, वृक्ष की मजबूती उसकी जड़ों की गहराई व फैलाव पर टिकी होती है। ठीक वैसे ही

समस्त नृत्य चाहे लोक, शास्त्रीय या समकालीन नृत्य हो उन्हें अपनी मूल विशेषता अथवा गुणों से कभी भी विलग नहीं किया जा सकता है। इन सभी नृत्यों की मूल प्रवृत्ति ही इनकी विशेष प्रस्तुति में नवीन मार्ग प्रशस्त करती है।

किसी भी देश की सभ्यता-सस्कृति के प्रतीक के रूप में उस देश की समस्त कलाएँ आती है। इसी श्रृंखला में भारतीय संस्कृति के आकाश में नवीनता का पुट लिए समकालीन नृत्य का प्रादुर्भाव हुआ जिसका आधार संस्कार रूप में भारतीय नृत्य रहे और यौवन नवीनता की चादर ओड़े हुए है। भारतीय समकालीन नृत्य कलाओं में देश की सभ्यता और संस्कृति का वैविध्य है। समकालीन नृत्य में विशेष रूप से शारीरिक क्रियाओं के ताल-मेल पर अत्यधिक रचनात्मक सौन्दर्यता को आत्मानुभूति के साथ नर्तक कलाकार दर्शकों के मध्य नवीन रूप में अपने नृत्य के माध्यम से भावों को प्रस्तुत करता है। समकालीन नृत्य शैली के अर्न्तगत यह कला कलाकार को स्वयं के रचनात्मक भाव प्रकट करने का अवसर प्रदान करती है, जिससे वे प्रस्तुति के मूलभाव को अनुभूत कर सकें।

भारतीय समकालीन नृत्य शैली की मूल आधारशिला का आर्विभाव उदयशंकर जी के आधुनिक नृत्य से माना जाता है। जिन्होनें भारतीय और पाश्चात्य नृत्यकलाओं के मिश्रण से भारतीय नृत्य की नवीन शैली की रचना की। उदय शंकर जी ने अपनी नवीन रचनात्मक नृत्य शैली में यूरोपीय रंगमंच की तकनीक को शामिल किया; जिसमें भारतीय जनजातीय नृत्य, आदिवासी नृत्य, लोकनृत्य एवं शास्त्रीय नृत्यों के अव्यव शामिल है। इसी समृद्ध नवीन भारतीय नृत्य शैली को बाद में भारत सहित सम्पूर्ण यूरोप और उत्तरी अमेरिका में प्रचारित-प्रसारित किया गया।

नृत्य एक प्रदर्शनकारी कला है समस्त नृत्य प्रकारों का अविभाज्य चरण प्रस्तुतिकरण होता है। प्रस्तुतिकरण में सामान्य एवं विशेष प्रवृत्तियों का निर्वहन होता है। प्रस्तुतिकरण किसी ऐसी चीज या बात का प्रकट होना है, जिसमें कोई नर्तक या समूह किसी प्रकार की नृत्य रचना करने के पश्चात् उसे एक स्वरूप प्रदान करने के लिये कार्य करता है। प्रस्तुतिकरण एक विधिवत् स्थिति है, जिसमें कोई व्यक्ति किसी भाव को व्यक्त करता है। प्रस्तुतिकरण में किसी तथ्य के सार को व्यक्त करने का एक विधिवत् एवं आर्कषक स्वरूप होता हैए जैसे-प्रस्तुतिकरण वह है जिसमें दर्शकों के समक्ष किसी कवि, अभिनेता, गायक या नर्तक के द्वारा प्रस्तुतियाँ मंच पर प्रस्तुत की जाए।

परिवर्तन प्रकृति के मूल में व्याप्त है। सारा संसार इस परिवर्तन (बदलाव) रूपी प्राकृतिक नियम के अधीन है। परिवर्तन ही नवीनता है और यह नवीनता ही गतिशीलता है और यह गतिशीलता ही समाज और समाज में व्याप्त सास्कृतिक सभ्यता की उन्नति का प्रतीक है। इसी परिवर्तन के आधार पर सृजन होता है। इस सृजन का परिणाम नवीनता है। यही नवीनता परिवर्तन की मूल-प्रवृत्ति है। इसी नैसर्गिक नियम के अर्न्तगत जब कलाएँ अपने सैद्धान्तिक नियमों के साथ वर्तमान परिवेश में नया स्वरूप धारण करती है तब वे नवीन प्रवृत्तियों से प्राप्त स्वतंत्र अवसरों के मध्य कार्य करतीं हैं। कलाओं की यह नवीनता पुरानी पीढ़ी को नवीन पीढ़ी से जोड़े रखने का कार्य करती है। कलाओं में नवीन प्रयोगों के साथ प्रगति करने का गुण परिलक्षित होता है।

कलाओं में नवीन प्रवृत्तियों से तात्पर्य है आचार-व्यवहार। नवीन प्रवृत्तियों के ऐतिहासिक एवं साहित्यिक उदाहरण के तौर पर कहा जा सकता है कि वैदिक समय में वेदों की रचनाओं के बाद आवश्यकता के अनुरूप पंचम वेद के रूप में 'नाट्यवेद' सृजित किया गया जोकि नवीन प्रवृत्तियों का द्योतक रहा। परिणामतः नृत्य एवं नाट्य के क्षेत्र में आचार्य 'भरतमुनि' द्वारा प्रणीत नाट्यशास्त्र नामक चिरकालिक ग्रन्थ की ऐतिहासिक सृष्टि हुई जोकि नृत्यादि कलाओं के क्षेत्र में आज भी विशेष नवीन प्रयोगों का आधार स्तम्भ बना हुआ है।

शास्त्रीय नृत्यों के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुतियों के सन्दर्भ में क्या और किस प्रकार का 'आचरण' व्यवहार में लाया जा रहा है नृत्य की प्रस्तुति के सम्बन्ध में उसका क्या महत्व है ये प्रवृत्तियाँ किस-किस प्रकार से लोक, शास्त्रीय, क्षेत्रीय और समकालीन नृत्यों को प्रभावित करतीं हैं उन प्रभावों के क्या परिणाम होते है; ये सभी तथ्य समेकित रूप में एक दूसरे को सहायक रूप में प्रभावित करते हुये वर्तमान समय में विभिन्न स्वरूपों में व्याप्त है। यही आचार-व्यवहार प्रवृत्तियाँ कहलाती है।[2] उदाहरणार्थ सोलहवीं शताब्दी के लगभग केरल जैसे तटीय प्रदेश में जहाँ पुर्तगालियों के प्रभाव द्वारा कथकली नृत्य में ईसाई पुट के द्वारा चविट्टु नाटकम् का प्रवेश कथकली शैली में आचार-व्यवहार की नवीन प्रवृत्ति के रूप में उभरा था।

नृत्य के क्षेत्र में नवीन शिक्षण विधियों एवं प्रशिक्षण के तरीके में समय व परिस्थिति के साथ बदलाव करके प्रशिक्षणार्थियों को उनके स्तर से उन्हें उनके कौशल एवं प्रतिभा से परिचित कराया जाना नवीन प्रवृत्ति कहा जा सकता है। नवीन प्रवृत्तियों के द्वारा परम्परागत शिक्षा पद्धति को आज के वातावरण के साथ परिवर्तित स्वरूप दिया गया है जैसे संस्थागत शिक्षण संस्थान स्थापित हुए। कथक जैसी उत्तर भारतीय नृत्यकलाएं घराना या वंश परम्परा के दायरे से बाहर निकलकर जनसाधारण तक प्रचारित एवं प्रसारित हुई। विभिन्न नृत्यों में क्रांतिकारी परिवर्तन नवीनता के परिचायक है जैसे दक्षिण भारत के सदिर नाच का देवदासी नृत्य में बदलाव देवदासी नृत्य का मन्दिरों से निकलकरय विभिन्न उतार-चढ़ावों से गुज़र कर रूकमिणी देवी अरूण्डेल जी के अथक प्रयासों द्वारा भरतनाट्यम् स्वरूप में आना। केरल के कूतू, कुडियाट्टम्, कृष्णाट्टम्, रामामट्टम् के पश्चात् कथकलि नृत्य का उद्भव होना; ये सभी नवीन सोच का ही परिणाम है कि केरल की कुछ कलाएं कुछ सीमा तक बदलावों को स्वीकार पायीं हैं तभी तो इन नृत्यों में स्त्रियों को स्थान प्राप्त हुआ साथ ही ये कलाएं मन्दिर प्रांगण से बाहर भी प्रदर्शित की जाने लगीं। ओडिसी नृत्य का महारी नृत्य व गोटीपुआ के स्वरूप से आगे बढ़कर ओडिसी रूप में स्थान प्राप्त करने तक का सफर; ये सभी नृत्य के क्षेत्र में नवीनता के परिचायक है।

वर्तमान में कोविड-19 विश्व महामारी की प्रताणनाओं के विकट समय में लाचार होती नृत्य कलाओं के प्रदर्शन की स्थिति को इन्हीं नवीन प्रवृत्तियों के माध्यमों ने जीवन्तता प्रदान की। इन नवीन माध्यमों में -

1. डिजिटल मंच में प्रस्तुतियाँ एवं प्रशिक्षण के माध्यम उपलब्ध कराए।
2. ई. माध्यमों से कई शिक्षाप्रद संगोष्ठियाँ अत्यधिक लोगों तक घर बैठे प्राप्त हो सकीं।
3. ई. पुस्तकालयों का महत्व बढ़ा अनेकों खर्च कम हुए और प्रदर्शन एवं प्रशिक्षण के अवसर उपलब्ध हुए।
4. नृत्य के क्षेत्र में कौशल या रोज़गार उन्मुखता ने कलाकारों को निश्च्छलता के साथ जीविकोपार्जन के साधन जुटाए।
5. कोविड-19 विश्वमहामारी से पूरा संसार लगभग दो वर्षों (2019-2021) तक आहत रहाय किन्तु जिस प्रकार समस्या अपने साथ समाधान लेकर जन्म लेती है उसी का परिणाम यह रहा कि प्रौद्योगिकी ने हर क्षेत्र में क्रान्ति का दौर ला दिया जिससे कलाकारों ने भी अपनी कला को तकनीकी प्रयोगों के साथ सामन्जस्य बनाकर स्वयं को नचकंजम किया। यह सब कुछ नवीन सोच के अर्न्तगत हुआ ये ही नवीन प्रवृत्तियों का परिणाम रहा।

'भारत की प्राचीन कालीन नृत्य-परम्परा में आरम्भ से ही प्रायः नाट्य, नृत्य तथा नृत्त तीनों कलाओं का प्रचार रहा है। वैदिक काल से लेकर अप्सराओं को नर्त्तकियों के रूप में हम जानते है। प्राचीन मूर्तिकला में तत्कालीन नृत्यकला के सजीव चित्र उपलब्ध होते है। नाट्यशास्त्र में प्राचीन नृत्यकला का सविस्तार विवरण मिलता है। नाट्यवेद के उपादानों में 'अभिनय'

एक अंग है, जिसका सम्बन्ध नाटक तथा नृत्य दोनों से है। स्वयं नाटक तभी प्रेक्षणीय हो सकता है जब वह 'नृत्त योग्य' हो। नाट्यशास्त्र में नृत्यकला का विशद एवं विस्तृत वर्णन हुआ है।'

'नाट्य के अन्तर्गत नृत्त एवं नृत्य दोनों का प्रयोग आरम्भ से लेकर अन्त तक बराबर चलता रहता था। पूर्वरंग में कुत्तप विन्यास के अनन्तर आसारित तथा उपोहन आदि आरम्भिक संगीत प्रस्तुत किये जाने के पश्चात् भाण्डवाद्यों की ध्वनि के साथ प्रमुख नर्त्तकी का प्रवेश होता था। नर्त्तकी 'चारी' नामक पदगति से प्रवेश कर 'वैशाख' नामक स्थान में खड़ी रह जाती थी तथा चतुर्विद्य रेचकाभिनयों का प्रदर्शन करती थीं। तत्पश्चात् हाथों में स्थित पुष्पाजंलि को रंगभूमि पर विर्कीण कर रंग देवता को साभिनय अभिवादन किया जाता था। प्रथम नर्त्तकी के लौट जाने के पश्चात अन्य नर्तकियाँ रंगपीठ पर 'पिण्डीबन्ध' आदि नृत्याकृतियों का सामूहिक प्रदर्शन करती थी। उनके निर्गमन पर पुनः प्रमुख नर्त्तकी गीत तथा वाद्य की संगति में अपने नृत्य का कार्यक्रम प्रस्तुत करती थी।' समय-समय पर नृत्यों में प्रस्तुतियों के सम्बन्ध में नियम के अन्तर्गत रहते हुए कुछ बदलाव निरन्तर होते रहे हैं। इतिहास इस तथ्य का साक्षी है।

शास्त्रीय संगीत एवं अन्य कलाओं में नित नवीनता व्याप्त है। यह ठहरी हुई नहीं है क्यांकि प्रस्तुतिकरण में नींव स्वरूप सैद्धान्तिक नियमों को ही आधार बनाकर नयी रचनाएँ की जाती हैं जैसे-जयदेव कृत गीतगोविन्द की अष्टपदियाँ तो तटस्थ हैं किन्तु निरन्तर उन्हें आधार बनाकर गायन, वादन तथा नृत्य में नवीन रचनाएँ की जाती रहीं हैं। शास्त्रीय संगीत में भिन्नता एवं एकरूपता की विशेषताएँ व्याप्त हैं, जैसे-शास्त्रीय गायन स्वयं पूर्णता को प्राप्त है और वादन भी अपने आप में पूर्ण है किसी राग की बन्दिश को गायक, वादक कहीं भी स्वतन्त्र रूप से एकल रूप में गा-बजा सकता है। उसी प्रकार नृत्य भी कुछ सीमा तक नृत्य-मुद्राओं, शारीरिक-भंगिमाओं एवं आंगिक अभिनय, मुखाभिनय, भावाभिनय के द्वारा एकल रूप में स्वतन्त्र है। किन्तु जब नृत्य में गायन, वादन का एक साथ पुट होता है तब यह भिन्न-भिन्न से मिलकर एकरूप हो जाती है और दर्शकों पर पूर्णरूप से प्रभाव डालती है। दर्शकों को नृत्य के प्रस्तुतिकरण के भाव से अवगत करवाना शास्त्रीय नृत्यों का परम् उद्देश्य होता है यही उद्देश्य प्राचीन समय में था, और वर्तमान में भी बना हुआ है केवल दृष्टिकोणों में परिवर्तन आया; जब प्राचीन समय के पश्चात् वैदिक युग रहा तब नृत्यों का उद्देश्य अथवा मूल आध्यात्मिक और पौराणिक रहा। गायन, वादन के साथ-साथ नृत्य भी आत्मा का परमात्मा से मेल करने का एक माध्यम था और आज भी है।

मध्यकाल आते-आते विभिन्न प्रकार के सामाजिक परिवर्तनों के चलते नृत्य प्रस्तुतियाँ मन्दिरों और धार्मिक प्रांगणों से निकल कर राज प्रासादों एवं दरबारोन्मुखी हो गइंर् जहाँ इनका अन्य दृष्टिकोण विकसित हुआ। अन्य दृष्टिकोण के अन्तर्गत राजदरबारों में राजाओं की गाथा का वर्णन और नृत्य प्रस्तुतियाँ होती थीं सम्पूर्ण भारत वर्ष में ऐसी ही स्थिति रही। क्षेत्रीय व प्रादेशिक स्तर पर इनके स्वरूपों में अन्तर था किन्तु 'मूल' सामान्य था। राज दरबारों में संगीत कलाओं, शास्त्रीय नर्त्तक-नर्त्तकियों को राजकीय सरंक्षण प्राप्त हुआ मुगलों के आने पर नृत्य प्रस्तुतियाँ मनोरंजन के साथ-साथ भोग विलासिता का पर्याय बन गई।

मध्य युग की समाप्ति और स्वतन्त्रयोत्तर काल में आधुनिक युग की ओर प्रणीत शास्त्रीय नृत्यों की बिगड़ी स्थितियों के सुधार हेतु होने वाले युग परिवर्तक आन्दोलनों एवं क्रियाओं ने इन शास्त्रीय नृत्यों को वर्चस्व प्रदान किया और साथ ही साथ लोक में व्याप्त और लुप्त होती पारम्परिक कलाओं के सरंक्षण में कार्य किया; साथ-साथ वैश्वीकरण की लहर का प्रभाव समस्त भारतीय नृत्यों पर भी पड़ाय परिणामतः आज वर्तमान लोक में व्याप्त समस्त कलाएँ सरंक्षित की जा रही है विश्व रंगमंच पर उनका विशेष स्थान है जिसका उदाहरण है कुडियाट्टम को विश्व धरोहर के रूप में मान्यता प्रदान की गई है।

References :

1. http://www.parampara-sg.org/indian-contemporary-dance:by Santosh Nair
2. https://edtimes.in/this-kerala-art-form-that-is-the-christian-counterpart-of-kathakali-enacts-stories-from-the-bible/ This kerala Art Form That Is The Christian Counterpart Of Kathakali Enacts Stories From The Bible by Samyuktha Nair- march 16,2022.
3. पुस्तक - 'भारतीय संगीत और वैश्वीकरण' पृष्ठ संख्या 11-12
4. पुस्तक - 'हिन्दुस्तानी संगीत परिवर्तनशीलता', लेखक असितकुमार बनर्जी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. आकांक्षी, (डॉ०) कुमारी, भारतीय संगीत और वैश्वीकरण, नई दिल्ली : कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स।
2. बनर्जी, (डॉ०) असित कुमार, हिन्दुस्तानी संगीत : परिवर्तनशीलता, दिल्ली : शारदा पब्लिशिंग हाउस, 1992, आइ०एस०बी०एन०-8185616019
3. चौबे, (डॉ०) सुशील कुमार, हिन्दुस्तानी संगीत के रत्न, उत्तर प्रदेश : हिन्दी ग्रन्थ अकादमी प्रकाशन, 1976
4. चौरसिया, ओम प्रकाश, दूरस्थ संगीत शिक्षा, दरियागंज नई दिल्ली: कनिष्क पब्लिकेशन, डिस्ट्रीब्यूटर्स, 2013, आइ०एस०बी०एन०- 978-81-8457-444-9
5. Vatsyayan, Kapila, Asian Dance: Multiple Levels, Delhi : B.R.Rhythms (publication), First Edition 2011, ISBN-10:8188827231 ISBN-13:9788188827237

   Chapter 11 - Modern Dance: The Contribution of Uday Shankar & His Associations,

   Chapter 12 - Performing Arts
6. Lowen, Sharon, The Performing Arts of India : Development & Influence Across The Globe,Gurgaon : Shubhi Publication, First Edition 2005, ISBN-10:978818722694, ISBN-13:9788187226949

   Chapter 16 - In Search of The Aunthentic In The Performing Arts_by Shanta Serbjeet Singh.

   Chapter 17 - Full Bright & The Performing Arts In India Beyond Borders_by Sarina Paranjape.
7. Banerjee, Utpal K., Indian Contemporary Dance Extravaganza, Gurgaon : Shubhi Publication, First Edition 2010, ISBN 8182902045
8. http://www.parampara-sg.org/indian-contemporary-dance:by Santosh Nair
9. ARTICLE- researchgate.net/new experiments in classical dances: "kkL=h; u`R;ksa esa uohu iz;ksx_by Tina Tambe, Monika Srivastava, Vinita Verma, January2015 International Journal of Research-GRANTHAALAYAH 3(1SE):1-3 published by Granthmala Publications and printers online ISSN:2350-0530
10. कुमार 'यमन', (डॉ०) अशोक, रेडियो और संगीत, नई दिल्ली : कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, 2011, आइ०एस०बी०एन०-978-81-8457-256-8।
11. शोध पत्र- श्योकन्द, (असिस्टैण्ट प्रोफेसर) आरती, आधुनिक काल में मंच प्रदर्शन, Indian Streams Research Journal, volume-5 issue-4 may 2015, ISSN- 2230-7850 . available online at www.isrj.org
12. https://shevlinsebastian.blogspot.com/2011/09/bible-scenes-in-kathakali-play.html
13. https://www.thehindu.com/features/friday-review/theatre/kerala-chavittu-nataka-academy-for-chavittu-natakam/article6360606.ece
14. This kerala Art Form That Is The Christian Counterpart Of Kathakali Enacts Stories From The Bible by Samyuktha Nair- march 16,2022 https://edtimes.in/this-kerala-art-form-that-is-the-christian-counterpart-of-kathakali-enacts-stories-from-the-bible/

कथक नृत्य के प्रस्तुति क्रम में लय व ताल का सौन्दर्य

सुचि कौशल
शोध छात्रा, नृत्य विभाग
संगीत एवं मंच कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश

रंजना उपाध्याय
सहायक आचार्या, नृत्य विभाग
संगीत एवं मंच कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश

सारांश :

नृत्य मनुष्य के मन में उत्पन्न हर्ष तथा आनंद की भावना को व्यक्त करने का सरल माध्यम है। नृत्य की उत्पत्ति मनुष्य की उद्भव काल से मानी गई है, परन्तु जैसे-जैसे मनुष्य का विकास हुआ तब नृत्य मनुष्य के लिए ईश्वरोपासना का माध्यम भी बन गया। नृत्य का प्रमाण वेदों, शास्त्रों, महाकाव्यों तथा उपनिषदों में कुछ इस प्रकार प्राप्त होता है, की नृत्य एक ऐसी प्रक्रिया है जिसे मोक्ष की प्राप्ति के लिए प्रयोग किया जाता है। भारतीय संस्कृति में उल्लिखित कलाओं में नृत्य कला एक स्वतंत्र, विकसित तथा उन्नत कला रूप में प्रकल्पित होती है। नृत्य कला को लोक नृत्य तथा शास्त्रीय नृत्य दो अंगों में विभक्त किया गया है। भारतीय शास्त्रीय नृत्य के अंतर्गत 8 शास्त्रीय नृत्य प्रचलित है। इन सभी नृत्यों में लय व ताल का महत्वपूर्ण स्थान है। लय व ताल के आधार पर ही प्रस्तुतीकरण किए जाते है। भारतीय शास्त्रीय कथक नृत्य एक मात्र ऐसी शास्त्रीय नृत्य कला है जिसका प्रस्तुतिकरण विलम्बित, मध्य तथा द्रुत लय के क्रम में किया जाता है। प्रस्तुति क्रम में लय के अनुसार ही रचनाओं को सम्मलित किया जाता है, तथा संगत वाद्यों की वादन शैली में भी लय का स्वरूप स्पष्ट रूप में देखने को मिलता है। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य भारतीय शास्त्रीय कथक नृत्य के प्रस्तुति क्रम में लय व ताल के सौंदर्य का उल्लेख करने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत आलेख में वर्णनात्मक शोध विधि, व्याख्यात्मक शोध विधि एवं प्रयोगात्मक शोध विधि का प्रयोग किया गया है।

मुख्य बिंदु :

संगीत, नृत्य, ताल, लय, कथक नृत्य।

भूमिका :

लय का महत्व केवल संगीत में ही नहीं अपितु मनुष्य जीवन में तथा प्रकृति के कण-कण में व्याप्त है। प्रकृति को संचालित करने के लिए भी लय अत्यधिक महत्त्वपूर्ण अंश है, उदाहरण स्वरूप ऋतुओं का निर्धारित समय में परिवर्तनशील होना तय है, वह प्रकृति के लयबद्ध स्वरूप को प्रस्तुत करता है। मनुष्य, जीव-जंतु, पेड़-पौधे, सांस लेते है वह भी एक लयात्मक स्वरूप का प्रतीक है। मनुष्य की वाचन शैली तथा हृदय गति का चलना भी लय का स्वरूप है। वैसे ही नृत्य व संगीत का आधार लय के संयोग से पूर्ण होता है। लय के आभाव से नृत्य अर्थहीन लगने लगेगा। लय के बिना नृत्य एवं संगीत की कल्पना करना बहुत कठिन कार्य है। लय जिस प्रकार प्रकृति और मनुष्य जीवन को सुंदरता प्रदान करता है उसी प्रकार लय का सही प्रयोग नृत्य को सुंदर तथा मनमोहक बनाता है। विद्वानों द्वारा लय को संगीत के परिप्रेक्ष में कुछ इस प्रकार वर्णित किया गया है, 'लय प्रत्येक

क्रिया के बाद की विश्रान्ति को कहा जाता है। ताल की मात्राओं के बीच होने वाली समय की समान विश्रान्ति लय कहलाती है।'

आचार्य भरत द्वारा रचित नाट्यशास्त्र की टीका करते हुए आचर्य अभिनव गुप्त कहते है।

ततः कलाकाकृतो लय हत्यभिसंज्ञितः।
त्रयो लयास्तु विज्ञेया द्रुतमध्यविलम्बिताः।।[i]

अर्थात कलाओं के मध्य स्थित काल की विश्रान्ति युक्त क्रिया लय कहलाती है। यह लय क्रमशः तीन प्रकार की होती है द्रुत, मध्य, विलम्बित लय। लय प्रत्येक क्रिया के बाद की विश्रान्ति को कहा जाता है। ताल की मात्राओं के बीच होने वाली समय की समान विश्रान्ति लय कहलाती है।

नृत्य के इष्ट नटराज को माना गया है। नाट्यशास्त्र में उल्लिखित है की सर्वप्रथम भगवान शिव की आज्ञा से भरत मुनि को तंडु मुनि द्वारा तांडव नृत्य तथा देवी पार्वती द्वारा लास्य नृत्य की शिक्षा प्राप्त हुई। तांडव नृत्य, जो की वीर रस तथा उद्धत चारियों से युक्त है तथा इसके विपरीत लास्य नृत्य, जो की श्रृंगार रस तथा सुकुमार कोमल अंग संचालनों से युक्त था। संगीताचार्य कोहल भगवान शिव और देवी पार्वती के नृत्य से प्रेरित होकर ताल की अभियक्ति संगीत व नृत्य के सन्दर्भ में करते हुए कहते है :

तकारः शंकरः प्रोक्तो लकारः शक्तिरुच्यते।
शिवशक्ति समायोगात्तालनामाभिधीयते।।[ii]

अर्थात ताल शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए दार्शनिक तथ्य प्रस्तुत किया है की शिव एवं शक्ति के संयोग से ताल की उत्पत्ति हुई है। तकार शंकर एवं लकार शक्ति द्योतक है। शिव एवं शक्ति के लय पूर्ण नृत्य गति से तालों की सृष्टि हुई है। **संगीत में व्यतीत समय का मान ही ताल है।** ताल को समय-मापक के रूप में जाना जाता है। ताल की उत्पत्ति छंद से मानी जाती है, जिस प्रकार वैदिक साहित्य में छंद का स्थान है यही संगीत में ताल का स्थान है।

लय व ताल की आवश्यकता विश्व भर के समस्त नृत्य शैलिओं में है परन्तु सभी नृत्यों में लय ताल का प्रयोग अलग-अलग तरीके से होता है। भारतीय शास्त्रीय नृत्यों में ताल के लिए दो प्रकार की पद्धतियाँ प्रयोग की जाती है 'उत्तर भारतीय ताल पद्धति तथा दक्षिण भारतीय ताल पद्धति'। जैसे भरतनाट्यम, कुच्चिपुड़ी, मोहिनीअट्टम, कथकली नृत्य दक्षिण भारतीय ताल पद्धति का अनुकरण करते है तथा कथक नृत्य उत्तर भारतीय ताल पद्धति का अनुकरण करता है।

मुख्य अंश :

शास्त्रों में लिखित नटन भेद का अनुकरण करते हुए भारतीय शास्त्रीय नृत्यों के प्रस्तुति क्रम में नृत्त, नाट्य, नृत्य का प्रदर्शन किया जाता है। इन शास्त्रीय नृत्यों को प्रदर्शित करने का अपना एक क्रम है जिसको प्रायः प्रस्तुति क्रम कहा जाता है, परन्तु नृत्यों की भाषा में परिवर्तन होने के कारण प्रस्तुति क्रम को भिन्न-भिन्न नाम से जाना जाता है उदाहरणतः भरतनाट्यम तथा कुचिपुड़ी नृत्य के प्रस्तुति क्रम को मार्गम् कहा जाता है तथा कथक नृत्य में प्रस्तुति क्रम कहा जाता है। इन शास्त्रीय नृत्य में ताल व लय को प्रदर्शित करने के लिये वाद्य यंत्रों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। बिना किसी वाद्यों की सहायता से नृत्य प्रदर्शन को संपूर्ण नहीं माना जा सकता। भारतीय शास्त्रीय नृत्यों में भी वाद्यों द्वारा ताल तथा लय दर्शाया जाता है। शास्त्रीय नृत्यों के प्रस्तुति क्रम में नटन भेद के अनुसार तालों की प्रधानता होती है, कुछ शास्त्रीय नृत्यों में ताल व लय मात्र एक संगत के रूप में लय का अनुकरण करते है। परन्तु कुछ नृत्यों में ताल व लय प्रस्तुति क्रम का एक अभिन्न अंग होता है, उस ताल युक्त अंग को नटन भेद के अनुसार नृत्त पक्ष के अंतर्गत माना गया है। नृत्त पक्ष की प्रस्तुति में नर्तक अपनी आंगिक चेष्टाओं, फुर्ती, तथा तैयारी से नृत्य प्रस्तुत करता है, भावहीन होने के बावजूद भी यह दर्शकों को आनंद की अनुभूति करवाता है।

लय व ताल की प्रधानता जिन नृत्यों में है उन नृत्यों की श्रेणी में कथक नृत्य को प्रथम स्थान पर रखा जाये तो यह कहना गलत नहीं होगा। कथक नृत्य में लय व तालों के आधार पर प्रस्तुति क्रम निर्धारित किया जाता है। अभिनव गुप्त द्वारा निर्धारित लय के क्रम (विलम्बित, मध्य तथा द्रुत लय) का अनुकरण करते हुए कथक नृत्य की प्रस्तुति की जाती है। वर्तमान कथक नृत्य प्रस्तुति को लयात्मक संरचनाओं के आधार पर वर्गीकरण किया गया है, जो की निम्नलिखित है।

1. वंदना, 2. उपज, 3. थाट, 4. सलामी/नमस्कार/रंगमंच का टुकड़ा 5. आमद/परन आमद, 6. नटवरी 7. टुकड़ा, 8. चक्करदार टुकड़ा, 9. परमेलु 10. परन, 11. चक्करदार परन, 12. लय बांट/लड़ी, 13. तिहाई, 14. गत निकास/गत भाव, 15. ठुमरी/भजन/ग़ज़ल/दादरा/होरी आदि, 16. सवाल-जवाब/कुछ प्रचलित तथा विशेष रचनाएँ भी प्रस्तुत की जाती है 1. फरमाईशी बंदिश (परन, परमेलु, तिहाई) कमाली बंदिश (परन, तिहाई), अतीत-अनागत की बंदिश, स्तुति परन (गणेश परन, शिव परन, दुर्गा परन, आदि)।

सर्वप्रथम नर्तक ईश्वर तथा गुरुओं को स्मरण कर अपने भावों द्वारा श्लोक या वंदना की प्रस्तुति करता है। तत्पश्चात कथक नृत्य की नृत्त पक्ष की प्रस्तुति के क्रम में नर्तक विलम्बित लय को कायम करता है, विलम्बित लय में उपज, ठाट, रंगमंच का टुकड़ा (सलामी, नमस्कार), आमद, परन आमद, टुकड़े, तिहाई आदि प्रस्तुत करते हुए नर्तक मध्य लय में प्रवेश करता है। मध्य लय में नटवरी का टुकड़ा, कवित्त, परमेलू, लड़ी, लय बांट, तिहाई आदि की प्रस्तुति की जाती है। उदाहरण स्वरूप एक तिहाई :

चक्करदार तिहाई :

ताऽ थेई थेई तत	आऽ थेई थेई तत	थेई ताऽ	थेई ताऽ थेई	|
□				
थेई तत आऽ थेई	थेई तत थेई	ताऽ थेई	ताऽ थेई थेई तत	|
2				
आऽ थेई थेई तत	थेई ताऽ	थेईऽऽऽ,	ताऽ थेई थेई तत	|
0				
आऽ थेई थेई तत	थेई ताऽ	थेई ताऽ थेई	थेई तत आऽ थेई	|
3				
थेई तत थेई	ताऽ थेई	ताऽ थेई थेई तत	आऽ थेई थेई तत	|
X				
थेई ताऽ	थेईऽऽऽ,	ताऽ थेई थेई तत	आऽ थेई थेई तत	
2				
थेई ताऽ	थेई ताऽ थेई	थेई तत आऽ थेई	थेई तत थेई	
0				
ताऽ थेई	ताऽ थेई थेई तत	आऽ थेई थेई तत	थेई ताऽ	|
3				
थेईऽऽऽ				
X				

मध्य लय के पश्चात द्रुत लय में कुछ टुकड़े, परमेलु, परन, चक्करदार टुकड़े, चक्करदार परन, फरमाइशी बंदिशें, कमाली बंदिशे, नौहक्का, भ्रमरियों से युक्त बंदिशें, अतीत-अनागत की बंदिशें, तिहाई, लड़ी, लय बांट, गत निकास, गत भाव आदि की प्रस्तुति की जाती है। कथक नृत्य में कुछ विशेष प्रकार की रचनाओं की प्रस्तुति का प्रचलन है जो की स्तुति परन के नाम से जानी जाती है, जैसे दुर्गा परन, गणेश परन, शिव परन आदि। इन रचनाओं की विशेषता है की यह देवी देवताओं की स्तुति गान के लिए रची जाती है, इनमें देवी देवताओं के स्तुति वर्णों के साथ-साथ नृत्य तथा पखावज के वर्णों का प्रयोग किया जाता है। स्तुति परन का उदाहरण गणेश परन :

गणा ऽन	ऽमगण	पतिगणे	ऽशलम्	|
X				
बोऽदर	सोऽहेऽ	भुजाऽचा	ऽरएक	|
2				
दन्तच	ऽन्द्रमा	लला ऽट	राऽजेऽ	|
0				
ब्रह्माऽ	विष्णुम	हेशताऽ	ऽलदेऽ	|
3				
धुरपद	गाऽवेंऽ	अतिविचि	ऽत्रगण	|
X				
नाऽथआ	ऽजमिर	दंऽगब	जाऽवेंऽ	|
2				
धटधरा	ऽतधर	धरक्रधा	ऽनदिन	|
0				

दिनदिन 3	नागेनागे	नागेधन	धनतिन	|
तिनताके X	नानाताद्रि	गनधिग	धिगदिन	|
दिनदिंना 2	गेदिंनागे	ताऽक्रधा	ऽनकिटतक	|
धराऽन 0	तराऽन	धाऽकिटतक	धराऽन	|
तराऽन 3	धाऽकिटतक	धराऽन	तराऽन	|
धा X				

उपयुक्त सभी नृत्त पक्ष की बंदिशों की प्रस्तुति के पश्चात नर्तक भाव पक्ष की ओर बढ़ते है और इस अंग में नर्तक भजन, ठुमरा, दादरा, होरी, ग़ज़ल, आदि की प्रस्तुति करते हैं। कभी-कभी नर्तक भाव पक्ष की प्रस्तुति की जगह नृत्त पक्ष की रचनायें जैसे-तराना, चतुरंग, त्रिवट आदि की प्रस्तुति करते हैं तथा अपनी सम्पूर्ण प्रस्तुति को जुगल बंदी या सवाल जवाब को प्रस्तुत कर विराम देता है। उपरोक्त प्रस्तुति क्रम नर्तक के अनुसार परिवर्तित किया जा सकता है यह स्वतंत्रता केवल कथक नृत्य में ही दृष्टिगोचर होती है। प्रस्तुति क्रम में परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण कारण है 'समय का आभाव', समय के आभाव की वजह से नर्तकों को अपनी प्रस्तुति क्रम में परिवर्तन करना पड़ता है।

कथक नृत्य में कुछ ऐसी बंदिशें है जिनकी प्रस्तुति में लय का स्वरुप देखने को मिलता है जैसे-नटवरी का टुकड़ा जिसकी प्रस्तुति के अंतर्गत बंदिश के बोलो को तीनों लय में प्रस्तुत किया जाता है, विलम्बित, मध्य तथा सम्पूर्ण बोल समूह को द्रुत में लय प्रस्तुत कर के तिहाई के साथ सम पर लाया जाता है। इसी प्रकार कथक के जयपुर घराने में परन आमद, परन, आदि बंदिशों के बोलो को अलग-अलग लय में प्रस्तुत करने का प्रचलन है। इनकी लय का क्रम समान्यतः विलम्बित लय, आड़ी लय, दुगुन लय, तिगुन लय, द्रुत लय से बढ़ते हुए सोलह गुन, तक किया जाता है। अतः यह विशेषता जयपुर घराने को कथक के अन्य घरानों के समक्ष भिन्नता प्रदान करती है।

कथक नृत्य के प्रस्तुति क्रम में ताल के दस प्राण के अंतर्गत यतियों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। बंदिश के वर्णों की लय में परिवर्तन होना यति कहलाती है। कथक नृत्य की ज़्यादातर बंदिशों में समा यति का प्रयोग होता है, परन्तु समा यति के साथ ही साथ कथक में अन्य का प्रस्तुतीकरण बहुतायत किया जाता है। यति को जिस प्रकार से परिभाषित किया गया है उसी प्रकार स्पष्ट रूप से कथक में प्रस्तुत किया जाता है। इसकी प्रस्तुति का प्रचलन मुख्यतः द्रुत लय में किया जाता है परन्तु इसको कुछ नर्तक अपने अनुसार मध्य और विलम्बित लय में प्रस्तुत करते है। उपरोक्त सभी बातों से यह ज्ञात होता है की कथक नृत्य में ताल व लय का अत्यधिक महत्व है। इसकी प्रस्तुतिकरण के क्रम में जिस प्रकार लय का प्रयोग किया जाता है, यह विशेषता कथक नृत्य को अन्य शास्त्रीय नृत्यों के समकक्ष भिन्नता प्रदान करती है तथा नटन भेद के नृत्त पक्ष के अंतर्गत बंदिशों की प्रस्तुति कथक के एक चमत्कारिक तथा खूबसूरत अंग को दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत करती है। कथक नृत्य की प्रस्तुति के लिए उसमे प्रयुक्त वाद्यों का तथा गायक का महत्त्वपूर्ण स्थान है, तथा इनके समूह को 'संगतकार' की संज्ञा दी गई है। संगतकारों को नर्तक अपने गुरु का दर्जा देते है, संगतकारों की श्रेणी में सर्वप्रथम गुरु का स्थान आता है जो की पढंत तथा ताल दर्शाने के लिए मंच पर उपस्थित होते है, तत्पश्चात गायन पर उपस्थित गायक का स्थान होता है, तदुपरांत नगमे (लहरा) की संगत के लिए सितार, सारंगी, तथा बांसुरी आदि वाद्यों का प्रयोग किया जाता है, यह वाद्य नृत्त पक्ष (बंदिशों) की प्रस्तुति के दौरान नगमे (लहरा) की संगत करते है तथा भाव पक्ष की प्रस्तुति के मध्य भराव के लिए इनका प्रयोग किया जाता है। तबला और पखावज ये दो संगति वाद्य कथक नृत्य के ताल पक्ष की प्रस्तुति के महत्वपूर्ण अंग है, इसीलिए तबले तथा पखावज में प्रयुक्त तालों (जैसे- तीनताल, झपताल, धमार ताल, चौताल, एकताल आदि) का ही अनुकरण कथक नृत्य की प्रस्तुति में किया जाता

है, संपूर्ण कथक नृत्य के नृत्त पक्ष की प्रस्तुतीकरण इन्ही प्रयुक्त तालों पर आधारित है।

निष्कर्ष :

अतः ब्रह्माण्ड तथा प्रकृति के सुव्यवस्थित संचालन में लय का महत्वपूर्ण स्थान है। मानव के जन्म से मृत्यु तक के काल की हर एक अवस्था में, मानव शरीर की रचना में तथा उसके संचालन जैसे मनुष्य की हृदय गति में, सांस का अंतःश्वसन और उच्छ्वसन की क्रिया में, मनुष्य के भावाभिव्यक्ति के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा में भी लय का महत्वपूर्ण स्थान है, लय के आभाव से ब्रह्मांड तथा मनुष्य जीवन का संचालन सुव्यवस्थित ढंग से होना असंभव है। उसी प्रकार लय संगीत के गायन, वादन, नृत्य तीनों अंगों के संचालन के लिए महत्त्वपूर्ण है। लय के आधार पर ताल का निर्माण हुआ और ताल के आधार पर पूरे संगीत का प्रस्तुतीकरण स्थापित हुआ। कथक नृत्य की प्रस्तुतीकरण में लय व ताल का महत्वपूर्ण योगदान है तथा लय ताल के आधार पर ही इसके नृत्त पक्ष की प्रस्तुति की जाती है। कथक नृत्य में संगत कर रहे वाद्य-वृन्द भी इसी लय व ताल का अनुकरण करते है। लय व ताल के समानुपातिक संयोग से संगीतज्ञ की प्रस्तुति में चार चाँद लग जाते है इसीलिए जब भी संगीत की शिक्षा प्रारंभ की जाती है तब गुरु अपने शिष्य को सर्वप्रथम लय से अवगत कराता है तदुपरांत लय की समझ हो जाने के बाद ही आगे की शिक्षा आरम्भ की जाती है। अंततः मनुष्य जीवन का संचालन हो या फिर संगीत की सुंदर प्रस्तुति हो लय का महत्व अत्यधिक होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. दवे प्रेम, (प्रथम संस्करण 2004), कत्थक नृत्य परम्परा, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
2. कर्ण नागेश्वर लाल, (2011), कथक नृत्य के साथ तबला संगती, कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
3. सक्सेना वसुधा, ताल के लक्ष्य-लक्षण स्वरुप में एकरूपता, कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
4. दाधीच पुरू, कथक नृत्य शिक्षा भाग-2, बिंदु प्रकाशन, इंदौर।
5. कल्याणपुरकर॰ एम॰ एस॰ (1999), 'नृत्त अंग', कथक प्रसंग, वाणी प्रकाशन 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

i सक्सेना वी॰ ताल के लक्ष्य-लक्षण स्वरुप में एकरूपता, पृष्ठ क्र॰ 46

ii कर्ण नागेश्वर लाल, कथक नृत्य के साथ तबला संगती, पृष्ठ क्र॰ 20

थाती

Dara Festival: An Emerging Landmark of the Cultural Heritgae of Rajasthan

Dr. Abhishek Srivastava

Assistant Professor, Sangam University, Bhilwara

Abstract

In general, each region has its own cultural environment, which is determined by the folk culture there. Folk culture refers to those rituals that are traditionally discharged by the local community. Under this, there is an unwavering reverence in the local community for the sacraments associated with the adorable folk deity and ofcourse with some festivals. Due to geographical, historical and cultural variations, the traditions remain unique in themselves for the region specific and community specific. With this view, it seems expedient to mention Dhanop village located in Phoolia Kalan subdivision of the newly formed district Shahpura in Rajasthan where traditionally all the villagers on the auspicious occasion of Makar Sankranti every year together host the grand 'Dara Festival'. The Dara Festival reflects the eternal rural culture of the region on the one hand, on the other hand it also plays its important role as a catalyst for the development of rural tourism. On the basis of the literary review conducted by the researcher, it can be said that no written material is available anywhere as a secondary source in the restriction of the Dara Festival. That is why this article is being presented on the basis of purely primary sources. Observations, schedule and interview methods have been used by the researcher.

Key words:

Dhanop, dara festival, sacraments, rural culture and rural tourism.

Geographical location and nomenclature of Dhanop Village :

Dhanop Village is located in Phoolia Kalan subdivision on National Highway No. 148-D, about 30 km north of Shahpura, the newly formed district in Rajasthan. It is located at the intersection point of 25^0 85' northern latitude and 74^0 91 eastern longitude along the bank of the Khari River, a tributary of the Banas River. From a historical point of view the place was named Dhanop as it was ruled by the 'King Dhundh'.[1] According to the information received from local Villagers pots containing gold and ornaments (Dhan in hindi or money) got excavated many times in this region so it was named as Dhanop. Probably the first fact seems to be the truth.

An archaic Shaktipeeth named **'Sri Dhanop Mata'** is established on a hilltop located in Dhanop Village. Dhanop Mata is also known as *Kuldevi* (Goddess of the family) of King Dhundh.[2] Another very ancient temple of **'Sri Dhanop Kalyan Dhani'** is situated at the center of Dhanop village. The priests of the temple and the entire villagers describe the history of this temple as more ancient than the Dhanop Mata temple.[3] This temple was constructed by the *Thikanedars* (vassals) of the Dhanop Village. Lord Vishnu's black colored *Chaturbhuj Shringarik* (four handed ornamented) statue as Sri Kalyan Ji sits in the sanctum sanctorum of the temple. Dhanop's *Thikanedars* and all the villagers consider themselves as servants of Mata Dhanop and Lord Sri Dhanop Kalyan Dhani. Villagers believe that Dhanop is blessed with crops and is fully protected from natural outbreaks by the grace of Sri Dhanop Mata and Sri Dhanop Kalyan Dhani and its prosperity always continues to grow. In order to express gratitude towards God the **'annual Dara Festival'** is traditionally organized every Makar Sankranti (14 January) of the year.

Construction of the Dara :

Dara kept inside the Citadel

In rural culture the meaning of the *Dara* is a 'ball'. In Dhanop Village, Dara is constructed using pieces of clothes and jute ropes. Small statues of Goddess and Hanuman Ji are seated within the cloth. These statues are mounted by several layers of cloth and then tied up with the use of jute ropes to create a ball-like structure that is larger than a football (Image 01). According to the information received from the local people, the statues within the ball are seated so that no one can set foot to this ball and play it with their hands with due respect. Seven strands of ropes are made over the surface of the Dara. By holding these strands, the Dara is pulled towards itself by the locals. The Dara made with the use of clothes and ropes weighs about Seven kilograms. As Locals consider Seven to be auspicious number, number of strands over the Dara and the weight of it kept at seven.[4]

The Venue of the Dara Festival :

The Dara Festival is organized in the area *'Garh Chowk'* in front of the citadel located in the center of Dhanop Village. By the way, the Dada Festival is organized for one day only, but the preparations to be made before its event are also not less than any celebration. Preparations for organizing this festival are started about a month in advance. The venue of the Dara Festival (Garh Chowk) is attractively decorated with the use of furrows, balloons and flower-leaves. Hymn evening and folk concerts are organized on behalf of the villagers outside the 'Sri Dhanop Kalyan Dhani temple' of Garh Chowk, located in the middle of the village on the eve of the Makar Sankranti. '*Lavani*' is sung on the eve of the festival. In Rajasthan's folk culture, Lavani refers to the call of deities by singing praises. Overall, the entire atmosphere here becomes devotional and musical. The next day,

Makar Sankranti (14 January) begins with the sunrise and villagers start gathering at the Garh Chowk with a high level of roar and enthusiasm.

Dara is purely **'a male dominated folk sport'** in which local youths participate extensively. Children, women and the elderly play the role of the spectator in this game and at the same time they encourage the players participating in the Dara battle.

In view of the season change and the ripening of crops, the Makar Sankranti is considered to be an important day by the local community and to participate in the Dara festival organized on this day 'A sacred work' is understood. There is a belief in the local community that only those youths can participate in this event who have been selected by Lord Sri Dhanop Kalyan Dhani and Goddess Sri Dhanop. It is mandatory for the youths to participate in this battle by taking a bath and wearing clean clothes and play the Dara with bare feet. Since it is played with bare feet, stones or any sharp object does not hurt any one's feet, on behalf of Dhanop Village Panchayat, cleanliness is carried out in the Garh Chowk area (where the Dara is played) and a soft clay is laid down. According to the rules only addiction less persons are allowed to participate in the Dara battle. Respectively following the manual, youths who join the battle of Dara keep themselves away from any type of addiction like drinking, smoking and tobacco, about a week before.

Playing Process of Dara :

Prior to playing the Dara, youths are provided with a '*Ghota Dari*' (a small ball as compared to the Dara) for general entertainment and practice on behalf of the Citadel. Ghota Dari is played by youths with the help of wooden sticks. During the play of the Ghota Dari, **'first *Nagara*'** (a type of drum) is played on behalf of the Citadel which provides a signal for the youths to be ready to play the battle of Dara.

The Dara is duly worshiped on behalf of the Citadel before handing it over to the youths. A young man from the local Gurjar family is traditionally appointed as '*Patel*' on behalf of the Citadel. Dara is worshiped by the appointed Patel. This is followed by a '**second Nagara**' played from the citadel which provides an indication that the Dara has been worshiped by Patel. In order to invite the youths to play the battle of Dara the **'third and final Nagara'** is played by the Citadel at exactly 1:00 pm.[5] After the final Nagara is played, the enthusiastic youths are given the Dara to begin the battle.

Demonstrating the 'courage, power and devotion', a huge crowd of youths try to pull the Dara towards themselves with the help of its strands. During this time a large mass of people appears at the venue. An estimated five to seven thousand people gather at the festival. Tourists also come to Dhanop Village from nearby villages and Bhilwara, Ajmer, Kekri, Tonk and Bundi districts to attend the festival. The venue becomes extensively crowded, it seems difficult to decide who is the player and who is the spectator. Just like the oceanic waves, a moving crowd attempts to push the Dara towards different directions from the centre of the sports venue the Garh Chowk. During this time, the police force stationed here also has to work hard to control the mob.

The entire battle is organized for a total of three hours from 1:00 pm to 4:00 pm. In order to maintain the enthusiasm

of the youths and boost up them '*Nagara and Dundubi*' instruments are played off. From the roofs of houses, spectators scatter *gulal* (a colored powder) over the youths playing the Dara and shout slogans, for their zeal. Noise is heard all around. With the roar of Nagara, an official announcement is made to end the battle on behalf of the Citadel.

Perceptions related to the Dara Festival :

The purpose of organizing the Dara Festival is to forecast the quantity of rainfall, the state of cropping and the prosperity of the villagers in the *'Jamana'* (year ahead).[6] Based on the location of the Dara at the end of the battle, *Thakur* of the village after getting in depth discussion with intellectuals, predict out the future of the Villagers and announce it officially.

If the Dara got found near the Citadel, it means that the year will pass normally and if it got found near the settlement of *Fakirs* (poors) and *Boharas* (a kind of community) it is interpreted that famine will arise in the forthcoming year. If Dara ends at the *Garh Chowk*, it is understood as an auspicious sign of good rainfall in the fields and arrival of good quality of crops in the fields. The announcement made during the research has described the forthcoming year as normal and good rainfall was expected. Villagers express their full trust over the above forecast based on this festival.

After the end of battle, Dada is again handed over to the Citadel. Along with duly worshiping, the Dara is again protected inside the Citadel. Since the Dara is not made every year, it is repaired and reused on behalf of the Citadel, so this Dara also appears to be historical in itself. The official announcement of the end of Dara festival on behalf of the citadel is made with the *jaggery* being distributed to the villagers. However, on this day, the villagers also organize a mass banquet in the evening.

The entire scene of the Dara Festival appears to be like a huge fair. Somewhere the festival proves to be directly beneficial to local small traders and shopkeepers.

Problems and Suggestions :

Based on the findings and observations made by the researcher, the important problems associated with the Dara Festival have been discussed and possible suggestions for resolving these problems are also presented.

Extremely conjusted space :

The place where the Dara Festival is organized is extremely narrow. In such a situation, during the battle, young men are seen hitting the walls and sometimes hitting the pillars. In such a situation, there are sufficient chances of injury. Resolving the problem, this game can be organized elsewhere in an open space. If this is done, neither will give rise to the possibility of injury, but it will also be possible to organize it systematically.

Absence of medical team :

During the Dara Festival, the researcher observed the absence of medical personnel. On being investigated, the villagers said no hospital was established in Dhanop village. This is a worrying situation. Efforts can be made without any dalay to set up a hospital here in collaboration with public representatives and District administration. In addition, a medical team may be appointed at the venue during the event of at least the Dara Festival to provide primary medical services.

Lack of literary material :

The Dara Festival can be promoted from the point of view of 'rural tourism' development. Few strategic steps are required to promote this festival. Still there is no printed material available about the Dara Festival. By better cohesion of local public representatives and administrative officials, informative articles and other promotional materials can be created in the context of the Dara Festival by encouraging researchers and writers. This can pave the way for the development of rural tourism in Dhanop village through this festival.

Lack of sign boards :

During the research work, a shortage of sign boards was recorded on the roads leading to Dhanop Village on behalf of the researcher. In such a situation, the local people have to ask the route to the village. Not only this, there are no informative boards installed on important sites of the village like Garh Chowk, Shiva Devara temple, Devisagar Pond etc. These types of situations confuse new tourists. In such a situation, it seems necessary that a sufficient number of informative boards be installed at the appropriate places.

Epilogue :

The Dara Festival reflects the profusion of rural cultural heritage. From the religious point of view of the festival, it has its specific importance but from the economic point of view it can also be developed. New direction can be provided to the development of rural tourism in Dhanop Village under the pretext of Dara Festival. For tourists who have come to witness the Dara Festival, the Devisagar reservoir located in Dhanop village and the huge gardens set up on its bank and ancient temples like Shiva Devara etc. are fulfilled for tourism purposes can be developed. In order to protect and preserve the available geographical, historical, cultural and religious heritage in rural areas of Rajasthan, under the budget declaration year 2022-23 'Rajasthan Rural Tourism Scheme-2022' has been implemented by the Government of Rajasthan. The Dara Festival can prove to be an important link towards achieving the goal set by the sensitive state government on the development of rural tourism.

References :

1. Interview of the main priest of Sri Dhanop Mata Temple Sri Navratan Dadheech, place-Dhanop (Phoolia Kalan), date-14 January 2023, Sunday, 4:00 pm.
2. Interview of the main priest of Sri Dhanop Mata Temple Sri Dharmendra Parashar, place-Dhanop (Phoolia Kalan), date-14 January 2023, Sunday, 1:30 pm.
3. Interview of the appointed Patel Sri Mahaveer Gurjar, place-Dhanop (Phoolia Kalan), date-14 January 2023, Sunday, 1:15 pm.
4. Ibid
5. Interview of Thakur of Dhanop (Phoolia Kalan), former Deputy Superintendent of Police and present President of Dhanop Mata Temple Trust Sri Satyendra Singh Ranawat, place-Dhanop (Phoolia Kalan), date-14 January 2023, Sunday, 12:30 pm to 4:00 pm.

मध्य भारत के जनजातीय नृत्य परम्परा में सांस्कृतिक तत्व

डॉ॰ शैलेन्द्र कुमार

सहायक आचार्य, कला इतिहास,

महिला महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

शोध सार :

मध्य भारत भारतीय जनजातियों का प्रमुख निवास स्थान है। यहाँ मुख्य रूप से गोड़, बैगा, भील, सहरिया, पनिका, कीट, मीणा, मुण्डा, मुरिया, माड़िया तथा परधान इत्यादि जनजातियाँ निवास करती है। इन जनजातियों के द्वारा विभिन्न अवसरों पर नृत्य का आयोजन होता है। मुख्यतः यह आयोजन किसी न किसी धार्मिक क्रियाकलाप का हिस्सा होता है। इनके नृत्य परम्परा में हमें इनके सांस्कृतिक तत्वों का अवलोकन होता है। ये तत्व प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों ही रूपों में होता है।

बीज शब्द :

जनजाती, गोड़, भील, सांस्कृतिक, धार्मिक।

भूमिका :

मध्य भारत से हमारा तात्पर्य मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात एवं राजस्थान से है। भारतीय जनजातियों का भारत की कुल जनसंख्या का लगभग 8.6 प्रतिशत भाग मुख्य रूप से इन्हीं चारों राज्यों में निवास करती है। भारत में सबसे अधिक जनजातीय जनसंख्या मध्य प्रदेश में है। इसके बाद उड़ीसा, महाराष्ट्र, राजस्थान, छत्तीसगढ़, गुजरात, झारखंड, आन्ध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल आदि का स्थान आता है। मध्य भारत में लगभग 46 जनजातियाँ निवास करती है। इनमें प्रमुख रूप से गोड़, भील, बैगा, भारिया, अगरिया, कोरकू, कोल, कीर, मीणा, मुण्डा, मुरिया, माडिया, परधान, सहरिया, मैना, भतरा, भुजिया, विरहोर, धनवार, गढ़वा, हलवा, कंवर, कमार, खैरवार, खरिया, कोंध, कोलम, कोरवा, मंझवार, मुण्डा, नगेशिया, उरांव, परजा, सौता आदि जनजातियाँ है।

विभिन्न विद्वानों ने जनजातियों की भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ दी है जिनमें डी॰एन॰ मजूमदार, रेमण्ड फर्थ, जार्ज पीटर, मडांक, फेंच बोआस, गिलिन और गिलिन आदि। उपरोक्त विद्वानों के परिभाषाओं में किसी एक को सम्पूर्ण नहीं माना जा सकता। जनजाति की परिभाषा के संबंध में अभी भी मानवशास्त्रियों में मतैक्य नहीं है तथापि इन विद्वानों के परिभाषाओं के आधार पर किसी भी जनजातीय समुदाय की निम्नलिखित सामान्य विशेषताएँ होती है।

वे सभ्य जगत से दूर पर्वतों व जंगलों में अत्यन्त दुर्गम स्थानों में निवास करते है, ये सामान्य बोली का प्रयोग करते ह, वे आदिम धर्म को मानते है, जो कि सर्व जीववाद के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है, जिसमें भूत-प्रेत तथा आत्माओं की पूजा का विशेष स्थान है, वे प्राकृतिक उपयोगी वस्तुओं का संग्रह, शिकार, वन में उत्पन्न होने वाली वस्तुओं का संग्रह करना, वे अधिकांश मांसभक्षी होते है। वास्तव

में जनजातिय समूहों की जीवन पद्धति अलग-अलग होती है, वे अपने नियम, धार्मिक विश्वास, अनुष्ठान एवं आस्था का अक्षरशः पालन करते है उनकी अपनी एक धार्मिक और आध्यात्मिक व्यवस्था है, वे उसी परिधि में रहना चाहते है।[1]

भारत में विभिन्न जनजातियाँ अलग-अलग भू-स्थलों पर निवास करती है। इन जनजातियों को प्रजातीय, भाषा, भौगोलिक, सांस्कृतिक और आर्थिक आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। जनजातियों को हम जब प्रजातीय आधार पर विभाजित करते है तो उत्तर एवं पूर्वोत्तर भारत, मध्य भारत, दक्षिणी भारत इन तीन मुख्य आधार पर विभाजित करते है। भारतीय जनजातियों में प्रचलित भाषा को आधार बनाकर यदि विभाजन किया जाए तो इन्हें इण्डो यूरोपियन, द्रविड़, ऑस्टिक एवं चीनी तिब्बती भाषा में विभाजित किया जा सकता है। श्यामाचरण दूबे ने[2] भौगोलिक दृष्टि से इन्हें चार प्रमुख क्षेत्रों में विभाजित किया है। उत्तरी और उत्तरी पूर्वी क्षेत्र, मध्य क्षेत्र, पश्चिम क्षेत्र तथा दक्षिणी क्षेत्र। वैरियर एल्विन ने[3] सांस्कृतिक स्तरों के आधार पर भारतीय जनजातियों का वर्गीकरण प्रस्तुत करते हुए इन्हें चार वर्गों में विभाजित किया है- पहले वर्ग में आदितम् जीवन बिताने वाली जनजातियाँ है, जो मुख्य रूप से मध्य भारत में बस्तर की पहाड़ी, उड़ीसा के जुआंग, गढ़वा और बोंदों है। इनका जीवन अत्यंत सरल तथा आदिम होता है। दूसरे वर्ग में ऐसी जनजातियाँ आती है जिनके जीवन में कुछ परिवर्तन प्रारंभ हो गये है फिर भी वे प्रायः प्रथम वर्ग की भांति ही एकाकी एवं प्राचीन परम्पराओं को मानने वाले है। इनका जीवन सामूहिक न रहकर व्यक्तिगत हो रहा है। तीसरे वर्ग में सर्वाधिक जनजातियाँ आती है इनकी संस्कृति अन्य संस्कृतियों के प्रभाव के कारण अपना अस्तित्व खो रही है इसलिए ये अपने धर्मए परम्परा, प्रथा, कला, विश्वास, सामाजिक संगठन आदि से दूर होते जा रहे है। एल्विन के अनुसार चौथे वर्ग में वे जनजातियाँ आती है जो देश के प्राचीन कुलीन वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। इसमें भील और नागा जनजातियाँ विशेष उल्लेखनीय है। इन्होंने बाहरी संस्कृति सम्पर्क में आने पर भी अपनी मौलिक संस्कृति को वैसा ही बनाये रखा है।

कलाओं में नृत्य कला सर्वोत्तम रही है क्योंकि इसमें जीवंतता होने के साथ-साथ भावाभिव्यक्ति, सौन्दर्य एवं स्वयं की ओर आकर्षित करने की प्रवृत्ति अधिक होती है। नृत्य शब्द मूल रूप से ''नृप्त'' शब्द से बना हुआ है जिसकी उत्पत्ति ''नृति'' धातु से हुई है। ताल एवं लय के साथ अंग संचालन करने को ''नृत्त'' कहते है।[4] भारत में नृत्य की परम्परा की जानकारी प्रागैतिहासिक गुफा चित्रों से मिलती है। यहाँ से प्राप्त चित्रों में समूह में लोगों द्वारा नृत्य करने के दृश्य मिलते है। श्रीमती महालक्ष्मी नृत्य के लिए लिखती है कि ऐसी मान्यता है कि ब्रह्मा जी ने देवताओं के अनुरोध पर नाट्य की रचना की जिसमें उन्होंने नृत्य, गायन, वादन, अभिनय इन कलाओं का उल्लेख किया और इसे भरतमुनि तथा उनके पुत्रों को सौंप दिया। फिर भगवान शिव ने तांडव तथा पार्वती ने लास्य नृत्य को जोड़कर उसे पूर्ण बना दिया।[5] पुराणों में गंधर्व लोक की गंधर्व कन्याओं का उल्लेख मिलता है जो इन्द्र की सभा की नृत्यांगनायें थी, इन्हें ''अप्सरा'' कहा जाता था। अर्जुन ने भी गंधर्व लोक में जाकर उर्वशी नाम की गंधर्व कन्या से नृत्य की शिक्षा ली थी। भरतमुनि का नाट्यशास्त्र का नृत्य जगत में बहुमूल्य योगदान है, इसे पंचम वेद की संज्ञा देकर सम्मानित किया गया है।

जनजातीय समाज में नृत्य कला का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। यह मनुष्य की सृजनेच्छा का प्रथम सोपान है क्योंकि अन्य कलाओं में मानवीय भावाभिव्यक्ति का प्रथम उन्मेष नहीं है बल्कि भाववेग की अभिव्यक्ति का प्रथम मानवीय प्रयत्न नृत्य के माध्यम से हुआ। संगीत और भाषा के साथ नृत्य मानवीय अभिव्यक्तियों के प्रयत्नों में सर्व पुरातन है। हम जानते है कि संस्कृति परिष्कृत मानवीय उत्पाद है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति तथा समाज की क्रियाएँ, उत्पादन, व्यवहार,

संस्कार तथा परिष्कार सम्मिलित है। संस्कृति की सार्थकता इसी में है कि वह मनुष्य के जीवन और अस्तित्व को अधिक सचेतन, व्यापक और समृद्ध बनाती है, उसकी आध्यात्मिकता में वृद्धि तथा धर्म और दर्शन का विकास करती है। संस्कृति के अन्तर्गत सम्पूर्ण जीवन विधियों का समावेश होता है। संस्कृति में अनेक विधियों अथवा तरीकों का एक संतुलित संगठन होता है यही एक-एक विधि संस्कृति की एक-एक ईकाई अथवा तत्व कहलाते है। संस्कृति की इन इकाईयों अथवा तत्वों को सांस्कृतिक तत्व कहते है। ये तत्व भौतिक तथा अभौतिक दोनों हो सकते है। इस प्रकार सांस्कृतिक तत्व सम्पूर्ण सांस्कृतिक व्यवस्था भी सबसे छोटी ईकाई है जिसका विभाजन नहीं हो सकता।

मध्य भारत के जनजातियों में नृत्य के विभिन्न प्रकार देखने को मिलते है जिनमें मुख्य रूप से सैला, भडौनी, रीना, कर्मा, बड़वा, डोहा, गरबी, मगोरिया इत्यादि नृत्य है। प्रसन्नता की पराकाष्ठा नृत्य के रूप में व्यक्त होती है यह सभी जीवों में व्याप्त है और इसकी उत्पत्ति का संबंध मानव की उत्पत्ति से जुड़ा है। वास्तव में नृत्य मनुष्य की सृजनेच्छा का प्रथम सोपान है क्योंकि भावावेग की अभिव्यक्ति प्रथम मानवीय प्रयत्न नृत्य के माध्यम से हुआ है।[6] ये जनजातियाँ आदिम स्थिति का प्रतिनिधित्व करती है इसलिए उनके नृत्य से आदिम संस्कृति का बोध होता है। पद्म श्री शेख गुलाम ने जनजातियों के नृत्य के विषय में बहुत सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत की है उन्होंने लिखा है कि नृत्य क्रीड़ा आदिवासियों ने प्रकृति से ही सीखी है। आकाश में उड़ते हुए पक्षियों की कतारों से इन्हें कतार में पंक्तिबद्ध होकर नृत्य करने की प्रेरणा दी।[7] जनजातियों के सभी नृत्य समूह में किये जाते है जो भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता "अनेकता में एकता" को चरितार्थ करती है साथ ही सामाजिक समरसता का भाव प्रकट करती है।

मध्य भारत के प्रमुख जनजातिय नृत्यों में सैला, रीना, भडौनी, भगोरिया, गरबी, बडबा, डोहा इत्यादि प्रमुख है। सैला नृत्य गोड़ जनजाति के द्वारा किया जाता है। इस नृत्य में पहाड़ जैसा साहस, बल, ऊर्जा एवं वीरता की स्पष्ट झलक मिलती है।[8] इस नृत्य में नर्तक एक हाथ में काठ के बने अस्त्र-शस्त्र जैसे-लाठी, भाला, तलवार लम्बे डण्डे आदि लेकर युद्ध की तरह कौशल एवं पराक्रम का प्रदर्शन कर दर्शकों को रोमांचित कर देते है। वही दूसरे हाथ पर मोर पंखों का मूठा नृत्य की श्रृंगारिता एवं सौन्दर्य की अनुभूति कराता है। इस नृत्य में केवल पुरूष ही प्रतिभाग करते है।

भड़ौनी नृत्य - भडौनी एक ऐसा ही आदिवासी नृत्य है जो सतपुड़ा अंचल में निवास करने वाली गोड़ जनजाति के बीच पारम्परिक रूप से किया जाता है। विवाह के शुभ अवसर पर यह नृत्य किया जाता है। गोड़ जनजातियों में बरात प्रस्थान के पूर्व आंगन में मंडप के नीचे महिलायें भड़ौनी नृत्य में विभोर हो जाती है। इस नृत्य में पुरूष भी उनका साथ देते है।

रीना नृत्य - यह नृत्य गोड़ जनजातियों के महिलाओं के द्वारा किया जाता है। रीना नृत्य और सैला नृत्य की एक जोड़ी है जो समान अवसरों पर किया जाता है। जब पुरूष सैला करते है तो गोंड महिलाएँ उसी समय रीना नृत्य करती है। रीना नृत्य में वाद्य यंत्रों का प्रयोग नहीं किया जाता है। स्त्रियाँ ताली बजाकर उसी की ताल में नृत्य करती है। रीना नृत्य गोल घेरे या पंक्ति बनाकर किया जाता है।

भगोरियाँ - मध्य भारत में निवास करने वाली भील जनजाति के द्वारा भगोरिया नृत्य, भगोरिया हाट में किया जाता है। होली से पूर्व भगोरिया हाटों (मेला) का आयोजन होता है। यह केवल हाट न होकर युवक-युवतियों के मिलने के मेले है। इस नृत्य में गोल घेरे में शरीर को हिलाकर और पैरों की तालमय संचालन के साथ आगे की ओर कुदकर किया जाता है। प्रत्येक पुरूष नर्तक के हाथों में तीरों का भूण और कमान होता है तथा महिलाओं के सिर पर बोड़नी रखी जाती है जिसे वे एक हाथ से पकड़कर नृत्य करती है। अधिकांश नृत्य गीत के

वाद्ययंत्रों की संगत में चलता है परन्तु कहीं-कहीं पर गीत भी गाये जा सकते है। कुल मिलाकर भगोरिया नृत्य गीत प्रधान न होकर धुन प्रधान नृत्य है।

गरबी नृत्य - वर्षा ऋतु में नवारबानी के अवसर पर इस नृत्य का आयोजन होता है। यह नृत्य पितृ पूजा और प्रकृति पूजा से जुड़ा हुआ है। पितरों के आर्शीवाद और प्रकृति की कृपा प्राप्त करने के लिए अपनी श्रद्धा, भक्ति एवं कृतज्ञता के भाव को प्रकट करने के लिए यह गरवी नृत्य का आयोजन करते है। यह नृत्य उमंग, उत्साह और समरसता का प्रतीक है। गरवी नृत्य में स्त्री और पुरूष दोनों भाग लेते है।

बडबा नृत्य - भील जनजाति के द्वारा बडबा नृत्य किया जाता है। फसल अच्छी हो इस भावना के साथ बडबा नृत्य होता है। इस नृत्य में नर्तक केवल पुरूष होते है।

परधौनी नृत्य - मध्य प्रदेश में निवास करने वाली बैगा जनजाति द्वारा यह नृत्य किया जाता है। बैगा जनजाति का यह जातीय नृत्य विवाह के अवसर पर किया जाता है। हास्य-विनोद से परिपूर्ण यह नृत्य बरात अगुवानी के समय किया जाता है। बैगा जनजाति बारात आगमन को ष्परधौनीष् कहते है इसलिए इस नृत्य का नाम परधौनी पड़ा।

उपरोक्त जनजातिय नृत्यों का अवलोकन कर उनमें निहित सांस्कृतिक तत्वों पर विचार करते है तो ज्ञात होता है कि बहुतायत सांस्कृतिक तत्वों की विद्यमानता है। सामान्य दर्शक सभी नृत्यों को एक समान मानकर आनंदित एवं आहलादित हो जाता है, आवश्यकतानुसार खिल-खिलाकर हंस लेता है या दूर रहकर भी नृत्य में सम्मिलित होने का प्रयास करता है, परन्तु नृत्यों में निहित सांस्कृतिक तत्वों को पृथक कर उजागर करना दुरूह कार्य है। जनजातीय नृत्यों में निहित सांस्कृतिक तत्वों को दो भागों प्रत्यक्ष सांस्कृतिक तत्व एवं अप्रत्यक्ष सांस्कृतिक तत्वों में विभाजित किया जा सकता है। प्रत्यक्ष तत्व के अंतर्गत नृत्य संरचनात्मक तत्व, नृत्य की वेशभूषा, नृत्य का संगीतात्मक तत्व तथा नृत्य के दर्शक आते है। अप्रत्यक्ष सांस्कृतिक तत्व के अन्तर्गत जनजातीय नृत्य परम्परा के उन तत्वों को वर्णित किया गया है जो दर्शक को सामान्यतः नहीं दिखाई पड़ते किन्तु परोक्ष रूप से उनका संबंध नृत्य से होता है। जनजातीय नृत्यों में प्रत्यक्ष तत्वों की प्रधानता है। नृत्य परम्परा में स्त्री और पुरूष दोनों ही नृत्य में भाग लेते है अपने नृत्य में वह शारीरिक विभिन्न अंगों सिरए कंधे, पीठ, बाहें, हाथ, पैर, तलवे तथा अंगुलियों, आंखों का उपयोग करता है। जनजातिय नृत्यों में शरीर के विभिन्न अंगों के संचालन के लिए ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है जिससे अंगों को गति मिलती है और अंगों से विभिन्न मुद्राओं का निर्माण किया जा सकता है।

जनजातीय नृत्य के सौन्दर्य का एक प्रमुख आधार उनकी वेशभूषा है जो उनकी अलग पहचान निर्मित करता है। वेशभूषा जहाँ विभिन्न जनजातियों की पहचान है वही विभिन्न नृत्यों का निजत्व का आधार बनते है। मुरिया जनजाति के गौर नृत्य, काकसार नृत्य, बैशाओं का परधौनी नृत्य, भीलों का मगोरिया आदि नृत्य में उनकी वेशभूषा जहाँ नृत्य के सौन्दर्य को निखारते है वहीं इनके पीछे छुपे अध्यात्म, जनजातियों की उदारवादी सोच का परिचायक बनती है। गौर नृत्य का मुखौटा गौर के सींग, पत्तियों के पंख एवं कौड़ियों की फालर से निर्मित है जो यह व्यक्त करता है इस मुखौटे में पूरी सृष्टि समाहित है।

निष्कर्ष :

उपरोक्त विवरणों से स्पष्ट होता है कि जनजातीय नृत्यों में सांस्कृतिक तत्वों की अपनी महत्ता है और जिन-जिन तत्वों का समावेश एक जनजाति के लोग करते है उन तत्वों का सम्मिलन उनकी संस्कृति को व्यक्त करता है इसलिए प्रत्येक जनजाति की अलग-अलग संस्कृति होती है परन्तु यह अंतर इतना सूक्ष्म होता है कि इसकी विवेचना करना कठिन कार्य है। जनजातिय नृत्य सामान्यतः एकाकी नहीं होते बल्कि सामूहिक होते है अतः उनमें सामूहिकता की भावना देखी जा सकती है। जनजातीय समाज को लोग भले ही भौतिक संसाधनों की दृष्टि से भले ही पिछड़ा

माने किन्तु उनकी संस्कृति के तत्व क्रियाकलाप, आचरण, व्यवहार मूल्यवान है। वास्तव में जनजातीय संस्कृति एक अमूल्य निधि है उनके नृत्यों में प्राप्त होने वाले दार्शनिक तत्व यह पुष्ट करते है कि अपनी भाषा, अपनी नृत्य के भाव से वे समुख दर्शक को विशिष्ट संदेश देते है।

सन्दर्भ सूची :

1. उप्रेती हरिश्चन्द्र, 2000, भारतीय जनजातियाँ एवं विकास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
2. मुखर्जी रवीन्द्र नाथ (2006), भारतीय समाज एवं संस्कृति, दिल्ली, पृ0-374
3. एल्विन बैरियर, द एवोरिजनल, ऑम्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, मुम्बई, पृ0-7-11
4. मिश्राद्ध लालमणि, भारतीय संगीत वाद्य, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 2011, पृ0-9
5. बनर्जी, प्रोजेश, अप्सरा इन इण्डियन डांस, कॉस्मो प्रकाशन, 1982, पृ0-37
6. निरगुण, बसंत, म0प्र0 के लोकनृत्य, भोपाल, पृ0-35
7. वही, पृ0-41
8. शरीफ, मोहम्मद, भारत के नृत्य, पृ0-31

Bhands : The Traditional Folk Musicians of Kashmir

Dr. Javid Ahmad Moochi
(CAS, Dept., of History),
Aligarh Muslim University, Aligarh, U.P.

Abstract :

In Kashmir valley the art of performing in open air theatre constituted as one of the important royal entertaining exercise from ancient times. The traditional folk forms of Kashmir have more than a thousand years of history where Music, Dance and Theatre are the core elements in promoting culture at a broad spectrum. Bhands of Kashmir are the main actors in these traditional pathers (theatres). They are not the ordinary class of public entertainers. They treat their art as sacerdotal and public also hold them in high veneration. From narrating age-old Mughal stories to creating awareness about the novel Corona-virus, Bhand Pather, a centuries old folk theatre of Kashmir, has acted as a mirror of the society. Though no serious attempt has been made to document this old extant art, this paper is an attempt to trace the historical background of this art form, and also tries to analyze the position of its artists.

Keywords :

Kashmir, Bhands/Bhaggats, Folk Artists, Bhand Pather, Instruments, Mohd Subhan Bhagat.

Introduction :

The *Bhands* of Kashmir were the wondering bands of musicians and entertainers. During the ancient times, they were known by the name of *Natas* (Actors) and *Nartakas* (Dancers).[1] Usually they existed in groups, but their presence were also been seen in villages, streets, wondering with minstrel, who sings with the accompaniment of a guitar, or recites verses, often extempore, full of local allusions and usually full of flattery, if an official or person of influence was present.[2] Kalhana also states that, the Kashmiri's Kings had their own troupe of performers and a permanent theatre known as *nalyamandapa*.

The position of *Bhands* in the Kashmiri society was same like the *Marasies* of Punjab but their dressing and singing style was different from the Punjabi sect.[3] These minstrels were recognized by their long hair and a peculiar walking style.[4] The *Bhands* were adept musicians who would enthrall their audiences, on their folk tunes. Donned in drooping

cotton trousers and *Pherans*; the *Bhaands* had a notable appearance. White turbans and cone shaped caps were the hallmark of their looks.

They exhibit different skills which includes singing as well as dancing in their performances and travelling down to Punjab were day perform for the Kashmiri/ Punjabies audiences. In Punjab, they were always organized in groups of 15-20 people like a band of modern times.[5] They have songs in Kashmiri, Punjabi, Persian and English. Acting, dance and music were an integral part of the form as a whole. In pure tradition the performers begin in the evening with the ritualistic dance, also called a *chhok.*

The *Bhands* dance to the tune of a specified orchestra includes the *swarnai*[6], *dhool*, *nagara* (one sided drum) and *thalij* (taal instrument). Swarnai attracts audiences from vicinity. It is a very special wind instrument made in three parts: the nai or wooden pipe made by special carpenter, the *barg*, a reed of a particular grass found locally and copper disc the diameter of the pipe into which the *barg* is fitted. Before the *swarnai* player adopts his newly made instrument a ritual offering was made in some famous shrine/ *dargah*.

According to the oral tradition, the *Bhaghats* of *Akingam, Mohripora, Shangas and Goondpora* in the district *Anantnag* of Kashmir were very famous for their performances. The *Bhands* of these areas were also patronized by various Hindu kings, this is the reason, that even today, The *Bhaghats* had great veneration for various Hindu shrines, where they used to sing and dance from the ancient times on special occasions in the course of a year. Because *Bhand Pather* at that time, was considered as a part of worship to showcase peoples' love and devotion to their "*Devi Devta*" (gods and goddesses) as well as to enhance the richness of Kashmiri culture.

Walter Lawrence writes that, "I once saw the dresses and costumes of a *bhand* the price of which was up to two thousand rupees".[7] Such was the reputation of some of the bhands of Kashmir during the Dogra period (1846-1974). However the poor *Bhands*, during the harvesting season go from barn to barn to collect paddy from *zamindars* and in return offer good wishes called *Bhand-daekher* in Kashmiri, which means an insincere blessing.[8] During the times of difficulty, like drought and unemployment in Kashmir, they used to go to Punjab, Peshawar, and towards many border areas to earn their livelihood, accompanied by 2 or 3 handsome boys as well. These boys used to wear the dress of women and have very long hair.[9] They were great singers and actors by birth.

During the fairs and festivals at various famous shrines of Kashmir like *Hazratbal*, *Tsrar*, *Khanyar* etc., these Kashmiri minstrels were seen performing with long clarinet-like pipes and drums, which was locally known as *Jashn.*[10] The most prominent habitation of *bhagats* was *Syebug* (District *Budgam*) and *Akingam* in the village (District *Anantnag*) of Kashmir and they were declared as best by many travelers who visited Kashmir but most of them died off in the great famine of 1877 A.D.[11] In past times, their marriages were endogamous as other castes don't marry in this social group but with the passage of time they got mixed with the other sections of society. In Kashmir, most of the *Bhands* belong to the Muslim community, as the *pandits* were theorists and did not sing.[12]

Bhand Pather :

The folk theatre called *Bhand Pather* is probably the earliest theatre specimen in the subcontinent. It is a popular form of folk theatre in Kashmir and the word *bhand* stands for 'jester' while *pather* means 'drama'. It is exclusively associated with the community of *bhands* or folk theatre actors. *Bhand Paether* mostly is a satirical performance. Though we hardly get any direct reference in ancient history books of Kashmir about Bhand pather, But the art of drama had reached to its perfection under the ancient Hindu rule in Kashmir.[13]

Bhand Pather employs humour and acting to inform people about what is going on in their society. People are thus informed about what is going on around them while simultaneously being amused. Under the repressive feudal framework, the *Bhands* began to dramatize the pain and pangs of the oppressed peasantry as well as the exploiting techniques of the landed class. To avoid the official wrath and coercion, these professional actors often used their own local dialect called *Phir Kath*. In this connection Walter Lawrence also mentions that, "*Bhands* have a peculiar argot (*Phir Kath*) which they employ in stage directions".[14]

Bhand Pather was the only way of communication to reach masses during the early times in Kashmir, which was even used by the ruling parties itself to promote peaceful and comprehensive societies for tenable evolution. In this connection, it has been said that the first Maharaja of the Dogra dynasty, Maharaja Gulab Singh acquired a very intimate knowledge of the village administration from the *Bhaggat* performances (*Bhand Pather*).[15]

Bhand Pather was an integral part of our rural marriages during the early times, and people would hardly miss any opportunity to have a glimpse of these jesters. Unmindful of being invited or not, people would throng in flocks to enjoy the folk feast of the *bhands*. On these occasions they receive something from the *zamindars* and sometimes they were rewarded by the rich and wealthy people on the occasion of *Eid*.

Bhand Pather has been classified into several types of *Pathers* such as *Shikargah* based on wildlife, *Doikhaer Paether* based on prayers and wishes, *Angrez Paether* based on foreigners, and *Dard Paether,* the play portrays the picture of Kashmir under the *Dards* a symbol for Afghan governing elite.[16]

Bhagats performing in an event organized by Jammu and Kashmir Academy of Art Culture and Languages (Kashmir Life, 28 March, 2020)

Bhand Pather at Shalimar Garden (Kashmir Life, 27 June, 2023)

Conclusion :

The *Bhands* are the rural community in which most of the members traditionally did not own land. Nor are they employed in government service of any kind. *Bhand*

Paether is primarily preserved in *Wathora* (Budgam) and in few villages of Anantnag, where artists receive central government funds. However, in other districts, *Bhand Paether* has almost disappeared, compelling many artists to seek manual labour for their livelihoods. *Bhand Pather* also holds a great relevance to the social development and contemporary issues of the society. The level of entertainment and awareness it provided to distressed people through storytelling was its main goal.

References :

1. Nilmatpurana English Trans.,Ved Kumari, *The Nilmatpurana: A Cultural and Literary Study,* Academy of Art Culture and Languages, Srinagar, 1968, p. 87.
2. *Imperial Gazetteer of India Provincial Series Kashmir and Jammu,* pp. 40-41.
3. Mohammad-ud-din Fouq, *Tarikh-e-Aqweem-e-Kashmir*, Vol., II, Gulshan Publishers, Srinagar, 1936, p. 125.
4. Walter, R. Lawrence, *the Valley of Kashmir*, p. 312.
5. Mohammad-ud-din Fouq, *Tarikh-e-Akwaam-e-Kashmir,* p. 421.
6. Walter, R. Lawrence, *the Valley of Kashmir*, Oxford University Press, London, 1985, p. 312. Also See, Mohammad-ud-din Fouq, *Tarikh-e-Akwaam-e-Kashmir*, p. 421.
7. K. S. Singh, People of India: Jammu and Kashmir, Volume XXV, Ed., Manohar Publishers, New Delhi, 2003, p. 149.
8. Ibid.
9. Ernest F. Neve, *Beyond the PirPanjal Life among the Mountains and Valleys of Kashmir*, Fisher Unwin, London, 1912, p. 81.
10. Pearce Gervis, *This is Kashmir*, Cassell and Company, London, 1954, p. 228.
11. Ibid.
12. Farooq Fayaz, *Kashmir Folklore: A Study in Historical Perspective*, Gulshan Books, Srinagar, 2008, p. 115.
13. Walter, R. Lawrence, *the Valley of Kashmir*, p. 313.
14. Pearce Gervis, *This is Kashmir*, p. 283.
15. Farooq Fayaz, *Kashmir Folklore: A Study in Historical Pers*

काँगड़ी लोकगाथाओं में इतिहास, प्रकृति प्रेम एवं चिंतन

मंजना कुमारी
शोधार्थी
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ. नेहा मिश्रा
सहायक आचार्या
वज़ीर राम सिंह राजकीय महाविद्यालय, देहरी

भारत सांस्कृतिक रूप से सम्पन्न देश है। जहाँ हर क्षेत्र की संस्कृति दूसरे क्षेत्र से भिन्न है। भारत में लोक साहित्य की परंपरा बड़ी समृद्ध है यहाँ की प्रत्येक बोली में साहित्य मौखिक रूप में उपलब्ध है। लोकसाहित्य की प्रत्येक विधा लोकगीत, लोकगाथा, लोकनाट्य, लोकोक्ति, लोकवार्ता आदि लोकजीवन को जीवंतता प्रदान करते हैं। इस साहित्य का संबंध सीधा प्रकृति, मोकमानस, लोकरंजन से है। लोक में रहने वाले लोग उद्योग, व्यवसाय, कई आधुनिक साधनों से वंचित होते हैं, पर इनके पास अद्भुत दस्तकारी है, छोटे- छोटे उद्योग हैं। जिस कारण ये विश्व में अपनी अलग पहचान बनाते हैं।

हिमाचल सांस्कृतिक रूप से समृद्ध एवं विविधता से भरा प्रदेश है। लोकसाहित्य की प्रत्येक विधा यहाँ प्रचलित है। काँगड़ा में लोकगाथाओं की परंपरा पुरानी है। यहाँ वीरता संबंधित, देवी देवताओं संबंधी, प्रेम प्रसंग संबंधी कई गाथाएँ प्रचलित हैं जैसे नूरपुर दा राजा, वज़ीर राम सिंह पठानियाँ, धरमु आदि वीर गाथाएँ हैं। कुंजू चंचलों, धोबन, कांगड़े दा राजा, सुन्नु भुनकु, राँझू फुलमु आदि प्रेम गाथाएँ हैं। रुलह दी कुल, मोहणा, पारियाँ बंदूकां, शामोनार, रानी सुनैना आदि लोक गाथाएँ नीति संबंधी उपदेशों से भरी हैं। ये गाथाएँ मनुष्य जीवन के सुख -दुःख की अभिव्यक्ति हैं। ये गाथाएँ मूलतः संवेदनात्मक हैं। छोटी-छोटी दुःख भरी घटनाएं इनका विषय हैं। ये गाथाएँ पहाड़ी समाज, संस्कृति की झलक है। भारतीय पितृसत्ता, शासकों का दमनपूर्वक रवैया, राजाओं की वीरता की कहानियां, सैनिकों की वीरता, विरह का दुःख, लड़की को ससुराल में मिलने वाला दुःख-दर्द, प्रियतम से दूरी, सास-जेठानी के ताने, योद्धाओं की वीरता, राजाओं के प्रेम प्रसंग, साधारण नायक-नायिका के प्रेम प्रसंग, पारिवारिक संबंधों में किए त्याग, कोई विशेष घटना इन गाथाओं की विषय वस्तु रही है। ये गाथाएँ समाज, काल, स्थिति को समझने में काफी सहायक हैं। अधिकांश लोकगाथाएँ एक ट्रेजडी हैं इनका अंत दुखांत है लेकिन इनमें गहरी संवेदना है जिससे करुण भाव उत्पन्न होता है। हिमाचली लेखकों, गायकों ने इन कथाओं के संकलन, संग्रह और उन्हें लिपिबद्ध करने में विशेष भूमिका निभाई है। आकाशवाणी के माध्यम से भी इनका संरक्षण हुआ है। कलाकारों ने वीडियो, डॉक्यूमेन्टरी रूप में प्रस्तुत किया है।

बीज शब्द :

लोकसाहित्य, लोकगाथा, लोकरंजन, ऋतुविज्ञान, कृषिविज्ञान, आयुर्वेद, आलंबन, उद्दीपन, नकारात्मक ऊर्जा, जीवन मूल्य, उदात्त मूल्य, उपभोक्तावाद, भूमंडलीकरण

हिमाचल पहाड़ी प्रदेश है। हिमाचल में हिमालय की शिवालिक, धौलाधार, ऊपरी हिमालय आदि पर्वत श्रेणियां हैं। किसी भी क्षेत्र की संस्कृति उस भौगोलिक क्षेत्र की उपज होती है और वहीं से उपजता है लोक साहित्य। लोकसाहित्य की कई विधाएं हैं लोकगीत, लोकगाथा, लोकनाट्य, लोकोक्ति, लोक मुहावरे आदि।

लोकसाहित्य उस विशेष क्षेत्र में प्रचलित बोली में ही उपलब्ध होता है। लोकगाथा लोक साहित्य की अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावी विधा है। भारत में लोकगाथा की परंपरा प्राचीन है। ऋग्वेद में भी लोकगाथा का उल्लेख है। महाभारत काल में भी ऐतिहासिक गाथाएँ प्रचलित थीं। भारत के प्रत्येक क्षेत्र में, प्रत्येक लोक में कई गाथाएँ प्रचलित हैं। इन गाथाओं के कई प्रकार मिलते हैं। कृष्णदेव उपाध्याय ने भारत में प्रचलित लोकगाथाओं का वर्गीकरण इस प्रकार किया है- ''1. आकार की दृष्टि से, 2. विषय की दृष्टि से। आकार की दृष्टि से विचार करने से गाथाएँ दो प्रकार की उपलब्ध होती हैं 1.लघु गाथाएँ वे हैं जिनका आकार छोटा है। वृहत गाथाएँ प्रबंधात्मक काव्य के समान हैं।''[1] कुछ लोकगाथाएँ ऐसी होती हैं जो थोड़े अंतराल के बाद कुछ अंतर के साथ बदलती हैं। लोकगाथाओं में सम्पूर्ण लोक, समाज, रीतिरिवाज, संबंध, संस्कार, त्यौहार, रूढ़ियाँ, परम्पराएं आदि सबका चित्रण रहता है। लोकगाथाओं में इतिहास और कल्पना का योग रहता है। इनमें किसी भी लोक के सांस्कृतिक वैभव के चित्र मिलते हैं। ये लोकमानस का प्रतिनिधित्व करती हैं। इनमें लोकरुचि और लोकप्रेरणा होती है। लोकरंजन एवं लोकशिक्षा समाहित रहती है। लोकगाथाएँ सहज, बोधपरक होती हैं जिनमें सरल लोकभाषा का प्रयोग किया जाता है। रामनरेश त्रिपाठी ने लोकगाथाओं को 'हृदय का धन' तथा 'प्रकृति का उद्गार' कहा है। लोकगीतों के संबंध में वे लिखते है ''गीत द्रष्टा स्त्री पुरुष दोनों हैं, परंतु ये स्त्री पुरुष ऐसे हैं जो कागज और कलम का उपयोग नहीं जानते हैं यह संभव है कि एक गीत की रचना में बीसों वर्ष और सैंकड़ों मस्तिष्क होते हैं।''[2]

अंग्रेजी में इस विधा के लिए 'बैलेड' शब्द का प्रयोग किया है। यह प्रबंधात्मक स्वरूप में होती है। लोकगाथा का मौखिक संप्रेषण होता है। डॉ. वंशी राम शर्मा लिखते हैं- ''यह समस्त जातियों की परंपराओं, रीति-रिवाजों, रूढ़ियों, अंधविश्वासों, लोकगीतों, लोकगाथाओं, मुहावरों, कहावतों तथा उन मान्यताओं का साहित्य है जो मौखिक रूप से बौद्धिक संपत्ति के रूप में एक मनुष्य से दूसरे को किसी कृतज्ञता के बिना प्राप्त होते हैं और जिनका संरक्षण करना वह अपना कर्तव्य समझता है तथा जिन्हें वह अगली पीढ़ी को अपनी अर्जित संपत्ति के साथ देता जाता है।''[3] कई लोगों द्वारा गाये जाने तथा समयानुसार शब्दावली के बदलने से इसके मूलपाठ का अभाव हो जाता है। अतः परिवर्तन इसका प्रमुख गुण है। इस विधा में साहित्य अलंकरण की आवश्यकता नहीं होती। किसी भी प्रकार की विद्वता इसको रचने, गाने के लिए आवश्यक नहीं।

लोकगाथा संपूर्ण लोक साहित्य संसार की दृश्य-श्रव्य विधा है। संगीत की पृष्ठभूमि में दीर्घाकार कथा का गेय रूप ही लोकगाथा है। रॉबर्ट ग्रेब्स के मतानुसार लोकगाथाओं में संगीत व नृत्य का मिश्रण होता है। "It is connected with the world ballad and originally meant a song or refraintended as accompaniment to dancing but later coverd any song in which a group of people socially joined.''[4]

लोकगाथा एक ऐसी मनोरंजन से भरी लोकसाहित्य की विधा है जिसमें गीत, वर्णन एवं अभिनेय का संगम होता है जो समाज के सामने आदर्श चरित्रों, आदर्श जीवन मूल्यों को उद्घाटित करता है। डॉ. सत्येन्द्र ने इस विधा को 'धर्मगाथा' नाम दिया। वे लिखते हैं- ''लोक साहित्य का वह अंश जो कहानी प्रतीत होता हो पर जिसके द्वारा किसी ऐसे व्यापार का वर्णन अभीष्ट हो जो साहित्य स्रष्टा ने आदिम काल में देखा था जिसमें अब भी धार्मिक भावना का पुट है- वह धर्मगाथा कहलाता है।''[5]

गाथाओं की परंपरा भारत में बहुत पुरानी है। लोकगाथा में मानव की आदिम परंपरा किसी न किसी रूप में सुरक्षित रहती है। जिस से मानव के बौद्धिक एवं भौतिक विकास को आँकने का कोई न कोई संबंध सूत्र मिल सकता है। भारत में गाथाएँ विभिन्न शैलियों में लिखी एवं कही गई हैं। हिन्दी में आल्हा उदल की कथा, ढोला मारू रा दुहा आदि ऐसी ही गाथाएँ है। यह क्लासिकल गाथाओं से भिन्न हैं। इन्हें लोक जीवन में रहकर ही सीखा जा सकता है। ये भारतीय जन जीवन को समझने का अच्छा माध्यम हैं।

हिमाचल का काँगड़ा जनपद ऐतिहासिक स्थल है। इसका पुराना नाम 'त्रिगर्त' था। काँगड़ा में नूरपुर, गुलेर, जसवाँ आदि कई अन्य रियासतें थीं। यह क्षेत्र पहाड़ों और मैदानों के बीच स्थित है इसलिए पहाड़ी एवं मैदानी संस्कृति की यह साझी विरासत है। काँगड़ा में हिमालय की शैवालिक एवं धौलाधार पर्वत श्रेणियां हैं। यहाँ लोकसंस्कृति एवं लोकसाहित्य की परंपरा समृद्ध रही है। लोकसाहित्य की प्रत्येक विधा इस क्षेत्र में प्रचलित है। डोगरी इस क्षेत्र की मातृभाषा है। डोगरी में लोकगाथा को 'कारक' कहा जाता है। काँगड़ा में प्रचलित लोकगाथा के विभिन्न प्रकार हैं-

1. पौराणिक लोकगाथाएँ जैसे शिव-पार्वती विवाह की गाथा, राधा-कृष्ण के प्रेम की गाथा, राम-सीता आदि से संबंधित।
2. धार्मिक लोकगाथाएँ (देवी देवता संबंधित) जैसे- काँगड़ा देवी की गाथा, ज्वालादेवी की गाथा, सिद्ध चैनों की गाथा, गुग्गा गाथा, भरथरी, भगत सुदामा, बाबा शिब्बोथान की गाथा, नागनी देवी की गाथा आदि।
3. वीर गाथाएँ जैसे राजा जगत सिंह, वज़ीर राम सिंह पठानियाँ, धरमू, प्रथम विश्व युद्ध, द्वितीय विश्व युद्ध, 1962,1971,1999 ई0 (कारगिल युद्ध) के युद्धों में शहीद होने वाले वीरों की गाथाएँ आदि। उदाहरण -

जीणा वे जीणा लोको जीणा उना दा,
जीना ने दितियाँ कुरबानियाँ।
धरती की खातिर जीना जींदा ने वारीयां,
उना दिया अमर कहानियाँ।
कितनियां लाशा तेरे कंडे ते पेईयां,
दसी तू रावियाँ देया पाणियां।
धन ने मावां जिना लाल लूटाएं,
उना दिया अमर कहानियां।

(उन लोगों का जीवन धन्य है जो धरती की खातिर अपनी जान न्योछावर करते हैं, वे मायें भी धन्य हैं जिन्होनें आज़ादी की खातिर अपने बेटों को खोया। हे रावी के पानी! बता तुम्हारे किनारे कितनी लाशें पड़ी थीं)

प्रेमगाथाएँ पात्रों के आधार पर दो प्रकार की मिलती हैं नायक-नायिका प्रेम, राजा-रानी प्रेम प्रसंग संबंधी। प्रमुख प्रेमगाथाएँ हैं राँझू-फुलमु, कुंजू-चंचलों, धोबन, शामोनार आदि। इनके अतिरिक्त साधारण जन के त्याग एवं अन्य कई घटनाओं संबंधी गाथाएँ हैं। कुछ लोकगाथाओं (आख्यायिका) का आधार ऐतिहासिक तथ्य भी हैं। डॉ. परमानन्द इस क्षेत्र की लोकगाथाओं के बारे में लिखते हैं - "शिवालिक की लोकवार्ता की विशिष्टता यहाँ के सांस्कृतिक भूगोल के अनुरूप है। मंदिरों में देवियों और विष्णु (भगवान कृष्ण, भगवान राम, लक्ष्मीनारायण) के मंदिर अधिक हैं। ऐसे मंदिर भी कम नहीं जहां भगवान कृष्ण, भगवान शिव, भगवती दुर्गा, गणेश, हनुमान सब की मूर्तियाँ विद्यमान होती हैं। छोटे-छोटे ग्रामों में देवी-देवताओं के संबंध में परिस्थिति कुछ ऐसी रही है कि एक ग्राम और एक ग्राम देवता। ग्राम देवता को रिझाने के लिए ग्राम-निवासियों की समस्त मानसिक शक्तियां गीतों में प्रवाहित हो उठती हैं। ऐसे गीत ही धीरे-धीरे लोकगाथा का रूप धारण कर लेते हैं।"[6]

हिमाचल देवभूमि है ऐसी कई गाथाएँ हैं जिनमें देवी देवताओं संबंधी कथा कही गई है। अपने स्थानीय देवी देवता को मनाने, खुश करने, उनके पूजा विधान,

उनकी कृपा संबंधी गाथाएँ हैं। इसके अतिरिक्त शिव-पार्वती, राम सीता, कृष्ण के जीवन की किवदंतियों पर आधारित गाथाएँ हैं। हिमाचल में रामकथा ही कई रूपों में मिलती है जिस संदर्भ में सुदर्शन वशिष्ठ ने 'हिमाचल प्रदेश रामकथा के लोक प्रसंग' पुस्तक की भूमिका में लिखा- ''लोगों ने अपने राम को अपनी ही तरह देखा और वैसी ही कल्पना की। जिस प्रकार चंबा के लोकगीतों में भगवान शिव पहाड़ी पर दौड़ते-भागते हैं और गौरा उन्हें घाटी-गहवरों में ढूँढती-फिरती है। इसी तरह लोगों ने जनसाधारण में राम को भी अपनी ही तरह देखा। शिशु रूप में, हर दूल्हे में राम की कल्पना की जाती है। हमारे प्रदेश में रामायण की एक अलग ही लोक परंपरा रही है जो कई जगह मूल रामायण से भिन्न है।''[7] लोक में प्रचलित किवदंतियों (गाथा) की प्रामाणिकता पर संदेह है। ये गाथाएँ तथ्यपूर्ण हों या ना हों, फिर भी ये तत्कालीन समाज को समझने एवं तथ्यों की खोज के लिए रास्ता बनाती हैं। हिमाचल में प्रचलित कुछ गाथाएँ ऐसी है जिनमें अन्य जगहों में प्रचलित गाथा से भिन्न बात कही गई है जैसे -

राधा ते रुकमण दोमे सक्कियाँ पैणा,
चल पैणे जोग धयाइयों लेईये।
धोती जे छेकी कान्है चोली बनाई,
अंग विभूति लाई वो लेई ऐ।
कुथू ते राधे तेरा हासा तमाशा,
ते किथे योग ध्याया है।

अर्थात राधा और रुक्मणी दो सगी बहनें हैं। दोनों कृष्ण की बेपरवाही से दोनों परेशान होकर योग धारण कर लेती हैं। जब कृष्ण को इसकी सूचना मिलती है तो वह दोनों को मनाने जाते हैं। इसके अतिरिक्त कृष्ण जन्म, रासलीला से संबंधित बहुत सी गाथाएँ मिलती हैं।

काँगड़ा की एक लोकगाथा में गंगा-गोरा को सौतन कहा गया। उदाहरण -

धूडू नचदा जटा ओ खलारी ओ,
नाच धुडूआ बजे तेरे बाजे ओ।
गंगा गोरा पाणिए जो गेइयां ओ,
गौरा पुछदी क्या लगदी तू मेरी ओ।
गंगा बोलदी मैं सौतन तेरी ओ।।

डॉ. सत्येन्द्र ने लोकगाथाओं का संबंध पुरातत्व, इतिहास, समाज, नृतत्व, भाषा, मनोविज्ञान, चिकित्सा, दर्शन आदि विज्ञानों से भी जोड़ा है। वे लिखते हैं- ''लोकवार्ता में विविध ऐतिहासिक-अनैतिहासिक सूत्रों का ऐसा लोकतात्विक गुंफन होता है कि पुरातत्व को उसमें संकेत लेकर प्रवृत होने की प्रेरणा मिल सकती है और समय पाकर उपलब्ध सामग्री में से आवश्यक तन्तु निकालकर कड़ी जोड़ सकता है। इतिहास के वृतों के लिए ही नहीं, सांस्कृतिक गवेषणा और अनुसंधान में भी लोकवार्ता और लोकसाहित्य होता है .... इतिहासकार लोकवार्ता का दो रूपों में उपयोग करता है- एक तो जैसा ऊपर उल्लेख किया गया, इतिहास के कच्चे मसाले के रूप में, जिसमें ऐतिहासिक तथ्य के दाने निहित रहते हैं। दूसरे लोकवार्ता का लोक जीवन से बहुत घनिष्ठ होता है। उसमें लोक रूचि-अरुचि और उसके संस्कार प्रतिबिम्बित रहते हैं।''[8] अतः ये गाथाएँ इतिहास को व्याख्यायित करने में सहायक हैं।

हिमाचल के लोगों में प्रकृति प्रेम अद्भुत है। प्रकृति को देवी का दर्जा प्राप्त हुआ है। लोकगाथाओं में प्रत्येक जीव, पौधा, वनस्पति, जड़ी बूटी के प्रति श्रद्धा जताई गई है। पक्षियों को पारिवारिक सदस्यों की तरह प्रस्तुत किया गया है। 'सैले बागे दा मोर' लोकगाथा में नायिका राजा को मोर न मारने के लिए कहती है-

परियाँ बंदूका ओ राजा होया तैयार, मारी जे लैणा सैले बागे दा मोर।

ना तूसा मारेओ राजा चिड़िया तोते,
ना तूसा मारेओ सैले बागे दा मोर।

क्या वे तां लगदे रानी चिड़िया तोते,
क्या वे ता लगदा सैले बागे दा मोर।

ससु दे जाये राजा चिड़िया तोते, आम्मां
दा जाया सैले बागे दा मोर।

परियाँ बंदूक ओ राजे खेलया शिकार,
मारी जे लेआँदा सैले बागे दा मोर।

उठो जी रानिए तूसी करेओ रसो,
हवल बनायो सैले बागे दा मोर।

लक्के भी पीड़ मेरिया बखिया भी पीड़,
मैतो नी बणदा सैले बागे दा मोर।

उठो जी रानिए तूसी खाइलो रसो,
हवल बनाओ सैले बागे दा मोर।

कोठे ते चड़के रानिए दिति जे शाल,
जान गवाई वीरा तेरे ही नाल।

इस गाथा में अद्भुत पक्षी प्रेम वर्णित है तथा भारतीय पितृसत्ता की झलक भी है। रानी ससुराल में एक मोर को देखती रहती है। उसे उस मोर से विशेष लगाव है। वह उसे अपने मायके से आया हुआ मानती है और 'भाई' कहती है। राजा मोर को मार देना चाहता है। रानी मना करती है और समझाती है कि अन्य पक्षी सास द्वारा जन्मे गए है लेकिन मोर को मेरी माँ ने जाया है यानि मोर मेरा भाई, मेरा हमदर्द है। यह समझाने के बाबजूद राजा मोर का शिकार कर उसे पकाता है। रानी मोर के न रहने की खबर सुनते ही छत से कूदकर जान दे देती है और कहती है कि मेरे वीर मोर! मैंने तेरे साथ ही जान दे दी है।

लोकसाहित्य में ऋतुविज्ञान, कृषि विज्ञान, आयुर्वेद संबंधी ज्ञान है। इसमें विज्ञान भी सन्निहित है। बहुत सारी गाथाओं में नदियों का जिक्र है। रावी, चिनाब, सतलुज, ब्यास तथा अन्य छोटी नदियों के प्रति प्रेम एवं श्रद्धा व्यक्त की गई है। बहुत सारी गाथाओं का आरंभ प्रकृति प्रशंसा से होता है। गीतों में प्रकृति आलंबन और उद्दीपन दोनों रूपों में व्यक्त हुई है। अधिकांश लोकगीतों में प्रकृति की अनुपम छटा के मनोहारी चित्र हैं जो दृश्य बिंब बनाते हैं तथा नद-नद करती नदियां, छल-छल झरने श्रवण बिम्ब बनाते हैं। उदाहरण-

नी मेरा देश काँगड़ा न्यारा,
डुग्गी डुग्गी नदियां अरु सैली सैली धारा।
औ सैली सैली धारा।।
छैल छैल गवरु अरु बांकियाँ नारां,
औ बांकियाँ नारां।

काँगड़ी लोकगाथाओं में प्रकृति को माँ, सखी के रूप में वर्णित किया गया है। प्रकृति लोगों के दुख में दुखी और सुख में सुखी होती है। पक्षी भी लोगों के साथी हैं। पक्षियों को भी अपने देश (जगह विशेष) से प्रेम है। किन्हीं-किन्हीं गीतों, गाथाओं में पक्षियों के सौन्दर्य का वर्णन है। लोकगीतों में जिन पक्षियों का वर्णन है वे हैः- तोता, मैना, मोर, मुनियाँ, मोनाल, कोयल, कौवा, कुक्कड़, बटेर आदि। पक्षी 'तरीड़ा' का बोलना अपशकुन माना गया है। कई लोकगाथाओं में पक्षियों से संवाद है। खासकर औरतें अपना दुख-दर्द कहती हैं। 'रुलह दी कुल' गाथा में नायिका पक्षियों से कहती है कि हे मेरे प्रिय पक्षियों! मेरे भाइयों! आप क्यूँ मेरे दर्द में दुखी हो रहे हो मुझे ससुर का संदेश मिल गया है। इस कथा की नायिका कुलह में पानी लाने के लिए, जनकल्याण के लिए अपनी बलि देती है। इसके अलावा क्रोन्च (कूनजा) पक्षी का जिक्र भी आया है।

कुछ ऐसी मान्यताएं लोक में प्रचलित हैं कि पेड़ से बात करने पर नकारात्मक ऊर्जा का शमन हो जाता है। अगर बुरे सपने आएं तो 'गरने' के साथ सुनाना चाहिए। लोकसाहित्य में पेड़ों से संबंधित गीत भी हैं -

तूता वे तूता तेरियाँ ठंडीयां छावां,
तूता दे हेठ वारी मैं खड़ियाँ।
खड़िया खड़ोतिया उप्पर बुर पेया,
दिखदिया सुणदिया माइयाँ दूर गेया।
दूर गेओ जी परदेस गेयो,
बागा दिया मालणी ने घेरी लेओ।

इस गीत में शहतूत की छाँव की प्रशंसा की गई है। इसके अतिरिक्त अन्य पेड़ भी हैं जो लोकगीतों व लोकगाथाओं में वर्णित हैं। लोकसाहित्य में धरती को माँ समान माना गया है। जिसमें असीम सहनशीलता है।

लोकगीतों एवं लोकगाथाओं में ऋतुओं, मानव लक्षणों एवं पशु पक्षियों की विभिन्न हरकतों से शकुन, अपशकुन की जानकारी मिलती है। मुंडेरे पर यदि प्रातः काल काग बोले तो ये किसी प्रियजन के आगमन की सूचना है। इसके अतिरिक्त आम, नींबू, संतरा आदि फलों से संबंधित गीत हैं। पकी फसल काटते, कृषि कार्य संबंधी कई गीत हैं जिनमें खेती से सम्बद्ध आवश्यक बातें कही गई हैं। लोकसाहित्य में जड़ी बूटियों की पहचान, उनके प्रयोग संबंधी जानकारी भी मिलती है। अतः प्रकृति में ही मनुष्य का जीवन संभव है। हिन्दी साहित्य में भी कवियों ने भी प्रकृति के प्रति चिंता व्यक्त की है। भवानी प्रसाद मिश्र लिखते हैं -

"कहीं नहीं बचे हरे वृक्ष
कहीं नहीं बचे
न ठीक सागर बचे हैं
न ठीक नदियाँ
पहाड़ उदास हैं
और झरने लगभग चुप।"[9]

लोकगाथाओं में आदर्श जीवन मूल्यों की व्यापकता है। इन गाथाओं में कुछ चरित्र ऐसे होते हैं जो आदर्श बन जाते हैं। काँगड़ी लोकगाथाओं में नारी हृदय की अभिव्यक्ति संवेदना के साथ हुई है। लोकगाथाओं की नारियां तन और मन से सुंदर हैं। पवित्रता, सतीत्व और शीलनता, उदातत्ता, सहनशीलता, मातृत्व का आदर्श इनमें विद्यमान है। इनमें अहम भाव बिल्कुल नहीं है। ये कम बोलने वाली, कोमल हृदय वाली और विनम्र हैं। इनमें सेवा, भक्ति और त्याग आदि गुण स्वाभाविक रूप से निहित हैं। ये धार्मिक, सामाजिक समता और शारीरिक श्रमशीलता के उदात्त मूल्य स्थापित करती हैं। लोकगाथाओं में नारी के दैहिक सौन्दर्य तथा उसके हृदय में बसे प्रेम के संयोग-वियोग की स्वच्छंद अभिव्यक्ति मिलती है। लोकसाहित्य के माध्यम से जीवन के दुखों, नारियों के चिंतन को आसानी से समझा जा सकता है जो स्त्री विमर्श में सहायक है। श्याम परमार इस संबंध में लिखते हैं- "भारतीय लोकसाहित्य के अध्येतों को स्त्रियों के लोक साहित्य का अध्ययन साहित्य की दृष्टि से करते हुए उसे मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, आर्थिक एवं ऐतिहासिक पहलुओं की कसौटी पर भी कसना चाहिए। वर्षों से संतप्त सास, ननद और भौजाई तीनों से बिद्ध, पति की अनुगमिनी, बेटे की देवलदार और बुढ़ापे में उपेक्षिता नारी के भिन्न-भिन्न रूप उसी के वांग्मय में मिलते हैं।"[10]

लोकगाथाओं का शिल्पपक्ष बड़ा सहज, सरल होता है। इनमें किसी प्रकार का शास्त्रीय बंधन नहीं होता। हिमाचल की अधिकांश लोकगाथाएँ संवाद शैली में हैं। जिसमें नायक, नायिका से संवाद करता है जैसे कुंजू- चंचलों । इसके अतिरिक्त कहीं- कहीं दो सखियों का आपस मे संवाद मिलता है। ये गाथाएँ रुचिकर शैली से प्रारंभ होकर घटना की क्रमबद्धता के साथ परिणति की ओर अग्रसर होती हैं। लोकगाथाओं में कथा एवं गेयता मुख्य रहती है। सम्पूर्ण कथा को व्यक्त करने के लिए एक के बाद एक पद कथा को परिणति की ओर ले जाता है। इस संबंध में सत्यव्रत सिन्हा का कथन है- "लोकगाथा एक मौखिक साहित्य है अतः उसकी काव्य सामग्री संतरणशील होती है.. लोक गाथाएँ आशुकवित्व तथा परिवर्तन एवं परिवर्द्धन लिये रहती हैं... लोकगाथाओं में अनलंकृत एवं सहज सौन्दर्य होता है।"[11]

अतः लोकसाहित्य किसी विशेष क्षेत्र को जानने, समझने का मुख्य स्त्रोत है। लोकसाहित्य को संरक्षित एवं संग्रहित करना हमारा कर्तव्य है। लोकगाथाएँ ही किसी क्षेत्र की संस्कृति को कालजयी बनाए हुए है। लोकनृत्य, लोकविश्वास तथा लोक संस्कृति ही लोकगाथा का सौंदर्य है।

निष्कर्ष :

हिमाचल के प्रत्येक क्षेत्र या सभी जिलों में अलग-अलग प्रकार की लोकगाथाएँ मिलती हैं। इन लोकगाथाओं में मनुष्य जीवन की नश्वरता एवं प्रकृति की शाश्वता का दर्शन समाहित है। कुछ लोकगाथाओं की संवेदना एक जैसी है पर भाषा में थोड़ी भिन्नता है या पात्रों के नाम में थोड़ा बदलाव है। ये गाथाएँ त्याग, शिक्षा एवं प्रेम की परिचायक हैं। इनके अलग-अलग पाठ मिलते हैं। इनके मूल भाव में प्रेम, वीरता, नैतिकता, आध्यात्मिकता निहित है। लोकगाथाओं में लोकरंजन के साथ-साथ लोक शिक्षा निहित रहती है। इनमें लोक जीवन के मनोरम एवं बहुरंगी चित्र मिलते हैं जो उस लोक, समय एवं समाज, परंपराओं, लोकाचार, लोकदर्शन को प्रस्तुत करते हैं। लोकगाथाओं के पात्र तथा उनके द्वारा किए गए कार्य आदर्श बनते हैं। इनमें पारिवारिक संबंधों और सामाजिक संबंधों की संवेदनात्मक अभिव्यक्ति मिलती है। गिरते जीवन मूल्यों, शहरी जीवन में अकेलेपन, तनाव से मुक्त होने के लिए लोक जीवन एवं लोकसाहित्य को जानना नितांत आवश्यक है। जीवन को सरस एवं खुशहाल बनाने के लिए इससे जुड़ना और इसमें जीना जरूरी है। उपभोक्तावादी संस्कृति, भूमंडलीकरण के युग में लोकजीवन से जुड़ाव मनुष्य को मनुष्य बनाए रखने में सहायक है।

संदर्भ सूची :

1. 'लोक साहित्य की भूमिका', कृष्णदेव उपाध्याय, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण 2019, पृष्ठ संख्या-121
2. 'ग्रामगीत', कविता कौमुदी भाग-5, पं० रामनरेश त्रिपाठी, हिन्दी मंदिर प्रयाग, संस्करण 1986 विद, पृष्ठ संख्या-21
3. 'किन्नर लोक साहित्य', डॉ० वंशी शर्मा, ललित प्रकाशन बिलासपुर, प्रथम संस्करण 1976, पृष्ठ संख्या 34
4. Graves Robert, 'The English Ballad-a short critical survey', Eeanest Bern Ltd. London., 1927, Page No. 81
5. 'लोक साहित्य विज्ञान', डॉ सत्येन्द्र, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी आगरा, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ संख्या-193
6. 'काँगड़ी शब्द संग्रह', डॉ० परमानन्द, भाषा विभाग पंजाब, द्वितीय संस्करण 2002, पृष्ठ संख्या-2
7. 'हिमाचल प्रदेश रामकथा के प्रसंग', सं सुदर्शन वशिष्ठ्, डॉ० विद्याचन्द, हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी शिमला, प्रथम संस्करण 2015, पृष्ठ संख्या-4
8. 'लोक साहित्य विज्ञान', डॉ० सत्येन्द्र, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी आगरा, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ संख्या-59
9. http://kavitakosh.org/kk/
10. 'भारतीय लोक साहित्य', श्याम परमार, राजकमल प्रकाशन बंबई, संस्करण 1954, पृष्ठ संख्या-43
11. 'भोजपुरी लोकगाथा', सत्यव्रत सिन्हा, हिन्दुस्तानी एकेडेमी उत्तर प्रदेश इलाहाबाद, संस्करण 2000, पृष्ठ संख्या-20

लोक वाद्यों एवं लोक नृत्य में लोक-जीवन की व्याख्या

श्रेया पांडेय
शोध छात्रा
गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय
काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ0 रामशंकर
सहायक आचार्य,
गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय,
काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सारांश :

स्थापत्य, मूर्ति, वास्तु, काव्य और संगीत इन पाँच ललित कलाओं में संगीत को सर्वोत्कृष्ट उदात्त कला का स्थान प्राप्त है। वही संगीत, गीत, वाद्य और नृत्य इन तीनों के मिश्रण का अमूर्त फल है संसार में कोई भी कला हो या विद्या हो उसके दो पक्ष सर्वदा से दृष्टिगोचर होते हैं। एक शास्त्रपक्ष दूसरा लोकपक्ष। यह कहना सर्वथा उचित होगा की लोकरीति या परम्परा, शास्त्र रीति या परम्परा से बलिष्ठ होती है। वाद्य एवं नृत्य में भी यह लागू होता है की जब हम आत्मरंजन की बात करते हैं तो कहीं न कहीं नियमों पर हो जाते हैं। और केवल रंजन परक संसाधनों का अवलम्बन ग्रहण करते हैं। जो सीधा सीधा लोक वाद्य या नृत्य का अनुसरण या अनुगमन माना जाता हैं।

सूचक शब्द :

आडम्बरयुक्त, तन्यमयता, हुड़क, दंहकी, चलचित्र।

स्वरों में तन्मयता होने पर लय की उत्त्पत्ति होती है। संगीत में लय और नृत्य दोनों का आवश्यक अंग है। इसी लय के आधार पर लोक-गीतों का निर्माण हुआ है। ''लोक शब्द संस्कृत के 'श्लोकृ दर्शने' से घत्र प्रत्यय लगने पर बना है। इस धातु का अर्थ है देखना। लट् लकार में अन्यपुरुष एक वचन का रूप लोकते है। इस प्रकार लोक शब्द का अर्थ है-देखनेवाला। अर्थात समस्त जन-समुदाय को जो इस कार्य को करता है लोक कहा जा सकता है।'[1] ''सर्व-साधारण लोग जो कुछ सोचते हैं और जिस विषय की अनुभूति करते हैं उसी का प्रकाशन उनके साहित्य में पाया जाता है। ग्रामीण जनता विभिन्न संस्कारों और ऋतियों में गीत गा-गा कर अपना मनोरंजन करती है।[2] लोक-गीतों के दो अनिवार्य सहकारी नृत्य और वाद्य है। शास्त्रीय विवेचना के अनुसार नृत्य और वाद्य कई विभागों में विभक्त हो गए है। उदाहरण के लिए भारतीय नृत्य को चार परम्पराओं का माना गया है-

1. मणिपुरी
2. कत्थक
3. कत्थककली
4. भरतनाट्यम

इसी प्रकार वाद्यों को भी अलग-अलग करने के लिए शास्त्रकारों ने प्रयत्नों के आधार पर उनके भेद कर दिए हैं-

1. फुंकर बजाए जाने वाले (वंशी, शहनाई आदि),
2. तारों से बने हुए (सितार, सारंगी, वीणा आदि),
3. चमड़े से मढे जाने वाले (तबला, ढोलक आदि)।

लेकिन शास्त्रीय नृत्य और वाद्य की व्यापकता लोक-नृत्य और वाद्य की व्यापकता लोक-नृत्य और वाद्य को अपने-आप में बाँध लेने में सर्वथा असमर्थ रही है। इसका भी कारण हृदय और बुद्धि का अंतर रहा है। शास्त्रीय नृत्य और वाद्य, आडम्बरयुक्त बौधिक साधना है। इसके विपरीत लोक-नृत्य और लोक वाद्य, हृदय से प्रकृत गुणों के आडम्बरहीन आलम्बन हैं। इनके अभिव्यक्तिकरण ने जीवन को सरसता प्रदान कर लोक-संस्कृति और कला को युग-युग से सुरक्षित रखा है। अगर विचार कर देखा जाए, तो संगीत और वाद्य के शास्त्रीय रूप का उद्गम लोक-जीवन का ही संगीत और वाद्य है। लोक जीवन में लोक-गीतों की एक चिरन्तन धारा अनादी काल से चली आ रही है। अनपढ़ एवं सामान्य जनता के पास शब्द तो थोड़े हैं और भाव अधिक द्य अतः अपने भावो को प्रकट करने के लिए स्वर एवं लयात्मक ध्वनियों का सहारा लिया जाता है मेरे अपने विचार से ये लोक-गीत मानव-हृदय की प्रकृत भावनाओं की तन्यमयता की तीव्रतम अवस्था की गति हैं, जो स्वर और ताल को प्रधानता न देकर लय या धुन (ध्वनि) प्रधान होते हैं। लय को यदि किसी वैज्ञानिक ढंग से ध्वनि-लहरों में बदला जाए तो निश्ंिचत रूप से एक झंकार का रूप होगा। यही झंकार हमारे लोक-गीतों की आत्मा है। तन्यमयता की चरम स्थिति लय है। किसी स्थिति में तन्मयता लाने के लिए इस झंकार की आवश्कयता है। इसीलिए लोक-गीतों में हृदय को तन्मय करने के लिए लय (झंकार) की आवश्यकता पड़ी, फलस्वरूप वाद्यों का प्रयोग प्रारम्भ हुआद्य लोक-जीवन से लेकर साधना-पथ तक इस झंकार का अपना महत्व हैद्य कबीर ने हृदय-वीणा से झंकृत होने वाली इसी झंकार को अनहद नाद की संज्ञा दी है नृत्य में इसी (झंकार या लय) के दो रूप हो जाते है- तांडव में अंतिम विनाश की अवस्था का प्रदर्शन और लास्य में सृजन की मुस्कान का मुद्राओं द्वारा अभिव्यितकरण। इन्हीं आधारों पर मैं इस तन्मयता की अवस्था से उत्पन्न लय की स्थापना को लोक-वाद्यों की आवश्यकता का करण मानती हूँ।

लोक-कलाओं ने कभी बंधन स्वीकार नहीं किया। जीवन-कला में भी जन-जीवन ने मुक्ति के लिए साधना की है। हमारे लोक-वाद्यों ने भी बंधन स्वीकार नहीं किये। आज तो गाँव में हारमोनियम भी पहुँच चुके हैं, किन्तु ये हमारे बाह्याडम्बरों के प्रभाव से सरल लोक-जीवन में वाद्य प्रत्येक स्थान पर वर्तमान रहते हैं। प्रातःकाल जब स्त्रियाँ चक्की चलाती हैं, तो उसकी घरघराहट ही उनके स्वर में मिलकर वाद्य का रूप धारण कर लेती है। बच्चा पैदा होने पर माताओं की प्रसन्नता के मूक स्वर को थाली वाद्य द्वारा स्वर मिल जाते हैं। ढेंकली चलनेवाले आदमी पानी की सरसराहट और छप-छप की ताल पर ही गा चलते हैं। गाड़ी हांकने वाला व्यक्ति बैलों की घंटियों और खुरों की आवाज से ही अपना स्वर मिला लेता है। बर्तन माँजनेवाली स्त्री बर्तनों की खनखनाहट को ही अपने गीत का माध्यम बना लेती है धोबी कपड़े की फटाफट से ही अपने स्वर को मुखरित कर संगीत की सृष्टि करता है। श्बारहवीं शताब्दी की एक कवित्री विज्ज्का ने धान कूटने वाली स्त्रितियों के गीत का बड़ा मनोहारी चित्र प्रस्तुत किया है -

विलासमसृणल्लसन् मुसललोलदोः कन्दली
परस्पर परिस्खलद् वलयनिःस्नोद्वन्धुराः।
लसंति कलहूंकृति प्रसभकम्पितोर स्थल
त्रुटद्गमकसंकुलाः कलभगगन्दनी गीतयः॥

अर्थात स्त्रियाँ धान कूट रहीं हैं और साथ-गीत भी गा रही हैं। मूसल उठाने और गिराने के कारण उनकी चूड़ियाँ खान-खान कर है। उनके वक्षस्थल हिल रहे हैं। मीठी हूंकार की आवाज तथा चूड़ियों की खनक से मिलकर उनके विचित्र आनंद पैदा कर रहे हैं।[4] इस प्रकार हम प्रत्येक स्थान पर गाने वाले के लिए वाद्य उपस्थित पाते हैं। यदि इन सब अवस्थाओं की ध्वनियों को ध्वनि-संचालन यंत्र द्वारा संचित करके उनकी व्याख्या की जाए, तो उनमें संगीत के बहुत से ऐसे नवीन तत्व मिल सकते हैं, जो जीवन के समीप हृदय की वस्तु होंगे। प्रायः सभी शास्त्रीय वाद्यों का विकास लोक वाद्यों को ही माध्यम बनाकर हुआ है।

बंसी या बांसुरी को शायद पहले चरवाहे नरकुल या बाँस काटकर बना लेते थे और बजाया करते थे। कृष्ण का बंशी बजाकर गायों को बुलाना इसका प्रमाण है। किंगरी से सितार, सारंगी आदि का विकास हुआ होगा। किंगरी, लौकी (गोल) या नारियल में एक लकड़ी लगाकर सितार की भाँती बना ली जाती है, जिसमे तारों के स्थान पर घोड़े की पूंछ के बाल लगा लेते हैं और बालों की प्रत्यंचा बनाकर एक धनुषाकार लकड़ी से ही उसे बजाते हैं। लोक-जीवन में वाद्यों के हमें दो स्वरुप मिलते हैं-

1. मनुष्य की क्रियाएँ वाद्य का स्वरुप धारण कर लेती हैं, जैसे ढेकली के चलाने से उत्त्पन्न ध्वनि। इन क्रियाओं को हम सुविधा के लिए 'क्रिया-वाद्य' नाम दे सकते हैं।
2. जहाँ किसी वस्तु को हम वाद्य के स्वरुप में पाते हैं, लोकगीतों में प्रयुक्त होने वाले ताल वाद्य - माडल, ढोलक, नगाड़ा, नौबत, डफ, डमरू, खंजरी या तार वाद्य - सारंगी, इकतारा, सितार और सुषिर वाद्य - बाँसुरी, बीन, शहनाई, शंख आदि हैं[5] जैसे ढोलक।

इन वस्तुओं को हम 'वास्तु-वाद्य' का नाम दे सकते हैं। इस प्रकार के वास्तु-साधनों में ढोलक ने सबसे महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर रखा है। पंजाब से लेकर मध्य भारत तक तथा पश्चिम के सिंध प्रान्त से बंगाल, आसाम तक इसका प्रमुख स्थान है। दक्षिण और पश्चिम में परिवर्तित रूप ढफ काम में लाइ जाती है। ढोलक को स्त्रियों और पुरुषों से समान रूप में आदर मिला है। भिन्न-भिन्न जातियों में इसके भिन्न-भिन्न प्रकार हो गए हैं। उदाहरण के लिए कहार जाति के लोग डमरुनमा ढोलक का प्रयोग करते हैं, जिसे 'हुड़क' या 'दंहकी' कहते हैं। इसे एक ओर ही बजाया जाता है, फलस्वरूप ढोलक से भिन्न प्रकार की ध्वनि निकलती है, जो उनके अटूट स्वर में तन्मयता ला देती है। ढफ को भी हम आधी ढोलक कह सकते हैं। इसका घेरा ढोलक से बड़ा होता है।

लोक-नाट्यों में तरशे और तबले आदि का भी प्रयोग होता है। नौटंकी में नगाड़ों की प्रधानता होती है। नौटंकी में नगाड़ों की प्रधानता होती है लेकिन ये सभी वाद्य किसी-न-किसी प्रकार से शास्त्रीय संगीत से सम्बन्धित हैं। नौटंकी का भी विकास नागरिक जीवन के विकास से हुआ है इसलिए हम उसे लोक-जीवन से सम्बन्धित नहीं कह सकते हैं। लोक-जीवन तो आडम्बरहीन है पक्ष-प्रधान कलाओं को ही प्रश्रय देता है। लोक-वाद्यों में ऐसे वाद्य आते हैं, जिनका विकास और प्रसार लोक-जीवन तक ही सीमित है। उदाहरण के लिए भिखमंगें दो लकड़ियों को, जो चपटी होती है, बजाते हैं। उनसे निकलने वाली 'कट-पट' की ध्वनि गायक के स्वरों में पूर्ण समय स्थापित करती है। साधु उससे एक कदम आगर बढ़कर अपने लोहे के चिमटों का वाद्य रूप में प्रयोग करते हैं। चिमटों को दोनों पंक्तियों और कड़े की सहायता से बजाते हैं। इसका प्रयोग बैरागिया धुन के गीतों में विशेष होता है। इस प्रकार साधुओं का संगीत अपना अलग स्थान रखता है। साधुओं ने संगीत-कला के विकास में सबसे अधिक सहयोग दिया है। तानसेन और बैजू बावरा के गुरु बाबा हरिदास एक साधु ही थे।

संगीत में सात स्वर माने गए हैं। स्वरों के सम्बन्ध में एक शब्द 'ग्राम' भी शास्त्रीय संगीत में प्रयुक्त हुआ है। ग्राम का संस्कृत में गाँव या ठाम के लिए प्रयोग हुआ है। संगीत में ग्राम उस स्थान (ठाम) को कहते हैं, जहाँ स्वरवाले यंत्र में ये सप्त स्वर पाए जाते हैं। मेरा अपना विचार है कि शायद संगीत-शास्त्रियों ने भिन्न-भिन्न गाँवों में भिन्न-भिन्न प्रचलित प्रणालियों के वादन को ही एकत्र कर सप्त स्वरों का निर्माण किया होगाद्य इस मत से वाद्य-स्वरों के आविष्कारक ग्रामवासी ही रहे हैं। भरत के 'नाट्यशास्त्र' में भी संगीत के विषय में प्रयुक्त शब्दों में 'ग्राम' और 'जाति' विशेष ध्यान देने योग्य हैं। अनुमान के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रारम्भिक संगीत (गीत,नृत्य,वाद्य) अवश्य ही ग्रामों और जातियों

से सम्बंधित रहा है। फलस्वरूप संगीतज्ञों ने संगीत की व्याख्या में इन शब्दों को स्थान दिया था और आज उनका प्रयोग विशेष अर्थ में होने लगा है।

लोक-नृत्य सभी कलाओं में अति प्राचीन है। मनोविज्ञान के आधार पर मनुष्य में भाव-प्रकाशन की आकांक्षा जन्मजात मानी गई है। सृष्टि के प्रारम्भ में भावहीन मानव ने भाव-प्रकाश के लिए शरीर के हाव-भाव का ही आश्रय लिया होगा। भाव-प्रकाशन की सार्थक मुद्राओं को ही भाषा ने 'नृत्य' कहा है; निरर्थक मुद्राओं का नाम 'नृत्य' है। शास्त्रकारों ने भी संगीत को दैवी सृष्टि माना है। ताल की उत्पत्ति के विषय में एक और मत है कि तांडव से 'ता' और लास्य से 'ल' लेकर ही 'ताल' का निर्माण हुआ है। ताल नृत्य और संगीत दोनों का आवश्यक अंग है। इससे यह ज्ञात हो जाता है कि नृत्य ही पहले प्रारम्भ हुआ। वास्तव में बौद्धिक विकास ने ही लोक-जीवन से नागरिक-जीवन का निर्माण किया है और लोक-जीवन के विशिष्ट अंगों को परिष्कृत कर अपना बना लिया है। लेकिन, हमारे लोक-जीवन ने वाद्यों की भांति नृत्य में भी किसी बंधन को स्वीकार नही किया। लोक-जीवन के काल और देश मानव-हृदय के कारण सिमित हो गए हैं। लोक-जीवन में एक जीवन-साम्य है। प्रत्येक स्थान के लोक-जीवन में एक ही तत्व मिलते हैं। लोक-नृत्य साधारणीकरण के क्षेत्र में इतना व्यापक है कि उसे समझने के लिए किसी बौद्धिक यत्न की आवश्यकता नहीं पड़ती। इस साधारणीकरण का भी कारन मानव हृदय कि रागात्मक प्रवृत्तियां हैं। भाषा के कारण आज लोक-नृत्य की परिधि काफी संकुचित हो गई है। आज के लोक-नृत्य आनंद-प्रदर्शन और देवी-आराधना तक ही सीमित हैं। फिर भी इनमें शास्त्रीय नृत्य के सभी मूल तत्व मिलते हैं।

लोक-नृत्यों को जातियों के आधार पर विभाजित किया जा सकता है। शिक्षा और सभ्यता के प्रसार ने इस कला को उच्च जातियों में समाप्त कर दिया है। किन्तु, निम्न वर्ग की सभी जातियों में नृत्य पाया जाता है। अवध-प्रान्त के गाँवों में कत्थक और ब्रजवासी पाए जाते हैं। वास्तव में ये जातियाँ नहीं, किन्तु अपने पेशे के कारण जातियाँ बन गई हैं। इन कत्थकों से मेरा मतलब लखनऊ के कत्थक-शैली के नृत्यकारों से नहीं। मेरा मतलब एक वर्ग-विशेष से है, जो पुत्र-जन्म आदि के अवसर पर नाचकर अपनी जीविका उपार्जित करता है। इन्हीं से मिलती हुई जाति ब्रज-वासियों की है। इन जातियों के अतिरिक्त सभी आदिवासी जातियों में भी नृत्य-कला पाई जाती है। कहार लोग अपने यहाँ शादी आदि उत्सवों पर 'स्वांग' करते हैं, जो नृत्य-प्रधान होते है। ये लोक-नृत्य कत्थक और कथकली के सम्मिश्रित रूप में मिलते हैं। कहारों और चमारों में प्रायः पुरुष ही स्त्री वेश धारण कर नृत्य करते हैं। कहार जाती में नृत्य का विशेष महत्व है। गाँवों में यह भी देखने को मिलता है कि प्रायः हुड़क बजानेवाले कहार और नृत्य करनेवाली स्त्री में होड़ लगाकर नृत्य होता है और नृत्य में परास्त होने पर पुरुष का स्त्री पर अधिकार हो जाता हैद्य इसी प्रकार यदि वह हुड़क बजाने में परास्त हुआ, तो उस पर नर्तकी-स्त्री का अधिकार हो जाता है।

आसाम की आदिवासी जातियों के नृत्य का मणिपुरी नृत्य से काफी साम्य है। मणिपुरी स्वयं लोक-जीवन से विकसित नृत्य-प्रणाली है। जातीय नृत्यों में इन जातियों का नृत्य भाव-प्रदर्शन में सबसे अधिक शक्तिशाली है। कोल, भील जातियों में भी, जो उड़ीसा और मध्य भारत में है, नृत्य का अविकसित रूप मिलता है। दक्षिण की आदिम जातियों के नृत्य भी काफी रोचक होते हैं। उत्तर और दक्षिण के लोक-गीतों की ध्वनियों और नृत्य के मूल तत्वों में साम्य है। इसलिए यह कहना कठिन है कि इन कलाओं में किसका किस पर प्रभाव पड़ाद्य दक्षिण-प्रान्त के कुछ भागों में भरतनाट्यम और कत्थक तथा कुछ में भरतनाट्यम और कथकली का मिला-जुला रूप मिलता है। बम्बई तथा उसके उत्तरी प्रान्तों-सौराष्ट्र और राजपूताना तक की जातियों में भरतनाट्यम और कथकली का मिश्रित रूप मिलता है। पंजाब-प्रान्त के

लोक-नृत्यों पर अन्य शैलियों की अपेक्षा कथकली का विशेष प्रभाव पड़ा है। यदि इन नृत्यों की सूक्ष्म विवेचना की जाए, तो प्रायः सभी जातियों के नृत्यों के एक ही तत्व मिलेंगे।

देवी की आराधना के लिए होने वाले लोक-नृत्यों मर रति-मुद्राओं का बाहुल्य रहता है। करण, वे अपनी बौधिक-साधना नहीं, वरन हृदय के भावों को व्यक्त करते हैं। शास्त्रीय नृत्य और लोक-नृत्य को अलग करने में साधना और वासना का प्रमुख स्थान है। शास्त्रीय नृत्य में शास्त्रीय नियमों की अवहेलना साधना को वासना-रूप में प्रदर्शित करती है, जब कि लोक-नृत्य में वासना भी साधना बन जाती है। लोक-नृत्य का वासना भी साधना बन जाती है। लोक-नृत्य में वासना को साधना में परिवर्तित करना, उसकी जीवन-गति और निश्छल हृदय का घोतक है। लोक-नृत्य प्रसिद्धि प्राप्त करने अथवा धनोपार्जन का नहीं, वरन जीवन के आनंद को सुरक्षित रखने का एकमात्र साधन है। इससे लोक-जीवन की निष्काम प्रवृत्ति का परिचय मिलता है। शास्त्रीय नृत्यकारों ने पहले लोक-नृत्य को केवल उछल कूद की संज्ञा देकर इसकी अवहेलना की थी, किन्तु विश्वविख्यात नृत्यकार उदयशंकर ने एन लोक-नृत्यों को संकलित कर इनका महत्व सिद्ध कर दिया है। उदयशंकर के नृत्य-संकलन से एक बात और स्पष्ट हो गई है कि संसार के प्रत्येक भू-भाग के लोक-नृत्य एक ही प्रणाली के हैं। हम जिन्हें अन्य देश का नृत्य समझकर, उन्हें अपने मनोरंजन का साधन तथा प्रशंसा का पात्र बनाते थे, वे हमारे भारत की विभिन्न जातियों में उसी रूप में पाए जाते हैं। इसके प्रमाण में उदयशंकर ने अपने चित्र कल्पना में ('कला केंद्र' के वसंतोत्सव के समय) इन नृत्यों को संकलित किया है। यद्यपी नृत्यकारों के बहुमत से भारतीय लोक-नृत्यों पर कथकली का प्रभाव सबसे अधिक बताया जाता है; किन्तु मेरी समझ से उन पर किसी भी शास्त्रीय प्रणाली का प्रभाव सबसे अधिक बताया जाता है; किन्तु मेरी समझ से उन पर किसी भी शास्त्रीय प्रणाली का प्रभाव नहीं पड़ा। क्योंकि शास्त्रीय नृत्य की अपेक्षा लोक-नृत्य अधिक प्राचीन है और उसी से शास्त्रीय नृत्य का विकास हुआ है। यही कारण है कि संसार के प्रत्येक भू-भाग के नृत्यों में एक साम्य मिलता है, जिसका कारण मनुष्य की रागात्मक प्रवृत्तियां हैं। लोक-जीवन की इन दोनों (वाद्य और नृत्य) कलाओं से रस प्रधान है। यह रस भले ही शास्त्रीय परिभाषा के अनुरूप न हो, किन्तु जीवन-रस की व्याख्या ही इस रस से की जा सकती है। वाद्य की भांति नृत्य भी जीवन में व्यापक रूप से वर्तमान है। बालक जब प्रसन्न होता है, तो वह नाच उठता है। इतना ही नहीं, और बालकों से भी 'चाई-माई' (एक ही दिशा में अन्वर्तन घूमना) घुमने को कहता है। पण्डित आरती उतारने में घंटी की ताल पर आरती का थाल या धुप्दानी लेकर नाच उठता है। यद्पी उसमें गति नहीं, किन्तु भाव-प्रदर्शन अवश्य होता है। दिवाली में अहीर नाचता है। धार्मिक प्रवृत्तियों के लोग रासलीला कराते हैं। बरात विदा होने के बाद वर-घर में स्त्रियाँ नित्य रात को वाद्य-नृत्य-समारोह करती हैं। न्रित्य्क्रने में असमर्थ मनुष्य का भी मन प्रसन्नता का समाचार उठता है।

लोक-जीवन की प्रत्येक दिशा नृत्य से व्याप्त है। प्रातः काल सूर्य नृत्य करता निकलता है। हवा के बवंडर भी यदा-कदा नाच उठते हैं। घर के बाहर और छतों पर मयूर नृत्य करता है। लड़के लट्टू नचाते हैं, बन्दर और साँप तथा भालू का नृत्य देख लोक-जीवन में कठ-पुतलियाँ नाचती हैं। ये सभी प्रकार के नृत्य लोक-नृत्यों के अंतर्गत आते हैं। उन्हें कोई भी शास्त्रीय प्रणाली अपने-आप में बांध सकने में असमर्थ है। कठपुतलियों का नृत्य तनिक से संकेत में मुद्रा परिवर्तित कर देती है। साँप बीच में ही फुसकार उठता है। भालू और बन्दर डंडे के भय से मनुष्य के भावों का प्रदर्शन करते हैं। किन्तु डंडे के गिरते ही उनकी मुद्राएँ बिगड़ने लगती हैं और केवल पैरों की गति से घुंघरू ही बजते रहते हैं। इन नृत्यों को शास्त्रीय पद्धति के लोग अपनी परिभाषाओं में बांध

सकने में असमर्थ हैं। कारण, उनका नृत्य भी बौद्धिक साधना है, जिसकी पहुँच मनुष्य की आँखों से केवल बुद्धि तक ही सीमित है। इसके विपरीत, लोक-नृत्य जीवन की आत्मानुभूति हैं और उनकी पहुँच मनुष्य की आत्मा तक है। ये लोक-नृत्य जीवन-गति से सीधे सम्बंधित हैं। लोक-नृत्य किसी आदर्श अथवा परानुभूति को व्यक्त न कर जीवन के उल्लास को ही व्यक्त करते हैं। यही करण है कि वे जीवन-गति के आदर्श प्रतीक हैं। इन्ही लोक-नृत्यों ने आत्म-समपर्ण कर, शास्त्रीय नृत्य को जीवन दे, हमारी कला को सुरक्षित रखा है तथा जीवन को सांस्कृतिक बना दिया है।

सन्दर्भ सूची :

1. डॉ॰ शास्त्री तेज नारायण लाल, मैथली लोकगीतों का अध्ययन, पृ॰ 9 विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, प्रथम संस्कार 1962
2. डॉ॰ उपाध्याय कृष्णदेव, लोक-साहित्य की भूमिका, पृ॰ 26 साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, प्रथम संस्कार 1957
3. उपाध्याय डॉ॰ चिंतामणि, मालवी लोकगीत एक विवेचनात्मक अध्ययन, मंगल प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण 1964
4. जैन डॉ॰ शान्ति, लोकगीतों के सन्दर्भ और आयाम, पृ॰ सं॰ 4 विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण 1999
5. जैन डॉ॰ शान्ति, लोकगीतों के सन्दर्भ और आयाम, पृ॰ सं॰ 10-11 विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण 1999

हिमाचल प्रदेश की लोक संस्कृति में बसंत

मनोज कुमार
पीएच॰ डी॰ स्कॉलर,
संगीत विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली (राजस्थान)

डॉ॰ अंकित भट्ट
सहायक प्रोफेसर,
संगीत विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली (राजस्थान)

सार संक्षेप :

किसी देश, राष्ट्र, राज्य एवं समाज की सामाजिक और सांस्कृतिक सम्पन्नता की द्योतक परम्पराएं होती हैं। परम्पराएं किसी समाज की विश्वास करने की विधि है, जो आगामी पीढ़ियों को सामाजिक, सांस्कृतिक मूल्यों, जीवन जीने की शैलियों को हस्तांतरित करती हैं। परम्पराएं सामाजिक संगठन के सभी स्तरों की संरचना में व्याप्त रहती हैं। संगीत ने प्रकृति का मानवीकरण करके अनेक उपमाएँ व प्रतीक देकर प्रकृति के साथ मानव सामंजस्य बिठाया है। नवप्रकृति हर ऋतु और हर समय में बदलती रहती है। गीत चूंकि मानवीय भावना है, इसलिए विभिन्न रूप में हर ऋतु और हर समय में मानव को आनंद प्रदान करते हैं। भयानक रस धैर्य, बीभत्स में डर का आभास वीर रस में उत्साह, शृंगार रस मे प्रकृति के साथ प्रेम, करुण रस के अन्तर्गत दुःखी मानव को ढाढस प्राप्त होता है। वात्सल्य रस में बच्चों के साथ स्नेह, भक्ति रस में भगवान का आवाह्न, शांत रस में रंजन, अद्भुत रस में विचित्र चीज़ों के उत्पादन का प्रयत्न करता है और इसके द्वारा अपनी योग्यता का प्रदर्शन करता है।

बीज शब्द :

सांस्कृतिक, परंपराएं, नवप्रकृति, मानवीकरण, रस।

हिमाचल प्रदेश की संस्कृति न केवल हिमाचलियों के भौतिक दृष्टिकोणों में बल्कि उनके त्योहारों के उत्सव, संगीत की धुन, लयबद्ध नृत्य रूपों और सरल जीवन शैली में भी अतिरंजित है। हिमाचल प्रदेश की संस्कृति समृद्ध, असाधारण और पारंपरिक हो जाती है। इस बीहड़ इलाके के कारण हिमाचल प्रदेश की संस्कृति और परंपरा इस प्रकार विदेशी आक्रमणों के कारण बनी हुई है। इसकी जातीयता और मौलिकता बरकरार है।

वसंत को ऋतुराज कहते हैं - वसंत तो उत्सव, आनंद, उमंग, उल्लास और चेतना की द्योतक है। कवियों ने वसंत को ऋतुओं का राजा कहा है। हर सुमन में संकेत होता है। मिलन और विरह का साहित्य वसंत के वर्णन से सराबोर ह -

कलिन में कुंजन में केलिन में कानन में
बगन में बागन में बगरयो बसंत है।

बसंत मधु ऋतु है। कालिदास ने ऋतुसंहार में बसंत का जैसा वर्णन किया है, वैसा कहीं नहीं दिखाई देता।

वसंत तो सृजन का आधार बताया गया है। सृष्टि के दर्शन का सिद्धांत बनकर कुसुमाकर ही स्थापित होता है। यही कारण है कि सीजन और काव्य के मूल तत्व के रूप में इसकी स्थापना दी गई है। सृष्टि की आदि श्रुति ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं

में रचनाओं से लेकर वर्तमान साहित्यकारों ने भी अपनी सौंदर्य-चेतना के प्रस्फुटन के लिए प्रकृति की ही शरण ली है। शस्य श्यामला धरती में सरसों का स्वर्णिम सौंदर्य, कोकिल के मधुर गुंजन से झूमती, सघन अमराइयों में गुनगुनाते भौरों पर थिरकती सूर्य की रश्मियां, कामदेव की ऋतुराज 'बसंत' का सजीव रूप कवियों की उदात्त कल्पना से मुखरित हो उठता है।

प्रकृति बसन्त में श्रृंगार करती है। दिशाएं प्राकृतिक सुषमा से शोभित हो जाती हैं। शीतल, मंद, सुगंधित बयार जन-जन के प्राणों में हर्ष का नव-संचार करती है। पुष्प, लताएं तथा फल शीतकाल के कोहरे से मुक्ति पाकर नये सिरे से पल्लवित तथा पुष्पित हो उठते हैं। बसंत हमारी चेतना को खोलता है, पकाता है, रंग भरता है। नवागंतुक कोपलें हर्ष और उल्लास का वातावरण बिखेर कर चहुंदिशा में एक सुहावना समा बांध देती हैं। प्रकृति सरसों के पुष्परूपी पीतांबर धारण करके बसंत के स्वागत के लिए आतुर हो उठती है। आम के पेड़ मंजरियों से लद जाते हैं। भौरों की गुंजन सबको अपनी ओर आकर्षित करने लगती है। बसंत का प्रभाव जनमानस को उल्लासित करता हुआ होली के साथ विविध रंगों की बौछारों से समाहित होता रहता है। बसंत का आगमन प्रकृति का भारत भूमि को सुंदर उपहार है।[1] प्राणी-मात्र के जीवन में सौंदर्य हिलोरें ठाठें मारने लग जाती हैं। वनों-बागों तथा घर-आंगन की फुलवारी भी इस नवागंतुक मेहमान के स्वागतार्थ उल्लसित हो उठती है। इन सभी दृश्यों को देखकर भला एक कवि के मन को कविता लिखने की प्रेरणा क्यों न मिले। कवि तो अधिक संदेनशील होता है यही कारण है कि उसकी लेखनी बसंत के सौन्दर्य-वर्णन से अछूती नहीं रह पाती। कवियों ने बसंत का दिल खोलकर वर्णन किया है।

प्रकृति की खूबसूरती का संकल्प है बसंत मौसम के खूबसूरत परिवर्तन का नाम है बसंत-माघ शुक्ल पंचमी के दिन बसंत का जन्म हुआ था। बसंत पंचमी के दिन कला और संगीत की देवी सरस्वती की पूजा की जाती है। शास्त्रीय संगीत के विद्वानों ने प्रातः आठ बजे से बारह बजे तक बसंत रांग और उसके अन्य प्रकारों के रागों का गायन समय निश्चित किया हुआ है, क्योंकि उस समय मानव उमंगें और तरंगें युवा होती हैं और चहुंओर बसंत के बहार का आभास होता है। सूर्य जब सुबह-सवेरे निकलकर सुन्दर प्रभा बांटता है, तो मौसम की अंगड़ाई में सुरभियां प्यार उंडेलती हैं। लहलहाते हुए हरे-भरे खेत, फूलों के रंगत की सुंदर झलक, आमों के ऊपर पड़ा बूर (बौर) किसी मतवाली कोयल का इकरार, मनमोहिनी आवाज़ को तरसता है। फिर बसंत में रंग जाता है सारा संसारए कायनातए समस्त मानवता।[2]

शुभ शकुन की पवित्र परम्परा है बसंत ऋतु। इस दिन सारी प्रकृति सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् का संदेश देती है। भक्त कबीरजी अपनी वाणी में लिखते हैं-

''मउली धरती मउलेआ आकास,
घटि-घटि मउलेआ आतम प्रगाश।''

बसंत ऋतु सभी ऋतुओं का राजा है। मानवता के जीवन में इसकी महानता हृदय में उतरने वाली तथा शुद्धता, सुंदरता, शांति व हर्षोल्लास की प्रतीक है। कालिदास की रचना अभिज्ञान शाकुन्तलम् की नायिका बसंत आने पर हर फूल के प्रसव पर उत्सव मनाती थी-

नात्त्के प्रियमण्डनाऽपि भवता स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये व कुसुम प्रसूति समये यस्या भवत्युत्सेव।।[3]

अर्थात् शकुन्तला को आभूषण पहनने का प्रेम होने पर भी वृक्षों से स्नेह के कारण उनके कोमल पत्तों को हाथ नहीं लगाती थी, जो वृक्षों की नयी-नयी कलियों को देखकर खुशी से उत्सव मनाती थी अर्थात् फूली नहीं समाती थी

बसंत की देवी सरस्वती ज्ञान, नवनिर्माण, संगीत तथा ललित कला इत्यादि रचनात्मक कार्यों की अधिष्ठात्री हैं। ज्ञान, संगीत, ललित कलाओं व वाणी सीखना रचनात्मक कार्य संस्कृति की अधिष्ठात्री देवी

महासरस्वती हैं और इन्हें महादेवी का पद प्राप्त है। सरस्वती शब्द तीन शब्दों से निर्मित है, प्रथम 'सर' जिसका अर्थ सार, 'स्व' स्वयं और 'ती' जिसका अर्थ सम्पन्न है। जिसका अभिप्राय है जो स्वयं ही संपूर्ण सम्पन्न हो ब्रह्माण्ड के निर्माण में सहायता के लिए ब्रह्मा ने महादेवी सरस्वती को अपने ही शरीर से उत्पन्न किया था। इनके ज्ञान से प्रेरित हो ब्रह्माजी ने समस्त जीवित तथा अजीवित तत्त्वों का निर्माण किया। देवी सरस्वती का एक नाम ब्रह्माणी भी है। देवी सरस्वती को वेदमाता के नाम से भी जाना जाता है। चारों वेद देवी के ही स्वरूप हैं तथा उन्हीं की प्रेरणा से ब्रह्माजी द्वारा उत्पन्न किया गया है देवी का वाक्शक्ति से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। वाक्शक्ति सिद्धि प्रदान करती है। श्वेत रंग देवी का अत्यंत प्रिय है तथा इसी वर्ण से सम्बन्धित द्रव्यों, तत्त्वों का प्रयोग करती है। साथ ही हंस, श्वेत कमल तथा वीणा इन्हें विशेष प्रिय हैं तथा धारण भी करती हैं। वचन द्वारा भावप्रकाश करना तथा प्रेम सम्बन्धित निवेदन भी देवी की कृपा से सफल होते हैं। बसंत पंचमी या माघ शुक्ल पंचमी तिथि देवी सरस्वती को समर्पित है। इसीलिए हिमाचल में गेहूं तथा जौ की स्वर्णिम बालियां देवी सरस्वती को अर्पित की जाती हैं।

बसंत जैसा उल्लास, कलात्मक प्रवृत्तियों का विकास और ज्ञान संवर्धन का प्रयास ही सच्चे अर्थों में बसंत पर्व को सार्थकता प्रदान कर सकता है। भगवती सरस्वती का अनुग्रह कला, ज्ञान, संवेदना हमारे जीवन में आए, हमारे विचारों में आदर्शवादिता की उच्चस्तरीय सद्भावनाओं का समावेश हो। ज्ञान की संपदा से बढ़कर और कोई संपदा नहीं। जीवन का सर्वांगपूर्ण विकास होता चला जाएगा।

कविवर त्रिलोचन ने कहा है -

''सीधी भाषा बसंत की,
कभी आंख से समझी,
कभी कान ने पाई,
कभी रोम-रोम से प्राणों में भर आई
और है कहानी दिगन्त की।''

इस ऋतु के बिना और मदमाती स्त्री के बिना भी कोई भी मौसम पूर्ण नहीं होता। तभी एक यौवना कहती है-

''हवा हूंए हवा में बासंती हवा हूं।
हँसी सब दिशाएं, हँसे लहलहाते हरे खेत सारे,
हँसी चमचमाती भरी धूप प्यारी,
बासंती हवा में हँसी सृष्टि, सारी हवा हूं,
हवा में बासंती हवा हूं।''[4]

बसंत के त्योहार में जितनी भी चीजें शामिल होती हैं जैसे- पीले रंग के परिधान, पीले और बसंती रंग के फूल, बेर, गाजर, मौसमी फल आदि।

बसंत में भगवान श्रीकृष्ण और भगवान शिव को पूजने का भी विधान है। श्रीकृष्ण अनासक्त उल्लास के प्रतीक हैं जबकि शिव समभाव और अनासक्ति के प्रतीक हैं। वैराग्य धारण करने के कारण यह गृहस्थी के प्रिय हैं।[5] इसीलिए शिवरात्रि और होली पर्व इसी ऋतु में मनाये जाते हैं। बसंत में पीले रंगों का हमारे शरीर और रूह पर गहरा असर होता है। पीले रंग को आशावादी माना गया है। इसीलिए तो ये योगियों और फकीरों का भी प्रिय रंग है। कहते हैं इस रंग की कल्पना से ही मन में शांति और उत्साह का अनुभव होता है।

हिमाचल प्रदेश के कुल्लू जनपद में देवाधिदेव रघुनाथ के मंदिर में बसंत का उत्सव धूमधाम से मनाया जाता है। प्रातः ही बासंती रंग भगवान रघुनाथ को समर्पित किए जाते हैं। दोपहर में भगवान रघुनाथ की मूर्ति लोकवाद्यों की धुनों के साथ ढालपुर मैदान में लाई जाती है। वहां पर वैरागी समुदाय में से एक व्यक्ति भरत व दूसरा हनुमान बनता है भरत का श्रीराम के साथ मिलन होता है। रघुनाथ की मूर्ति को बड़े रथ में विराजमान करके उसे ढालपुर मैदान के बीचोंबीच अस्थायी मंदिर तक लाया जाता है। वहां पूजा करने के बाद वैरागी गायकों द्वारा बसंत के गीत गाये जाते हैं और होरी गीतों का आरम्भ भी इसी दिन होता है। बसंत के आगमन के रूप में गाये जाने वाले

एक गीत की बानगी इस प्रकार है-

नमी-नमी ऋत आई,
मी रे बहार आई।
अंबुआ भी फूले,
केसुआ भी फूले,
अंबुआ भी फूले हां...
बन में फूले बनराई मेरी सजनी
नमी-नमी ऋत आई,
नमी रे बहार आई।[6]

नयी ऋतु आने पर उल्लासमय बहार आई है। आम, केसू, बनराई आदि फूल खिलने लगे हैं। भगवान विष्णु ने एक हाथ में पदम चक्र धारण किया है और शिव भगवान ने अपने हाथ में भांग ली है और जटा में गंगा को नयी ऋतु में नयी बहार बड़ी अच्छी लग रही है।

ऋतुराज बसंत का आगमन होते ही प्रकृति में उसका स्वागत करने के लिए सबके मन में विशेष उल्लास रहता है। सृष्टि का कण-कण पुलकित हो उठता है। ऐसा लगता है जैसे धरा अभिसारिका का रूप धारण कर प्रिय से मिलने के लिए व्यग्र हो उठी हो। बसंत ऋतु के प्रमुख देवता काम और रति हैं। बसंत के आते ही नवयौवना अपने शरीर में अनेक परिवर्तनों का आभास करने लगती है। कामदेव अपने तीक्ष्ण बाणों से उसके कोमलए मांसल, स्निग्ध और गदरा, तन में मादकता और मस्ती भर देता है। लता आदि द्रुम निकुंजों में बैठी कोयल उनके लिए आग पर घी का काम कर रही है। प्रस्तुत गीत इसकी पुष्टि करता है-

आई नयी बहार
मेरो नवरंग जोवन
आई नयी बहार।
इक तो आईरित बसंत
दूजे पूछे सखियो अपणो कन्त,
तीजो पिया-पिया पपीहा पुकारे
मेरो नवरंग जोवन
आई नयी बहार।

"मेरे यौवन, बसंत बहार आने पर सखियां मेरे प्रियतम के बारे में पूछ रही हैं कि वे कहां हैं। वे तो नहीं हैं, उनके बिना पपीहे-सी प्यासी मैं बसंत बहार का आनंद कैसे लूं।"[7]

बसंत के आगमन पर हिमाचल के बाह्य सराज में 'धरमाड' गीत गाये जाते हैं, जैसे-

डेई गो चेतरो रो महीनो
हासी हासी जोदे वे पांछी
हौरो-हौरो डाड़ी डोली
वे फुलटू सौवे फूली गए।
सौब-सौब साओ भूली बे गए।
जांदी-जांदी डोलिए जांदी।

चैत्र मास में बसंत आ गया है, सब पौधे फूलों से लद गये हैं। अनार के पौधों में लाल-लाल फूल प्रकट होने लगे हैं। पंछी भी हँसते-मुसकराते एक डाली से दूसरी डाली पर फुदकते हुए प्रेम में इस कद्र खो गये हैं कि उन्हें बाकी जगत् के होने का आभास ही नहीं है।

हिमाचल प्रदेश के मण्डी जनपद में मिरासी समुदाय के लोग घर-घर जाकर बसंत के गीत गाते हैं। एक गीत इस प्रकार है-

देखा जी हुण आई बसंत बहार,
कि मौसम आये रहेया
नौवीं-नौवीं रुत आई कि नौवें आये फूल,
देखो जी मैं लई आई फूलों के हार
कि मौसम आये रहेया
पानी जैसी पतली, पीवे जैसी पीऊली,
ये रोग काहे को सताया मेरिये ननदे,
नौवीं-नौवीं रुत आई कि नौवें आये फूल,
देखा जी हुण आई बसंत बहार।[8]

"मौसम बसंत बहार का आ गया है। नयी ऋतु आई और नये-नये फूल खिले हैं, देखो जी, मैं बसंत बहार में उन फूलों के हार बनाकर लाई हूं। ननद भाभी से पूछती है, पानी की तरह पतली और सरसों की तरह पीली कमज़ोर कैसे हो गई है, भाभी ये रोग कहां से लगा के आई है, देख मौसम बसंत बहार का आ गया है। भाभी कहती है, जब पिया घर आएंगे, मेरे सब दुःख दूर हो जाएंगे, मेरी ननद, मेरे दिल की बीमारी यही है। मौसम बसंत बहार का आ गया है।"

निष्कर्ष :

देवधि देव महादेव की तपोस्थली हिमाचल अपनी अलौकिक सौंदर्यता और परंपरागत पीढ़ी दर पीढ़ी लोक संगीत की परंपरा के कारण विश्व भर में अपना एक अलग स्थान बनाने में समर्थ हुई है। बसंत की बात हो और हिम के आँचल में बसे प्रदेश को बात ना हो तो यह कदापि सही ना होगा। बसंत के आगमन पर जो हर्षोल्लास का उल्लासमय वातावरण इस प्रदेश के आँचल में दृष्टिगत होता है, वह शायद ही कहीं देखने को मिलता है। बसंत के आगमन से लोक मानस में लोकसंगीत की यदि कभी ना समाप्त होने वाली गहनता को ज्ञात करना हो तो हिमाचल प्रदेश को अनदेखा करना अन्याय होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. ठाकुरए सूरत (2017), हिमाचल प्रदेश के ऋतुगीत, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली।
2. शर्मा, मनोरमा (1996), लोक मानस के सुरीले स्वर, साँई बुक हाउस, इंद्र प्लेस मार्केट, संजौली शिमला।
3. चंद्र, कश्यप पदम (1972), कुल्लवी लोक साहित्य, नैशनल पब्लिशिंग, दिल्ली।
4. सुदर्शन, विशिष्ट (1984), व्यास की धारा, हिमाचल पुस्तक भंडार, दिल्ली।
5. नाथ, ठाकुर ओंकार (1983), भारत का लोक संगीत और उसकी आत्माण लोक संगीत अंक, शिमला, हिमाचल प्रदेश।
6. शर्मा, मनोज (1998), हिमाचल प्रदेश के सिरमौर जनपद की लोक गाथाओं का सांगीतिक विश्लेषण, संगीत विभाग पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़।
7. जस्टा, हरिराम (1997), हिमाचल प्रदेश के लोक प्रिय गाथा, गीत, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली।
8. राम, खुशी (1992), सिरमौरी लोक साहित्य, कला संस्कृति एवं भाषा अकादमी, शिमला।

Ustad Mohammad Abdullah Tibetbaqal Their Contribution towards Sufiana Music of Kashmir

Asif Farooq
Department of Performing Arts music
Lovely Professional University, Punjab

Abstract

Music is an art with endless ramifications and innumerable psychological and cultural affiliations. The charm of music, the purest form of art, lies fundamentally in the fact that it furnishes a medium of self-expression for its mere joy without any ulterior purpose whatsoever. All human communities around the world have music. Regardless of whether a society is in its most basic or most advanced level of development, music serves important roles in both. Numerous varieties of musical instruments have developed as a result of music's worldwide emergence. Kashmir province is well known throughout the world for its extensive and unique cultural heritage. The cultural heritage of Kashmir includes music in significant measure. Nearly every event and celebration in Kashmir society and culture, including birth, marriage, death, and harvesting, involves music.

Key words:

Tibetbaqal, Sufyana Mousiqui, Kashmir.

Introduction :

Late Ustad Mohammad Abdullah Tibetbaqal S/o Khawaa Abdul Gani of Aalilkadal, Srinagar, was born in 1914. Ustad Mohammad Abdullah Tibet Baqal was the shining star in the musical firmament of Kashmir. He singled out everyone in the field of Sufiana music and maintained his identity and individuality throughout his life. He did not belong to musical dynasty, but his ancestors were the reputed traders of Pashmina and used to visit far flung and remotest areas of Ladakh, Tibet, Russia, and Yarq and in connection with their trade and with reference to it came to be known as "Bute Wanj" or "Buddhist Traders" but became famous as "Tibet Baqal" the grocers of Tibet.Being highly interested in sufiana music, Tibet Baqal used to perform and participated in sufiana music, despite the admonition and opposiuon from the family elders. He also got inspired and instructed by Ustaad Gani Joo and Ramzan Joo in the field of sufiana music. Since Tibet Baqal had gained preliminary knowledge of Arabia and Persian languages during his school days, his participation in the

concerts of sufiana music added feathers to Baqal's Persian pronunciation and vocabulary as he would come across scholars of Persian language during such gatherings and would pick up what he needed from them.

Ustad Tibetbaqal joined Radio Kashmir as a Sufiyana artist in 1948 in its beginning and earned name and fame after performing from it. He devised and discovered new styles in sufiana music by blending it with Kashmiri folk style which yielded appreciable results. His melodious voice throws the listeners into ecstasies. Leela of Krishen Joo Razdan's bulls everyone to ecstasy.

Del Tae Mazielvene Gulab porn poshi Dastae Puzae In gas parneshevus shiv naths tae

Besides Leela, he recites hymns, Bhajans and other religious utterings in most fascinating and touching tones. He sang the sacred songs of Lal Ded and sheikh Alam. Besides Radio Kashmir, Mohammad Abdullah Tibet Baqal performed for Doordarshan and Cultural Academy and Sangeet Natak Academy. He was the member of central council and general council of academy. He was awarded by Cultural Academy.Ustad Mohammed Abdullah Tibet Baqal was an acclaimed player of santoor. He was well versed in playing harmonium, sitar and tabla as well, but his favourite instrument of music was santoor. Shiv Kumar, the santoor player of international fame and another acclaimed santoor player, Bajan Sopori feel indebted to Tibetbaqal for their art. Besides Kashmiri sufiana music, Tibet Baqal was an authority in Persian Sufiyana performance. Ustad Tibetbaqal ceased to be in 2982. His demise has created a vacuum in the field of Kashmiri sufiana music which cannot be filled. He will be ever remembered for his excellence in Sufiyana music and melody

Art, Carrier and Contribution :

The transit and composite cultural environment that too scented with religious fragrance evolved an inspiration Tibetbaqal's inner conscious to attend the mystic gatherings of religious scholars who were practicing the Sama-religious singing. The interest for Sama day by day developed and Ustad Tibetbaqal began participating in such gatherings with utmost eagerness! Gradually he got an opportunity to learn and understand the things related to singing in particular and music in general just only by mere observations!!! because in one of his Radio interview he himself said, that he had never took any formal or an informal training from any master / teacher in the field of singing and music par with the analogy of Guru-Shshi Parampara. Whatever he has achieved in his artistic field is purely the creator's gift and sincere prayers of his well-wishers to him. But indirectly he admits and treats everyone as his guardian /teacher in the field of art and music.

As one has to learn from his cradle to grave! Here, it is quite interesting to mention that the family of Ustaad Mohammad Abdullah Tibetbaqal vehemently opposed their son's interest in music, while in contrast, the revered Ustaad showed his hardcore inclination towards it but his reputed business family had nothing to do with the music, instead they were businessmen from generations and it was due to his family's opposition and discouragement that he was not able to receive the proper training in the field

of art and music. But the passionate Tibetbaqal attended the music gatherings/ Sufiyana- majjlis of professionals stealthily to avoid the open objections of his parents. And it was Ustads impressionable seat of thought and memory that took him to note the techniques of playing and singing from the great masters of his time of Sufiyana art.

In the mean time, Ustaad Tibetbaqal's conscious about systematizing music becomes well defined and being educated he engaged himself in collection of original musical literature especially from Sangeet Karyalaya-Hathras U.P, Marris library-Lucknow, Music Publishing House, Lucknow Ramchandra-Sangeetalaya, Gwalior and Siddique Publishers, Lucknow etc.For composing something new and unconventional music i.e., above all agreeable to the trained as well as untrained ears. Great masters like Ustaad Ramzan Joo, Ustaad Gani Joo, and Ustaad Siddique Joo etc when realized Ustaad Tibetbaqal's artistic value they therefore at times insisted him to play Santoor- (The leading instrument played in Sufiyana ensemble) for their Sufiyana performances. And that is why, most of the AIR-archival recordings along with detailed cue-sheets of great grand professional masters of Sufiyana- Gharana's witnesses Ustaad Tibetbaqal as one of the accompanying Santoor instrumentalist participant for their items. Within the rest part of Indo-Pak subcontinent, there were however some contemporary eminent musicians like: Ustaad Allaudin Khan, Ustaad Bismillah Khan, Ustaad Allah-Rakha Khan, Pt. Ravi Shanker, etc., whose performance always deeply impressed Ustaad Tibetbaqal and he held them in great honour and esteem. Fortunately, Santoor-wadan of Ustaad Abdullah Tibetbaqal with Ustaad Allah Rakha Khan is a quite rich source for better of Ustaad Tibetbaqal's novel/Shali/style. This clarity of diction with concentration on the words and their meaning is his strongest forte. The pioneering spirit with individual style of Sufi- singing and that too with a deep voice in pure classical style enabled the revered Ustaad Tibetbaqal for being exceptional in his endeavor.[1]

Mohammad Abdullah Tibetbaqal studied and meditated all the stage of Theosophical music, Among these are Radio Kashmir Sgr, Cultural Academy Sgr, All India Radio, information Department, Sangeet Nikeetaan, Door-darshan Mandi House Delhi, Kala Kendra USSA, Central Asian Countries such as (Iran, Iraq, Kuwait, Soviet Union, Tajikastan, Uzbikstan, Samarkand, Bukhara and Germany. The Authorties of these countries sent invitation to Mohammad Abdullah Tibetbaqal quite often so that the great personality will demonstrate and certain soulfullyhis art in these countries. These invitation cards are still found in the historical house of Mohammad Abdullah Tibetbaqal. Among these invitations, one is from the king of Iran (Raza Shah) which he had sent particularly to Mohammad Abdullah Tibetbaqal.[2]

In 1948, when Radio Kashmir, Srinagar came into existence, it was felt to encourage the local artists of the Kashmir by propagating their art through Radio. And a constituent committee was framed in this direction. The committee members with utmost urge recommended the first name of Ustaad Mohammad Abdullah Tibetbaqal and other great masters of the time. And when the members of the afore said Radio committee

approached to the revered Ustaad with their proposed offer to joining Govt. Services in Radio Kashmir, Srinagar but to their astonishment, in response Ustaad Mohammad Abdullah Tibetbaqal refused their offer with an excuse that he belongs to a business family and is not among the professional musicians. Then an incessant try was made through then Deputy Prime Minister of Kashmir, Bakshi Ghulam Mohammad, Mr. Sadruddin Mujahid, Mr. Chatter Ji (then Director Radio Kashmir), Mr. Ghulam Mohammad (Sitar- Player) and made Ustaad Mohammad Abdullah Tibetbaqal agreed upon the offer that he would join Radio Kashmir Services in capacity of AIR- Staff artist. In recognition of the highly skilled artistic caliber of Ustaad Mohammad Abdullah Tibetbaqal, the monthly salary for him was decided as Rs150/ while as the other AIR- Staff artists were given only Rs 60 per month. Being a versatile A-TOP AIR- graded artist, His unique, melodious and penetrating voice is known for the recitation of Holy Quran, Naat, Darood / Salaam, Manqabat-Khawani etc.

Ustad Mohammad Abdullah Tibetbaqal was a non Caste Sufiyana Vocalist and Instrumentalist (Santoor etc) famously known as the "King of Santoor". In 1972, he was the first person from J&K to whom Sangeet Natak Academy Award was given by the president of India. He was honored with Robe of honour by Jammu and Kashmir Academy of Art, Culture and Languages, pride of performance, Kala Kendra and Golden Jubilee Award – All India Radio by the Ministry of information and Broadcasting, Government of India.Amongst the brilliant performers-cum composers of the 20th Century, Ustaad Mohammad Abdullah Tibetbaqal occupies an honored place. His life and achievements offer inspiring reading. He asymptomatically maintained his legendary figure and knowledgeable identity throughout his life. His meteoric rise to fame very early in his life is something remarkable![3]

Ustad Mohammad Abdullah Tibetbaqal was a self taught genius who had composed record number of Sufiyana Kalam with his extraordinary creative faculty by blending for the first time Kashmiri Sufiyana Music and Indian Classical music with Kashmiri folk style. He succeeded remarkably in his attempts because his compositions were vastly better than other contemporaries in the quality of Sufi-music. As a successful Sufi-musician, Ustaad Tibetbaqal captivates the listener in the consequent state of peace, harmony and eternal bliss and what he conveys in his song becomes receptive to the ultimate truth of one's existence in this mundane world of deceptive colours![4]

Santoor though predominately was used as an accompanying instrument in the Classical Music of Kashmir; But Ustaad Tibetbaqal for the first time introduced it (Santoor) in Light-Music as an innovation. The Archived tapes with detailed cue-sheets of such a marvelous attempt are being preserved in All India Radio /Sangeet Natak Academy, Door-darshan Mandi House, New Delhi and abroad etc at Govt. level for the seekers of knowledge.

Ustad Mohammad Abdullah Tibetbaqal was a pious man and mystic-music was penance for him He showed the remarkable possibilities of this ubiquitous instrument. As a soloist, Ustaad Mohammad Abdullah Tibetbaqal had left an indelible mark in the history of concert music

And this experiment of revered Ustaad won the statement of praise and gratefulness across the globe. As a Sufi-musician he succeeded in reviving many obsolete Muqaams of Classical Music of Kashmir by breathing fresh life and charm into them.

In 1944, Taj Company of Lahore recorded some solo instrumental Santoor recitals/wadans of Ustaad Mohammad Abdullah Tibetbaqal besides other recitations and archived them for preservation. In 1950s for the time, All India Radio broadcast Sufiyana /Santoor – Wadan of Ustaad Mohammad Abdullah Tibetbaqal at National level for which the great Maestro won the laurels of appreciation from the listeners of AIR. And irrespective of Sufiyana style and Kashmiri dialect, people from all walks felt freshness and peace of mind, moreover it is a matter of pride for the people of Kashmir that in 1953, Dr Rajindra Prasad the first president of India invited u8staad Mohammad Abdullah Tibetbaqal for listening his magical art performance of Sufi-music and Santoor-wadans and then in 1956, when Dr Ruhullah Khaliqi (Director- National School of Music, Tehran) was on Official visit to Kashmir, he in surprise felicitated the Ustaad Mohammad Abdullah Tibetbaqal with the addressing entitle of Hassan and Khan Habib (the great grand Santoor Maestros and Musicologists of Iran) for Ustad's artistic caliber. Moreover, Pt. Jawaharlal Nehru-the first prime minister if India when ever visited Jammu and Kashmir, he at his first instances would call Ustaad Mohammad Abdullah Tibetbaqal for listening his Sufi-Music with Santoor Wadans and this tradition remained in existence and continued by Smt. Indra Ghandi. Past at the time of Jashin-e-Kashmir, when renowned evergreen great singer and Maestro Mohammad Rafi came to Kashmir for his magical performances first at polo-ground and then at Tagore-Hal, Srinagar, he took the skilled and crafted hands of Ustaad Mohammad Abdullah Tibetbaqal in his own hands and kissed them with high venerations for accompanying his songs on Santoor, sung by great Rafi Sahib on the very occasion. In recognition to revered Ustaad Tibetbaqal's art, legendary Mohammad Rafi requested him to come Mumbai in Film-industry but Ustaad Abdullah Tibetbaqal in his unique style with radiant cheerful face refused and highly thanked Rafi Sahib's offer. At one more occasion, most probably in 1973-1974, when legendary towering figure Mohammad Yousuf popularly known as Dilip-Kumar along with his family came to Kashmir valley- paradise on earth, he personally through Syed Kaiser Qalander (Former DDG-AIR) approached Ustaad Mohammad Abdullah Tibetbaqal for listening his Sufi-Music and Santoor-wadans at world famous Chaar Chinari, Dal Lake, Srinagar. And a number of similar other dignitaries would also took it the proudest moment for them to listen the revered Ustaad Tibetbaqal for hours![5]

In 1949, the first National Cultural Congress (Kashmir), Exhibition grounds, Srinagar in which towering personalities like: G.A. Mahjoor, D.N. Nadim, G.H. Beigh Arif, S.S Chauhan, Sheila Bhatia and T. Kaul etc. approached to Ustaad Mohammad Abdullah Tibetbaqal for persuading him to be as one of founder member of the first National Cultural Congress (Kashmir) and at state level Ustaad Tibetbaqal also rendered his

services for Lal- Ded ra Mashawarti Committee, Hazrat Sheikhul Aalam ra and later on when Jammu and Kashmir Academy of Art Culture and Languages in 1958, came into existence, Ustaad Mohammad Abdullah Tibetbaqal was nominated as one of the member of its governing State / Central-Committee in 1975 for the propagation and progress of Cultural-heritage of Kashmir.

Conclusion :

In order to keep the contribution of Ustad Mohammad Abdullah Tibetbaqal in view, it can be concluded that Ustaad Mohammad Abdullah Tibetbaqal was now a celebrated stalwart Sufi – Musician by profession. It is here pertinent to mention that Ustaad Tibetbaqal's rigorous dint and outstanding contribution towards the art and culture of Kashmir was unanimously now accepted by the people across the globe more affectionately in the name of Ustaad Mohammad Abdullah Tibetbaqal par with the similitude of saying 'Identified being of identity in itself' other than the name Ustaad Mohammad Abdullah Bota Wani. So he contributed a lot in for Sufiana music of Kashmir. He achieved a good fame in the field of music.

References :

1. Tak Mohammad Ashraf: Sheeraza, Jammu & Kashmir of Art Culture and Languages Srinagar.
2. Tibetbaqal Aadil: The Santoor of Kashmir, Tibetbaqal Memorial Trust, Srinagar, 2014.
3. Tibetbaqal Mohammad Abdullah: Sama, Tibetbaqal Memorial Trust, Srinagar, 1968.
4. Information regarding Mohammad Abdullah Tibetbaqal was collected by me during an interview, conducted on ,13-01-2019 at 2:27 PM.at his residence Soura, Sgr.
5. Information given by Zareef Ahmad Zareef: Gojwari, Srinagar, Kashmir, 05-12-2018 at 5:24 PM. regarding Mohammad Abdullah Tibetbaqal.
6. Information given by Shah Feroz Ahmad (Alias Gurkoo), Srinagar, Kashmir, 14- 01-2019at 12:10 PM regarding this personality.
7. Information given by Farooqui Syed Peer Gh. Nabi: Soura, Srinagar, Kashmir, 13- 01-2019 at 15:44 regarding Mohammad Abdullah Tibetbaqal.

Footnotes :

1. Aadil Tibetbaqal, The Santoor of Kashmir, Publication P 24-26
2. This information given me by Mohammad Ashraf Tibetbaqal during an interview.
3. Mohammad Ashraf Tibetbaqal shared information about Ustaad Mohammad Abdullah Tibetbaqal during an interview in 2019.
4. Zareef Ahmad Zareef shared his information about Ustaad Mohammad Abdullah Tibetbaqal during an interview conducted by me on 5th dec 2019 at his home Sgr.
5. Mohammad Ashraf Tibetbaqal shared information about his father Ustaad Mohammad Abdullah Tibetbaqal during an interview conducted by me on 13 January 2019 at his home Soura Sgr.

कुम्भकारी लोक कला-एक ऐतिहासिक अध्ययन (पुरातन से अद्यतन काल तक)

पल्लवी सोनी
शोधार्थी, ललित कला विभाग,
डॉ॰ शकुंतला मिश्रा राष्टीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

प्रो॰ पाण्डेय राजीवनयन
निर्देशक, विभागाध्यक्ष, ललित कला विभाग,
डॉ॰ शकुंतला मिश्रा राष्टीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

शोध सारांश :

कुम्भकारी लोक कला मानव जीवन से सीधा सरोकार रखती है तथा पुरातन काल से अद्यतन काल तक लगभग पांच हज़ार वर्षों में मानव के सृजनात्मक तथा अन्वेषणात्मक कलात्मकता से इसका क्रमिक विकास हुआ है। विभिन्न समयकाल की कुंभकारी लोककला का अध्ययन किया जाए तो भिन्न-भिन्न कालों जैसे-पाषण काल, सिन्धु सभ्यता का काल, वैदिक काल आदि मे यह कला अपने मौलिक स्वरुप के साथ समसामयिक कलारूपों से अभिप्रेरित होकर परिमार्जित और समृद्ध हो रही है तथा वर्तमान समय में कला की नवीन विधा स्टूडियो पॉटरी के रूप में स्थापित होकर जनमानस के आकर्षण का केंद्र भी बनी हुई है। प्रस्तुत शोध पत्र में कुम्भकारी लोक कला के इसी विस्तृत ऐतिहासिक परिदृश्य को संक्षेप रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्द :

कुंभकारी लोककला, मृदभांड, मिट्टी के पात्र, मृणमूर्तियाँ, स्टूडियो पॉटरी।

किसी भी देश की सभ्यता, संस्कृति और इतिहास के केंद्र के रूप में 'कला' प्रभावी भूमिका निभाती है, तो कला आधारित रचनाएं संबंधित देश के अलग-अलग काल-खंड, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश को समझने का मार्ग प्रशस्त करती है। मानव मात्र की रचनात्मकता, सकारात्मक सोच और सृजनात्मकता ने प्राचीन काल से ही कला को अपना एक महत्वपूर्ण अंग बनाए रखने के साथ ही सत्यता आधारित दृष्टिकोण और दूरदर्शिता का आधार भी बनाया, कारण कि कला का मौलिक स्वरूप मनुष्य की संवेदनशीलता को हृदय की गहराई से परिभाषित ही नहीं करता है, बल्कि सृष्टि और उसके प्रत्येक तत्वों में समाहित भी

स्वछायाकित

है। सृष्टि का अभिर्भाव जिन पंच महातत्वों के सम्मिश्रण से हुआ है, **उसमें से एक है- पृथ्वी अर्थात् मिट्टी**, जो प्रारम्भिक मानव के मन मे उठने वाले प्रथम कलात्मक और रचनात्मक सृजन की उमंगों को मूर्त रुप देने का माध्यम रही है।

प्रारंभिक अवस्था में आदिमानव के पास ना तो कोई सुरक्षित निवास स्थान था और ना ही उसमें किसी प्रकार की कलात्मक चेतना ने जन्म लिया था, जिससे वह अपने जीवन को सुविधाजनक बनाने हेतु किसी उपयोगी पात्रों का निर्माण कर सकता। तत्कालीन समय में जंगल में रहते हुए उसने अन्य जीव-जंतुओं जैसे- पक्षियों को घोसला, दीमक को बॉबी, चूहे-सांप आदि को बिल बनाते हुए देखा, जिसे देखकर उसमें भी स्वयं की रक्षा के लिए एक सुरक्षित निवास स्थान का निर्माण करने की भावना जागृत हुई और अपनी इसी भावना की पूर्ति के लिए आदि मानव ने पृथ्वी तत्व अर्थात् मिट्टी को ही अपना निवास निर्मित करने का आधार बनाया। विश्व में मिट्टी के पात्र कब से निर्मित होना शुरू हुए इस पर सभी इतिहासकारों एवं विद्वानों के अलग-अलग मत हैं एवं इन मतों का आधार केवल अनुमान ही है क्योंकि मिट्टी के पात्र कब से निर्मित होना प्रारंभ हुए, साक्ष्यों की कमी के कारण इसका कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं है, परंतु अभी तक प्राप्त अवशेषों के आधार पर यह कहा जा सकता है, की पाषाण युग से निकलकर मानव को जब दैनिक जीवन के उपयोग की वस्तुओं- जल एवं अन्न का भंडारण करने की आवश्यकता हुई तो उसने सर्वप्रथम मिट्टी से ही पत्रों को गढ़ना करना प्रारंभ किया। कुछ विद्वानों के मतानुसार मानव ने प्रकृति द्वारा निर्मित विभिन्न आकारों जैसे- पत्तों के मुड़ने से उसमें जल एकत्रित होना या नारियल के आधे कड़े भाग या किसी जानवर की खोपड़ी में जल भंडारित होना आदि से प्रेरित होकर ही जल संचय के लिए मिट्टी के पात्रों को निर्मित किया होगा।[1]

कालांतर में **मध्यपाषाण काल व नवपाषाण काल** के मानव में अंकुरित खोजी प्रवृत्ति ने पात्रों को और अधिक टिकाऊ बनाने के लिए नई-नई तकनीकों के अन्वेषण के लिए उसे प्रेरित किया। आग का आविष्कार पुरापाषाण काल में हो चुका था, जिसने मानव जीवन को और अधिक सुविधाजनक बना दिया। ऐसा अनुमान है कि अकस्मात ही किसी घटनावश जब कोई पात्र जलती हुई आग के पास रह गया होगा तो, वह पक गया होगा जिससे उस समय के मानव को पात्रों को पकाने की इस प्रक्रिया का ज्ञान हुआ होगा। इसके अलावा कुछ इतिहासकारों का यह भी मानना है कि जंगल में आग लग जाने के कारण मिट्टी के स्वतः पक जाने से पात्रों को पकाने प्रक्रिया का अविष्कार हुआ होगा।

मिट्टी के पात्रों को बनाने की प्रक्रिया में जब चाक की भूमिका का प्रवेश हुआ तो कुंभकारी कला का स्वरूप और परिष्कृत हो उठा। चाक का आविष्कार कब और कहां हुआ या तो अध्ययन का विषय है परंतु श्री गार्डन की राय है कि चाक भारत में पश्चिम से आया है, इसके अलावा एक किवदंती भी प्रचलित है जिसके अनुसार भारत में असुरों ने सबसे पहले चाक का आविष्कार किया तथा इसी कारण मिट्टी के बर्तनों का प्रेतकर्म में उपयोग वर्जित है। दक्षिण भारत के अनेक स्थलो से **नवपाषाण काल** से सम्बंधित पीले-भूरे रंग तथा भूरे या काले रंग के हस्तनिर्मित मिट्टी के पात्र प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार के बर्तनों की लाल सतह पर भूरा व बैंगनी रंग के रेखांकन भी प्राप्त हुए हैं। इसी के साथ उत्तर भारत के विनध्य क्षेत्र के इलाहाबाद जिले में बेलन नदी के तट पर स्थित कोलाडीहवा, महगड़ तथा पंचम नवषाण कालीन पुरास्थल हैं, जहाँ से ई॰ पू॰ 7000-6000 के बीच के मिट्टी के पात्र प्राप्त हुए हैं।[2]

सिन्धु सभ्यता कालीन कुम्भकारी कला - पाषण युगीन सहस्त्रों वर्षों के पश्चात् की प्राचीनतम्

संस्कृतियां सिन्धुघाटी के दो प्रमुख केन्द्रों हड़प्पा एवं मोहनजोदाड़ों के अवशेषो से ही प्रतिबिम्बित होती हैं। इस सभ्यता का समय 2350 से 1750 ई॰ पू॰ माना गया है तथा मोहनजोदाड़ो एवं हड़प्पा के अतिरिक्त कालीबंगा, गणवारीवाला, धौलावीरा, राखीगढ़ी आदि इसके अन्य केन्द्र हैं। **सिन्धु सभ्यता के केन्द्रों से जो मृदभाण्ड मिले हैं उनकी मिट्टी तीन प्रकार की है-**

1. पहले प्रकार के मृदभाण्ड वे हैं जिनकी मिट्टी स्लेटी रंग की है।
2. दूसरे प्रकार के वे हैं जिनकी मिट्टी पकाने पर गुलाबी रंग की हो गयी है।
3. तीसरे प्रकार के मृदभाण्ड वे हैं जिनकी मिट्टी पकाने पर श्वेत-गुलाबी हो गई है।

इस काल के लोग पकाई गई मिट्टी के रंगे हुए पात्रों का उपयोग करते थे तथा विभिन्न प्रकार के आकर्षक अलंकरणों से पात्रों को सुसज्जित भी करते थे। नाल, हड़प्पा, चन्हुदड़ो, रोपड़, लोथल आदि विभिन्न स्थलो से यह अलंकृत मृदभांड प्राप्त हुए हैं। ये पात्र आकार में विभिन्न प्रकार के होते थे तथा इनका उपयोग दैनिक जीवन के कार्यों के साथ-साथ अन्तयेष्टि के कार्यों में भी किया जाता था। ये मिट्टी के पात्र चाक पर तैयार किये जाते थे तथा एक नियंत्रित आंच पर पकाये जाते थे। इन मृदभाण्डों पर ज्यामितिय आकारों जैसे- त्रिभुज, डायमण्ड, व्रत आदि से सुंदरम् चित्र बनाये गये।[3]

वैदिक कालीन कुम्भकारी कला - सिन्धु सभ्यता की समाप्ति के पश्चात् जो नवीन सभ्यता प्रकाश में आयी यह मुख्यतः वेदों से सम्बन्धित थी इसलिए इसे वैदिक सभ्यता कहा जाता है। वैदिक काल को दो भागों में विभक्त किया जाता है- ऋग्वैदिक काल अथवा उत्तर-वैदिक-काल। ऋग्वैदिक काल की समय अवधि 1500 ई॰ पू॰ से 1000 ई॰ पू॰ मानी जाती है। इस काल से पुरातात्विक साक्ष्य रुप मे **जो मृदभाण्ड प्राप्त हुए वह चित्रित धूसर मृदभाण्ड थे।**

उत्तरवैदिक काल में विभन्न प्रकार के उपयोगी मृदभांडों का विवरण ग्रंथो में वर्णित है। **जैसे- ''आधवनीय'' (इस पात्र का प्रयोग सोमरस के रेशों को जल में डूबोकर रखने के लिए होता था)**, ''उदचयन'' (कुएँ से पानी निकालने का डोल जैसा पात्र) ''उदककुंभ'' (पानी का बड़ा घड़ा) आदि।

बुद्ध कालीन कुम्भकारी कला - बुद्ध के जीवन काल 563 ई॰ पू॰ से 4.83 ई॰ पू॰ में जिन पात्रों का चलन था, उन पात्रों को उत्तरापथ के काले चमकीले पात्र (एस॰ वी॰ पी॰) के नाम से जाना जाता है तथा इन पात्रों का अनुमानित समय 600 से 200 ई॰ पू॰ है। **बौद्ध काल के विभिन्न साहित्यों में भी विभिन्न मृदभाण्डों का उल्लेख मिलता है** जैसे- ''कोलम्ब'' (राहुल सांकृत्यायन ने इसे कूंडा कहा है), घट, कुम्भ (बौद्ध भिक्षु जगदीन कश्यप ने संयुक्त निकाय ग्रन्थ के हिन्दी अनुवाद में पालि कुम्भि के लिए इंडिया शब्द का प्रयोग किया है), सराव (एक प्रकार का प्याला) ओक्खा (चावल पकाने का बड़ा पात्र), थाल, पाति आदि। इसके साथ ही जातकों में ''कुलाल वर्ग'' का भी वर्णन एक प्रभावशाली व्यवसायी वर्ग के रूप में हुआ है जो मिट्टी के पात्रों को गढ़ने का कार्य करते थे।[4]

जैन कालीन कुम्भकारी कला - बौद्ध ग्रन्थों के प्रकार ही जैन ग्रन्थों से भी कुम्भकारों के सन्दर्भ में कई उल्लेख मिलते हैं। प्रसिद्ध जैन साहित्य **''आवश्यकचूर्णि'' में व्याख्यित लेख के अनुसार कुम्भकार अपने पात्रों को सौन्दर्यपूर्ण रूपों में गढने करने का कार्य 'कुम्भशाला' में करता था** तथा इसके पश्चात् पात्रों को ठोस बनाने के लिए 'पकनशाला' में पकाता था और जब पात्र पूर्णत्यः तैयार हो जाते थे तो उन्हें 'भाण्डशाला' में एकत्र करके रखता था। जैन कालानी साहित्यों के अतिरिक्त विभिन्न पुरातात्विक जैन स्थल जैसे- हस्तिनापुर, कौशाम्बी रंगमहल, वैशाली, तक्षशिला, उज्जैन आदि से प्राप्त

अवशेषों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है की इस समयकाल की कुम्भकारी कला अत्यंत समृद्ध और विकसित हो चुकी थी।

मौर्य कालीन कुम्भकारी कला - वैदिक काल के पश्चात् मौर्यकाल की स्थापना 323 ई॰ पू॰ में चंद्रगुप्त मौर्य ने की। कला की दृष्टि से भारतीय इतिहास का यह क्रांतिकारी युग है। मौर्यकालीन स्थलों से अनेक प्रकार की मृणमूर्तियाँ भी प्राप्त हुई है। **इस काल में निर्मित मृण्मूर्तियों को निर्माण विधि के आधार पर तीन भागों मे विभक्त किया जा सकता है-**

1. हाथों से बनी मृण्मूर्तियाँ (डैलियाकर विधि)
2. सांचे व हाथ दोनों के प्रयोग से निर्मित मृण्मूर्तियाँ
3. केवल सांचे से निर्मित मृण्मूर्तियाँ

इस काल में सर्वाधिक मृणमूर्तियाँ मातृदेवी को सामर्पित करने के लिए बनायी जाती थीं। खिलौने, सांचे व मनके आदि पर टेराकोटा विधि से किये गये रचना कार्य इस समय की कला के उत्तम उदाहरण हैं।

मौर्य काल से तीन प्रकार के मृदभाण्ड प्राप्त हुए हैं -

1. कृष्णमार्जित मृदभाण्ड 600 से 200 ई॰ पू॰ - ये मृदभाण्ड मौर्य स्तरों से अधिक संख्या में मिले हैं जो अधिक आभा वाले होने के साथ चित्रित भी है तथा जिनकी विशिष्ट तकनीक है, जिसे उत्तरी काली ओप के बर्तन Northern Black Polished Ware (N.B.P.W.) के नाम से भी पहचान प्राप्त है।
2. लाल या गेरू रंग के मृदभाण्ड
3. भूरे रंग के मृदभाण्ड (1200 ई॰ पू॰ से 600 ई॰ पू॰)[5]

शुंग वंश कालीन कुम्भकारी कला - मौर्य वंश के पश्चात् जिस वंश का परिचय मिलता है- वह है शुंग वंश। हर्षचरित और पुराणों के अनुसार शुंग वंश की नीव सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने मौयवंश के अन्तिम शासक वृहदरथ की हत्या करके रखी थी। शुंग काल की समयावधि 184-72 ई॰ पू॰ मानी जाती है। **शुंगकालीन चित्रित धूसर मृदभांड के टुकड़े विभिन्न पुरास्थलों से प्राप्त हुए हैं।** जिनके ऊपर काले रंग से चित्रकारी अलंकृत की गयी है। इस प्रकार के बर्तन कौशाम्बी रोपड़, कोट ला, बागपत आदि से प्राप्त किये गये हैं। लाल मृदभाण्डों में- घुमावदार कटोरे, ढक्कन, भंडारण के पात्र, फूलदान आदि इस काल से प्राप्त हुए हैं।[6]

कुषाण कालीन कुम्भकारी कला - ईसा पूर्व तीसरी शती से लेकर पहली सदी तक भारत में कई विदेशी जातियों ने प्रवेश किया। पहली सदी में शक, पह्लव तथा दूसरी-तीसरी सदी मे कुषाण जाति भारत में आयी। 'कनिष्ठ' इस वंश का सबसे प्रभावशाली राजा हुआ, जिसने 78 ई॰ में कुषाण साम्राज्य की राजगद्दी संभाली। यवन तथा कुषाण सभ्यता का प्रभाव मिट्टी के बर्तनों पर भी पड़ा और भारत में नये प्रकार के बर्तन बनना प्रारम्भ हो गये। **इस काल के पेय पदार्थ रखने वाले बर्तनों में टोंटी तथा हैडिल लगने लगे। इस काल के बर्तम रोपड़, तक्षशिला और हस्तिनापुर से प्राप्त हुए हैं।**[7]

गुप्त कालीन कुम्भकारी कला - गुप्त काल भारतीय कला के सन्दर्भ मे 'स्वर्णिम काल' था। इसकी स्थापना **240 ई॰ में श्री गुप्त** ने की थी। चन्द्रगुप्त द्वितीय, स्कन्दगुप्त, कुमारगुप्त तथा भानुगुप्त इस काल के महान शासक रहे हैं। इस युग के आरम्भिक मृदभांडो का स्वरूप कुषाण काल के मृदभांडो के सामानन्तर ही था। परन्तु बाद में सांचे मे ढले पात्र प्राप्त होने लगे, जिन पर उकेरे हुए स्थान पर ठप्पे के निशान अधिक पाये गये हैं। इनका रंग भी गहरे लाल से सिन्दूरिया हो जाता है। अहिछत्र से इस युग के बरतनो में सबसे अधिक मात्रा में लाल लेप से अच्छादित चिकने छट प्राप्त हुए हैं। कुछ मृदभाण्ड ऐसे भी प्राप्त हुए हैं, जिनपर काले रंग से चित्रकारी

की गई है। कौशाम्बी से एक पूर्ण घट का एक भाग छठी शताब्दी के स्तरों से प्राप्त हुआ है। जिसका निर्माण साँचे से हुआ है। **चन्द्रकेतुगढ़ से प्राथमिक, मध्य तथा उत्तर तीनो गुप्तकाल के मृदभाण्ड प्राप्त हुए हैं**, जिनमे- थालियां, गोल पेंदी के प्याले गराड़ीदार लम्बे पात्र, छोटी गर्दन वाले लोटे आदि प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं।[8]

मुगलकालीन कुम्भकारी कला - भारत में 1206 ई॰ में इस्लामिक शासकों का युग प्रारम्भ हो गया था, जिससे भारतीय कला के क्षेत्र में अनेक परिवर्तन हुए। मुस्लिम शासकों के भारत में आगमन के साथ ही मृद्धाण्डों के भिन्न-भिन्न रूपों, मिट्टी के अलग-अलग प्रभावों एवं काँचीय परत (ग्लेज़) के प्रयोगों का चलन प्रारम्भ हुआ। अतः इस समय के पात्रों एवं टाइल्स में ग्लेज तकनीक का प्रभाव देखा जा सकता है। इन पात्रों पर ईरानी चित्रण पद्धति से प्रेरित फूल-पत्तियों का अकन एवं पर्शियन ब्लू ग्लेज़ का प्रयोग होता था। मुगलकाल में विभिन्न मृदभाण्ड केन्द्र **जैसे- गोरखपुर निज़ामाबाद, खुर्जा** आदि स्थापित हो चुके थे। जिसे बाद के शासकों ने अपनी कलात्मक तकनीकों से और परिष्कृत बनाया।[9]

ब्रिटिश शासन कालीन कुम्भकारी कला - 31 दिसम्बर 1600 ई॰ में इंग्लैण्ड की महारानी 'एलिजाबेथ प्रथम' ने भारत में व्यापारिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए स्थापित ब्रिटिश कम्पनी को "ईस्ट इण्डिया कम्पनी" के रुप में मान्यता दी। ब्रिटिश शासनकाल में भिन्न-भिन्न प्रकार की पॉटरी जैसे- पोर्सिलेन पॉटरी एवं स्टोन वेयर आदि को प्रोत्साहन मिला। देश मे कला के विभिन्न आयामों जैसे नये-नये माध्यम, डिजाइन एवं तकनीक के प्रशिक्षण एवं विकास के लिए ब्रिटिश सरकार ने सर्वप्रथम चार कला एवं शिल्प महाविद्यालयों की नींव रखी गयी, जिसमे सन् 1850 ई॰ में मद्रास, 1854 ई॰ में कोलकत्ता, 1857 ई॰ में मुम्बई तथा 1875 ई॰ में लाहौर मे क्रमशः स्थापित किये गये। 1934 ई॰ में उत्तर प्रदेश सरकार ने खुर्जा में प्रो॰ एच॰ एन॰ रॉय को वाइटवेयर बनाने का प्रशिक्षण देने के लिए आमंत्रित किया था। प्रो॰ एच॰ एन॰ रॉय के प्रशिक्षण के फलस्वरुप स्थानीय पॉटर्स पारम्परिक सामग्रियो का प्रयोग करके वाइटवेयर निर्मित करना जान गये थे। स्वतंत्रता के पश्चात् सन् 1957 ई॰ में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्लानिंग रिसर्च एण्ड एक्शन इंस्टीट्यूट की स्थापना लखनऊ के चिनहट क्षेत्र में की गयी।[10]

वर्तमान समय में पारम्परिक कुम्भकारी कला- वर्तमान समय में भी पारम्परिक कुम्भकारी शिल्प के प्रचलन को बिना किसी खास व्यवधान के लगभग सभी गाँवों तथा नगरों में देखा जा सकता है। गाँव के प्रकृत मृद्धांडों के रूपाकार दिखावटी या असंबद्ध न होकर अत्यंत अभिव्यंजक होते हैं। इनके आकार जैविक, संपूर्णता का भाव लिए हुए और मूल सामग्री का बोध कराने वाले होते हैं। ग्रामीण पॉटरी-की सज्जा भी स्वतः स्फूर्त तथा रूपाकार के अनुकूल रहती है। जब किन्हीं जरूरतों के लिए पात्र बनाये जाते हैं तो ये न केवल व्यवहारिक बल्कि कलात्मक दृष्टि से भी सुन्दर बनाये जाते हैं।

स्वछायांकित

इन्हीं सुन्दर कलात्मक सृजनों को हम उत्तर प्रदेश की वर्तमान कुम्भकारी कला में देख सकते हैं। उत्तर प्रदेश के खुर्जा की ग्लेज्ड पॉटरी या मिट्टी की

कृतियाँ नक्काशी का चित्रण करने के लिए प्रसिद्ध हैं तो आजमगढ़ की काली कुम्हारी कला की रचनाएँ फुल पत्तियों व ज्यामितीय रचनाओं के लिए तथा चिनहट (लखनऊ) की चमकदार कृतियाँ नीले व भूरे रंग की सफेद पृष्ठभूमि के सुन्दर अलंकरण के लिए प्रसिद्ध है। वही गोरखपुर की कुम्भकारी कला सदियों के ज्ञान व परम्परा से सिंचित पारम्परिक कला-कलात्मकता का एक अनूठा उदाहरण है।

वर्तमान समय में कुम्भकारी कला का नवीन स्वरुप स्टूडियो पॉटरी -

सिंधु घाटी की सभ्यता के काल से अंकुरित हुई कुंभकारी कला को जब दक्ष सृजनात्मक क्षमता वाले कलाकारों ने नई दिशा दी और स्टूडियो मे अपनी कला से गढना शुरू किया तो कुंभकारी कला की कलाकृतियां भी प्रदर्शन योग्य श्रेणियों में आ पहुंची, जिससे कुंभकारी कला की यह विधा कला के क्षेत्र में ''स्टूडियो पॉटरी'' के नाम से स्थापित हो गई। **ऐसा माना जाता है कि स्टूडियो पॉटर या आर्ट पॉटर 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध की संकल्पना है और यह शब्द सबसे पहले यूरोप में चलन में आया था।** आजकल स्टूडियो पॉटर उस कलाकार को कहा जाता है जिसने कला की उच्च औपचारिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद मिट्टी को अपनी कला का माध्यम चुना। वैसे सबसे पहले के स्टूडियो पॉटर्स या आर्ट पॉटर्स के रूप में उन कलाकारों को जाना और समझा गया जिन्होंने फैक्ट्री निर्मित मिट्टी के वस्तुओं के तेज आगम को भाँपते हुए, पॉटरी कला के प्रति चिंता जताई और पॉटरी कला को उसके मूल स्वरुप में जीवित रखने के भरपूर प्रयत्न किए जिसके सकारात्मक परिणाम भी आए। **विश्व में स्टूडियो पॉटरी कला की शुरुआत ब्रिटेन में पहले स्टूडियो पॉटरी कला के आंदोलन के रूप में हुई।** उस समय पॉटर्स हस्तनिर्मित मिट्टी के बर्तन बनाने के अपने पारंपरिक तरीकों को ही अपना रहे थे, परन्तु 1887 में हांगकांग में पैदा हुए ''**बर्नार्ड लीच**'' ने पारम्परिक पॉटरी की तकनीकों एवं रचनात्मक प्रक्रियाओं में नए-नए प्रयोग करके स्टूडियो पॉटरी कला की नवीन अवधारणा की शुरुआत की।[11]

आधुनिक भारतीय कला इतिहास में 1950 के दशक के पूर्वार्द्ध में जब **अखिल भारतीय हस्तशिल्प बोर्ड के दिल्ली तथा कलकत्ता के डिज़ाइन केंद्रों में डिज़ाइन विकास कार्यक्रमों के अंतर्गत पॉटरी** को भी शामिल कर लिया गया था, तब सिरेमिक को व्यक्तिगत अभिव्यक्ति के रूप में अथवा तथाकथित स्टूडियो स्तर पर व्यापक रूप से अपना लिया गया था। 1960 ई॰ तक भारतीय कला के मानस पटल पर स्टूडियो पॉटरी एक अपरिचित सा शब्द था, परन्तु पॉटरी शिल्प को तब बहुत प्रोत्साहन मिला, **जब 1960 के दशक के प्रारम्भ में, जर्मनी के प्रसिद्ध सिरेमिक विशेषज्ञ ''विल्हेम मॉश'' अखिल भारतीय हस्तशिल्प बोर्ड के आमंत्रण पर पॉटरी के विकास के उद्देश्य से भारत आये।** विल्हेम मॉश के कार्यकाल के समय ही सरदार गुरचरण सिंह के भी अथक प्रयासों से पहली बार 1960 और 70 के दशक में भारतीय समकालीन कला में स्टूडियो पॉटरी का प्रवेश हुआ। इसलिए **भारत में स्टूडियो पॉटरी की शुरूआत करने का 'श्रेय सरदार गुरचरन सिंह'** को ही दिया जा सकता है।[12] वर्तमान समय के नामी समकालीन भारतीय स्टूडियो पॉटर्स में कृपाल सिंह शेखावत, देवीलाल पाटीदार, मनसिमरन सिंह, पी॰ आर॰ दरोज, इरा चौधरी, क्रिस्टीन माइकल, सुधा अरोड़ा और ज्योत्सना भट्ट आदि शामिल हैं।

कुम्भकारी लोक कला पुरातन काल से अद्यतन काल तक अपने भिन्न-भिन्न स्वरूपों में परिष्कृत और परिमार्जित होकर भी अपना अस्तित्व जीवंत बनाये हुए है तथा इसका विकास क्रम निरंतर वृद्धि कर रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारतीय कला, वाराणसी, 1966, पृ॰-9
2. राय, गोविन्दचंद्र : प्राचीन भारतीय मिट्टी के बर्तन, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1997, पृ॰ सं॰ 14, 16, 36
3. श्रीवास्तव, कृष्णचन्द्र, भारत की संस्कृति तथा कला, इलाहाबाद, 1996, पृ॰ सं॰ 22-23
4. प्रताप, रीता, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, राजस्थान, 2011, पृ॰-27
5. अग्रवाल वासुदेव, पूव नि॰, पृ॰ 98
6. शर्मा, देवदत्त, राजेस्थान का माटीशिल्प, राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, 2013, पृ॰-7
7. मिश्रा, कुमारी विभा, कौशाम्बी की मृण्मूर्तियाँ, इलाहाबाद, 2005, पृ॰-52
8. कुमार, सुधीर, भारतीय मृण्मय पत्रों का क्रमिक विकास, पिलिग्रिम्स पब्लिशिंग हाउस, वाराणसी, 2011, पृ॰-63
9. वही, पृ॰ 74
10. वही, पृ॰ 83-89
11. वही, पृ॰ 90
12. पुरी, एम॰ के॰, सरदार गुरचरन सिंह : स्टूडियो-पॉटरी के अग्रज, समकालीन कला, ललित कला अकादेमी, (अंक 30), दिल्ली, 2006, पृ॰ 9-13

Festivals of the Kumaun Region : Unveiling Cultural and Communal Significance

Prerna Rana
Ph.D. Research Scholar,
Department of Dance, Faculty of
Performing Arts, Banaras Hindu University

Dr. Ranjana Upadhyay
(Supervisor) Assistant Professor,
Department of Dance, Faculty of
Performing Arts, Banaras Hindu University

Abstract:

Uttarakhand, also known as Devbhoomi,(Land of Gods) is a captivating realm of mountains, myths, and enchanting landscapes. Kumaun, within Uttarakhand, holds its own cultural traditions, featuring folk arts, festivals, and diverse ethnicities. This research paper delves into the festivals of the Kumaun region in Uttarakhand, India, exploring their cultural heritage, intricate rituals, and profound societal impact. By situating these celebrations within historical and social frameworks, this study aims to illuminate the central role of festivals in shaping the region's identity and fostering unity among its diverse communities. The research methodology capitalized on both the researchers' native status in the region. It centered on an auto ethnographic approach that utilized the researcher's personal experiences and cultural familiarity. Active participant observation was a key element, involving the researchers' direct engagement in festivals with a focus on documenting local interactions and observations within the community. Significant academic Journals, Books, articles, research papers etc. are also examined that are suitable for the documentation and critical study of the research subject. According to the findings there are various folk festivals celebrated in the Kumaun region but the researchers' have critically studied and documented six majorly celebrated festivals and their cultural and communal significance.

Key Words:

Kumaun , Uttarakhand, Festival, Culture, Communal Significance

Introduction:

Festivals have long been an integral part of human societies, serving as occasions of joy, connection, and cultural expression. The Kumaun region, nestled in the northern part of Uttarakhand, boasts a rich tapestry of festivals that encapsulate the essence of its cultural heritage. 'The word 'Kumaon' is a corruption of 'Kurmanchal, the land of Kurmavatar, the ninth incarnation of Vishnu in the form of a tortoise.'[1] The Kunindas were the initial rulers of Kumaon, reigning from around 2^{nd} century BCE to 3^{rd} century CE. The Katyuris succeeded them, holding sway over Uttarakhand from the 7^{th} to the 11^{th} centuries. Belonging to the solar dynasty and claiming descent from the Sun-God, the Katyuris played a significant role in shaping the history of medieval Kumaon. The distinctive culture of the state encompasses customary practices, rituals, beliefs, folk traditions, customs, and language. The amicable inhabitants, also known as Pahari, engage in year-round celebrations, punctuated by music and dance during their festivals. This paper embarks on a journey to unveil the significance of these festivals, shedding light on their cultural and historical underpinnings, the intricate rituals they encompass, and the ways in which they contribute to the social fabric of the local communities.

CULTURAL CALENDAR OF UTTARAKHAND

MONTH	ENGLISH NAME	SIGNIFICANCE AND FESTIVALS
Chaitra	March - April	- Hindu New Year (Sankranti) - Navratri - Phool Dei – Bhitauli
Vaisakh	April - May	- Vaisakhi (Baisakhi) - Marking the sowing of paddy crops
Jaishtha	May - June	- Harvesting of Rabi crops
Ashad	June - July	- Sowing season for Kharif crops - Worship of God Indra
Shravan	July - August	- Fasting for Lord Shiva (Mondays) - Harela - Rai Sankranti
Bhadrapad	August - September	- Nanda Janmashthami-Saaton Aathon - Kauthig - Ghee Sankranti
Ashwin	September - October	- Pitra-Paksh - Navratri - Harvesting of paddy crops
Kartik	October - November	- Bagwal (Deepawali) - Harvesting of pulses and millets

Margshish	November - December	- Traditional dances (Dev Naach, Pandav Nritya, etc.) performed
Paush	December - January	- Dev Naach - Auspicious for marriages - Sowing Rabi crops
Magh	January - February	- Makar Sankranti – Ghughutiya (Uttarayani) - Magh Mela
Falgun	February - March	- Month-long Holi celebration- Kumauni Holi (Baithiki and Khadi Holi)

PHOOL DEI :

Phool Dei, an enchanting harvest festival of Uttarakhand, ushers in the arrival of the vibrant spring season. It unfolds on the inaugural day of the Hindu month of *Chaitra,* typically falling in mid-March. The festivity centers around the spirited participation of the region's young children, who eagerly embrace their role in its festivities. This festive occasion holds a special place in our hearts since the early childhood days when we as children used to get excited and divide ourselves in different squads for going to various houses around the locality.

During *Phool Dei,* the young members of the village enthusiastically take to the streets, bearing plates adorned with a medley of offerings: rice, jaggery, coconut and an array of vibrant flowers and leaves. With these symbolic tokens of goodwill in hand, they embark on a journey to visit the homes within their vicinity. In a spirit of benevolence, they extend their best wishes to the households, while also engaging in the delightful task of distributing the offerings they carry.

The ritual involves an exchange of blessings that transcends generations. The household members reciprocate the well-wishes by offering tokens of appreciation, which often include money, jaggery, sweets, rice and gifts. As the doorsteps of the houses are adorned with an exquisite fusion of flowers and rice, the atmosphere becomes alive with the enchanting melodies of springtime songs, including the cherished refrains of "*Phool die*, chamma dei."

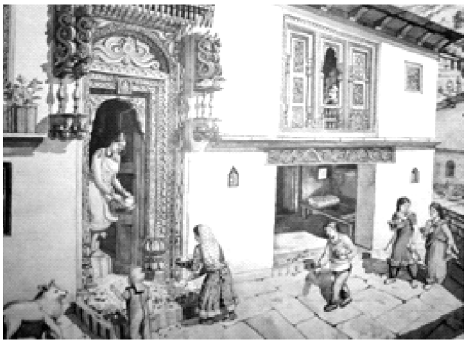

"Phool dei chamma dei
Deno dwar bhar bhakar
yo deli par barambar namaskar"

i.e. May the entrances of the homes on which the flowered are showered thrive in prosperity, richness, and tranquility. May the grain stores remain ever replenished with abundance. We humbly bow to this doorstep repeatedly, expressing our heartfelt reverence.

This celebration holds a significant place in the cultural tapestry of Uttarakhand, particularly due to its alignment with the first day of the *Chaitra* month in the Hindu calendar. *Phool Dei* signifies a profound connection between the local culture and the region's ecology, encapsulating the harmonious relationship between human life and nature's cyclesThe gesture of sharing offerings, blessings, and music among neighbors reflects the deep sense of togetherness, friendship, and harmony that define the Kumaun region.

BHITAULI :

Bhitauli, derived from the Kumauni dialect meaning "to meet," is a heartwarming festival dedicated to married women in the Kumaun and Garhwal regions of Uttarakhand. Celebrated in the Hindu month of *Chaitra,* it holds great cultural significance. During *Bhitauli*, brother or a father visit his sister or daughter's in-laws home, bringing gifts and homemade sweets to ensure their well-being and later the daughter also distributes those sweets in her neighborhood and village. In hilly Uttarakhand, women play pivotal roles in society, managing various responsibilities from family care to agriculture.

Despite their dedication, these women often have limited time with their husbands, who seek employment in urban areas. The festival bridges this emotional gap, providing a precious moment for families to reconnect. As spring arrives and nature rejuvenates, married women look forward to '*Bhitauli*,' traditional gifts that offer them a break from their daily routines and a chance to relive the warmth of their parents' affection.

HARELA:

Harela, a significant festival in the Kumaon region, serves as a warm welcome to the rainy season, the fresh harvest, and a special observance of Lord Shiva's wedding anniversary. The term *"Harela"* translates to "green leaves," symbolizing the lush greenery that dominates the landscape during the monsoon season, with rice fields adorned in vibrant, shiny leaves.

This festival holds a prominent place as it signifies the commencement of the crop sowing cycle. There are two *Sankrantis* observed during the monsoon season: *Rai* and *Ghee. Rai Sankranti*, also known as *Harela,* serves as a symbol for the preservation of nature as each family member plants a tree in and around the agricultural field. The seeds of five or seven different grains, including maize, mustard, horse gram, barley, wheat, rice, soybeans, and other crops, are combined and sown in a pot or a flat wooden pane called a *"chauk"* about ten days before the great festival. Then, this pot is maintained in a dimly lit area with no access to sunshine, and it receives two or three daily sprinkles of water. The exquisitely crafted idols of Lord Shiva and Parvati are readied for devotion during this festival, known as "*Dikare"* or *"Dikars."* The family enjoys mouthwatering delicacies that are specifically prepared for this event after puja and other religious activities.

The freshly harvested herbs, also known as *"harela,"* are regarded as divine blessings. The elders within the household place *harela* on the heads of others, running it from their heads down to their feet. This act is accompanied by the recitation of a blessing verse mentioned below:

"jee raye, jaagi raye dharatee jas aagav,

aakaash jas chaakav hai jaye soorj jas taraan,

syaave jasi buddhi ho doob jas phaliye,

sil pisi bhaat khaaye, jaanthi teki jhaad jaaye"

i.e. May you experience lush greenery, enjoy a long life, and attain wisdom. May you possess the patience of the earth, the kindness of the sky, the radiance of the sun, the cleverness of the jackal, and the growth of grass. May your life be so abundant that you reach a stage where you need to grind cooked rice to eat and use a walking stick to go to the bathroom.

GHUGHUTIYA, UTTARAYANI OR MAKAR SANKRANTI :

Makar Sankranti marks the transition of seasons as the sun moves from the Tropic of Capricorn to the Tropic of Cancer. This festival is joyously celebrated in the month of *Push* (January). The event that signifies the commencement of the Sun's northward journey is also observed as the time when migratory birds return to the distant hills of Uttarakhand. The festival is celebrated all around the nation with various names. It is called as Pongal in Tamil Nadu, Magh Bihu in Assam, Uttarayan in Gujarat, Sankranti or Khichdi in Uttar Pradesh, Ghughutiya or Uttarayani in Uttarakhand etc. During this occasion, a traditional dish called *Ghughuti* with wheat and jaggery is prepared and shared among people, alongside the distribution of *Khichari*. The children's neck are then garlanded with

these *ghughutiyas,* fruits, groundnuts that have been strung together on a string. The youngsters wear these necklaces to attract the *"kale kauve,"* or black crows and chant the following lines:

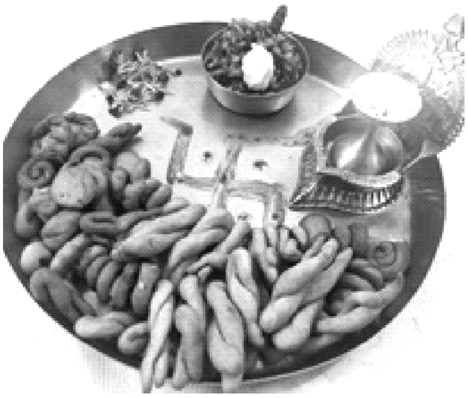

Ghughuti made of Jaggery & wheat

"kaale kauva kaale ghughuti maala kha le.

kaale kauva kaale, ghughuti maala kha le.

lai kauva bhaat, mein kai de sunak that,

lai kauva lagar, mein kai de bhaeeban dagar.

laee kauva baud menakaee de sunauk ghvaad"

Uttarayani Mela of Kumaun

Various fairs and cultural events are organized in different parts of Uttarakhand and are called as *'Uttarayani Mela'*. These events often feature traditional folk music, dance performances, and local handicrafts.Uttarayani is considered an auspicious time for pilgrimages to sacred sites in Uttarakhand, including the Char Dham Yatra (Yamunotri, Gangotri, Kedarnath, and Badrinath) and other important temples and shrines.

SAATON – AATHON :

The *Saaton Aathon* festival is of great significance in Kumaun region of Uttarakhand. It is celebrated in 7th and 8th day of *Bhadrapad* month(August-September) during which all the women in the village worship Gaura and Mahesh, symbolizing Shiva and Parvati. The figures of *Gaura* and *Mahesh,* referred to as *Gamar* or *Gawar*, are crafted using crops from the fields such as cotton, paddy, sesame, maize, maduva, and bhat. Gaura is adorned with traditional attire, including a saree, pichoda, bangles, bindi, and makeup akin to that of a married woman. Similarly, Mahesh is dressed

Women worshipping Gaura and Mahesh

Birudas filled in a copper vessel

in men's clothing, including a kurta, pajamas, and a shawl. Both wear crowns. The festivities commence on Panchami, known as *Birud Panchami* because it marks the soaking of *Biruda*s, which are later worshiped on the seventh and eighth days (Saptami and Ashtami). Birudas consist of five types of grains soaked in a Toula, a copper vessel, on Panchami, with cow dung applied at five points outside the vessel and adorned with *doob* (grass) and Tika. Wheat is also bundled within the vessel. The crowns are typically worn by the most recently married couples in the village. Women offer a thread called "dubdhaga" to Gaura as and then they tie it around their neck or arm after praying before Gaura visarjan ceremony.

KUMAUNI HOLI :

In the Uttarakhand Himalaya, Holi is celebrated in a unique way. *Kumaoni Holi* represents a blending of the cultural traditions from North India with the unique customs of the Kumaon region. It begins with Basant Panchami in February and extends until the day of Holika Dahan. This Holi celebration spans an entire month and occurs in two distinct phases.

Baithiki Holi of Kumaun

Khadi Holi of Kumaun

The first phase, known as "*Baithiki,*" involves people gathering in a communal area after dinner each day. They come together to sing songs as a group and dance until midnight. *Baithiki Holi* continues until the onset of *Khadi Holi*. *Khadi Holi* lasts for seven days and involves a procession of young people moving from village to village. These participants don white attire, sing Holi songs, accompanied by musical instruments and a sumptuous feast, including spiced potatoes, *Bhaang Chutney, Gujiya* and semolina-based *Singals*, followed by a concluding offering of jaggery and various aromatic ingredients like *paan supari*. Following Holika Dahan, the collected food grains are cooked, and a grand feast is prepared and served to commemorate the festivities.

Conclusion :

The research paper has delved into the rich cultural diversity of the Kumaun region in Uttarakhand and explored the profound

significance of its festivals. These festivals are not merely celebrations; they are the threads that bind the community together, reinforcing their cultural heritage and fostering unity among the diverse ethnicities of the region. *Phool Dei* marks the arrival of spring and showcases the unity and goodwill of the local children. *Bhitauli s*trengthens familial bonds and provides a precious moment for families to reconnect. *Harela* welcomes the monsoon season and signifies the commencement of the crop sowing cycle, emphasizing the harmony between human life and nature. *Ghughutiya, Uttarayani, or Makar Sankranti* marks the transition of seasons, welcoming of migrated birds to the hills. *Saaton-Aathon* worships Gaura and Mahesh, symbolizing Shiva and Parvati, strengthening the cultural fabric of the community. Finally, *Kumauni Holi* brings together the cultural traditions of North India with the unique customs of Kumaon,

In essence, these festivals are not only a testament to the cultural diversity of Kumaun but also serve as a reflection of its historical roots and deep connection with nature. They foster a sense of togetherness, friendship, and harmony among the people, transcending generations and reinforcing the region's identity. As we celebrate these festivals, we are reminded of the enduring cultural heritage that binds us together and shapes the unique identity of Kumaun, the "Land of Gods.

References :

1. Gokhale , Namita (1998). *Mountains Echoes: Reminiscences of Kumaoni Women*. Roli Books Private Limited New Delhi
2. Sati, V.P. (2023). *Uttarakhand : Society, Cultures and Pilgrimages*. Today & Tomorrow Printers & Publishers, New Delhi.
3. Chauhan, P. (2016). Ghughutiya :The Mouth-Watering Festival of Kumaon

   https://www.euttarakhand.com/ghughuti-the-mouth-watering-festival-of-kumaon
4. Bijalwan, A.(2021).Why Uttarakhand celebrates Harela. *Down to Earth*.Society for Environmental Communications, New Delhi.

   https://www.downtoearth.org.in/blog/agriculture/why-uttarakhand-celebrates-harela-78049
5. Pande, B. (2016). *Kumaun Ka Etihaas.* Almora Book Depot, Almora.

अंकन

Modernism in Indian Sculpture and Ramkinkar Baij : A Study

Dr. Ganesh Nandi
Assistant Professor,
Department of Visual Arts, Assam University Silchar,

Abstract :

India has always a rich tradition of sculpture. But before coming of British it was purely traditional and religion based. It was only the Ramkinkar Baij, a modern maestro of Indian sculpture, who brought in a new age in Indian Sculpture. He was the Pathfinder of a new and unexplored horizon through his experiments with form, concept, medium and working process. He gave a message not to pay homage to any individual. But like any other form of art, Sculpture too, is an artist's self expression and it can be done without any patronization. He also proved through his environmental sculpture that nature has a deep relation with sculpture and it can touch an apex of beauty. He was the person who first time in Indian sculpture introduced labour class or common people as subject matter. In all the way he laid the foundation stone of modern Indian Sculpture. The study has focused in these things.

Key Words :

Sculpture, Academic Realism, Experimentation, Environmental Sculpture.

Introduction :

Indian sculpture has passed a long way through evolution and it has stepped on the borderline of modernity. But the success and recognition has become a reality only at the cost of lifelong contribution of a number of ingenious artists. Indian sculpture had a special respect for his reached ancient tradition, but it got a little direction towards modernity when the British came to rule in India. New trends of Indian sculpture during the pre-independence period emerged out of the influence of European academic realism. The period of modernization of India is coeval with two hundred years of colonial rule. Thus, the history of British colonialism is a part of the history of Indian modernism too. It was during the late 1920's that Indian sculpture could find a new point of departure from the existing stereotype and it was Ramkinkar Baij, the modern maestro of Indian sculpture, who brought in a new age in Indian Sculpture. He was not bonded with in any limitation of thought or working process. He made his own way of creation which was purely his personal.

He was influenced by the tradition but his working style and techniques were totally modern and he had some elements which crossed the boundary of modernity also.

In the contemporary Indian sculpture, the synthesis of traditional and modern values has played an important role. In this perspective, it has to be mentioned that Ramkinkar paved the way to modernity in Indian sculpture, and also was able to inspire the other sculptors to find a new direction of modern sculpture by generating the Indian values. It was not so easy to break the influence of the West. Many of them opines that this is not the wealth of a particular country or a particular community, it is the right of every one to be a part of the global art and to follow and art trends whatever one likes or not. Moreover, if an art form is lacking behind to generate and identify of a community or race and if it is unable to present the echo of contemporary society then it is not being treated as a true form of artwork. Many of the Sculptors are working, and they are trying to create a new form of style which would be completely free from traditional values as well as not directly inspired form Western art (Ghosh : 1995). The importance of Ramkinkar lies in this point, the Indian Sculpture has reached a new height of traditional Indian modernity. In contemporary Sculpture the idea of Indian abstraction was used widely by many people. Primitivism became a major source for many artists. Some of them are taking from folk sources also. In that way a process of synthesis is going along with the trend which is influenced by Western art. And these creative processes are responsible for the manifestation of Ramkinkar as well as Meera Mukherjee for the creative outburst as sculptor.

Works of Ramkinkar - The New Vision in Indian Art :

The Three generation of Indian Sculpture, till Debi Prasad Roy Choudhury had acquired the tremendous knowledge about the academic realism in sculpture. Their creation is not limited within the boundaries of human portraiture but it has expanded to the various dimension of Indian life. But unfortunately they were unable to capture the root of the Nation. Here the question arise what do we mean by modernity. In the field of art Abanindranath Tagore is known as the pioneer of modern art, because, he was the first person who gave emphasis on the inner feeling of an artist. It means the entire freedom of an artist to represent his felling, his views in to his work. The artist would be supreme one to take the necessary decision regarding his work. Before that, situation was completely different where the patron played a dominant role, the topic of an art work and its medium; everything was decided by a patron. Therefore, the artist had no other choice but to fulfill the desire of a patron. It is because of Abanindranath Tagore the artist got control over his work. At least he is now free to express his felling through his work. This freedom of expression was the first step towards the new horizon of modernity. Secondly, the traditional identity of a community is also reflected in the work during the period of Abanindranath Tagore. Moreover, the ethos of a society, the inner vision of a society that is also captured, and the true equation of modernity runs around these three major characteristics ; that is, the personality of an artist, the traditional identity of a community and finally the value or the inner vision of a society. And

the amalgamation of these three ideas gives birth to modernity.

From the perspective of Indian Sculpture, it is in the period of Ramkinkar we got a perfect mixture of these characteristics. For this reason Ramkinkar can be considered amongst the first artist who gave a new direction of modernity in the field of Indian Sculpture. Santineketan is a renowned organization, for the development of art activities during the days of pre independence but still the facility was very limited for the promotion of Sculptural development. During those days two sculptor from abroad visited Shantineketan. The company of those Sculptor and the exchange of Sculptural knowledge helped Ramkinkar to develop his own ideas (Das Gupta: 2006).

Besides this he had an interest to know the current trends of sculpture from various countries by reading related books of sculpture. The natural atmosphere is another major factor of Ramkinkar's work. The Nature allows his inborn talent to grow as a Sculptor. Especially his open air Sculpture brings a new light in the field of Indian Sculpture to give a unique identity of boldness and rhythmic gesture. In the year of 1935, Ramkinkar made Sculpture with cement and concrete. Later on Nandalal Bose gave its title as *Sujata*, an elongated figure of a young woman who stands in the midst of long eucalyptus tree. The figure looks as emerged from tree and creates an atmosphere of rhythmic balance and aesthetic pleasure. It represents the inner sense of Indian life as well as the fusion of modern western influence. The syntheses of these two styles give rise to an entire, independent style of modernity of Indian Sculpture. After a long year of struggle finally Indian Sculpture got the essence of modernity in *Sujata* is one of the renowned Sculpture of Ramkinkar. And it becomes a trade mark of modernity. A number of Sculptures was made before this in the open air but those are basically the portraiture of human figures. Although they were placed in open air but lacked of rhythmic gesture of nature. But *Sujata* it becomes a part of nature, as it emerged from nature, and leads toward the supreme level of aesthetic pleasure. Among the other contemporary sculptor of Ramkinkar the major problem was to break out from the mould of naturalistic representation of human figure and the eligibility to establish itself to measure the identity of a nation. It is quite natural that they would be inspired from the rich sculptural heritage of traditional and folk level and on that basis they will be able to reflect the mirror of that society. The aim was to make a bridge between traditional and modern. In that dark period of Indian sculpture especially when the sculptors were so eager to give a new dimension in the Indian sculpture Ramkinkar came as a pioneer of modern Indian sculpture. Specially his open air sculpture will be able to open up a way new for the future generation (Appaswami : 1991).

> Art historian Sovon Som said in an interview (2010), *"The sculptural development in the field of art were absent during the days of Muslim period in India. Basically there was no as such a possibility to create a favorable environment for sculpture. In 1803 during the period of British rule in India, the Britishers first established the statue of Lord Cornwallis to glorify the power and reputation. Because, Cornwallis played a significant role for the settlement of Britishers in India. He took initial role to establish the plan and policy of British Government over*

Indians. The Statue of Cornwallis was set up with a purpose to pay a tribute to this great administrator of British Government in 1803.

After this for a long period we believed that sculpture meant to glorify renowned persons. We did not have any idea that the sculpture can be represent in a conceptual way. Here I tried to mention the two sculpture of Ramkinkar — The 'Santhal Family', when Ramkinkar visited Santiniketan in the year of 1925, there was a famine in the Santhal district of Bihar. Due to this large number of landless labourer migrated from their native place and turn towards the way of Burdwan to find a job to continue their livelihood. Nandalal made a painting on the theme of migrated famine victims 'Bolpurer Pathe'. Ramkinkar also create a sculpture on this same theme, in clay. It is in small size. This small size sculpture in clay is known as "Santhal Parivar". Later on the year 1935 according to direction of Nandalal Bose he made it in huge scale. The major point is, this is the first time in our country there is a conceptual sculpture, which is free from to glorifying the identity of a person. The sculpture is based on a social theme that is the migration of labour. Secondly, before the Mughal period, whatever the sculptural development we noticed in India that is in the same place, most of the time the sculpture was prepared in studio, some of the time it was imported from some other countries. But Ramkinkar's sculptures were site specific. That means the sculpture were prepared in a particular site which suites the surrounding environment. When he makes the sculpture of 'Santhal Family' the trees were small and the houses were first floor only. The road which leads near the 'sculpture' gives is a view, an idea of village road. Before that the statue were placed on pedestal. But the Ramkinkar sculpture looks as if walking on the village road. Here the emphasis was given on simple working class people. They are one of us and have a relation to this soil.

The next thing is that Ramkinkar did not have money to buy stone to create sculpture. So he took up the natural resources whatever is locally available. Like stone, sand, cement and mixed them together and made this sculpture of 'Santhal Family'. These give a unique character to this sculpture as if emerged from this soil and have a close relation to this soil. In spite of sand, stone and cement if he had prepared it on stone or some other medium perhaps he would never be able to maintain this relationship with soil. So it means a site specific sculpture, which is based on a particular situation and creates an atmosphere which relates the theme towards the surrounding nature and obviously have a concept. Moreover, whenever he filled the necessity he modeled it with the help of chisel which gives a rough texture, and matches to worlds the roughly surrounded natural environment of Birbhum. In this sense Ramkinkar is able to give a breakthrough in the field of sculpture. He proved that there can be a concept in sculpture. With the help of his sculptures he was able to set up a mile stone of modern Indian sculpture" (Som : 2010).

An artist is always an artist. His creativity never ends. It just goes on and on till the end of life. As a hereditary right, the rich heritage of past gave him the power, independence, and confidence to create till the last day of his life. He is eager to capture the various colours of life.

In true sense, Ramkinkar, had acquired the knowledge of sculpture from the rich heritage of past. He realized it from the bottom of his hearts. He has understood the nature with his tremendous

sensitivity. The motion of life, the variety of nature has captured by him. On the basis of his inborn talent he crates his own world of modernity; his open air sculpture reveals so. The artist is very much close to nature, and guided by life, and this togetherness leads him towards the height of aesthetic satisfaction. His sculpture like *Santhal Family*, *Sujata* etc. reveals these facts. Ramkinkar has conveys the massage that it is not sufficient to take inspiration from nature but also have to create a sculpture as if it emerges from nature and one should be hypnotized by the blend of the nature and the will be quite difficult to make a distinguish between these two, otherwise the artwork will be incomplete. So we can say that the open air sculpture of Ramkinkar not only gives us a new idea of modernity, but also lead us toward a new world.

Conclusion :

If Abanindranath has given fresh breath in Indian Painting it can be said that Ramkinkar Baij, a modern maestro of Indian sculpture, who brought in a new age in Indian Sculpture. He was the Pathfinder of a new and unexplored horizon through his experiments with form, concept, medium and working process. What he made; it was fundamental and purely his personal. Ramkinkar established the basis of modern Indian sculpture. He made it clear that sculpture work could be done without any patronage, that sculpture works are not aimed at satisfying the royal pleasure. He gave a message not to pay homage to any individual. But like any other form of art, Sculpture too, is an artist's self expression. The most significant contribution of Ramkinkar in modern Indian sculptures is his open air sculpture or eco-friendly sculpture. Therefore, he was the first among Indian sculptors to give vent to the idea that sculpture has a deep tie with nature. Their symmetry is always aesthetical. His environmental sculptures are unique for their monumentality, different texture, play of light and shade. They are very bold, expressionistic, energetic and restless. It seems these are always moving. Before Ramkinkar sculpture were installed to glorify higher ordeals like god, goddesses or royal person. They were placed on higher pedestal. But Ramkinkar, created his open air sculpture on the spot. He represented first time in Indian sculpture labour class people as a subject matter. There was no pedestal and it seems they are part of common people and they are moving with the people. He proved that there can be a concept in sculpture. With the help of his environmental sculptures he was able to set up a mile stone of modern Indian sculpture. In all the way it can be considered Ramkinkar as modernist in Indian context.

References :

1. Appaswami, Jaya (1961). *Ramkinkar.* Lalit Kala Akademi,
2. Appaswami, Jaya (September, 1976). *Ramkinkar: His Contribution to Contemporary Art,* Lalit Kala Contemporary, No. 22.
3. Appaswami, Jaya(October-December, 1983), *Ramkinkar as a Pathfinder,* Bivab, special issue on Indian Sculpture.
4. Bandopadhyay, Somendranath (1994). *Ramkinkar: Alapchari Shilpi,* Dey's Publishing, Calcutta.
5. Das Gupta, Ansuman (2006-07), *Visual Metephors for the Modernist Moments,* Ramkinkar Baij Centenary Exhibition Catalogue, Nandan, Kala Bhavan.

6. Debi Prasad (2007), *Ramkinkar Baij's Sculptures, Tulika Publication,* New Delhi.

7. Ghosh, Mrinal(2008). *Ramkinkar-Challisher Adhunikata*. Pratikkhan. Kolkata.

7. Ghosh, Mrinal (2006). *Samakalin Bhaskarya.* Pratikkhan. Kolkata.

8. Kapur, Geeta (2000). *When was Modernism: Essays on Contemporary Cultural Practice in India*. Tulika Publication. New Delhi.

9. Kar, Chintamani (2002). *Ramkinkar*. Sukhi Grihakone. Kolkata. March.

10. Kousik, Dinkar (2006-07). *Ramkinkar.* Ramkinkar Baij Centenary Exhibition Catalogue. Nandan. Kala Bhavan, Santiniketan.

11. Mago, Pran Nath (2001). *Contemporary Art in India- A perspective.* National Book Trust, India,

12. Mitter, Partha (2007). *The Triump of Modernism : India's Artists and the Avant Garde. 1922-47.* Reaktion Books. London.

13. Mukharjee, Benodbehari (1991). *Ramkinkarbabur Katha,* ed. By Prakash Das. A Mukharjee and Co. Private Limited. Calcutta.

13. Mukhopadhyay, Amit (1991). *Shilpo, Shilpi, Samaj o Ramkinkar.* ed. By Prakash Das. A Mukharjee and Co. Private Limited. Calcutta.

14. Narzary, Janak Jhankar (1980). *A History of Environmental Sculpture and Ramkinkar Baij.* (An Annual Art and Aesthetics). Kala Bhavan. Visva-Bharati. Santiniketan.

15. Saha, Kunalkanti (1991). *Kinkar-dar Songe Kichhusamay.* ed. By Prakash Das. A Mukharjee and Co. Private Limited. Calcutta.

16. Sen, Partitosh (2nd Feb. 2008). *Adhunik Bharatiya Bhaskaryer janak Ramkinkar.* Desh.

17. Some, Sovon (December 1985). *Tin Shilpi.* Bani Shilpo. Calcutta-9.

18. Some, Sovon(March 1982). *Shilpi, Shilpoo Samaj.* Anustup Prakashani. Calcutta-9.

19. Subramaniyan (1991). K. G. *Ramkinkar o Tar Shilpokaj,* ed. By Prakash Das. A Mukharjee and Co. Private Limited. Calcutta.

राजस्थान की लोक कला के विशेष सन्दर्भ में कला और लिपि का अन्तर्सम्बंध

डॉ॰ सुरेश चन्द्र जाँगिड़
सहायक आचार्य चित्रकला विभाग, दृश्य कला संकाय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सारांश :

भाषा और कला दोनों का मूल लक्ष्य अभिव्यक्ति ही है। भाषा जो कार्य शब्दों के माध्यम से करती है, कला में वही कार्य रंगो, रेखाओं, आकारों द्वारा किया जाता है। यदि लिखित रूप के बारे में विचार किया जाये तो हम पाते हैं कि भाषा भी कुछ विशिष्ट संकेतों के रूप में लिपि के स्वरूप में प्रकट होती है। इस आधार पर भाषा और कला सहोदर जान पड़ती हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में इसी सम्बन्ध के आधार पर भारतीय लिपियों में समाहित कला तत्वों विशेष रूप से राजस्थानी लोक कला अभिप्रायों के योगदान को खोजने का प्रयास किया गया है। इस प्रयास में भाषा (लिपि) और लोक कला के विकास पर एक संक्षिप्त दृष्टिपात तो होता ही है, साथ ही साथ भारतीय संस्कृति और जीवन से जुड़े अनेक पक्ष भी उद्घाटित होते हैं।

बीज शब्द :

लोक कला, सिन्धु सभ्यता, पशु चिह्न, चित्राक्षर, लिपि, वैदिक भारत

प्रस्तावना :

मानव जीवन में अभिव्यक्ति का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यही वह गुण है, जो मनुष्य को निरन्तर उन्नतिशील बनाता रहा है। अपने ज्ञान को, चाहे वह भौतिक हो अथवा आध्यात्मिक, अन्य लोगों के साथ साझा कर प्रत्येक ने इस उन्नति में अपना योगदान दिया है और निरन्तर दे रहें हैं। व्यक्तिगत स्तर पर भी जीवन के अभिन्न अंग के रूप में अभिव्यक्ति का महत्व स्वतः स्पष्ट हैं। अभिव्यक्ति के लिये माध्यम की आवश्यकता होती है। यह माध्यम वाणी, रूप अथवा अंग-संचालन हो सकता है। चूंकि वाणी और अंग-संचालन समयाधारित माध्यम है, अतः भाव को सुरक्षित रखने के लिये रूपाभिव्यक्ति माध्यम अधिक उपयुक्त रहता है। यह रूपाभिव्यक्ति माध्यम एक ओर जहॉ दृश्य कलाओं के विविध प्रकारों में देखा जा सकता है, वहीं दूसरी ओर विभिन्न भाषाओं के लिखित स्वरूपों में भी दृष्टिगोचर होता है। भाषा की लिखित रूपाभिव्यक्ति के लिये लिपि की आवश्यकता होती है, इसलिए विश्व में प्रायः भाषाओं के लिये लिपि अस्तित्व में रही है। कहा भी हैः

''कण्ठंस्थितेवर्णघोषंलिखितरूपंलिपिकास्तथा।''

('जुगनू' (संपादक), 2016)

लिपि की सबसे छोटी इकाई अक्षर मानी गई है। अक्षर वह है, जो कभी नष्ट नहीं होता। उच्चरित ध्वनि शून्य में स्थिर हो जाती है, कभी नष्ट नहीं होती, अतः वर्ण को अक्षर कहा जाता है। पाणिनीय व्याकरण के अनुसार अक्षर शब्द वर्णवाची है। ('जुगनू' (संपादक), 2016) लिपि ने भाव को सुरक्षित रखते

हुये भाषा के अस्तित्व को संरक्षित करने का कार्य भी किया है। इस प्रकार लिपि भी एक विरासत है और मानव व्यवहार से इसका गहरा नाता रहा है। भाषा तो किसी भी जीव-जगत की हो सकती है, किन्तु लिपि मानव व्यवहार की प्रतीक है। यह भाषा के प्रत्यक्षीकरण का स्वरूप है।

लिपिनोऽक्षरदृश्यरूपाम्।

((संपादक), 1984)

भारतीय लिपियाँ : उद्भव एवं स्वरूप :

लिखित वर्ण को लिपि कहा जाता है। यह वर्णों तथा चिह्नों के संयोजन की प्रणाली है। कोशकारजटाधर ने अक्षर रचना को लिपि कहा है। संकेत या चिह्न से लेकर अक्षर के अस्तित्व में आने तक लिपि अनेक स्तरों से गुजरी है।पाँचवीं सदी के लगभग संपादित नारद स्मृति में लिपि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहा गया है कि वह ब्रह्मा की उपज है। इसी प्रकार का संदर्भ ऋगवेद के एक मंत्र में भी प्रकट होता है। (ऋगवेद संहिता, 9, 33, 4-5) आश्चर्य है कि चीन के विश्वकोष 'फा-वान-शू-लिन' में भी यही मत मिलता है कि ब्रह्मा ने एक विशिष्ट प्रकार की लिपि का अन्वेषण किया था। कोष में ब्राह्मी की ओर संकेत करते हुए कहा गया है कि यह बायें से दाहिनी ओर लिखी जाती थी।

देश, काल और क्षेत्र के आधार पर लिपियों की विद्यमानता के साथ उनका प्रचलन रहा है। किसी भी लिपि को पुराणों में वर्णित निर्देशानुसार उसके गुणधर्म के अनुसार ही लिखने पर पर्याप्त बल दिया जाता रहा है, ताकि अर्थ का अनर्थ न हो। ईसा की प्रारंभिक सदियों में संपादित और 308 ई॰ में चीनी भाषा में अनूदित बौद्ध ग्रंथ 'ललित विस्तर' में 64 लिपियों का उल्लेख मिलता है -

1. ब्राह्मी लिपि
2. खरोष्टी लिपि
3. पुष्करसारी लिपि
4. अंगलिपि
5. वंगलिपि
6. मगधलिपि
7. मंगल्यलिपि
8. अंगुलीयलिपि
9. शकारिलिपि
10. ब्रह्मवलिपि
11. पारूष्यलिपि
12. द्राविडलिपि
13. किरातलिपि
14. दाक्षिण्यलिपि
15. उग्रलिपि
16. संख्यालिपि
17. अनुलोमलिपि
18. अवमूर्धलिपि
19. दरदलिपि
20. खाष्यलिपि
21. चीनलिपि
22. लूनलिपि
23. हूणलिपि
24. मध्याक्षरविस्तरलिपि
25. पुष्पलिपि
26. देवलिपि
27. नागलिपि
28. यक्षलिपि
29. गन्धर्वलिपि
30. किन्नरलिपि
31. महोरगलिपि
32. असुरलिपि
33. गरूडलिपि
34. मृगचक्रलिपि
35. वायसरूतलिपि
36. भौमदेवलिपि
37. अन्तरिक्षदेवलिपि
38. उत्तरकुरूद्वीपलिपि
39. अपरगोडानीलिपि
40. पूर्वविदेहलिपि
41. उत्क्षेपलिपि
42. निपेक्षलिपि
43. विक्षेपलिपि
44. प्रक्षेपलिपि
45. सागरलिपि
46. वङ्कालिपि
47. लेखप्रतिलेखलिपि
48. अनुद्रुपलिपि
49. शास्त्रावर्तलिपि
50. गणनावर्तलिपि
51. उत्क्षेपावर्तलिपि
52. निक्षेपावर्तलिपि
53. पादलिखितलिपि
54. द्विरूत्तरपदसंधिलिपि, यावद्‌शोत्तरपदसंधिलिपि
55. मध्याहारिणीलिपि
56. सर्वरूतसंग्रहणीलिपि
57. विद्यानुलोमाविमिश्रितलिपि
58. ऋषितपस्ताप्तालिपि
59. रोचमानालिपि
60. धरणीप्रेक्षिणीलिपि
61. गगनप्रेक्षिणीलिपि
62. सर्वोषधिनिष्यन्दालिपि
63. सर्वसारसंग्रहणीलिपि
64. सर्वभूतरूतग्रहणीलिपि। ((संपादक),1984)

इस विवरण से सिद्ध होता है कि इस ग्रंथ के रचनाकाल अर्थात् ईसा की प्रारंभिक सदियों तक 'लिपिशास्त्र' का विकास हो चुका था। इससे पूर्व भी कौटिल्य ने अपने 'अर्थशास्त्र' में लिखा है कि चूड़ाकर्म के उपरान्त विद्यार्थी को लिपि और संख्यान अर्थात् गणित का अध्ययन करना चाहिए।

('जुगनू' (संपादक), 2016)

एम. विन्टरनिट्ज का मत है कि लेखन कला का प्रारंभ भारतीय इतिहास में 18वीं शताब्दी ईसापूर्व हो गया था, परन्तु यह विचार अन्तिम नहीं माना गया है, क्योंकि वेदों का रचनाकाल अभी अनिर्णित है, तथापि यह प्रमाणित करने का पर्याप्त प्रयास हो चुका है कि वैदिक भारत में लिखने की परिपाटी पूर्ण विकसित थी। इधर यह भी सच है कि सिन्धु सभ्यता के काल से ही भारतीय लेखन कला के इतिहास का प्रमाणिक प्रारम्भ माना जा सकता है। (सहाय, 2008) सिन्धु घाटी के हड़प्पा आदि स्थानों से प्राप्त मुहरें ही नहीं, धौलावीरा (गुजरात) से प्राप्त विशाल नामपट्ट के आधार पर यह अनुमित किया जा रहा है कि यहाँ चित्रमय लिपि तो अस्तित्व में थी और उसे दाहिनी ओर से बाईं ओर लिखा जाता था।

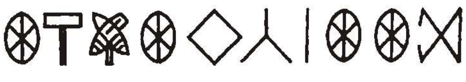

धोलावीरा (गुजरात) की खुदाई में प्राप्त विशाल साइन बोर्ड

आकृति 1 साभार डॉ॰ श्रीकृष्ण 'जुगनू'-(संपादक)-(2016)

सिन्धु सभ्यता का समय 2500 से 1500 ईसा पूर्व तक निर्धारित किया गया है। इस समय जो लिपि प्रचलन में आई, वह मानव, पशु-पक्षी तथा पेड़-पौधों की आकृतियों के साथ लिपि संकेत लिये हुए थी। इस लिपि में प्रयुक्त आकृतियों के विषय चराचर के स्थावर और जंगम सभी रहें हैं और ये ही विषय प्रागैतिहासिक गुहागृहों, शैलाश्रयों में बनें भित्ति-चित्रों के भी रहें हैं। यह कहना कठिन है कि इस लिपि में अंक और अक्षर दोनों हैं अथवा चित्रादि से अन्य कोई आशय है। गत वर्षों में हुए अनेक प्रयासों के उपरान्त भी यह लिपि एक पहेली बनी हुई है, जिसे समझा नहीं जा सका है।

दसवीं सदी में भारत आये अरबी यात्री अलबिरूनी ने अपने समय में प्रचलित एक उक्ति को उद्धृत करते हुए कहा है कि पराशर से पहले भारतवासी लेखन कला को भूल चुके थे। दैवयोग से पराशर के पुत्र वेदव्यास ने कलियुग के आरम्भ में हिन्दू ग्रन्थों के संचयन एवं लेखन के लिये लेखन-कला का पुनरान्वेषण किया और तब से क्रमिक लेखन कला का प्रचलन हुआ। डॉ॰ शिवस्वरूप सहाय का विचार है कि अलबिरूनी की यह बात सिन्धु सभ्यता और वैदिक साहित्य के बीच की अज्ञात कड़ी की ओर संकेत करती है, किन्तु अलबिरूनी के अतिरिक्त किसी भी दूसरे स्रोत से ऐसी जानकारी नहीं मिलती है। अतः इस कथन की सत्यता पर गम्भीरता से विचार किया जाना अपेक्षित है। ('जुगनू' (संपादक),2016)

राजस्थान की लोक कला एवं लिपियों का अन्तर्सम्बन्ध :

लिपि और अंक के लिये शास्त्रोक्त और पुरालेखीय प्रमाणों को ढूंढने की दिशा में विद्वानों ने पर्याप्त श्रम और ऊर्जा लगाई है, किन्तु लोकजीवन की दिशा में उनका ध्यान नहीं के बराबर गया है। मानव जीवन का संसार केवल उसी के इर्द-गिर्द तक सीमित नहीं रहा है। प्रकृति के जितने भी उपादानों के साथ उसका जीवन चक्र चलायमान होता आया है, उससे कई ऐसे संकेत दृश्य-अदृश्य रूप में मिलते हैं जो लिपि और अंक के गवाक्ष खोलते नजर आते हैं। लोक कला मनीषी डॉ॰ महेन्द्र भानावत का मानना है कि हवा के साथ वृक्षों-वनस्पतियों का लहलहाना, पत्तों का कम्पित होना,, फूलों का खिलना, पक्षियों का कलरव करना, पशुओं द्वारा विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ करना, जलीय-जीवों की विविध क्रीड़ाएँ इत्यादि अनेकानेक संकेतों से सजीव जीवन की विविध लीलाएँ दृष्टिगोचर होती हैं। इन्हीं संकेतों से अदृश्य को दृश्य तथा दृश्य को गतिमान का भाव प्राप्त होता है। इसी भाव को मनुष्य ने जाने-अनजाने अपनी कल्पनाओं

से सृजित करते हुए साकार सृष्टि की तलाश में कदम बढ़ाते हुए विकास किया है।

लोककला में प्रकृति से गहरा जुड़ाव परिलक्षित होता है। प्रकृति के विविध अवयवों के साहचर्य से प्रेरणा प्राप्त कर एक समग्र सृष्टि की संकल्पना का भाव इसमें प्रमुख है। प्राचीन काल से ही विविध कला रूपों में एक दूसरे के सहकार से जीवन के विविध स्तरों को विशेष रूपाकार प्रदान करते हुए संकेतों के बल पर अपनी समझ को एक विस्तृत फलक प्रदान किया है। इसी फलक से लिपि के संकेतों के विशिष्ट अवयवों के माध्यम से आपसी साहचर्य को मूर्त रूप दिया है।

लोक जीवन में चिह्न की मान्यता अत्यन्त प्राचीन रही है। ईसापूर्व कुषाणकाल के आसपास सम्पादित हुए 'अंगविज्जा' नामक ग्रन्थ में इन्हीं चिह्नों पर सर्वाधिक विचार हुआ है।[2] संभवतः गायों की पहचान के लिये चिह्न लगाये जाते थे। ऋगवेद (6, 21, 6) में आये प्रसंग के अनुसार लोग गायों की श्रेष्ठता पर विचार किया करते थे। गायों की प्रशंसा की परम्परा आज भी राजस्थान में हीड़-आख्यान के रूप में देखी जा सकती है। पालतू पशुओं को चिह्नित करने का चलन आज भी बना हुआ है। पशुओं पर लगाए जाने वाले इन चिह्नों को 'गोडलिया' अथवा 'खिंग' कहा जाता है। इन चिह्नों में लिपि के कई संकेताक्षर ढूँढे जा सकते हैं। अकेले बीकानेर क्षेत्र में जो चिह्न मिले, वे कहीं जाति विशेष के, कभी अंचल, कहीं विशिष्ट राजघरानों के प्रतीक लगे, तो कुछ विशिष्ट चिह्न पशुओं में पाई जाने वाली बीमारी का शमन करने के द्योतक थे। (भानावत, 1986) ये चिह्न तीन प्रकार के माने गये हैं -

1. स्थान सूचक (देरासर गाँव का पगड़ी चिह्न, हमीराणाका सोढ़ों का दाग, मारवाड़ की गायों में चौफुलिया, सूरतगढ़ का दीया आदि)।
2. समुदाय सूचक (राजड़ गाँव के राजपूतों का कुण्डल, सोकरू गाँव के चारणों का माछला, राठौडों का दंतालियो, भाटियों का हथल, गुर्जरों का चिह्न खेंग और लीरी आदि)।
3. स्वामित्व सूचक (कभी गायों पर उसके स्वामी के नाम का प्रथम अक्षर भी चिह्न के रूप में लगा दिया जाता था, जो उसके स्वामित्व का सूचक माना जाता था।)

राजस्थान में पशुओं पर लगाए जाने वाले दग्ध चिन्ह घोड़लिया जिसमें लिपि का संकेत मिलता है। यह वेद कालीन परंपरा का साक्ष्य है।

आकृति 2 साभार डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' (संपादक)-(2016)

पशुओं की पहचान आदि के लिये ऐसी परम्परा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। ऋगवेद में भी राजा सावर्णी द्वारा दान की गई हजार गायों के कान पर आठ का अंक दागे जाने का उल्लेख मिलता है। (ऋगवेद, 10, 62, 7) इसी प्रकार पाणिनी ने पांच और आठ के अंकों सहित स्रुव, स्वास्तिक जैसे चिह्नों द्वारा पशुओं के कानों को चिह्नित करने की परम्परा का वर्णन किया है। लोक जीवन में प्रचलित परम्परा इसी वैदिक परम्परा की अनुगामी प्रतीत होती है।

सिन्धु घाटी-सभ्यता की मुहरों पर प्राप्त चित्राक्षर

आकृति-3 साभार डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' (संपादक)-(2016)

पशुओं पर लगाये जाने वाले चिह्नों के अतिरिक्त राजस्थान की जन-जातियों में प्रचलित गोदना का सम्बन्ध भी चिह्न परम्परा से जुड़ा हुआ प्रतीत होता है। गाड़िया लोहार समुदाय के लोग एक निश्चित स्थान पर आजीवन निवास करने की अपेक्षा अलग-अलग स्थानों पर भ्रमणशील रहकर जीवन व्यतीत करते हैं। इस समुदाय के सभी स्त्री-पुरूषों में हाथ, पैर, पेट, पीठ, गर्दन, ठोड़ी, गालों आदि अंगों पर बिन्दु, त्रिफुलिया तथा कुछ ज्यामितीय आलेखन गोदने की परम्परा रही है। कालान्तर में इनमें नाम गुदवाने का प्रचलन भी जुड़ गया है।

इसी प्रकार राजस्थान के ग्रामीण अंचलों विशेष रूप से हाड़ौती (कोटा, बून्दी, झालावाड़) तथा मारवाड़ (जोधपुर, जैसलमेर, बीकानेर) में बने मिट्टी के घरों की दीवारों तथा फर्श पर मांडणे बनाने की परम्परा आज भी देखी जा सकती है। इन मांडणों में प्रकृति और दैनिक जीवन के अभिप्रायों को सफेद व लाल प्राकृतिक रंगों से चित्रित किया जाता है। मानव, पशु तथा वानस्पतिक आकृतियों के अतिरिक्त स्वास्तिक, गोमूत्रिका व अन्य चिह्न इनका मुख्य अवयव होते हैं। कालान्तर में इनमें भी लिपि का प्रवेश देखने को मिलता है, जो लिपि से इनके आदिम सम्बन्ध का परिचायक प्रतीत होता है।

उपर्युक्त उदाहरण सिद्ध करते हैं कि लेखन का आरम्भ किसी संकेत या चित्र के साथ ही हुआ होगा, वर्णात्मक नहीं और इसका प्रारम्भिक रूप चित्रात्मक ही रहा होगा, जिसे चित्रलिपि कहना अधिक सुविधाजनक होगा। मध्यप्रदेश स्थित भीमबैठका की गुफाओं में छः-सात हजार साल पुराने 475 चित्र खोजे गये हैं, जिनकी वर्णों के साथ साम्यता ढूंढने के प्रयास भी हुए हैं। राजस्थान में बिजोलिया से लेकर बूँदी तक 35 किलोमीटर लम्बी शैलाश्रयों की शृंखला को खोजा गया है, जिनमें मिथुन, नृत्यादि सहित अनेक प्रकार के चित्र बने हैं। इन चित्रों में उस काल की चित्रात्मक लिपि या भाव लिपि की परम्परा को समझा जा सकता है।

आकृति-4 साभार Unknown Pinterest (2023)

उपसंहार :

लिपि के आविष्कार या उसके प्रयोग के बारे में पुराविदों द्वारा तर्क और प्रमाणाधारित तथ्य लोकप्रिय

होते हुए भी मतैक्य के अभाव में उतने स्वीकार्य नहीं हो पाये हैं। स्वाभाविक है कि प्राचीन समय में देशों की सीमाएँ आज की तरह सीमित नहीं थी। मानव व्यवहार भी वैसा नहीं रहा होगा, जैसा ईसापूर्व की अन्तिम या ईसा की प्रारम्भिक सदियों में था, अपितु वह जहाँ से जो भी मिला, उसे ग्रहण करने में विश्वास करता था। जिस क्षेत्र में जो भाषा व्यवहार था, उसे वह मानव समझने का प्रयास करता था। आज की ही तरह व्यक्ति अनेक भाषाओं का व्यवहार करता था। यह व्यावहारिक ही है कि संकेतादि कालांतर में लिपि के रूप में सामने आये।

यह माना जाता है कि लिपि की आवश्यकता पहचान के लिये हुई। किसी भी वस्तु की पहचान कैसे बनी रहे, इसके लिये सर्वप्रथम चिह्नों का प्रयोग हुआ होगा और वे ही जब रूढ़ हुए तो उन्होंने अक्षरों की जगह ले ली। लिपि या चिह्नों का प्रथम प्रयोग लोकांचल में हुआ होगा। पशुओं की पहचान हेतु प्रयुक्त चिह्नों को इस दिशा में प्रथम प्रयास माना जा सकता है।

आकृति 5 साभार Jumel, Chantal (2023)

कालान्तर में शास्त्रीय और लोक परम्पराएँ पृथक होकर सहगामी रही होगी। लोक कला जनसामान्य का प्रतिनिधित्व करती हैं, जबकि लिपि शास्त्रीय रीति से शिक्षित वर्ग का, परन्तु यह भी एक तथ्य है कि शिक्षित अथवा शासक वर्ग का कार्य व्यवहार जन-सामान्य से ही जुड़ा होता है। इस व्यवहार से संभवतः दोनों वर्गों की अभिव्यक्तियाँ प्रभावित हुई होगी। आज भी अनेक लोक कला अभिप्रायों (पशु चिह्न, गोदना, मांडणा, लोक जीवन में प्रचलित वस्त्रादि) में एक ओर जहाँ कुछ शब्दों का समावेश स्पष्ट दिखाई पड़ता है, वहीं दूसरी ओर भाषा और लिपि में कुछ शब्द/अक्षर लोक जीवन से प्रभावित दिखाई पड़ते हैं। यदि इस विषय पर गहन शोध किया जाय, तो अनेक महत्वपूर्ण तथ्य प्राप्त होने की संभावना स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है, जो कला और भाषा दोनों क्षेत्रों में नये आयाम उद्घाटित कर सकती है।

सन्दर्भ सूची :

1. भानावत, डॉ॰ महेन्द्र (1986) अजूबा राजस्थान, उदयपुर : मुक्तक प्रकाशन।
2. 'जुगनू', डॉ॰ श्रीकृष्ण (संपादक) (2016) भारतीय प्राचीन लिपिमाला : जोधपुर : राजस्थानी ग्रन्थागार।
3. दास, श्रीकृष्ण, खेमराज (1911) विष्णुधर्मोत्तर : मुंबई : वेंकटेश्वर प्रेस।
4. शास्त्री, शान्तिभिक्षु (संपादक) (1984) ललितविस्तरः लखनऊ : उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान।
5. पाण्डेय, डॉ॰ राजबली (2004) भारतीय पुरालिपि इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन।
6. पांचाल, परमानंद (2012) साहित्य अमृत जुलाई 2012 ई॰ के अंक में प्रकाशित लेख।
7. सहाय, डॉ॰ शिव स्वरूप (2008) भारतीय पुरालेखों का अध्ययन दिल्ली : मोतीलाल बनारसी दास।
8. Jumel, C. (2023, August 13). *chantal-jumel-kolam.com*. Retrieved from chantal-jumel-kolam.com: https://chantal-jumel-kolam-kalam.com/en/tag/mandana-in-rajasthan/
9. Unknown. (2023, August 13). *Pinterest*. Retrieved from pinterest.com: https://www.pinterest.com/pin/319333429815161955/
10. Unknown. (2023, August 13). *Pinterest*. Retrieved from pinterest.com: https://in.pinterest.com/pin/diwali-lakshmi-paglya-mandana-553731716690362245/

गोंड जनजाति का चित्र संस्कार

डॉ॰ किरन मिश्रा
पोस्ट डाक्टोरल फेलो
भारतीय सामाजिक अनुसंधान परिषद, दिल्ली (आई॰सी॰एस॰एस॰आर॰)

हर समूह या समाज के अपने मिथक होते हैं, जो उस समूह या समाज की परंपराओं के उनके धर्म के तथा उनके सामाजिक दर्शन के अविभाज्य अंग होते हैं। किसी भी समाज के धर्म का अध्ययन उनकी पुराण कथाओं के बिना अपूर्ण माना जाएगा। जनजातियों की पुराण कथाओं को जाने बिना उस समाज के ताने बाने को समझना बहुत ही कठिन होता है, क्योंकि उनकी सामाजिक व्यवस्था में पुराण कथाओं का प्रभाव बहुत प्रबल एवं प्रभावकारी होता है। अनेक विद्वानों ने जनजातिय समाज का अध्ययन करते समय उनकी पुराणकथाओं को अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया है।

फादर हिस्लपए केप्टेन जे॰ फोरसिथ, ग्रिग्सन, रसेल तथा हीरालाल, वेरियर एल्विन तथा हैमनडार्फ जैसे विद्वानों ने गोंड जनजाति या गोंड जनजाति की उपजातियों का अध्ययन किया है, उन्होंने इन जनजातियों की पुराण कथाओं का व्यापक संग्रह अपने ग्रन्थों में प्रस्तुत किया है। एस॰ हिस्लप ने सर्वप्रथम 'लिंगोपेन' की गाथा का प्रलेखन नागपुर में एक परधान गायक से सुनकर किया था। केप्टेन फोरसिथ ने इस गाथा को पद्यबद्ध रूप में प्रस्तुत किया। वेरियर एल्विन ने इस गाथा के विभिन्न पाठान्तरों का संकलन छिंदवाड़ा, बैतूल, दुर्ग तथा बस्तर के पृथक-पृथक स्थानों से करके अपने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'मुरिया एण्ड देयर घोटुल' में प्रकाशित किया। वेरियर एल्विन ने मध्यवर्ती भारत की अनेक जनजातियों की पुराण कथाओं के तथा उड़ीसा की जनजातियों की पुराण कथाओं के संकलन का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है, जिन्हें दो ग्रन्थों 'ट्राइबल मिथ्स ऑफ मिडिल इन्डिया' तथा 'ट्राइबल मिथ्स ऑफ उड़ीसा' के रूप से प्रकाशित किया है। इन दोनों ग्रन्थों में लगभग 1500 मिथक कथाएं संकलित हैं। जिनमें से बहुत सी कथाएं गोंड जनजाति तथा उसकी उपजातियों की हैं। गोंड जनजातियों में लोक चित्रकला परंपरा के अंतर्गत जो भी चित्रकला या चित्र पारंपरिक तौर पर बनाए जाते हैं वे अधिकतर वाह्य अलंकरण एवं मिथकीय अभिप्रायों पर आधारित होते हैं।

गोंड जनजाति का परिचय :

गोंड जनजाति जनसंख्या की दृष्टि से पूरे भारत में मध्य प्रदेश का प्रमुख स्थान है। मध्य प्रदेश के आधे से ज्यादा भाग पर आदिवासियों का निवास स्थान है। गोंड जनजाति भारत और मध्य प्रदेश की सबसे बड़ी और प्रभावशाली जनजाति है। गोंड जनजातीय मूलतः द्रविड़ संस्कृति के भाग के रूप में माना जाता है। इस समूह का मूल जनसंख्या का निवास स्थान मध्य प्रदेश के बैतूल, होशंगाबाद, छिंदवाड़ा, बालाघाट, शहडोल, मांडला, सागर, दमोह, सतना, खंडवा, बुरहानपुर, सीहोर, रायसेन, सरगुजा, बस्तर, रीवा और सीधी में मुख्य रूप से पाया गया है। गोंड जनजाति समुदाय के अंतर्गत 50 से अधिक उप शाखाएं पाई गई हैं। जिनमें मुख्यः अगरिया, मारिया, भीमा, बायसन, परधान, कोईतोर, खैरवार, सोनझरीए आरखए मटोला इत्यादि मिली है।

गोंड लोक चित्रकला :

जनजातीय जीवन में जनजातियों की जीवन शैली का मुख्य आधार उनकी धार्मिक आस्था, लोक विश्वास, सांस्कृतिक परंपरा में निहित है। जन्म से मृत्यु पर्यन्त इन जनजातियों का समूह लोकमिथकों, अभिप्रायों तथा लोक परंपराओं को विभिन्न कला रूपों के द्वारा अभिव्यक्त करता रहा है। गोंडों में परंपरागत चित्र कर्म का अभाव है, धार्मिक पर्वों, अनुष्ठानों पर चित्र बनाने की प्रथा गोंड आदिवासियों में बहुत कम है, गोंड जनजातियों में लोक चित्रकला परंपरा के अंतर्गत जो भी चित्रकला या चित्र बनाए जाते थे वे वाह्य अलंकरण एवं मिथकीय अभिप्रायों पर आधारित होते थे। गोंड विवाह के अवसर पर कोहबर में चूने और गेरू रंगों से हल्के चित्र बनाते हैं साथ ही घरों की भित्तियो को आकर्षित करने के लिए चिन्ह, फूल-पत्ती आदि से अलंकृत करते हैं। गोंड चित्रकला में गोंड महिलाएं बड़े शौक से दीवार पर भित्तिय अलंकरण करके घरों और दरवाजों को सजाती हैं। गोंडों के मकान कलात्मक होते हैं, यह लोग पशु, पक्षी तथा वृक्ष एवं मनुष्यों के चित्र बनाते हैं। गोंड अपने घरों में छत के नीचे और जमीन से कुछ ऊपर दीवारों पर गेरू से मोटा बॉर्डर बनाकर घरों को सजाते आ रहे हैं, गोंड जनजातियों में घरों को विवाह व जन्मोत्सव पर गेरू, कजली या नील से रंगते हैं। साथ ही फूल-पत्ती, पशु-पक्षियों तथा मनुष्यों के चित्र को सफेद, काली, पीली, लाल मिट्टी से रंग देते हैं। दरवाजों को भी इन्हीं रंगों से रंग कर सजाते हैं।

पारम्परिक गोंड लोक चित्रकला :

गोंडों के घर जितने साफ-सुथरे होते हैं उतने ही कलात्मक ढंग से बनाये जाते हैं। गृह निर्माण कला में गोंड महिलाएँ बहुत कुशल हैं। दीवारे सीधी और चिकनी होती हैं। घर की डिजाइन चारों ओर से घिरे हुए किले के समान होती है। बीच में आँगन होता है, दीवारें स्वच्छ रहें, इसके लिए छुही मिट्टी का प्रयोग करते हैं। दीवार पर भित्ति अलंकरण बनाना गोंड महिलाओं का प्रिय शौक है। गोंड अपने घरों को सजाने के लिए दीवारों पर चिड़ियों, घोड़ों, हाथियों, मयूरों, बैलों और मनुष्यों के चित्र बनाते हैं। दीवारों के किनारे-किनारे दीवार की तह से ऊँची पतली डिजाइन निकालकर उसे गेरू कजली या नील से रंग देते हैं। दीवारों पर त्रिभुजाकार या वृत्ताकार मिट्टी की उभरी रेखाएँ बनाने की परम्परा अति प्राचीन है। इन रेखाओं में कहीं घोड़े, कहीं हिरन आदि का आकार दे दिया जाता है। ताकों, खुटियों, कोठियों, पनहर पर अलंकरण करने से गोंड कभी नहीं चूकते हैं। इन आकृतियों को गोंड चिन्हा कहते हैं। चिन्हों को सफेद, काली, पीली, लाल मिट्टी से रंग देते हैं। कहीं-कहीं मुख्य दरवाजे के चारों और दो-तीन रंगों से विभिन्न अलंकरण कर देते हैं। दरवाजा भी उसी से रंग देते हैं। विवाह के अवसर पर दीवारों पर फूल-पत्ती आदि से अलंकृत करते हैं। छत के नीचे और ज़मीन से कुछ ऊपर दीवारों पर गेरू से मोटी बार्डर बनाने से घरों की खूबसूरती दूर से आकर्षित करती है।

गोंड घरों के दरवाजे कलात्मक होते हैं। दरवाजे के दोनों पल्लों में चिड़िया, घोड़ा, हाथी, चाँद, सूरज, घुड़सवार, खजूर वृक्ष, मनुष्य आदि की आकृतियां होती हैं। गोंडों में जो भी चित्र बनाये जाते हैं वे अलंकरण के लिए और माईथालॉजिकल होते हैं।

गोंडों के मिट्टी से बने सुन्दर घर गोंडी चित्रकला के केन्द्र होते हैं। उनकी पारम्परिक बनावट आँखों को बरबस आकर्षित करती हैं। गोंडों के घर जितने साफ-सुथरे होते हैं, उतने ही कलात्मक ढंग से निर्मित होते हैं। गोंड घर जहाँ ग्रामीण आदिम वास्तुकला के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण होते हैं, वहीं वे गोंडी चित्रकला के पारम्परिक उत्सव होते हैं। घर की साफ-सुथरी सफेद या मिट्टी रंग से लिपी-पुती दीवारों पर भित्ति अलंकरण बनाना गोंड महिलाओं का प्रिय शौक है। दीवार बनाने के साथ गोंड महिलाएँ मिट्टी की उभरी रेखाओं से विभिन्न अलंकरण बनाती हैं, जो 'नोहडोरा' कहलाती हैं। जो गोंडी चित्रकला का मूल प्रस्थान बिन्दु है।

यहीं से गोंडी चित्रकला का प्रादुर्भाव होता है। गोंड चित्रकला में गुहा मानव की प्रागैतिहासिक चित्रकला के अनेक रूपाकार और रंग-रेखाएँ आज भी देखी जा सकती हैं।

दीवाल पर भित्ति अलंकरण बनाना गोंड महिलाओं का प्रिय शौक है। गोंड अपने घरों को सजाने के लिए दीवालों पर चिड़ियों, घोड़ों, हाथियों, मयूरों, बैलों और मनुष्यों के चित्र बनाते हैं। दीवालों के किनारे-किनारे दीवाल की तह से ऊंची पतली डिजाइन निकालकर उसे गेरू कजली या नील से रंग देते हैं। दीवालों पर त्रिभुजाकार या वृत्ताकार मिट्टी की उभरी रेखाएँ बनाने की परम्परा अति प्राचीन है।

धार्मिक पर्वों, अनुष्ठानों पर चित्र बनाने की प्रथा आदिवासियों में बहुत कम है। शहडोल में विवाह के अवसर पर कोहबर में चूने और गेरू से हल्का चित्र बनाते हैं। भीलों में पिथोरा आदिवासी चित्रकला का इन्द्रधनुषी आयाम है। गोंडों में जो भी चित्र बनाये जाते हैं वे अलंकरण के लिए और माईथालॉजिकल होते हैं। रस्सी, मचिया, सुतली, कृषि यंत्र, खुमरी, धनुष-बाण, फन्दे आदि गोंड स्वयं तैयार करते हैं।

गोंडों के मिट्टी से बने सुन्दर घर गोंडी चित्रकला के केन्द्र होते हैं। उनकी पारम्परिक बनावट आँखों को बरबस आकर्षित करती हैं। गोंडों के घर जितने साफ-सुथरे होते हैं, उतने ही कलात्मक ढंग से निर्मित होते हैं। गोंड घर जहाँ ग्रामीण आदिम वास्तुकला के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण होते हैं, वहीं वे गोंडी चित्रकला के पारम्परिक उत्स होते हैं। घर की साफ-सुथरी सफेद या मिट्टी रंग से लिपी-पुती दीवारों पर भित्ति अलंकरण बनाना गोंड महिलाओं का प्रिय शौक है। दीवार बनाने के साथ गोंड महिलाएँ मिट्टी की उभरी रेखाओं से विभिन्न अलंकरण बनाती हैं, जो 'नोहडोरा' कहलाती हैं। जो गोंडी चित्रकला का मूल प्रस्थान बिन्दु है। यहीं से गोंडी चित्रकला का प्रादुर्भाव होता है। गोंड चित्रकला में गुहा मानव की प्रागैतिहासिक चित्रकला के अनेक रूपाकार और रंग-रेखाएँ आज भी देखी जा सकती हैं।

गोंडजन अपने घरों की दीवारों को सजाने के लिये देशज मिट्टी रंगों का उपयोग करते हैं। दीवालों पर चिड़ियों, घोड़ों, हाथियों, मयूरों, बैलों और मनुष्यों की आकृतियाँ उकेरते हैं। जिनमें गोंड स्त्री और पुरुष समान रूप से हिस्सा लेते हैं। दीवारों के किनारे-किनारे दीवाल की तह से ऊँची पतली डिजाइन निकालकर उसे गेरू, कजली या नील से रंग देते हैं। आधुनिक गोंड - परधान चित्रकारों ने गोंडी चित्रकला जैसे नये समसामयिक आयाम ही रच दिये हैं। जो गोंड चित्रकला के नाम से प्रतिष्ठित हो गई है। इनमें जनगणसिंह श्याम, नर्मदा प्रसाद तेकाम, आनन्दसिंह श्याम, कलाबाई, व्यंकटसिंह श्याम, भज्जू, मोहन, दुर्गा, सुभाष, राजेन्द्र आदि गोंड चित्रकला के जाने-पहचाने नाम हैं।

गुदना लोक चित्र :

आदिवासियों में शरीर गुदाने की प्रथा सबसे अधिक है। गोदना गुदवाने के पीछे यही भावना है कि ये स्त्री के सच्चे जेवरों की निशानी है, जो मरते समय भी उसके साथ जाती है और देवता इससे प्रसन्न रहते हैं। गोदने शरीर को सुन्दर और स्वस्थ बनाते हैं। इस तरह की धारणा प्रत्येक आदिवासी में देखी जा सकती है।

गोंड बाँह, हाथ, पोंहचा, गले, छाती, मस्तक, पैर आदि शरीर के विभिन्न भागों में छः-सात वर्ष से गुदवाना शुरू करते हैं। बैतूल में सबसे पहले भृकुटी पर अर्धचन्द्राकार आकृति गुदवाई जाती है। मंडला में सबसे पहले पोहचा गुदवाते हैं। चेहरे पर बायीं आँख और गाल पर टिपका गुदवाया जाता है। नाक पर तीन टिपका गुदवाते हैं। फिर बाँह आदि पर गुदवाने का क्रम जारी रहता है। छिंदवाड़ा-बैतूल जिले के गोंड जाँघ से लगाकर पैर तक गुदवाते हैं। मंडला के गोंड केवल पैरों के गोड़ में गुदवाते हैं। शरीर पर गुदने धारण करना महिलाओं के लिए सौभाग्य की बात होती है। गोंड पुरुष कम गुदने गुदवाते हैं।

महिलाओं के गुदनों में कई रूपाकारों का समावेश होता है। बाँह, छाती, मस्तक, पोहचा आदि पर अलग-अलग तरह के परम्परागत गुदने होते हैं, जिन्हें उन्हीं जगहों पर गुदवाना अनिवार्य है। गोंड और बैगा में गुदने बादी जाति की महिलाएँ गोदती हैं। बदनिन का गोंड-बैगा समाज में बड़ा सम्मान है। गुदवाने के लिए बदनिन को आमंत्रित किया जाता है। नेग दिया जाता है। कभी-कभी बदनिन स्वयं गाँवों में फेरी लगाती है।

गुदने की स्याही बदनिन स्वयं तैयार करती है पहले रमतिला को भूंज लेते हैं। भँजने से रमतिला का लोंदा बन जाता है, लोंदे को खपरेल में जलाकर काजल बना लिया जाता है। पानी में काजल को फेंटकर गाढ़ी स्याही बना ली जाती है। काजल से पहले शरीर पर जो आकृति गोदना हो उसे बना लिया जाता है। फिर गोंडों में तीन से पांच के समूह से काजल स्याही में डुबो-डुबोकर बनाई जाती है। आकृतियों पर चुभाते चले जाते हैं। गुद जाने के बाद गोबर और पानी से शरीर को धो दिया जाता है। इससे गुदना पकता नहीं है। गुदवाते समय लड़कियों को काफी दर्द महसूस होता है। कुछ ही दिनों में शरीर पर ये अमिट निशान बन जाते हैं और पूरी जिन्दगी गोंड एवं अन्य आदिवासी महिलाओं के शरीर पर जगमगाते रहते हैं। सबसे अधिक कठिन गुदना छाती का होता है। चाहे जितना कष्ट हो गोंड अभी भी परम्परागत ढंग से गुदवाते हैं। बैतूल, छिंदवाड़ा में गोंड बाजारों में मशीन के जरिये गुदवाने लगे हैं। इससे कष्ट कम होता है।

शरीर के विभिन्न अंगों के नाम से गुदनों को पुकारा जाता है जैसे पहुचा गुदना, गोंड गुदना, बाँह गुदना, छाती गुदना आदि। शरीर के विभिन्न अंगों में गुदनों की आकृतियां एक सी होती हैं। हर अंग पर अलग-अलग रूपाकार गोदे जाते हैं। बाँह पर धंधा, माछी, मुरागा, दोहरी जोहरा, घोड़ा, फूल, सीताफल, बिरछा, टिपका, चूल्हा आदि पोहचा में बिरछा, पोथी, अद्धा, करलिया आदि छाती पर पुतरिया, टिपका, गोड़ में घोड़ा, मुरागा, पुतरिया, फूल, मुरला, पोथी, बिछी आदि परम्परा से बनाये जाते हैं। इस समय ग्राम लालपुर की शांतिबाई और भर भई की चमेलीबाई बादी जाति की कुशल गुदने गोदने वाली है।

शरीर पर मछली, घोड़ा, मुरगा, बिरछा, फूल बनाने का क्या तात्पर्य हो सकता है। बदनिन से पूछने पर संतोषप्रद उत्तर नहीं मिल सका, फिर भी यह अवश्य समझा जाता है कि प्रकृति के इन उपादानों का आदिवासी जीवन से बहुत गहरा सम्बन्ध है और प्रत्येक गुदना आकृति का कोई न कोई महत्त्व और अर्थ है।

निष्कर्ष :

- गोंड जनजातियों में लोक चित्रकला परंपरा के अंतर्गत जो भी चित्रकला या चित्र पराम्परिक तौर पर बनाए जाते हैं वे अधिकतर वाह्य अलंकरण एवं मिथकीय अभिप्रायों पर आधारित होते हैं।
- गोंड जनजातियों में लोक चित्रकला परंपरा के अंतर्गत गुदना चित्रों का प्रमुख स्थान है।
- गोंड लोक चित्र असंख्य रेखाओं की मदद से दिवारों पर गोबर, मिट्टी, चूना और अन्य प्राकृतिक पदार्थों की मदद से बनाये जाते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

पुस्तक :

1. शर्मा अविनाश बहादुर, भारतीय चित्रकला का इतिहास, बरेली प्रकाशन।
2. शाह शम्पा, सृजन, आदिवासी लोक कला एवं तुलसी साहित्य अकादमी, मध्य प्रदेश संस्कृति परिषद, भोपाल।
3. शाह शम्पा, अंगराग, आदिवासी लोक कला एवं तुलसी साहित्य अकादमी, मध्य प्रदेश संस्कृति परिषद, भोपाल।
4. मरावी शान्ति बाई, मरावी मंगला बाई और बेन हंसनी, अंगराज, आदिवासी लोक कला एवं तुलसी साहित्य अकादमी, मध्य प्रदेश संस्कृति परिषद, भोपाल।
5. तिवारी कपिल, शुक्ल नवल (1996), समष्टि, मध्य प्रदेश आदिवासी लोक कला परिषद, भोपाल।

6. तिवारी कपिल, सुसमन, आदिवासी लोक कला एवं तुलसी साहित्य अकादमी, मध्य प्रदेश संस्कृति परिषद, भोपाल।

7. तिवारी कपिल, सम्पदा, आदिवासी लोक कला एवं तुलसी साहित्य अकादमी, मध्य प्रदेश संस्कृति परिषद, भोपाल।

8. निरगुणे वसंत, सहरिया, मध्य प्रदेश आदिवासी लोक कला परिषद्, भोपाल।

पत्रिकाएं :

1. पूर्वग्रह (अंक 146, 147, 148, 158, 159, 160), भारत भवन, भोपाल

2. समकालीन कला (अंक 18, 21, 30, 38, 39 42, 43, 44, 45, 46, 47, 48), ललित कला अकादमी, रवीन्द्र भवन, नई दिल्ली।

3. सम्मेलन पत्रिका कला अंक (1987), हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

4. चौमासा (अंक 20, 22, 26, 28, 29, 34, 35, 42, 43, 60, 61, 64, 65, 79, 82, 84, 86, 87, 90, 92, 93, 94, 100, 101, 102, 103, 104, 105, 106) आदिवासी लोक कला एवं तुलसी साहित्य अकादमी, मध्य प्रदेश संस्कृति परिषद, भोपाल।

वेबसाइट :

- http://www.visual-arts-cork.com/ancient-art/tribal-art.htm
- https://bookboon.com/
- https://books.google.com/
- https://www.indiantribalheritage.org/?tag=sahariya
- https://www.youtube.com/

Public Sculpture of Assam With Special Reference To Guwahati, Jorhat, And Cachar : An Overview

Dr. Binoy Paul
Former Research Scholar, Department of Visual Art
Assam University, Silchar, 788011, Assam

Abstract

The term 'Public Art' refers to works of art in any medium that have been specifically created and placed in the public realm, typically outdoor spaces that are easily accessible to all. In India, the tradition of sculpting was heavily influenced by the British academic realistic style and technique, which Indian sculptors embraced during both the pre and post-independence periods. These public sculptures serve as a powerful force that binds society together. Statues of national heroes and social thinkers not only depict their sacrifices and contributions to society but also inspire unity and collaboration for the betterment of our collective well-being The present study tries to explore and describe the public sculptures of three major districts of Assam shedding light on their significance and impact.

Keywords:

Public Sculpture, Contemporary Art, Public Sphere

Introduction :

Public sculpture, throughout history, has served as a vibrant and captivating expression of artistic creativity, cultural identity, and societal values. From ancient civilizations to the modern era, sculptures displayed in public spaces have played a significant role in shaping the visual landscape and fostering a sense of collective identity. These monumental artworks, ranging from figurative to abstract, have the power to captivate, inspire, and provoke dialogue among viewers. This article delves into the world of public sculpture, exploring its historical significance, diverse styles and types, its impact on society, the challenges it faces, and the exciting future trends that are shaping this art form.

Barak Valley is in the southern region of the Indian state of Assam. The place is named after the Barak River. Barak valley mainly consists of three districts namely Cachar, Karimganj, and Hailakandi. Silchar is the most important town in the region.

The public sculptures have become a significant cultural landmark in Barak

Valley. If we date back to history, we find that most of the persons, whose statues have been erected in Barak valley, had come to this Valley in their respective times at least once or more than once. The installation of these statues of these persons makes it clear that the public society of this Valley has done these as a part of showing respect to them and providing recognition and conformity to the values of those persons.

The term Public Art refers to those works of art commissioned and sponsored, Monuments, Memorials, and civic statues and sculptures installed in the physical public domain by the Government agencies and organizations, which are also significant for the Art World. The term is sometimes also applied to include art that is exhibited in a public space; this public art is a symbolic, imaginary, and illustrative representation of the historical, political and cultural, and civic values of the State.

Characteristic features of public sculpture:

While making a public sculpture, basically the following three main factors are to be considered and taken care of :

i. To carry the sculptural features or characteristics of a sculpture in its contemporary time.

ii. There must be proper characteristic analysis of the person who will be sculpted out.

iii. The sculptures should carry the proper characteristic feature as well as the aesthetical value in the viewer.

The sculpture must carry the monumentality of the person, which is important for its character. Monumentality does not mean to seem huge; it means to carry the aesthetical monumentality of the character. Only the skill is not sufficient to make a good sculpture, it also needs to carry the spontaneity of the image for the viewers who are acquainted with the person and also those who are not much acquainted.

Art objects and initiatives in the public sphere :

The custom of erecting statues of the heroes of the nation in the public sphere can be seen more prominently after independence in Assam. The custom was initiated here by the British rulers by installing the statues of their officers in public places especially in Calcutta. In Assam, I am not sure if the British installed any statue or not. Maybe in Shillong, the capital of Assam in the colonial period, they installed their statues but today I could not find any evidence. I might be able to find it later in my data survey. However, the installation of statues after the Assam agitation has special significance. It squeezed to local glories associated with the communal identity struggle from the national history. For example, statues of Bir Tikendrajit Singh in Cachar, Thong Nok Bey, Rongpharpi Rongbey, Samsong Singh Engti in Karbi anglong, etc. In the cities like Guwahati which has a cosmopolitan character with many communities living here, I find the images of the statues and other objects represent the diversities in a melting pot.

Generally, there are two kinds of institutional sponsorship is given to the artists to install objects of art in public places. One is the governmental sponsorship given from the public art fund or other funds, which is the continuation of the

colonial custom of installing statues in public space. A governmental organization like the Cultural Ministry of Assam provides grants for artistic production in public space. Another is the sponsorship provided by institutions such as IFA, FICA, Lalit Kala Akademi, and NGOs.

Public space can be distinguished into two forms. One is the physical public space as a place or site or architecture or object. And the other is the discursive public space which is an abstract and conceptual space generated momentarily through private people's gathering to discuss or to share serious and non-serious topics. Habermas described this discursive space as the public sphere, which are assemblies and meetings of people in the coffee house, streets, community halls, parks, etc.

Public Sculpture of Guwahati :

Gandhi is one of the first pieces of an open-air sculpture done by Ramkinkar. It was erected in the Kala Bhavana premises. The making began in 1968. The Government of Assam was his patron in this case. The casting was done in cement-mixed concrete. Initially, the sculptor began the work with his hand though later he left it to be done by his students. However, he supervised the entire work.

To build up the statue of a historical personality, the sculptor has to go through the social backdrop that raised the personality, his character, the sentiment of the masses centering around him. Ramkinkar meticulously went through the details. The height of the statue along with its pedestal is round about 15 to 20 feet-undoubtedly of colossal height. But this height has been overshadowed by the intrinsic monumentality of the statue. This Gandhi is rather scraggy, his shoulder is bending downwards to accommodate the burden of his age, but his steps are as indomitable as ever. No hurdle is a hurdle for him at all. The whole statue records a whirlwind of dynamism and strength.

Later in 1969, however, Ramkinkar handed over to the Govt. of Assam a bronze- casting of the statue. But his cement-mixed concrete casting still preserves the glory of Kala Bhavan remaining as rigid as Gandhi himself.

Lachit Borphukan was a commander and Borphukan in the Ahom kingdom known for his leadership in the 1671 Battle of Saraighat that thwarted a drawn-out attempt by Mughal forces under the command of Ramsingh I to take back Kamrup. He died about a year later due to illness. The much-anticipated 35-feet-high statue of Ahom general Lachit Borphukan, part of an installation in the middle of the Brahmaputra, was inaugurated by chief minister Tarun Gogoi. The installation project, the foundation for which was laid in 2011, depicts the Battle of Saraighat of 1671 in which Lachit and his soldiers stopped the marauding Mughal army from invading the Ahom kingdom. It comprises a bronze statue, 18-feet statues of soldiers, and two 32-feet-long water cannons. The soldiers and the cannons are made of fiberglass. The total size of the pedestal on which the rest of the statues is 12 by 12 by 1.5 meters and it stands on a well 8.5 meters wide. The main statue stands four feet above the pedestal while the soldiers are placed below Lachit. The pedestal is placed five meters above the High Flood Level (HFL) of the river and 50 meters below water." The Brahmaputra is an unpredictable river. The wind force here is strong. We worked against the

elements to create the statue. It reminds the people of Assam of Lachit's contribution," master sculptor Biren Singha, who built the statue, said. Controversy, however, continues to dog the project which has seen delays, infrastructure challenges, and a raging river. While some complained that Lachit's statue lacks authenticity, others criticized the direction in which the statues have been placed, and yet more said Lachit's facial expression is demonic and his attire, inauthentic. Singha, however, brushed aside detractors and said people were free to air their opinion, but successfully placing a statue in the middle of a torrential river was a daunting experience."No one has seen Lachit Borphukan. There are no photographs of him. My work is an artistic tribute to Lachit, "Singha explained."I did what I was told to do. The design was approved by an expert committee. The expression on Lachit's face symbolizes the fury he felt while facing the army," he explained.

Public Sculpture of Jorhat :

Tridib Dutta, in collaboration with Noni Barpujari, created a remarkable public sculpture in 2004 known as *"Songs of Glory."* This magnificent artwork is located near the ASTC bus stand, now known as Millennium Park, at the heart of Jorhat's zero points. The sculpture, crafted from a combination of bronze and marble, seamlessly integrates with the surrounding landscape and space. The land area dedicated to this masterpiece spans an impressive 85 by 120 feet, while the sculpture itself stands tall at a height of 26 feet from road level.

The concept note, known as *"Thoughts Underlying Beneath,"* draws inspiration from the words of Rupkonwar Jyotiprasad Agarwala, who famously said, *"Every man is an artist."* Throughout our lives, we are constantly engaged in the process of creation, whether consciously or unconsciously. This creative process is considered to be never-ending and is an integral part of the human experience. Over time, this innate instinct has manifested itself in the form of art and culture.

In the midst of the current age of transition, where inhumane actions and reactions prevail, it is our utmost commitment to bring forth these profound and captivating creative progressions. We aim to delve deeper into the essence of art and culture, defying the forces that seek to suppress them.

By sucking honey, bees have been enriching their built-in creative nature for many generations. Woven based on such principles, they have tried to represent symbolically the people, culture, and heritage in the form of outdoor sculptures. The tradition of painting and sculpture is the most ancient but universal language that people follow through which we can express our sensations, art about optical sensations, the tendency to create any form or our sense of beauty and aesthetics in the process. Through their continuous efforts, the way of thought has paved the way for the language of nature to reach the people most easily - is a reflection seen in the proposed sculpture. Their underlying imaginative thinking for working towards the definition of format and design has spread to specific lands and environments. Flower beds arranged in the shape of bees are envisioned as an important part of the sculpture and at the same time enjoy the feeling of being a part of the environment

in which they live, its culture, and the symbolism of a breeze. With the request of creation, the most primitive creative process of man and nature is artistically depicted in the original sculpture with the help of new floating steep flowers. The phantasmal body (Linga - Sarira) stood like a pillar and retaining the point of focus, contains various symbolical works and forms added to its external surface which shall reflect our much-celebrated culture and heritage. Some simplified fundamental elements have appeared in the hive which shall also insinuate utilitarian significance at the same time. The upright flower bud along with the three figures posed as at work may remain as a never-ending process of creation.

The Public Sculpture of Cachar :

The Public Sculpture of Barak Valley was first executed at the beginning of the 60s with an aspiration to sculpture the iconic personality of Rabindranath Tagore. The public sculptures of Barak Valley also belonged to the characteristic tradition of typical Indian public art and were mainly situated within the periphery of non-critical and appreciation performed through execution.

Based on their respective socio-political and cultural context, the statues of Post independent Barak Valley can be classified into the following groups :

i. Statues of the national freedom fighters of the nation such as the statues of Mahatma Gandhi, Netaji Subhash Chandra Bose, Khudiram Bose.

ii. Statues of the social reformers, who are known as popular icons of the valley such as the statues of Rabindra Nath Tagore, Swami Vivekananda, Dr. Shyama Prasad Mukherjee, Dr. B. R. Ambedkar. Kazi Nazrul Islam.

iii. Statues of the political activists and leaders such as the statues of Mahatma Gandhi (Congress), Chittranjan Das, Bipin Chandra Paul (Congress), Pt. Jawahar Lal Nehru (Congress)

The public sculpture of Barak Valley is more or less characteristically the same in three districts. Here the works of public sculpture can be discussed under three districts - Cachar,

The first sculpture of Silchar is Netaji Subhash Chandra Bose placed in a public place in 1983 is made of bronze. It was installed which the help of the Silchar municipal board. This statue stands at Ranger Khari. Another public sculpture, that is of Bipin Chandra Paul (1998), is also made of bronze and was made by G.Paul and Son's, Kolkata, It is located at sadarghat, Silchar. Through these images of the great leaders, there was an intention to encourage nationhood in the public sphere. some in the intention behind erecting the statues of Chitta Ranjan Das (2004) at Chitta Ranjan Avenue. Swami Vivekananda at sadarghat, Ullaskar Dutta at Shillong Patty, Arun Chandra Paul (2004), Netaji Subhash Chandra Bose at Rangerkhari, Ashit Chakrabarty at Gandhi Bagh, and others.

We also find that most of the Sculptures were commissioned by different organizations and some of the statuses were commissioned by Government.

The different Public Sculptures of the Cachar and their characteristics are described below:

Shahid Khudiram Bose : Medium: - Bronze, Height: 9.5', Type: Full figure. It is placed at the Silchar Dakbangla Corner on 9th October 2007. It was sculpted by Taposh Dutta, Kolkata. He was born on 3rd December 1889. He was a great freedom fighter. At the tender age of 19 years, he jumped into the fight against the British and sacrificed his life for the purpose.

Bhasha Janani: Medium: Fiberglass, Height: 18', Type: Creative. It was done by Swapon Paul. It was installed on 21st February 2009. It stands inside the entrance gate of the Assam University Silchar. Aashiyan Group of Silchar helped in this process.

Bipin Chandra Paul : Medium: Bronze, Height: 2.5' (approx), Type: Half Vast. It is placed near Sadarghat. It was placed in the year 1998. It was done by G. Paul and Sons, Kolkata. Through this image of the great leader, there was an intention to encourage nationhood in the public sphere. He was born on 7th November 1858 and died on 20th May 1932. He came to Silchar several times in the years 1899, 1906, 1908, and 1909. He was not only a teacher but also a religious preacher, social thinker, writer, and journalist.

Deshbandhu Chittaranjan Das : Medium: - Bronze, Height: - 9' (approx), Type: - Full figure. It is placed on Chittaranjan Avenue. It was installed on 5th November 2004 on his 134th birth anniversary. It is made by G. Paul and Sons, Kolkata. Deshbandhu lived only 55 years (1870-1925) and if we can scan this short span of life, we find two broad divisions. The first comprises the period up to 1920 during which he engaged himself in significant literary and professional activities; the second covers his active whole time political life till his death in 1925.

The establishment of these public sculptures is a testament to the society's moral values, codes, and ethics. It acknowledges and adheres to universally accepted truths and correctness within the particular society. Furthermore, these sculptures shed light on the religious character of the society, offering a religious identity that resonates with its people. As a result, these public sculptures have become significant cultural landmarks in Assam, representing the rich tapestry of its heritage.

We have also discovered that numerous roads, lanes, by-lanes, markets, complexes, and more in Cachar are named after notable individuals such as *N.S Avenue, Chittaranjan Avenue, Vivekananda Road, Mahatma Gandhi Park, Desho-bandu Road, Subhash Nagar, Rabindra Sarani, Hrishy Arabindu Lane, Shyama Prashad Road*, and others in Silchar.

Conclusion:

In recent times, the number of public sculptures in Assam has significantly increased, occupying various spaces throughout the city, towns, and localities. Notably, there are numerous sculptures in three prominent locations. It is crucial to mention that these works have undergone changes in both dimension and size, as well as their presentation in open spaces.

There is a distinct correlation between the iconic status of these sculptures and their physical dimensions. The larger-than-life outdoor sculptures are elevated in their formal values, with their grand gestures and postures commanding attention amidst the bustling crowd. These

sculptures exude a sense of dominance and glorification. These iconic sculptures symbolize discipline, order, and serve as representatives of specific thoughts, ideologies, and actions. Their presence contributes to the history and progress of mankind, acting as guiding beacons for people of all ages within society. The initiation of public sculptures is often undertaken by government or non-government organizations, while at times, individuals come together to install such icons in an effort to restore moral and ethical values within the social system.

Overall, the proliferation of public sculptures in Assam not only adds aesthetic value to the region but also serves as a powerful medium for conveying important messages and inspiring the community.

Bbliography/ References :

Journals :

1. Dhanya, R. *with love from a cement company. Art & Deal*. Vol-7 No.2 Issue No. 58. (Ed) Tagore S. New Delhi.
2. Mukhopadhyay, A. *Lalit Kala Contemporary* 47 (Ed. Published by Sharma New Delhi.
3. Tagore, S. *Art & Deal*. Vol-9 No.27/ Issue No.58
4. Sudhakar, S. Lalit Kala Akademi, Rabindra Bhavan, New Delhi. March: 2003.
5. *Ghosh, S. Interview Anshuman Das Gupta. Art & Deal*. Vol-7 No.2 Issue No.58. (Ed) Tagore S. New Delhi.

Souvenirs :

1. Bipin Chandra Pauler Abokkho Murti Pratistha Kalpe,1998
2. Desobondhu Chittaranjan Das Protimurti Prothistha Committee, 23-01-2005.
3. Shahid Khudiram Murti Prothistha Committee, 2007.
4. Smarak Grantha, A File on Silchar Town (1833-1947), 2005.
5. 125 Bocchorer Aaloke Silchar Pourosabha (1882-2007)

Ph. D. Thesis :

1. Nandi, G. *Works of Ramkinkar Baij: Conventionalism, Modernity and beyond*. Ph. D. Thesis. Department of Visual Arts, Assam University, Silchar: 2009. Unpublished
2. Hazarika, B. *Art in public sphere of Assam Since 1970 Transforming subaltern culture of protest and identity politics, **Ph. D. Thesis***. Dept. of Painting, Kala Bhavana, Visva-Bharati University, Santiniketan: 2012. Unpublished

जलरंग का ऐतिहासिक परिचय

रजनी बाला
रिसर्च स्कॉलर, डिपार्टमेंट आफ फाइन आर्ट्स,
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, हरियाणा

प्रो० (डॉ०) राम विरंजन
डीन, इंडिक स्टडीज़ एण्ड चेयमैन
डिपार्टमेंट आफ फाइन आर्ट्स,
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, हरियाणा

सारांश :

भारतीय संस्कृति को बनाए रखने में कला ने उल्लेखनीय योगदान दिया है। इतिहास में ऐसे प्रमाण मिले, जिनमें पुरातात्विक खोजों के साक्ष्यों से अनुमान होता है, कि कला का सृजन मानव विकास के साथ-साथ होता रहा है। गुफाओं एवं चट्टानों पर हुई चित्रकारी उसके साक्ष्य हैं। चित्रकला के अंतर्गत पारंपरिक और आधुनिक तकनीकों व प्रक्रियाओं का समावेश है। चित्र रचना के लिए जलरंग, ऐक्रेलिक, तैलरंग व अन्य प्रकार के माध्यमों का प्रयोग करके चित्र का निर्माण किया जाता है। माध्यमों का प्रयोग करने की तकनीक भिन्न-भिन्न होती है। यद्यपि जलरंग एक ऐसा माध्यम है, जिसमें साधना की आवश्यकता होती है। जलरंग में रंगों की पारदर्शिता का उपयोग ही इसकी प्रमुख विशेषता है। जलरंग माध्यम में काम करना जितना सरल दिखाई देता है, उतना ही प्रयोग कठिन भी है। कलाकारों के विचारों का क्षेत्र भू-दृश्य तक सीमित नहीं रहा, इससे भी विस्तारपूर्वक विषयों को चित्रित किया गया है। जलरंग विशेषतः चीनी और जापानी कलाकारो द्वारा आरंभ किया गया था और धीरे-धीरे यह माध्यम संपूर्ण भारत में विकसित हुआ और कलाकारो ने जलरंग माध्यम में कला को निखारने का अथक प्रयास किया है। शोध पत्र के माध्यम से जलरंग की ऐतिहासिक पृष्टभूमि के विषय में विस्तारपूर्वक अध्ययन किया है। शोधपत्र के लिए प्राथमिक और द्वितीयक आंकडों का प्रयोग किया है।

मूल शब्द :

भारतीय चित्रकला में जलरंग, पश्चिमी और पूर्वी चित्रकला में जलरंग, जलरंग की तकनीक, वॉश पद्धति, जलरंग कलाकार

जलरंग का उद्भव और विकास :

जलरंग एक पारदर्शी माध्यम है, जिसके चित्रण में जल में घुलनशील रंजकों का प्रयोग किया जाता है। यह पद्धति चीनी कला के नाम से भी प्रसिद्ध है क्योंकि जलरंग का प्रयोग पहले चीनी और जापानी कलाकारों ने शुरू किया था। कंपनी स्कूल और बंगाल स्कूल के समय जलरंग चित्रों के लिए विदेशी कागज का प्रयोग होता था तथा ब्रिटिश रॉयल सोसाइटी चिहिन्त कागज बहुत ही उत्तम श्रेणी का माना जाता था। जलरंग चित्रों के लिए हैंडमेड, कैंटपेपर, व्हाईटमैन आदि धरातलीय स्वरूप कागज का सर्वोत्तम प्रयोग होता है।[1] भारत में पुणे से बना हस्तनिर्मित पेपर बहुत ही अच्छी श्रेणी का माना जाता है, जिसका प्रयोग चित्रांकन के लिए किया जाता है। कलाकार के लिए सबसे ज्यादा कठिन कार्य, चित्र की पारदर्शिता को बनाए रखना होता है। रंगों की पारदर्शिता समाप्त

होने पर चित्र धुंधले और चमकहीन हो जाते है। इसमें चित्रकार के द्वारा प्रतिदिन साधना की अथेष्टता होती है।

पश्चिम-पूर्व के किसी भी दिशा के गुहा चित्र इन तथ्यों के प्रमाण हैं, वे तत्कालीन दैनिक जीवन के उल्लास, प्रसन्नता की अभिव्यक्ति को दर्शाते है। इसी प्रकार वेदों में भी कला का सौन्दर्य स्वरूप विराजमान है। चित्रकला लोगों की इच्छा से उत्पन्न हुई और उन्होंने विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक स्थलों पर चित्रों का निर्माण करने का प्रयास किया। पहले चित्रों का निर्माण खनिज व प्राकृतिक रगों से किया जाता था। इन रंगो द्वारा प्रागैतिहासिक काल में गुफा की दीवार या अन्य चट्टानों पर भली-भांति से चित्रों को देखा जा सकता है।

चीन और जापान की कला विश्व स्तर पर पारदर्शिता के लिए प्रसिद्ध है। चीनी कला में चित्रों के विषय-वस्तु में पत्तियाँ, बाँस, फूल हवा में झिलमिलाते हुए पत्ते आदि आते है। यहां पर लेखन परंपरा विकसित थी, जिसको कागज और सिल्क पर ब्रश के द्वारा लिखने के लिए प्रयोग किया जाता था। इसलिए चीनी यात्री रेशम के कागज का उपयोग चित्रकारी और लेखन कार्य के लिए करते थे। चीन ने शुरुआती समय में कागज का उत्पादन किया, ऐसा माना जाता है कि इसका आविष्कार 105 ई॰ में तस्-आई-लून द्वारा किया गया था।[2] आमतौर पर जलरंग पद्धति का इतिहास चीन की कला से शुरू होता है। चीन में सुलेखन लिखना पारंपरिक था और चीनी कला पर उसकी सभ्यता के महान धर्म और दर्शन, कंफ्यूशीवाद और बौद्ध धर्म इसकी प्रेरणा के मुख्य स्त्रोत रहे है।[3] आठवीं शताब्दी में कवि वांग वेई पहले कलाकार थे, जिन्होंने मोनोक्रोम दृश्य चित्र स्याही माध्यम में निर्मित किए है।[4] जापान में चित्रकला का आरंभ बौद्धधर्म के आगमन के साथ प्रांरभ होता है। जापानी कलाकार स्याही के माध्यम से चित्रण करना पसंद करते थे। स्याही चित्रांकन और वॉश पद्धति के लिए पारंपरिक माध्यम काली स्याही था, जिसे चित्र बनाने के लिए कागज या रेशम का उपयोग किया जाता था। भारत में वॉश चित्रण को ओकाकुरा, याकोयामा, हिशिदा, कत्सुता शोकीन के आने से प्रोत्साहन मिला।

प्रारंभिक सामग्री पेपीरस और चर्म पत्र था। लेकिन उस समय भी चित्रकारों ने रंगों के साथ चित्रित कार्य किया, जो कि खनिजों से प्राप्त किए गए थे। धीरे-धीरे पेपीरस का स्थान ग्रीक और रोमन में चर्म पत्र ने ले लिया। इसके बाद कलाकारों ने फ्रेस्को में काम करना शुरू किया, जिसमें समय के साथ-साथ माध्यमों में भी बदलाव होते गए। गुफाओं से निकलकर कलाकारों ने दीवार, इमारतें और गिरजाघरों आदि में फ्रेस्को चित्रकारी शुरू की और यह तकनीक पुनर्जागरण काल में अपनी चरम सीमा पर थी। इटालियन में इस तकनीक को फ्रेस्को ब्रुनों बोला जाता है, जिसमें कलाकार सीधे गीले प्लास्टर पर जल में मिश्रित रंगों का उपयोग करते थे। जलरंग चित्रकला की शुरुआत इंग्लैंड में ही नहीं, बल्कि अन्य देशों में भी जलरंग का इतिहास रहा है। 17 वीं और 19वीं शताब्दी के मध्य अंग्रेज कलाकारों ने जलरंग पद्धति को ऊँचाइयों तक पहुँचाया। जलरंग माध्यम सदियों से लोकप्रिय रहा है।[5] पश्चिमी कला 16वीं शताब्दी में जर्मनी कलाकार अलबर्ट ड्यूयर के कार्यों में जलरंग से संबंधित चित्र मिलते है। ड्यूरर के बाद पीटर पोल रूबैंस ने भी कलाकृतियों को रूप देने से पहले जलरंग के माध्यम में रेखाचित्र तैयार किए थे। इनके साथ प्रमुख चित्रकार राफेल, जॉन वान ड्‌यक, जलरंग का प्रयोग रेखा चित्रों के लिए किया था।[6] इसके पश्चात् 17वीं शताब्दी में रेम्ब्राट और निकोलस पोसीन, क्लॉउड़ लोरेन द्वारा वॉश के चित्र एकवर्णीय रंगों में चितित्र किए गए। इसके पश्चात् जलरंग में नया बदलाव के अग्रणी, पोल सेंडबी को कहा जाता है तथा इनको अंग्रेजी जलरंग का जनक माना जाता है।[7] पोल सेंडबी एक प्रयोगिक चित्रकार थे, जिन्होंने जलरंग में प्रयोगिक कार्य किए।

इनके अतिरिक्त इंग्लिश कलाकार जे॰ एम॰ डब्ल्यू॰ टर्नर ने जलरंग पद्धति में चित्रों की रचना की। उन्होंने अपने जीवन काल में लगभग 2,000 जलरंग चित्रों की रचना की।[8] इसके साथ मुनरो 1794 ई॰ में कला और कलाकारों की रूचि को देखते हुए घर ऐडल्फी टेरेस में युवा जलरंग कलाकारों के लिए स्कूल खोलने के लिए प्रेरित हुए। यह स्कूल रॉयल अकेडमी से पहले शुरू हो चुका था। स्कूल के दो प्रसिद्ध कलाकार जे॰ एम॰ डब्ल्यू॰ टर्नर और थोमस गिर्टिन थे। कलाकार कला को कुशलतापूर्वक सीखने के लिए चित्रों की अनुकृति करते थे। सीखने के लिए चित्रों का यथार्थपरक चित्रण करना अत्यावश्यक था। जे॰ एम॰ डब्ल्यू॰ टर्नर और थोमस गिर्टिन आदि, कलाकारों के चित्रों में अंतर कर पाना कठिन था। कलाकार गिर्टिन, जलरंग माध्यम को ऊँचाइयों तक पहुँचाने का श्रेय दिया जाता है। गिर्टिन की 41 वर्ष की आयु में देहांत हो गया था। उनके चित्रों की प्रशंसा करते हुए टर्नर ने कहा था कि अगर गिर्टिन जीवित होता, तो उसे भूखा रहना पड़ता।[9] अर्थात गिर्टिन के चित्र अत्यादिक प्रभावशाली थे।

चित्र-2, पोल सेंडबी, मिल्क मेड इन विडंसन ग्रेड पार्क, 1765

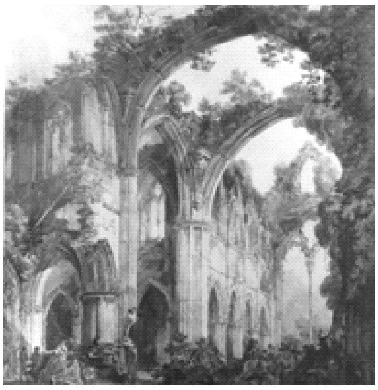

चित्र-3, जे.एम.डब्ल्यू. टर्नर, टिन्टरन एबे

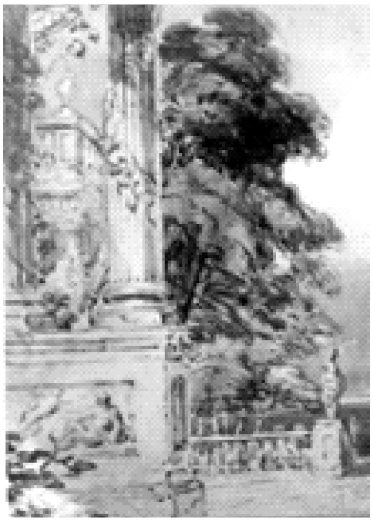

चित्र-4, थोमस गिर्टिन, द गार्डन टैरेस

चित्र-1, अल्बर्ट ड्यूयर, द ग्रेट पीस ऑफ टरफ, 1503

जहां एक और जलरंग चित्रकारों ने समय के अनुसार परिवर्तन किये वही पूर्व में जलरंग चित्रों की रचनाएं भू-दृश्य व इमारतों तक सीमित थी। लेकिन समय के बदलाव के कारण विषयों और तकनीकों में भी परिवर्तन होता गया। कई चित्रकारों की आकृतियों में रुचि थी, लेकिन रोमांटिक चित्रण के अलावा वास्तविक जीवन से संबंधित चित्रों को ज्यादा चित्रित करने में रुचि रखते थे। धीरे-धीरे जलरंग विषयों में बदलाव होता गया और आकृतियों के साथ कल्पनात्मक चित्रों का निर्माण करना शुरू हो गया था, विलियम ब्लैक ऐसे ही कलाकार है। ब्लैक ने चित्रों में कल्पनात्मक और अतियथार्थवादी जैसे गुणों को चित्रों में बनाना शुरू किया, जिसमें दृश्यों के अतिरिक्त धार्मिक से संबंधित चित्र ज्यादा दृष्टिगोचर होते है।

18वीं शताब्दी के दौरान प्रमुख कलाकारों द्वारा जलरंग के बढ़ते उपयोग के दौरान कला संस्थाओं ने जलरंग माध्यम को महत्व देना शुरू किया। 1804ई. में गठित पहले समूह को ''ओल्ड वॉटर कलर सोसाइटी'' के नाम से जाना जाता है। यह प्रदर्शनी इतनी प्रभावशाली हुई कि इस प्रदर्शनी के उपरांत एक नई संस्था की शुरुआत हुई, जिसे ''न्यू सोसायटी ऑफ पेंटर इन मिनिएचर एंड वॉटर कलर'' कहा जाता है। कला समीक्षकों ने जलरंग के चित्रों के विषय में लिखना शुरू किया। उन्होंने कहा कि जलरंग के चित्रों में इतनी निपूर्णता है कि वह तैल रंग में बनाए गए हैं और इससे जलरंग की विशेषता और भी बढ़ गई। धीरे धीरे जलरंग व्यापक रूप से विज्ञान को बढ़ावा देने लगा। जलरंग माध्यम, विज्ञान के लिए उपयोग किया गया। यह माध्यम भारत में भी प्रचलित हुआ।

भारत में जलरंग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :

पाश्चात्य कला में जलरंग चरम सीमा पर होने के पश्चात् भारत में जलरंग का महत्व बढ़ता गया। भारत में गुफाओं की छतों, दीवारों, चट्टानों पर चित्रकारी के साक्ष्य मिलते हैं। भारत में ऐतिहासिक काल के दौरान आदिमानव रहने के लिए और खाने के लिए गुफाओं का सहारा लेते थे, जिसमें चट्टानों पर चित्रकारी के साक्ष्यों से उस समय के रहन-सहन, खान-पान, शिकार, पूजा-पाठ आदि के विषय में जानकारी उपलब्ध होती है। आदिमानव पत्थरों, खनिज में गम अरेबिक और जल को मिलाकर रंगों को तैयार करके चित्रकारी करते थे, जिनके साक्ष्य आज भी प्रागैतिहासिक गुफाओं में सुरक्षित हैं। चित्रों के लिए प्रयुक्त सामाग्री, प्राकृतिक पदार्थों को पीसकर, पशुओं की चर्बी मिलाकर चित्रकारी करते थे। इन्हीं प्राकृतिक पदार्थो के द्वारा विभिन्न विषयों को चित्रित किया गया, जिसमें ''घायल पशु, परिवारिक शिकार के दृश्य, घोड़े, हाथी, बाघ, जंगली साँडों को पकडते हुए, बरछी से भेदते हुए आखेटकों का दृश्य, घायल भैंसा, जिराफ ग्रुप, चार धर्नुधारी, हाथियों के पकडनें का दृश्य आदि चित्र उकेरे गए है।[10]

प्रागैतिहासिक काल के उपरांत सिन्धु घाटी सभ्यता में मृदभांड पर रंगीन चित्रकारी देखने को मिलती है। यहां पर सर्वाधिक पशुओं में अश्व, विचित्र पशु, ज्यामिति आकृतियाँ आदि के चित्रों को देखा जा सकता है। गुप्त काल में भी चित्रों के कुछ साक्ष्य मिले है। इसमें अधिकतर चित्र फ्रेस्को और टेंपरा दोनों ही विधियों में बनाए गए थे। इन चित्रों में प्राकृतिक पदार्थों, पत्थर, मिट्टी, खड़िया आदि को गम अरेबिक मिलाकर चित्रों का निर्माण किया जाता था, जिसके साक्ष्य आज भी गुफाओं में देखने को मिलते है। अजंता के भित्ति चित्र विश्व प्रसिद्ध है, जिसमें टेंपरा माध्यम के द्वारा काम किया गया है। धीरे-धीरे चित्रकला का स्वरूप बदलता गया जिसमें चित्रित करने का धरातल और रंगों में बदलाव आने लगे।

भारतीय चित्रकला की जो उन्नत परम्परा को प्रोत्साहित और पल्लवित करने का बहुत बड़ा श्रेय भारत के राजवंशों को दिया जा सकता है। दसवीं शताब्दी से पहले भारतीय चित्रकला की प्राचीन परम्परा का प्रतिनिधित्व भित्तिचित्रों में मिलता है। ये अधिकांशतः

बौद्धकला और जैनकला से सम्बध रखते है। भित्तिचित्रों के निर्माण से पूर्व बौद्धकला और जैनकला का समृद्ध रूप मूर्तियों और मदिरों के शिल्प में व्याप्त हो चुका था। सचित्र पांडुलिपियों 10वीं शताब्दी के आस-पास बननी शुरू हो गई थी। भारत में सचित्र ग्रंथ 10वीं शताब्दी में लिखने शुरू हुए थे, जो कि बौद्ध ग्रंथ थे, और विहार के नांलदा और बंगाल के पहाड़पुर मठों से मिले थे।[11] नौवीं और बारहवीं शताब्दी के बीच चित्रों की रचना बंगाल और बिहार में ताड़पत्रों पर बनने लगी, जिनका विषय बौद्ध धर्म था। पाल शैली से भारतीय लघुचित्रों का आरंभ एवं कागज पर चित्राकंन करना जैन शैली से माना गया। पाल शैली के साथ-साथ जैन चित्रकला में भी पोथियों को चित्रित किया जाने लगा तथा इसमें भी जैन धर्म से संबंधित चित्रों की रचना की जाती थी। जैन शैली के पश्चात् मुगलों का शासन स्थापित हुआ। इसमें दरबार, शहजादों के शबीह चित्र, लड़ाईयों के चित्र आदि प्रिय विषय थे। चित्रकारी मुगल शासकों के चारों ओर के जीवन तथा दरबारी तक सीमित रही, जनसाधारण की ओर विशेष ध्यान नहीं था। मुगल काल में चित्रकारों ने अधिक संख्या में चित्रों की रचना की, उन्होंने प्राकृतिक तथा वनस्पति रंगों से चित्रण किया।

भारत में चित्रकला के क्षेत्र में 15वीं शताब्दी का समय पुनरूत्थान का समय रहा है। इस समय रागमाला से सम्बधित चित्र, भित्ति चित्र और कृष्ण सम्बधी चित्रों का निर्माण हुआ। 16वीं और 17वीं शताब्दी के आसपास राजपूत कला प्रसिद्ध हुई, इसमें भारतीय कथाएं रामायण, महाभारत, राधा-कृष्ण से संबंधित चित्रों की रचना की गई। चित्र प्राकृतिक तथा वनस्पति रंगों से निर्मित किए जाते थे। राजस्थानी शैली के बाद पहाड़ी. शैली के चित्रों में प्राकृतिक दृश्यों की विविध और मनोरम छटाएं चित्रकारों ने चित्रित की है। पहाडी शैली में गुलेर, कांगड़ा, कुल्लू आदि के चित्रकारों ने राधा-कृष्ण से संबंधित लघु चित्रों का निर्माण किया था। पहाड़ी स्कूल में नैनसुख, पंडित सेयू, खुशाला, फत्तू आदि चित्रकारों ने पहाड़ी शैली को ऊँची शिखर तक पहुँचाया तथा पहाड़ी स्कूल के कलाकार समकालीन में चित्रांकन कर रहे है। इनमें से अभिसारिका, यमुना नदी के पास राधा और कृष्ण, हिंडोला राग, विरहिणी नायिका, कुएं पर नारियां, वार्तालाप मगन दो ऋषि, राम दरबार आदि पहाड़ी शैली के चित्र है। पहाड़ी कला तक भारत में टेम्परा पद्धति प्रचलित रही। संपूर्ण भारत में प्राचीन काल से पहाडी शैली तक कलाकृतियों को टेम्परा और प्राकृतिक रंगों से चित्रित किया जाता था। इन चित्रों को वसली, भित्ति चित्र, वस्त्र कागज आदि पर चित्रित किया जाता था, जिनका संग्रहालय भारतवर्ष की कला विथियों के अतिरिक्त यूरोपीय संग्रहालय में सुरक्षित है।

ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत में व्यापारिक उद्देश्य से प्रवेश किया, लेकिन धीरे-धीरे देश की आर्थिक और राजनीतिक कार्यो में हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया और स्थिति में परिर्वतन होने से उन्होंने भारत पर अधिकार करना शुरू कर दिया। समय बदलने के परिणामस्वरूप कलाकार आश्रय ने मिलने की स्थिति में इधर-उधर क्षेत्रों में चित्रांकन करने लगे, ब्रिटिश अधिकारियों ने अपना दस्तावेजीकरण करने के लिए इन भारतीय कलाकारों से चित्रों को चित्रित करवाना शुरू किया।[12] भारत में कंपनी काल में यूरोपीयन ब्रिटिश कलाकारों के आगमन से भारतीय कला पर विदेशी प्रभाव दिखना शुरू हुआ। कंपनी शैली में जलरंग को महत्ता मिली। 1785 ई में विलियम डेनियल और थामस डेनियल तथा अन्य बिटिश चित्रकार भारत में आए, इन्होंने भारत में जलरंग पद्धति, लिथोग्राफी, उत्कीर्ण में प्राकृतिक दृश्य बनाए थे। कंपनी शैली में प्राकृतिक चित्र व दैनिक जीवन से संबंधित चित्रों को यथार्थवादी ढंग से बनाया जाने लगा था। इन्होंने अपनी कला में विदेशी जलरंग तकनीक को अपनाना शुरू किया था। डेनियल बंधुओं ने ही भारत में दृश्य चित्रण के लिए स्वतंत्र रूप से जलरंग की शुरूआत की थी। कम्पनी स्कूल में ही जलरंगों का विशुद्ध प्रयोग प्रथम कर देखने को

मिलता है। इसके पूर्व जलरंगीय मिश्रित माध्यमों का प्रयोग हुआ है। स्वभावतः भारत में विशुद्ध जलरंगों के चित्रों का निर्माण पाश्चात्य आयातित था। कंपनी के बाद भारत में एक नया दौर शुरू हुआ, जिसे पुनर्जागरण के नाम से जाना जाता है।

चित्र-5 कम्पनी काल, किला, थोमस डेनियल, जलरंग

चित्र-6 पुरोहित इलोकेशी कालीघाट के साथ, जलरंग

बंगाल में विदेशी कलाकारों के आगमन से देश के विद्यार्थियों को नई शैलियों और तकनीकों को सीखने का अवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने कलकत्ता कॉलेज से विद्यार्थियों को वॉश तकनीक से परिचित कराया, धीरे-धीरे वॉश प्रविधि को प्रोत्साहन मिलता गया। बंगाल शैली अवनींद्रनाथ टैगोर के नेतृत्व में उनके शिष्यों के चित्रकार समूह के प्रयास से उभर कर सामने आई। इसलिए आरंभ में इसे ठाकुर शैली के नाम से जाना गया। जापानी चित्रकार याकोयामा और हिशीदा क्रमशः 1901, 1902 में भारत आए, इन दोनों चित्रकारों को ओकाकुरा काकूजा ने भारत भेजा था। इन चित्रकारों के संपर्क में आने से अवनींद्रनाथ टैगोर ने जापानी प्रक्षालन विधि (इंक तकनीक) को ग्रहण किया। उन्होंने उसे जलरंग और टेंपरा के मिश्रण से नई पद्धति का मिश्रण किया जिसे वॉश पद्धति कहते हैं, यह उनकी निजी विशेषता बन गई। बंगाल शैली की विशेषताओं में जापानी चित्रकारों की ग्वॉश पद्धति, फारसी चित्रकला की हस्त लेखन शैली, पाश्चात्य चित्र शैली का उभार व छाया और प्रकाश का अंकन तथा प्राचीन भारतीय चित्र शैलीयों व मूर्तिकला कलाकार और मूर्तिकला रूपविधान और लयात्मकता की गणना की जा सकती है।[13] बंगाल स्कूल के कलाकार अवनींद्रनाथ टैगौर ने चीनी-जापानी व भारतीय चित्रण विधियों के मिश्रण में वॉश प्रविधि के अन्तर्गत अनेक चित्र बनाए थे।

भारत में बंगाल स्कूल के कलाकारों ने जलरंग में कलाकृतियों का सृजन किया। वॉश तकनीक (स्याही तकनीक) चीन, जापान में पहले से ही विकसित थी अथवा उनके शिष्यों ने वॉश तकनीक को भारतीय कलाकारों से परिचित कराया।[14] भारत में अवनींद्रनाथ टैगोर, नंदलाल बोस, असीत कुमार हाल्दर, क्षितिंद्रनाथ मजूमदार, अब्दूर रहमन चुगतई, के. वेंकटप्पा, शारदाचरण उकील, शैलेन्द्रनाथ टैगोर आदि कलाकार भारत के विभिन्न भागों के कला संस्थाओं में सक्रिय हो गये। इस प्रकार जलरंग की तकनीक कोलकाता कला विश्वविद्यालय के साथ-साथ इलाहाबाद विश्वविद्यालय, मद्रास विश्वविद्यालय, जयपुर विश्वविद्यालय, लखनऊ, शांतिनिकेतन आदि विश्वविद्यालयों में जलरंग पद्धति में चित्रांकन करके इस माध्यम को विकसित किया। जलरंग में अधिकांश कलाकारों ने चित्रों में रचनाएं

की और आज के समय में कलाकार जलरंग माध्यम में आश्चर्यचकित कलाकृतियों की रचना कर रहे है अगर आधुनिक कला की बात की जायें तो अवनींद्रनाथ टैगोर ने भारत माता कृति को जलरंग (वॉश पद्धति) में निर्मित किया था। वहीं से बंगाल स्कूल के कलाकारों को वॉश प्रविद्धि में चित्रांकन करने वाले प्रमुख कलाकार बोला जाता है। अवनींद्रनाथ टैगोर की पहली कृति अभिसारिका मानी जाती है, जिसकी रचना 1892 ई. में की थी। अवनींद्रनाथ टैगोर की प्रतिभा को सबसे पहले रविंद्रनाथ टैगोर और दिवजेंद्रनाथ टैगोर ने पहचाना और प्रोत्साहित किया था। दिवजेंद्र ठाकुर ने अपने संपादन में प्रकाशित ''भारतीय बालक'' नामक पत्रिका में अवनींद्रनाथ टैगोर के चित्र प्रकाशित किए। 1900ई. में मुंगेर की यात्रा करते समय दृश्य चित्रों के चित्रण में उन्होंने जलरंगों का उपयोग किया। यह माध्यम उन्हें सुविधाजनक लगा और उन्होंने भारत माता, चित्रांगदा के लिए 32 चित्रांकन, उमर खैय्याम की रूबाईयों पर आधारित, तिष्यरक्षिता, यात्रा का अंत आदि उल्लेखनीय चित्र है।[15]

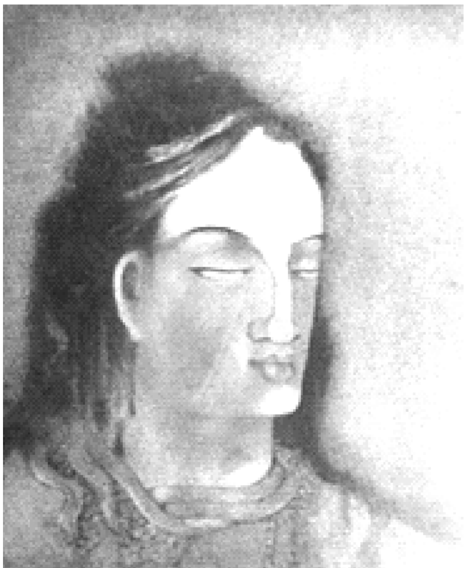

चित्र-7 हैड ऑफ शिवा, नदलाल बोस

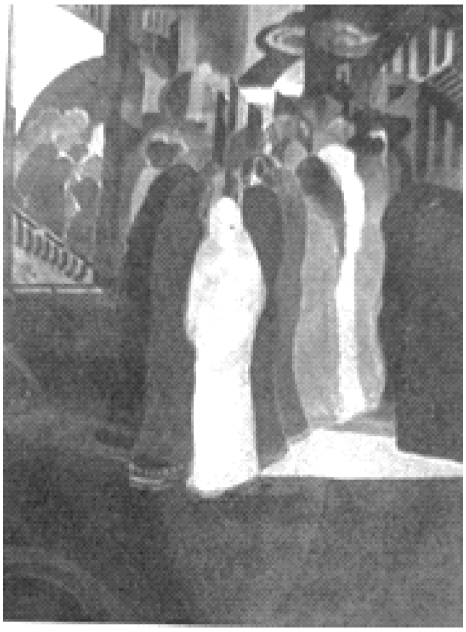

चित्र-8 कांपोजीशन, गगनेंद्रनाथ टैगोर

नंदलाल बोस के कृतित्व का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि उन्होंने विषय-वस्तु में पुराण गाथाओं, दृश्य-चित्रों, संथाल जीवन, प्रकृति आदि में विशेष अभिरूचि रही है। उन्होंने जलरंग के साथ टैम्परा पद्धति और स्याही से रेखाचित्रों को चित्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। नंदलाल बोस द्वारा विषपायी शिव, सती दाह, शिव सती, सुजाता, संघमित्रा आदि वॉश में बनाई गई है। गगनेंद्रनाथ टैगोर तथा नंदलाल बोस के बाद क्षितिंद्रनाथ मजूमदार, असित कुमार हाल्दार की कलाकृतियाँ वॉश पद्धति तथा जलरंग में बनाई गई है। उन्होंने लखनऊ में वॉश पद्धति और जलरंग को उँचाईयों तक पहुँचाया अथवा बंगाल शैली को विकसित करने में अवनींद्रनाथ टैगोर का सहयोग दिया। असित कुमार हाल्दार के अतिरिक्त रामगोपाल विजयवर्गीय, बद्रीनाथ आर्य, गणेश पाईन, फ्रैंक वेस्ली, हरिहर लाल मेंढ़, सुखवीर सिंह सिघंल, नित्यानन्द महापात्र आदि कलाकारों ने भी वॉश पद्धति और जलरंग में रचना की। रामगोपाल विजयवर्गीय की कृतियाँ जलरंग प्रविधि में है। बाम्बे

प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट्स ग्रुप में एच. ए. गाडे ने भी जलरंग में कलाकृतियों का निर्माण किया। इसके अतिरिक्त दिल्ली शिल्पी चक्र के प्रसिद्ध कलाकार कंवल कृष्ण ने जलरंग में भू-दृश्यों को चित्रित किया।

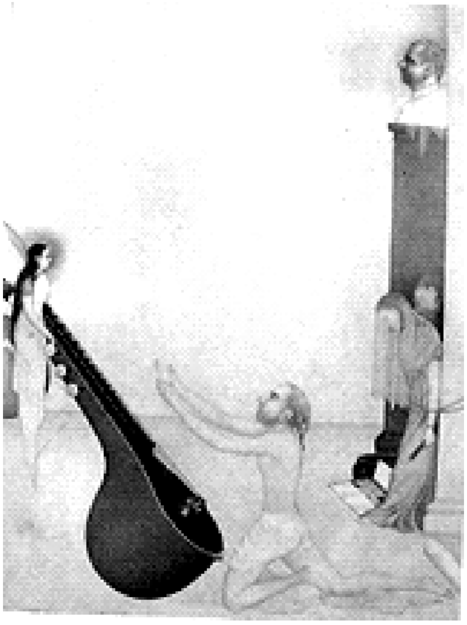

चित्र-9 के वेंकटप्पा, वीणा के बाद पागल, जलरंग

चित्र-10, गणेश पाइन, शीर्षक विहीन, जलरंग,

बद्रीनाथ आर्य के चित्र जलरंग (वॉश) में चित्रित है। उन्होंनें जलरंग माध्यम से, रेखा और रंग को कविता के रूप में परिभाषित किया है। उन्होंनें सावँरी, गोधूलि में अपनी केशराशि को सवाँरती सुंदरी के हृदय की धड़कन को भी महसूस कर सकता है, बद्रीनाथ आर्य की कृति संघर्ष जलरंग माध्यम में बनाई गई तथा उन्होंने गीष्म, पेड़ की छाव में, गंगा, तांडव, प्रतीक्षा, वर्षा आदि चित्र जलरंग में चित्रित है।[16] रामगोपाल विजयवर्गीय की अप्सरा कृति जलरंग प्रविधि में है। इनमें से गणेश पाईन के चित्र जलरंग, टेंपरा और तैल माध्यम में बनाए गए है। इनके चित्र अधिकतर लकड़ी के खिलौने जैसे लगते थे अथवा उन्होंने अपने चित्रों का निर्माण लोक कला से प्रभावित होकर किया। उनके चित्रों में स्वपन और उदासीनता दिखाई देती है।[17] समकालीन कलाकार जिन्होंने जलरंग माध्यम में पूरी निष्ठा के साथ कार्य किया है, उनमें प्रमुख है, राम जैसवाल, वासुदेव कामथ, परेश मैती, प्रफुल्ल सावंत, समीर मंडल, संजय भट्टाचार्य ,अमित कपूर, रघुनाथ साहू, बिजय बिस्वाल, राजकुमार स्थाबाथी, विक्रांत शितोले, राजेश सांवत, अमोल पवार, प्रभू जोशी, डॉ॰ राम विरंजन आदि अनेक कलाकार है, जो जलरंग माध्यम में श्रेष्ठ कलाकृतियों की रचनायें कर रहे है। जिस माध्यम को बंगाल स्कूल के समय में उन्नति के शिखर पर पहुँचाया गया, समयानुसार कुछ कलाकार अपनी पद्धति के लिए जाने गए। अगर बात समकालीन जलरंग कलाकारों की जाए तो कलाकार जलरंग माध्यम में रंजन कार्य कर रहे है तथा इसके साथ ही युवा कलाकार भी जलरंग माध्यम में संपूर्ण निष्ठा के साथ कलाकृतियों की रचना कर रहे है।

राम जैसवाल एक प्रसिद्ध वॉश कलाकार माने जाते हैं। इनको सुधीर रंजन खास्तगीर, असित कुमार हालदर, श्रीधर महापात्र, मूर्तिकार एच.राय चौधरी और श्री राम वेद का सानिध्य प्राप्त हुआ। लखनऊ में रहने के दौरान इन्होंने वॉश पद्धति में अनेक चित्रों का निर्माण किया, जिनमें व्यक्ति चित्र, दृश्य चित्र,

राधाकृष्णन, दूसरी ईद, आंगन में दूसरी पूजा का दिन अन्य कलाकृतियों का निर्माण किया। राम जैसवाल अजमेर में रहकर कार्य कर रहे हैं तथा कला जगत में अपना संपूर्ण योगदान दे रहे हैं।[18] वासुदेव कामथ भारत के राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के प्रसिद्ध जलरंग कलाकार है। वासुदेव कामत की शिक्षा जे.जे स्कूल ऑफ आर्ट में हुई, उन्होंने ज्यादातर पौराणिक और ऐतिहासिक विषयों को चित्रित किया है। रामायण श्रृंखला पर आधारित 28 पेंटिंग को दिल्ली के आईजीएनसीए में प्रदर्शित की गई थी। उन्होंने जलरंग और तैल रंगों में काम किया है। उनकी कलाकृतियों में आकृतिमूलक, धार्मिक, व्यक्ति चित्र, भू-दृश्य देखने को मिलते है। गऊ माँ, कपिल मुनी, देवहुती माता, गायत्री, टॅच ऑफ गोड़, नीलकंठ इत्यादि।

चित्र-11 राम जैसवाल, रामायण श्रृंखला, जलरंग वॉश

चित्र-12 वासूदेव कामथ, गऊ माँ, कागज पर जलरंग

परेश मैती राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्ध भारतीय समकालीन कलाकार है। परेश मैती चित्रकार, मूर्तिकार ,फोटोग्राफर और फिल्म निर्माता है। उन्होंने जलरंग और एक्रेलिक में विभिन्न कलाकृतियों का निर्माण किया। आकृति, दृश्य चित्रों का निर्माण धनवादी शैली में किया। कलाकृतियों में पुरुषों, महिलाओं, जानवरों और पक्षियों को शामिल करने की अनूठी कोशिश सफल रही है।[19] शुरुआती वर्षो में अलग-अलग स्थानों का भ्रमण किया और जल रंग में अपनी कला को निखारा। वर्तमान समय में जलरंग के साथ-साथ एक्रेलिक और मूर्तिकला में भी कार्य कर रहे है। इनके प्रसिद्ध चित्र ऑफ्टर द नाईट, अनटाइटल, बनारस, द ब्रीज, सैलिब्रेश्न, इनटरल फ्रैंडशिप, रैड फेस, तालसारी इत्यादि हैं।

समीर मंडल प्रख्यात जलरंग चित्रकार के रूप में भूमिका निभा रहे है। उनकी शिक्षा कोलकाता के गवर्नमेंट कॉलेज ऑफ आर्ट में संपूर्ण की। उन्होंने कॉलेज समय के दौरान मैग्ज़ीन के लिए इलस्ट्रेशन, किताबों के कवर और रंगमंच के पर्दे रंगने आदि कार्यों में अपनी निपूर्णता दिखाई। उनके कार्यों में व्यक्ति चित्र, भू-दृश्यों का समावेश है।[20] उनके कार्य करने की शैली भी भिन्न-भिन्न है। उनका एकमात्र माध्यम जलरंग ही रहा है। इनके चित्रों में काला व लाल रंग बहुलता से देखा जा सकता है। समीर मंडल हैनरी मातिस व वॉन गॉग आदि के चटक रंगो से प्रभावित है। उनके प्रमुख चित्र, स्टील लाइफ एक एक्टिविस्ट की तरह जलरंग माध्यम को पहले जैसी प्रतिष्ठा दिलाने में लगे है। इसके लिए वॉटर कलर सोसाइटी ने उन्हें पुरस्कार से सम्मानित किया है। इनके चित्र द लाइट, द टोरसों, द फेसस ऑफ द मून, द पोलो प्लेयस, ट्विन सिस्टर, डिजायर, ड्रामा, द मून, द हैड़ आदि इनकी कलाकृतियों को शामिल किया गया है।

चित्र-13 परेश मैती, दृश्य चित्र, जलरंग

चित्र-14 समीर मंडल, तारे जमीन पर, जलरंग

राजकुमार स्थाबाथी को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त है। जलरंग माध्यम में बहुत अधिक श्रृंखलाओं में रंगत कार्य का सृजन किया है- जिनमें रिक्शा चालक ,व्यक्ति चित्र, व्हील श्रृंखला, स्टीट्रट श्रृंखला, कुम्भ श्रृंखला आदि में एक अद्भुत प्रकाश दिखाई देता है। उनके कार्यों में प्रकाश और छाया का अद्भुत संयोग स्पष्ट झलकता है। इनके अलावा स्ट्रीट वर्कस को जलरंग माध्यम में दिखाया गया तथा वास्तविक जीवन से संबंधित कुंभ मेला श्रृंखला की रचना की है। राजकुमार स्थाबादी वर्तमान समय में उड़ीसा में रहकर कला के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है। बिजय बिस्वाल भारतीय समकालीन कलाकार है। बिजय बिस्वाल जलरंग, ऐक्रेलिक में काम करते है तथा शिक्षा के दौरान ही रेलवे की नौकरी प्राप्त हुई, जिसका प्रभाव उनकी कला में देखा जा सकता है। बिस्वाल की कलाकृतियों में मानव आकृतियां, व्यक्ति चित्र, प्रकृति चित्रण बहुलता से चित्रित है। बिस्वाल ने विभिन्न श्रृंखलाओं को चित्रित किया है, जिनमें से रेलवे श्रृंखला, रामायण श्रृंखला आदि। रैड पोस्ट ऑफिस, कान्हा, ए ट्रेन टू बूंदी, विन्टेंज, इन मोशन, मैंगों ट्रीस आदि।

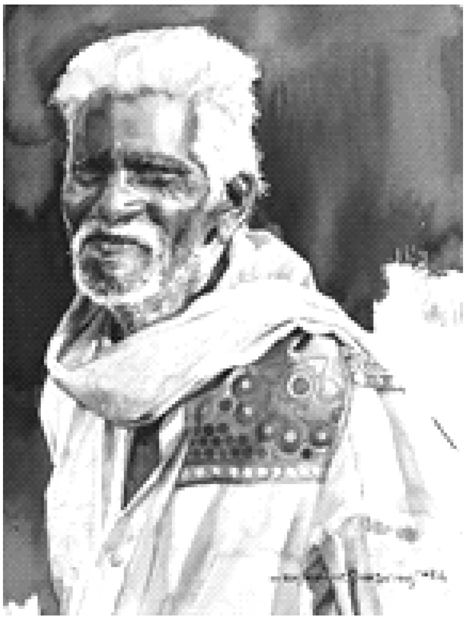

चित्र-15 राजकुमार स्थाबाथी, व्यक्ति चित्र, जलरंग

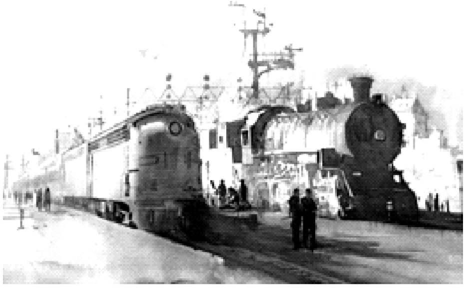

चित्र-16 बिजय बिस्वाल, विन्टेज इन मोशन, जलरंग

संजय भट्टाचार्य, विकास भट्टाचार्य के शिष्य रहे अथवा तैल रंग और जलरंग माध्यम में कृतियों का निर्माण किया। कोलकाता के मध्यवर्गीय लोगों और उनके रहन-सहन आदि विषय वस्तु को लेकर रचनाएं की। प्रफुल्ल सावंत भारत के समकालीन प्रसिद्ध जलरंग कलाकार है, प्रफुल्ल सावंत ने सिटीस्केप, व्यक्ति चित्रों, आकृतिमूलक और नारी अंकन करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उन्होंने अनेक स्थानों

का भ्रमण किया तथा उनके कार्यों में बनारस श्रृंखला, गंगाद्वार नासिक, डिवोटी,, रिफ्लैक्शन ऑफ स्टोन, नासिक में शाम आदि चित्रों की रचना की है। जिनका उनके कला पर प्रभाव देखा जा सकता।

चित्र-17, संजय भट्टाचार्य, अनटाइटल, जलरंग

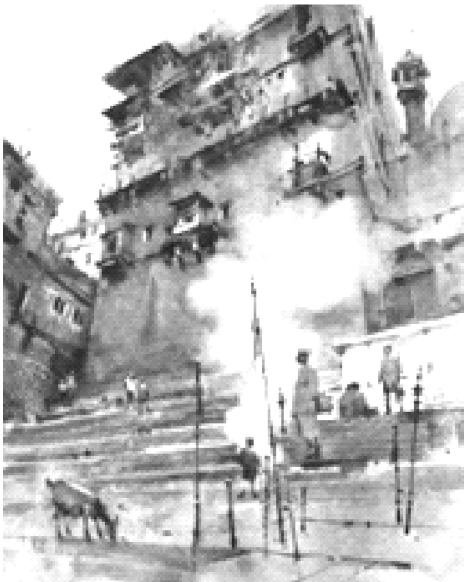

चित्र-18, प्रफूल्ल सावंत, बनारस घाट, जलरंग

अमित कपूर दिल्ली के प्रसिद्ध समकालीन कलाकार है। ये दिल्ली में रहकर कला में योगदान दे रहे है। अमित कपूर भारत में जलरंग माध्यम के लिए प्रसिद्ध है। उनकी कलाकृतियों के विषय-रेल, इंजन, सड़कें, रसोई, प्लेटफार्म और शहरों के दृश्य देखने को मिलते है। इनके रंगत कार्य में दैनिक जीवन से संबंधित और सिटीस्केप बहुल मात्रा में देखे जा सकते। मिलिन्द मलिकः-मिलिंद मलिक अपने जलरंग चित्रों के लिए प्रसिद्ध है। उनका जन्म 5 नवम्बर 1962 को पूणे में हुआ। मिलिंद पिछले 35 वर्षो से जलरंग माध्यम मे कलाकृतियों की रचना कर रहे है। उन्होनें ज्यादातर भू-दृश्य शहरी दृश्यो को बनाया है। विक्रांत शितोलेः- विक्रांत शितोले जलरंग के प्रसिद्ध कलाकार है। विक्रांत शितोले मुम्बई में रहकर चित्रांकन कार्य कर रहे है। उन्होंने अनेक विषयों को लेकर चित्रण किया है, मैसूर मार्केट, अनटाइटल, बूंदी स्ट्रीट, थीमी स्ट्रीट, इन्सप्रेशन सीट, सुख महल आदि। रघूनाथ साहू का जन्म 7 जुलाई 1977 ई. उड़ीसा में हुआ। उड़ीसा में जलरंग माध्यम के लिए प्रसिद्ध है। उन्होनें बी.के आर्ट कॉलेज से अपनी शिक्षा संपूर्ण की, इनकी कलाकृतियों के विषयों में वास्तविक जीवन के दृश्यों, बच्चों, स्टील लाईफ, ग्रामीण जीवन से संबंधित चित्र है।

चित्र 19-विकंरात शितोले, अहमदाबाद, जलरंग

चित्र-20 रघूनाथ साहू, महिला, जलरंग

डॉ॰ राम विरंजन प्रसिद्ध भारतीय कलाकार है। आपका जन्म 8 अगस्त 1964 ई. में चित्रकूट में हुआ। उन्होंने 1988 ई. में अपनी पोस्ट ग्रेजुएशन इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संपूर्ण की और कला के क्षेत्र में भरपूर कार्य किया। वर्तमान में लगातार सौंदर्य से परिपूर्ण आकृतियों का सृजन करते हुए ललित कला विभाग कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में प्रोफेसर पद पर कार्यरत है। उनके सानिध्य में रहकर विद्यार्थी ज्ञान प्राप्त कर रहे है। उन्होंने जलरंग, ऐक्रेलिक और अन्य माध्यम में कार्य किया है उनके कार्यों में पक्षी, जानवर, आकृतिमुलक, भू-दृश्य ,व्यक्ति चित्र आदि दिखाई देते है। उन्होंने जलरंग में अनेक कलाकृतियों की रचना की। जिनमें दैनिक जीवन, भू दृश्य ,व्यक्ति चित्रों से संबंधित अनेक चित्र है। इनके अतिरिक्त राजेश सावंत, प्रभू जोशी, अमोल पवार, संजीव शर्मा आदि चित्रकार जलरंग माध्यम में कार्य कर रहे है।

चित्र-21 डॉ. राम विरंजन, कज़ाकिस्तान भू-दृश्य, कागज पर जलरंग

समकालीन कलाकार, जलरंग माध्यम में पूरी निष्ठा के साथ कार्य किया है, उनमें प्रमुख हैः-राम जैसवाल, वासुदेव कामथ, परेश मैती, प्रफुल्ल सावंत, समीर मंडल, संजय भट्टाचार्य, अमित कपूर, रघुनाथ साहू, बिजय बिस्वाल, राजकुमार स्थाबाथी, विक्रांत शितोले, राजेश सांवत, अमोल पवार, प्रभू जोशी, डॉ॰ राम विरंजन आदि अनेक कलाकार है, जो जल रंग माध्यम में श्रेष्ठ कलाकृतियों की रचनायें कर रहे है। इनके अतिरिक्त युवा कलाकार जिन्होंने जलरंग चित्रों में महत्वपूर्व भूमिका निभा रहे है। अनिरवान जाना, मधुसूधन दास, अनन्त मंडल, अमित धाने, संघ मित्रा राय मजूमदार, उदय भान, विकास कुशवाहा, श्रीतम् बनर्जी, अर्नव बेरा, कंगकन दास, निशिकांत पलाडें, प्रवीन कर्माकर आदि कलाकार है।

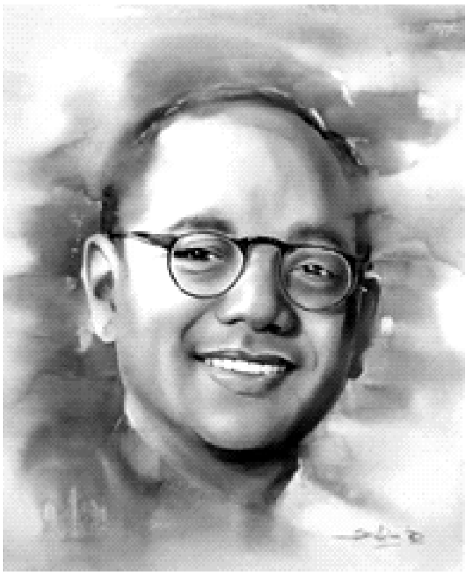

चित्र-23 श्रीतम बनर्जी, जलरंग

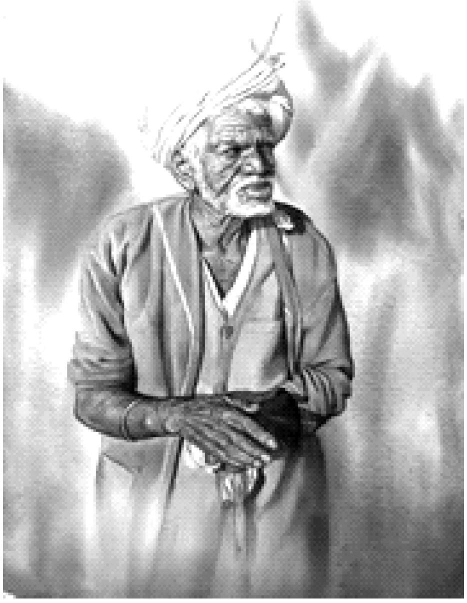

चित्र-24 निशिकांत पलांडे, जलरंग

चित्र- 25 उदय भान, मुस्कुराती, हुई सुंदरता, जलरंग

चित्र-26 अनंत मंडल, बुल इन मोशन, जलरंग

चित्र-27 बाजार दृश्य, अनिरबान जाना, जलरंग

चित्रः-28 प्रकृति दृश्य, मधूसूधन दास, जलरंग

चित्रः-29 संघ मित्रा राय मजूमदार, जलरंग

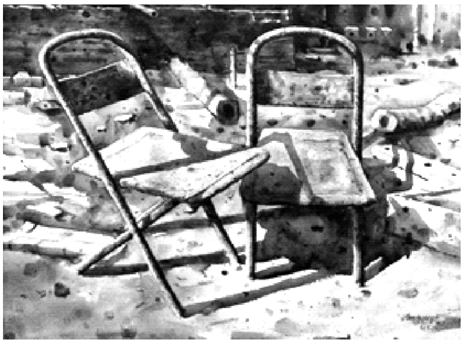

चित्र-30 विकास कुशवाहा, जलरंग

निष्कर्ष :

जलरंग माध्यम में अधिकतर कम्पनी शैली में चित्रों का विशुद्ध रूप देखने को मिलता है। उसके पश्चात् बंगाल स्कूल में कलाकारों ने वॉश पद्धति और जलरंग में चित्रों की रचना की, परन्तु जैसे-जैसे समय में बदलाव हुआ, चित्रों की प्रवृति बदल गई। कलाकारों ने नए-नए माध्यम में कार्य किए। जिस माध्यम को बंगाल स्कूल के समय उन्नति के शिखर पर पहुँचाया गया, समयानुसार कुछ कलाकार अपनी पद्धति के लिए जाने गए और जलरंग माध्यम में कलाकृतियों को निर्मित करना अल्प हुआ। बंगाल स्कूल के उपरांत यद्यपि समकालीन जलरंग कलाकारों ने जलरंग माध्यम में रंजन कार्य कर रहे है तथा इसके साथ ही युवा कलाकार भी जलरंग माध्यम में पूरी निष्ठा के साथ कलाकृतियों की रचना कर जलरंग माध्यम को प्रतिष्ठित करने में भूमिका निभा रहे है।

सन्दर्भ सूची :

1. Varma, A., & Varma, A. (2019). *Kala Or Tacnique*. Prakash Book Dipot.
2. Cartwright, M. (2017, September 15). Paper in Ancient China. *World History Encyclopedia.*
3. Govignon, B. (Ed.). (1998). *The Beginner's Guide to Art* (J. Goodman, Trans.). Harry N. Abrams, Inc.
4. Govignon, B. (Ed.). (1998). *The Beginner's Guide to Art* (J. Goodman, Trans.). Harry N. Abrams, Inc.
5. Mallalieu, H. L. (1985). *Understanding Watercolour* (1st ed.). Antique Collectors.
6. Rodwell, J. (1987). *The Complete Water colour Artist* (1st ed.). Pelham Books Ltd.
7. *Paul Sandby: The Father of Watercolor*. (2018, July 18). Tomorrow World Today. https://www.tomorrowsworldtoday.com/2018/07/18/paul-sandby-the-father-of-watercolor/
8. Rodwell, J. (1987). *The Complete Watercolour Artist* (1st ed.). Pelham Books Ltd.
9. Rodwell, J. (1987). *The Complete Watercolour Artist* (1st ed.). Pelham Books Ltd.
10. Huntington, S. L. (1993). *The Art of Ancient India Buddhist, Hindu, Jain*. Weather Hill.
11. Mitter, P. (2001). *Indian Art* (1st ed.). Oxford University Express.
12. Nishant. (2015, October). Kala Main Bhartiyata Ki Khoj or Bengal Main Nayi Shailli Ka Janm. *Kala Dirgha, Drashaya Kala Ki Anterdeshiye Patrika*, *16*(31).
13. Bhatnagar, N., & Chandrikesh, J. (2001). *Bengal Shailli Ki Chitrakala* (1st ed.). Ananya Prakashan.
14. Nishant. (2015, October). Kala Main Bhartiyata Ki Khoj or Bengal Main Nayi Shailli Ka Janm. *Kala Dirgha, Drashaya Kala Ki Anterdeshiye Patrika*, *16*(31).
15. Bhatnagar, N., & Chandrikesh, J. (2001). *Bengal Shailli Ki Chitrakala* (1st ed.). Ananya Prakashan.
16. (n.d.). *Badrinath Arya: Samakalin Bhartiye Kala Shrikala*. Lalit Kala Academy, Monograph.
17. Viranjan, R. (2003). *Samkalin Bhartiye kala*. Nirmal Book Agency.
18. Maity, P. (2010). *The World on a Canvas*. Art Alive Gallery.
19. Saral, m. (2014, October). Natkhat Rango Ka Chitera:. *Kala Dirgha, Darishya Kala Ki Anterdeshiye Patrika*, *15*(29), 30-31.

Image Sources :

चित्र संख्या-1 : Grovier, k. (2019, September 19). Albrecht Dürer: The painter with 'a magical touch'. *BBC Culture*, p. 2. https://www.bbc.com/culture/article/20190917-albrecht-drer-the-painter-with-a-magical-touch

चित्र संख्या-2 : Rodwell, J. (1987). *The Complete Watercolour Artist* (1st ed.). Pelham Books Ltd.

चित्र संख्या-3 : https://victorianweb.org/painting/turner/wc/12.html

चित्र संख्या-4 : Rodwell, J. (1987). *The Complete Watercolour Artist* (1st ed.). Pelham Books Ltd.

चित्र संख्या-5 : National Museum of Art Gallary, Delhi, 30/Jan/2023

चित्र संख्या-6 : National Museum of Art Gallary, Delhi, 30/Jan/2023

चित्र संख्या-7 : Mago, P. N. (2021). *Bhart Ki Samakaleen Kala- Ek Pariprekshya* (S. Mohan, Trans.) (3rd ed.). Vasant Kunj.

चित्र संख्या-8 : Mago, P. N. (2021). *Bhart Ki Samakaleen Kala- Ek Pariprekshya* (S. Mohan, Trans.) (3rd ed.). Vasant Kunj.

चित्र संख्या-9 : Lochan, P. (2021, August). K. Venkatappa. *Past ..Present... collating published writing on the arts.* https://pramilalochan.blogspot.com/?m=1

चित्र संख्या-10 : मृणाल घोष, गणेश पाइन, "गहन रहस्यों की दुनिया के चितेरे" विश्वरंग अंतर्राष्ट्रीय विश्व रंग की त्रैमासिकपत्रिका (अक्तूबर- दिसम्बर 2021), अंक-3

चित्र संख्या-11 : Data collected By Ram Jaiswal Interview, 25/05/2022

चित्र संख्या-12 : *https://www.vasudeokamath.com/*

चित्र संख्या-13 : *http://paresh-maity.com/*

चित्र संख्या-14 : Chaudhuri, S. (2022, August). Master Strokes. *Art Soul Life*, *9*(4), 31-37.

चित्र संख्या-15 : http://www.rajkumarsthabathy.com/

चित्र संख्या-16 : https://www.biswaal.in/

चित्र संख्या-17 : https://www.sanchitart.in/Sanjay-Bhattacharya_27.html

चित्र संख्या-18 : Data collected By Prafull Sawant from Interview, 19/08/2022

चित्र संख्या-19 : http://www.amitkapoorwatecolor.com/

चित्र संख्या-20 : https://milindmulick.com/

चित्र संख्या-21 : Data collected By Vikrant Shitole from Interview, 20/08/2022

चित्र संख्या-22 : Data collected By Raghunath Sahu From telephonic Interview 23/12/2022

चित्र संख्या-23 : Data collected By Prof. Ram Viranjan from social site.2023

चित्र संख्या-24 : https://www.indiamart.com/sritam-banerjee-fineart/

चित्र संख्या-25 : Data collected By Nishikant Palande from Interview, 28/01/2023

चित्र संख्या-26 : https://www.artistuday.com/

चित्र संख्या-27 : https://anantamandal.com/painting/bull-painting

चित्र संख्या-28 : https://www.crafttatva.com/about-anirban-jana/

चित्र संख्या-29 : https://www.crafttatva.com/artist-madhusudan-das/

चित्र संख्या-30 : Data collected By Vikash Kushwaha from Telephonic Interview, 13/12/2022

मृण्मयी शिल्प का स्वरूप : तकनीक व मान्यताओं के संदर्भ में

राम मनोज
पी॰एच॰डी॰ चित्रकला विभाग
दृश्य कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रो॰ सरोज रानी
प्राध्यापक चित्रकला विभाग
महिला महाविद्यालय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सारांश :

इस शोध लेख में हमने वर्णनात्मक शोध विधि के अंतर्गत मृण्मयी कला में प्रयुक्त होने वाली तकनीकी, औजारों और उसमें निहित परंपरागत मान्यताओं पर विशेष रूप से अपनी बात रखी है। मृण्मयी कला अपने आप में एक विशिष्ट और अतिप्राचीन कला है जिसका हमारे दैनिक जीवन व लोक परम्पराओं से घनिष्ठ संबंध है। मृण्मयी कला में प्रयुक्त होने वाले औज़ार जैसे- साँचा, चाक, चकेठी, हँसुली, पींड़ा या पीड़िया, पिटना, छुरा इत्यादि प्रकार के औज़ार प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक उपयोग में लाया जाता रहा है। हालांकि पहले इसे चुटकी विधि या पिंच करके पतले-पतले डोर बनाकर आपस में चिपकाकर बनाया जाता था। उसके बाद साँचा का भी प्रयोग होने लगा। कुम्हार मिट्टी खोदने से लेकर पात्र, मूर्तियाँ, खिलौने के निर्माण होने तक बहुत सारे परंपरागत मान्यताओं व रीति-रिवाजों को ध्यान में रखते हुये अपनी कला को अंतिम रूप देता रहा हैए जो आज के समय में प्रासंगिक तो है परन्तु विलुप्त भी हो रही है।

बीज शब्द :

मृण्मय, कुंभकारी, चाक, चकेठी, घिरनी, हसुलीए आँवा, ओखल, मूसल, काबिस, मान्यताएँ, परंपरा, मृणपात्र।

मूल कथन :

प्रबलित मिट्टी (कृत्रिम तरीके से बनाई गई मिट्टी) को गढ़ने व सुखाने के बाद अग्नि द्वारा पकाने की प्रक्रिया को मृतिका शिल्प व मृण्मयी शिल्प कहते हैं जैसे- पात्र, खिलौने, मूर्तियाँ आदि।[1] मृण्मयी शिल्प की शुरुआत मानव जीवन के विकास के लिए एक निर्णायक मोड़ साबित हुई है। सबसे पहले तो मनुष्यों ने तरह-तरह के मिट्टी के पात्रों का निर्माण किया और उन्हें स्वेच्छा से उपयोग में लाने लगा। प्रयोजन के हिसाब से बर्तनों का आकार-प्रकार तय किया जाता था, जैसे- अन्न का भंडारण करना हो, भोजन करना या पकाना हो, पूजा-पाठ इत्यादि में उनके जरूरत के अनुसार मिट्टी के पात्रों का निर्माण होता था।

मृण्मयी कला के सबसे प्राचीन उदाहरण हमें नव पाषाण काल से देखने को मिलते हैं। एलेक्जेंडर कनिंघम के निर्देशन में जब 1861 ई॰ में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की स्थापना हुयी, तब देश के विभिन्न स्थानों की खुदाई में अलग-अलग काल के मिट्टी के बर्तनों के साक्ष्य प्राप्त हुए। प्राचीनतम साक्ष्य हमें ब्रम्हगिरि, क्वेटा, राना घुंडइ आदि स्थानों से मिले हैं।[2]

सर एलेक्जेंडर कनिंघम ने 1878 ई०, दयाराम साहनी ने 1921 ई० और राखालदास बंद्योपाध्याय ने 1922 ई० में समय-समय पर हड़प्पा और मोहनजोदड़ो के विभिन्न स्थानों पर खुदाई का कार्य करवाया, जिससे सिन्धु सभ्यता कालीन विभिन्न मिट्टी के बर्तन, मूर्तियाँ और खिलौनों के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं।[3]

सर्वप्रथम मिट्टी के बर्तन, हाथ से ही बना, जाते थे, जैसे मिट्टी के पतले-पतले लंबे डोरे से गोलाकार आकृति में एक दूसरे के ऊपर गोलियाते हुए (क्वायल करते हुए) बर्तन बनाए जाते थे।[4] उसके अलावा मिट्टी के खिलौने, मूर्तियाँ चुटकी विधि व साँचा से बनाए जाने लगे, जो की आज भी यह शैली प्रचलित होने के कारण परंपरागत रूप से देखने को मिलता है।

प्राचीन काल के हाथ से बनाए हुए बर्तन हमें कील मुहम्मद, ब्रम्हगिरि आदि जगहों से मिलते हैं। नागार्जुंकोंडा से हाथ से बने हुए तथा आग में पकाए गए मिट्टी के बर्तन प्राप्त हुए हैं। परंतु ये प्रस्तर युग के भी पहले के मालूम होते हैं।[5]

एक विशेष किस्म की मिट्टी का प्रयोग करके उनके बर्तन व अन्य वस्तुएं बनाना जैसे- खिलौने, मूर्तियाँ ये सब कुम्भकारी कला व मृण्मयी कला के अंतर्गत आता है और इन कार्यों को करने वाले को कुम्भकार (कुम्हार) व 'मटिहा' कहते हैं।

मृण्मयी कला का घनिष्ठ संबंध हम कृषि क्रान्ति से देख सकते हैं। कृषिक्रांति के बाद मनुष्यों को अन्न के रख-रखाव के लिए मृदभांडों (मिट्टी के बर्तन) की आवश्यकता पड़ी और तभी से कुंभकारी कला व मृण्मयी कला का विकास होता गया। मृण्मयी कला मानव जीवन की सबसे प्राचीन कला है, इसकी शुरुआत 10,000 वर्ष ई० पू० यानि की नवपाषाण काल में हुई। इस कला का विकास हम वर्तमान में दो तरीकों से देख सकते हैंय पहला ये की इनके उपयोग दैनिक कार्यों के लिए बनाए जाते हैं, जैसे कि खाद्य पदार्थ रखने हेतु 'कुंडा', पानी पीने हेतु 'घड़ा', जानवरों को चारा खिलाने हेतु 'हौदी' व 'नाद', घर में सजावटी हेतु अनेक आकार-प्रकार के पात्र आदि बनाए जाते हैं। दूसरा ये की लोक में प्रचलित परम्परागत मान्यताओं के लिए बनाए जाते हैं, जैसे की शादी विवाह व मांगलिक शुभ कार्यों हेतु 'कलश', जादू-टोना व टोटका के लिए 'छीना', कलश के ऊपर पवित्र चावल व जौ रखने के लिए 'परई', अमावयस्या की रात के लिए 'घंटी' आदि बनाए जाते हैं। मृण्मयी कला लोक में अपनी कार्यप्रणाली व उपयोगिता का संबंध समय-समय पर विश्वासों व धार्मिक मान्यताओं के आधार पर अनेक धर्मों व जातियों में लिपटी हुई है।

प्रस्तर युग में मानव ने अपने संघर्षशील जीवन व अनुभवों को चित्रों के माध्यम से अभिव्यक्त किया जो कि प्रकृति के बिल्कुल करीब दिखाई देता है। प्रकृति के साथ संघर्ष व यात्रा प्रागैतिहासिक युग से शुरू होकर सिंधु काल में धार्मिक आस्था को समावेश करते हुए मातृदेवी (चित्र सं० 1) के रूप में स्पष्ट नजर आने लगती है। अनेक स्थानों की खुदाई में सिंधु सभ्यता से लेकर मौर्य, शुंग, कुषाण, आदि कालों की टेराकोटा के छोटे-छोटे अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं।

चित्र सं० 1, मातृ देवी, मोहनजोदड़ो, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली

यदि हम इनके (मृण्मयी कला का) प्राचीनतम साहित्यिक साक्ष्य की बात करें तो हमें सबसे प्राचीन ग्रंथ 'ऋग्वेद' में मिलता है। ऋग्वेद के एक श्लोक में अश्व के खुर से सौ घड़े शराब निकालने का ज़िक्र है।[6]

युवं नरा स्तुवते पज्रियाय कक्षीवते अरदतं पुरन्धिम।
कारोतराच्छफादश्वस्य वृष्णः शतं कुंभां
असिंचतं सुरायाः॥

(ऋग्वेद 1.116.07)

कुम्हार तरह-तरह के बर्तनों, मूर्तियों व खिलौनों का निर्माण करता है जिसमें कुछ तो धार्मिक रीति-रिवाज़ के उपयोग के लिए होते थे और कुछ दैनिक उपयोग के लिए। धार्मिक कार्यों के लिए जैसे- कलश, छीना, कोसा, परई, दीया, घंटी आदि। दैनिक कार्यों के लिए जैसे- सुराही, कुल्हड़, हौदी (नाद) इत्यादि।

धार्मिक परम्पराओं, मान्यताओं और दैनिक उपयोगिता के लिए कुम्हार पात्रों और मृण्मयी मूर्तियों के निर्माण हेतु स्थानीय तालाब से मिट्टी लाने और बनाने का कार्य करता रहा है। आमतौर पर मिट्टी थोड़ी काली, बालूयुक्त व चिकनी होती है, जिसे कुम्हार उनके गुणों के आधार पर व्यवहार में लाता रहा है। मिट्टी की खुदाई करते वक्त कुम्हार की अपनी कुछ मान्यताएँ रही हैं। उत्तर प्रदेश के सुलतानपुर जिले के स्थानीय कुम्हार शिव बक्श प्रजापति ने साक्षात्कार के दौरान यह कहा कि मिट्टी कि खुदाई करते समय कुम्हार का मुख उत्तर दिशा को छोड़कर, बाकी सारी दिशाओं की तरफ हो सकता है। आगे कहते हैं कि भारतीय संस्कृति में उत्तर दिशा की तरफ मिट्टी की खुदाई शव दफनाने के लिए किया जाता रहा है, इसीलिए किसी सृजन कार्य के लिए उत्तर की तरफ मुख करके मिट्टी की खुदाई अशुभ है। हालांकि आगे इस बात पर ज़ोर देते हैं कि पूरब दिशा के तरफ मुख कर मिट्टी कि खुदाई अतिशुभ है।

निर्माण से पूर्व खुदी हुई मिट्टी को साफ सुथरे जगह पर ले जाते हैं और मिट्टी को तोड़ते हैं। तोड़ने के बाद उसे दो भागों में बाँट लेते हैं, एक बारीक टूटी हुई और दूसरी उससे बड़ी व मोटी। बड़ी व मोटी टूटी हुई मिट्टी को गोलाकार में एकत्रित कर लेते है, उसके बाद उस गोलाकार के चारों तरफ से बारीक टूटी हुई मिट्टी को घेरा या मेढ़ी बनाकर लगा व सटा दिया जाता है; ऐसा इसलिए करते हैं की मिट्टी में पानी डालते समय पानी बीचों-बीच टीका रहे, जिससे मिट्टी आसानी से घुल व मिल जाए। (चित्र सं० 2)

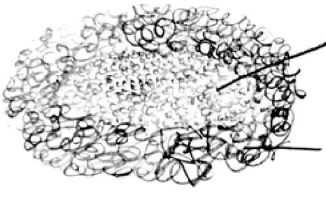

चित्र सं० 2, मिट्टी के घेरे का रेखांकन

मिट्टी में पानी डालने के बाद उसे 8-10 घंटे के लिए छोड़ दिया जाता है। कुछ समय बाद मिट्टी अपने आप में घुल मिल जाती है व मुलायम हो जाती है। मिट्टी घुलने के बाद उसे विभिन्न आकार वाले औज़ार से काटते हैं, फिर उन्हें हाथों व पैरों से आपस में मिलाते हैं। जिन औजारों से मिट्टी को काटा जाता है उनके आकार धनुषाकार, सीधे व हासियानुमा होते हैं, जिसे हसुली कहा जाता है। (चित्र सं० 3)

मिट्टी मिलाने की प्रक्रिया तब तक की जाती है जब तक कि मिट्टी एकदम लचीली व मुलायम न हो जाए; तकरीबन 8-10 बार। ऐसा इसलिए करते हैं क्योंकि मिट्टी में तमाम प्रकार के कंकड़, पत्थर, घास-फूस होते हैं, उन्हें निकालकर सफाई की जाती है। मिट्टी तैयार होने के बाद उन्हें लोई (मिट्टी का गोला) के रूप में अलग-अलग करके रख लेते हैं। तैयार हुई लोई से विभिन्न आकार-प्रकार के पात्रों, खिलौनों, मूर्तियों का निर्माण करते हैं।

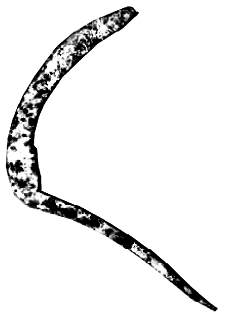

चित्र सं० 3, मिट्टी काटने हेतु हसुली

मिट्टी तैयार होने के बाद पात्रों के निर्माण की शुरुआत करते हैं। पात्र-निर्माण भी दो तरीके से किया जाता है। एक तो सामान्य व दैनिक उपयोगी पात्र बनाना हो तो किसी भी दिशा में बैठकर और यदि किसी धार्मिक कर्मकाण्ड हेतु पात्र बनाना हो तो उस समय पूरब व उत्तर दिशा की तरफ मुख करके पात्र का निर्माण करते हैं। गढ़ने के लिए मिट्टी को जिस वस्तु पर रखा जाता है उसे 'चाक' या 'चकिया' कहते हैं। चाक का सबसे प्राचीन उदाहरण हमें सिंधु सभ्यता से प्राप्त होता है। उसके पूर्व मिट्टी के बर्तन हाथ से ही गोलाकार रूप में बनाए जाते थे। हालांकि चाक की उत्पत्ति को लेकर इतिहासकारों में मतभेद है, सर्वप्रथम चाक का उपयोग कहाँ हुआ इसका कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है।[7] (चित्र सं॰ 4)

चित्र सं॰ 4, चाक

चाक पर मिट्टी रखने के पश्चात चाक को जिस डंडे से घुमाया जाता है उसे 'चकेठी' कहते हैं। आज इस आधुनिकता के दौर में विद्युत चाक आने लगा है। चाक पर मिट्टी रखने व घुमाने से पहले कुम्हार लोग इसकी पूजा करते हैं। चाक के पास वाली मिट्टी को शुभ माना जाता है अतः कुम्हार जाति के अलावा अन्य जाति के लोग भी शुभ कार्यों में इसका उपयोग करते हैं।

चाक पर कुम्हार अनेक प्रकार के आकारों का पात्र बनाता है और फिर उसे एक धागा से या किसी पतले तार से काटकर नीचे जमीन पर रखता है। पात्र अभी पूर्ण रूप से तैयार नहीं हुआ है। पात्र को जमीन पर उतनी ही देर तक रखते हैं जितना की वो अपने गीलेपन से थोड़ा सूख ना जाए। पात्र जब थोड़ा सूख जाता है तो कुम्हार उसके आकारों में परिवर्तन लाता है यानि की अलग-अलग आकारों के पात्र का रूप देता है जैसे- कलश, परई, हौदी (नाद), गगरी, घड़ा, सुराही, छीना आदि। रूप देने के बाद उस पर अलग-अलग तरह के रेखांकन व अलंकरण किए जाते हैं। जिन औजारों से रेखांकन व अलंकरण किया जाता है वह टूटी हुई कंघी व घिरनी (चित्र सं॰ 5) होती है। ये अलंकरण सीधा, लयात्मक, अर्धचंद्राकार, त्रिभुजाकार होते हैं।

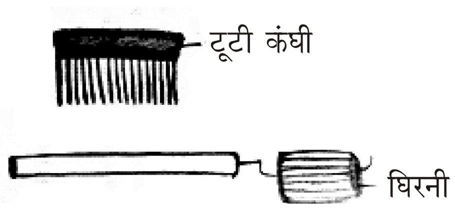

चित्र सं॰ 5, टूटी कंघी व घिरनी

अलंकरण होने के बाद पात्र को पहले छांव में सुखाते हैं, थोड़ा सुख जाने के बाद उसे धूप में रख दिया जाता है जिससे पात्र अच्छी तरह से सूख जाए। बर्तन जब अच्छी तरह से सूख जाता है तो उसकी मँजाई (मिट्टी के पतले घोल का लेप लगाना) एक सूती कपड़े से की जाती है। मँजाई करने के बाद उसे फिर से धूप में रख दिया जाता है। धूप में रखने के बाद बर्तन अच्छी तरह से अंदर तक सूख जाता है।

बर्तन सूखने के बाद उसे काबिस से रंगा जाता है। काबिस बनाने की अपनी एक विशेष प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत पीले रंग की चिकनी बलुई मिट्टी जो कि उपजाऊ तथा अनुपजाऊ दोनों प्रकार के ज़मीन में पाई जाती है, को खुदाई के बाद उसे बारीक तोड़ लेते हैं। तोड़ने के बाद उसे पानी में भिगो दिया जाता है। पूर्ण रूप से गीला हो जाने के पश्चात उसे टिक्की के रूप में बना कर एकत्रित कर लिया जाता है।

बनी हुई टिक्की के साथ बांस की पत्ती, आम के पेड़ का छाल, कत्था, पान की पत्ती आदि को आपस में कूटते हैं। कुटाई का काम एक लकड़ी के बने ओखल में किया जाता है तथा जिससे कुटाई किया जाता है उसे मूसल कहते हैं। मूसल भी लकड़ी से बना हुआ होता है। मूसल आमतौर पर अनाज कूटने के काम आता है, जो लंबा, मोटा, डमरूनुमा डांडा होता है। जिसके एक छोर पर अंगूठिनुमा लोहे की पट्टी (मुन्दरी) जड़ी होती है तो दूसरी तरफ गोलाई लिए हुये एकदम चिकना व सादा लकड़ी का सिरा होता है और बीच में पकड़ने के लिए खड्डेदार मुठिया बनी होती है।

ओखल में रखे उपरोक्त मिश्रण को मूसल के एक छोर जिसमें लोहे की मुन्दरी लगी होती है से कुटाई करते हैं जिससे मिश्रण कट के अच्छी तरह मिल जाय। सूखे मिश्रण में थोड़ा-सा पानी मिलाया जाता है फिर मूसल के दूसरी छोर जिस तरफ गोलाई लिए हुये होता है से कुटाई करते हैं। कुटाई तब तक करते हैं जब तक की गीला मिश्रण (चिपचिपा) न तैयार हो जाए। तैयार हुये मिश्रण को एक मिट्टी के घड़े में पानी के साथ डाल देते हैं। घड़े में पानी एवं गीले मिश्रण (काबिस) का घोल बना लेते हैं। घोल बनाने के बाद मिट्टी के घड़े को किसी अन्य बर्तन से ढक देते हैं, तकरीबन आठ से दस घंटे के लिए। **शिव बक्श प्रजापति** कहते हैं कि जब ओखल में काबिस की कुटाई की जाती है तो उस समय कुम्हार का मुख दक्षिण दिशा छोड़ कर अन्य तीनों दिशाओं में से किसी भी दिशा में होता है। ढके हुये काबिस के घोल को अगले आठ से दस घंटे बाद दूसरे बर्तन में छानते हैं। काबिस की छनाई समान्यतः झिन्रहे (जालीदार) सूती के कपड़े से किया जाता है। काबिस या रंग की छनाई के बाद मिट्टी के बने सूखे कच्चे बर्तन पर अपने मनमुताबिक आवश्यकतानुसार इससे रंगाई किया जाता है।

रंगाई के लिए आमतौर पर मुलायमदार सूती कपड़े का इस्तेमाल किया किया जाता है। बर्तन रंगने के बाद उसे धूप में थोड़ी देर के लिए छोड़ दिया जाता है। सूखने के बाद बनाए गए पात्रों को ठोस व टिकाऊ बनाने के लिए निम्न तापमान से उच्च तापमान तक पकाते हैं, जिन्हें मृत्तिकाशिल्प या टेराकोटा कहा जाता है। इन्हें पकाने के लिए ईंधन से तैयार किए गए आवां या विद्युतीय भट्ठी का प्रयोग करते हैं। आँवा लगाने के लिए कुम्हार तरह-तरह के ईंधन का प्रयोग करते हैं, जैसे- आम या महुआ की पत्ती, गोबर का कंडा (गोहरी या उपली), लकड़ी के टुकड़े, सूखी घास-फूस, पुआल या पैरा (सूखे धान का पौधा), लकड़ी का बुरादा, धान भूंसी इत्यादि।

आँवा लगाने का क्रमबद्ध तरीका यह है - सबसे पहले जहां आँवा लगाते हैं या जितना बड़ा आँवा लगाना हो उतने दूर तक एक मुख्य केंद्र मानकर कील व रस्सी के सहारे से गोला (रेखा) खींच लिया जाता है। रेखा खींचने के बाद उतने ही दूरी या क्षेत्र में राख़ (जला हुआ ईंधन का अवशेष) को 2 से 3 इंच कि मोटाई में फैला दिया जाता है। राख़ फैलाने के बाद उसके ऊपर गोबर कि उपली या गोहरी को पंक्तिबद्ध तरीके से बिछा दिया जाता है। बिछाने के बाद उपली या गोहरी के ऊपर चारों तरफ धान कि भूसी और लकड़ी के बुरादे को डाल दिया जाता है। इतना करने के बाद इसके ऊपर सूखे हुये कच्चे बर्तन रखे जाते हैं, ये शिल्प (मिट्टी के बर्तन, खिलौने, मूर्तियाँ) खींचे हुये गोला के मुख्य बिन्दु के पास (थोड़ा जगह छोड़ के) से नीचे से ऊपर कि तरफ गोलाई लिए हुये एक के ऊपर एक करके पंक्तियों में रखे जाते हैं। इस तरह रखने के बाद बर्तनों को आम कि पत्ती व महुआ कि पत्ती से उसी आकार में धक दिया जाता है या छाप दिया जाता है। ढकने के बाद इसके ऊपर धान का सूखा हुआ पुआल या नरई (एक प्रकार कि घास-फूस) से नीचे से ऊपर तक चारों तरफ ढक दिया जाता है, मुख्य बिन्दु के पास वाली जगह छोड़ कर। इसके बाद ढके हुये सतह के ऊपर गीली बलुई मिट्टी का लेप लगाते हैं, जिससे ईंधन, बर्तन संयम में रहे और आग भी संयम से

जले। लेप लगाने के बाद उसके ऊपर राख का छिड़काव करते हैं। उसके बाद आँवा में आग लगाने के लिए गोबर कि कंडी या उपली को जलाकर उसे आँवा में डाल दिया जाता है।

आगे वह कहते हैं कि आग बनाते समय कुम्हार का मुख पूरब दिशा में होता है और बने हुये आग को किसी धातु के बर्तन में लेकर पूरब दिशा कि तरफ मुख करके आँवा के मुख्य बिन्दु के पास जो जगह छोड़ा गया था, उसी में आग को डाल दिया जाता है, जिससे आग आँवा के बीचों-बीच निचली सतह में जाकर फैल जाती है या यूं कहें कि आँवा में आग लग जाती है। आँवा में आग डालते समय ही उसके साथ तीन सूखा लाल मिर्च भी डालते हैं। कुम्हार का मानना है कि मिर्च डालने से आँवा में या बर्तन के पकने में 'नज़र' नहीं लगती है।

आगे कहते हैं कि आग व मिर्च डालने के बाद कुम्हार पूरब दिशा कि तरफ मुख करके अपने बाएँ हाथ के सहारे से दायें हाथ के चार उँगलियों से (अंगुष्ठा छोड़ के व मोड़ के) आँवा को स्पर्श करते हुये दक्षिणावर्त दिशा में घूमते हुये पुनः पूर्व कि दिशा में मुख करके ईश्वर को सौंप देता है। दाहिने हाथ के चारों उँगलियों से स्पर्श करते हुये आँवा के चारों तरफ घूमना 'आँवा गोंठना' कहलाता है। चार उँगलियों का आँवा पर स्पर्श 'चार दिशाओं' का प्रतीक है। ऐसा माना जाता है कि किसी भी दिशा से आने वाली प्राकृतिक आपदा (आँधी-तूफान, बरसात आदि) से रोकने के लिए आँवा कि गोंठाई कि जाती है, जो इनकी पारंपरिक रीति-रिवाज है। आँवा जब अपना सम्पूर्ण रूप लेता है तो वह स्तूप जैसा कटोरानुमा अर्धगोलाकार दिखता है।

आँवा में आग डालने व गोंठने के बाद कहीं-कहीं पर छोटे-छोटे छिद्र कर दिये जाते हैं, इसलिए की उस छिद्र से अंदर का धुआँ आसानी से बाहर निकल जाए और मिट्टी के सामान अच्छी तरह से लाल व मजबूती से पक सके। पात्र तकरीबन 8-10 घंटे में पक जाते हैं। पकने के बाद उन्हें जरूरत के हिसाब से प्रयोग में लाया जाता है। इन मृण्मयी शिल्पों में अलग-अलग आकार-प्रकार के बर्तन, खिलौने व मूर्तियाँ हैं, जिनमें कुछ दैनिक उपयोगी और कुछ धार्मिक रिति-रिवाजों में प्रयुक्त होते हैं। यदि हम धार्मिक रीतिरिवाजों में प्रयुक्त पात्र कि बात करें तो वह है- कलश, धूप दानी, परई, छीना, गगरी, हरतालिका तीज में प्रयुक्त हेतु शिव-पार्वती की संलग्न मूर्ति, गोवर्धन पुजा में प्रयुक्त पात्र आदि। हरतालिका तीज पूजा सूर्यास्त के बाद शुभ मुहूर्त में सुहागिन स्त्रियों के द्वारा की जाती है। इस पूजा में शिव-पार्वती की मूर्ति बालू या शुद्ध काली मिट्टी से बनाई जाती है। यह मूर्ति पकाई नहीं जाती है बल्कि इन्हें पूजा के उपरांत विसर्जित कर दिया जाता है। (चित्र सं॰ 6)

चित्र सं॰ 6, हरतालिका तीज में पूजा हेतु शिव-पार्वती की संलग्न मूर्ति

कलश लगभग सभी धार्मिक संस्कारों में अपना मुख्य किरदार निभाते हुये दिख जाता है। कलश का हिन्दू धर्म में विशेष महत्व है, जो एक तरह से जीवन का प्रतीक है। कलश अलग-अलग धर्मों में अलग-अलग तरीके से प्रयोग में लाया जाता है। यदि हम हिन्दू धर्म की बात करें तो इसमें कलश को मुख्य रूप से चार रंगों से सजाकर प्रयोग में लाते हैं। उन चार रंगों में लाल, पीला, नीला व हरा होता है; कहीं-कहीं पर सात या नौ रंगों का भी प्रयोग करते हैं। कलश को सजाने के लिए गाय का गोबर, कच्चा चावल, जौ और चार प्राकृतिक या रसायनिक रंग का इस्तेमाल किया जाता है। सबसे पहले कलश के दीवार पर गाय के गोबर से एक बाहरी रेखा की तरह खाका तैयार कर लिया जाता है। फिर कच्चे चावल को उन्हीं रंगों के साथ रंग दिया जाता है। तैयार हुये

गोबर के खाके में उन्हीं रंगीन चावल को भरा जाता है फिर उसी गोबर के दीवार पर जौ को चिपका दिया जाता है फिर अंत में कलश में शुद्ध जल भर दिया जाता है। शुद्ध जल भरने के बाद उसमें आम्र पल्लव रख दिया जाता है। फिर उसके ऊपर परई में दाल या चावल भरकर उसमें दीया जलाकर रख दिया जाता है, जिसे कलश कहा जाता है।

ऋग्वेद में जिस पूर्ण या भद्र कलश का उल्लेख है वह सोम से भरा पात्र है। वह सोम जो जीवन का अमर और मीठा रस है। अथर्ववेद में घृत और अमृत से भरे पूर्ण कुम्भ का उल्लेख है तथा उसमें पूङ्कुंभ नारी का भी ज़िक्र किया गया है।[9]

पूर्णम नारि प्र भर कुंभमेतं घृतस्य धाराममृतेन संभृताम।

इमां पातृनमृतेना समङ्गधीष्टापूर्तमभि रक्षात्येनाम्

(अथर्ववेद 3.128.)

इस अभिप्राय के मूल में ऐसा मांगलिक चिन्ह लिया जाता था जिसमें कोई सौभाग्यवती स्त्री मंगलघट लिए शोभा यात्रा में चलती थी। उसे उदककुंभनी कहते थे। आज भी यह चिन्ह मांगलिक है।[10]

त्रिः सप्त मयूर्यः सप्त स्वसारो अग्रुवः।

तास्ते विषं वि जभ्रिर उदकं कुंभिनीरिवः॥

(ऋग्वेद, 1.191.14.)

कला इतिहासकार वासुदेवशरण अग्रवाल ने कलश या पूर्णकुम्भ के बारे में लिखा है कि श्पूर्णकुम्भ फूल.पत्तियों से अलंकृत पूर्णघट सुख.संपत्ति और जीवन की पू णता का प्रतीक है। घड़े में भरा जल जीवन या प्राण का रस है। उसके मुख पर लहराती हुई पत्तियाँ और पुष्प जीवन के नानाविध आनंद और उपभोग हैं।[11]

कुम्हारों द्वारा ऐसा माना जाता है की वे कलश निर्माण के लिए विशेष दिन (शुक्रवार) व दिशा (पूरब) का ध्यान देते हैं। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार कला का स्वामी शुक्र ग्रह को माना जाता है जो एक शुभ ग्रह भी है तथा दिशाओं में पूरब व उत्तर शुभ माने जाते हैं। जब कलश बनकर तैयार हो जाता है तो उसे सजाने-सँवारने का काम स्त्रियाँ करती हैं, जिनमें उनकी अहम भूमिका होती है अर्थात महिलाओं के द्वारा ही कलश पूर्ण रूप से तैयार किया जाता है। महिलाएं कलश तैयार करते समय समूह में देवी गीत भी गाती हैं जो एक तरह का लोक गीत है। संभवतः यह देवी ग्रामदेवी है जिन्हें खुश करने के लिए गाया जाता है।

इसके अलावा कुछ पात्र मृत्यु-संस्कारों में प्रयोग किए जाते हैं। इनके प्राचीनतम साहित्यिक साक्ष्य हमें हड़प्पा सभ्यता से भी देखने को मिलते हैं। 1937 से 1946 तक हड़प्पा में 57 कब्रें मिली हैं। उनसे पता चलता है कि शव को जमीन में लिटा दिया जाता था, और उसका सिर उत्तर कि ओर रखा जाता था। हर एक कब्र में मिट्टी के बहुत से बर्तन पाये गए हैं।[12] यह पात्र एकदम सादा छोड़ दिया जाता है, जिसे गगरी (घड़ा) कहते हैं। गगरी में कोई डिजाइन नहीं दिया जाता है, क्योंकि यह गगरी ख़ास तौर पर किसी जनाजे या मृत्यु संस्कार के प्रयोग में लाई जाती है। यह परम्परा आज भी देखने को मिलती है।

चित्र सं॰ 7, मृत्यु-संस्कार में प्रयुक्त पात्र

निष्कर्ष :

इस लेख में हमने देखा कि किस तरह एक कुम्हार मिट्टी के पात्र का निर्माण करता है। उसकी पात्र निर्माण की प्रक्रिया, तकनीकी, उसकी मान्यताएँ, पात्रों के आकार-प्रकार, औज़ार इत्यादि के बारे में हमें सूक्ष्मता से पता चलता है। पात्रों के आकार-प्रकार के अनुसार कुम्हार उसके निर्माण के दौरान शुभाशुभ का ध्यान रखता है। धार्मिक अनुष्ठानों में

उपयोग होने वाले पात्रों को वह विशेष संस्कार के द्वारा तैयार करता है। कुम्हार, शुभ कार्य में प्रयोग होने वाले पात्रों के साथ, उनके निर्माण में इस तरह व्यवहार करता है जैसे एक प्रकार की दिव्यता उस पात्र में उतर रही हो। इसके लिए वो निर्माण के दौरान विशेष दिन व दिशा का चयन करता है। अतः कुम्हार अपनी कुंभकारी में मिथकों का समावेश करते हुए तरह-तरह के मृणपात्रों का निर्माण करता है।

संदर्भ सूची :

1. https://hi.m.wikipedia.org
2. राय, गोविंदचन्द, प्राचीन भारतीय मिट्टी के बर्तन, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1960, पृ॰ सं॰04
3. अग्रवालए वासुदेवशरणए भारतीय कला - प्रारम्भिक युग से तीसरी सदी ई॰ तकए पृथ्वी प्रकाशन, वाराणसी, द्वीतीय संस्कारण, 1977, पृ॰ सं॰15
4. राय, गोविंदचन्द, प्राचीन भारतीय मिट्टी के बर्तन, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1960, पृ॰ सं॰04
5. वही, पृ॰ सं॰ 06
6. ऋग्वेद 1.116.07
7. राय, गोविंदचन्द, प्राचीन भारतीय मिट्टी के बर्तन, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1960, पृ॰ सं॰07
8. अग्रवाल, वासुदेवशरण, भारतीय कला - प्रारम्भिक युग से तीसरी शती ईसवी तक, पृथिवी प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 1977, पृ॰ सं॰ 61
9. अथर्ववेद 3.12.8
10. ऋग्वेदए 1.191.14

साहित्यकी

Revamping Mythological Space : A Critical Study of Rama Chandra Series by Amish Tripathi

Dr. Manchusha Madhusudhanan
Assistant Professor, Department of English
Maharaja's College, (Govt. Autonomous & Ernakulam) Kerala

Abstract :

India's multicultural identity leads many to believe it has no unified cultural history. However, when the Indian Epics and Puranas are juxtaposed there appears a radical shift to this notion. These perennial plots catalyse a collective unconsciousness that aligns Indians to a set heritage. However, in recent times Indian Writing in English has produced texts that blend science, religion, history, myth, culture, geography, and imagination creating narratives that realign existing collective thoughts to new configurations. As an example, this paper probes Amish Tripathi's select texts to study the power veiled by these narratives and understand the nuances of these new spaces and emerging meanings. Tripathi's texts have a strong historical sense that evolved out of research mixed with intuitive social consciousness and striking imagination. Through demythologization and re-mythologization, the texts recreate a well-known epic plotting contemporary issues that the paper finds creating new 'pasts' and thereby revamping existing identities and cultural spaces occupied. Using Roland Barthes's Mythologies the paper tries to prove this book is a sign which has evolved out of a previous signification and has the power to unsettle many power relations.

Key Words :

Cultural Studies, Sign, Signification, Myth, Collective Unconscious

A rational analysis of myths shows how they originated as a strategy to comprehend natural occurrences and pass cultural codes to succeeding generations. They are exaggerated real stories that were purposefully 'disfigured' to help maintain the anonymity of the doer and the sufferer. Gods and goddesses were vital characters and always controlled the plot. This intriguing and unrealistic form helped to vindicate the speaker and at the same time, the intended moral code of conduct was passed on and the ownership and subsequent blame were nullified. Similar examples of myths exist in many cultures across the world. The Ramachandra Series by Amish Tripathi is a collection of books that draws its basic plot from ancient Indian scriptures namely the Ramayana. Tripathi reimagines characters, events,

and settings, giving them a fresh and contemporary perspective while staying true to the essence of the original myths.

Myths have been an integral part of the human psyche, instructing and reminding humans of the past through fiction and facts. Almost all myths are sacred narratives in which though the gods hold the centre stage the narratives are for and addressed to human beings. This paper argues that Amish Tripathi's works reconstruct mythological space to create new histories and identities. A collection of proposed five books the published books have proved to be a captivating narrative that blends history, mythology, and fiction seamlessly. As Deepak Chopra says in the introduction to the novel: "Amish's mythical imagination mines the past and taps into the possibilities of the future. His book series, archetypal and stirring, unfold the deepest recesses of the soul as well as our collective consciousness" (Tripathi*, Scion,* 2015, p. iii). The novel becomes problematic when the focus is on the significations and symbolisms of culture projected and when they are found capable of constructing a reality that no longer exists.

Amish Tripathi, currently one of the most successful popular fiction writers from India, has to his credit the *Shiva Trilogy* and the Rama Chand*ra Series*. He has sold over four million copies and his works have been translated into nineteen languages. With only three of his proposed five books in *Ramachandra Series* being published to date, this study will focus only on the published ones. The books in the series published so far are *Scion of Ikshvaku* (2015), *Sita - Warrior of Mithila* (2017), and *Ravana : Enemy of Aryavarta* (2019). Tripathi mines deep into the mythical Indian psyche. A king is a king, but when he becomes an icon, a sign, the narrative yields new meanings when placed under a critical lens. The aim of this paper is to read the success of this writer from a theoretical angle. For this purpose, this study proposes to use Roland Barthes's essay *Myth Today* from his book *Mythologies*. Discussing the narrative structure Tripathi says thus:

> I have been inspired by a storytelling technique called hyperlink, which some call the multilinear narrative. In such a narrative, there are many characters; and a connection brings them all together. The three main characters in the Ram Chandra Series are Ram, Sita, and Raavan. Each character has life experiences which mould who they are and their stories converge with the kidnapping of Sita. And each has their own adventure and riveting back story. (Tripathi, *Sita,* 2017, p. xvii)

Myth is a story that is sacred to and shared by a group of people who find their most important meanings in it. Like the select text, myth is expressed as a multilinear narrative. Wendy Doniger O'Flaherty defines it thus "…it is a story believed to have been composed in the past about an event in the past … an event that continues to have meaning in the present because it is remembered; it is a story that is part of a larger group of stories" (Rodriguez, 2007, p. 12). In the books under discussion, a number of mythological characters are portrayed in a new avatar. The plots are well known and Indians have celebrated festivals and rituals related to these stories year after year. The whole of Ramayana is meticulously read out day after day during the Ramayana month. But the *Ramchandra Series* reshuffles the original plot and thus

indirectly unsettles the collective unconscious of the Indian race. For example:

> According to an ancient Indian tradition, towering leaders, the greatest among great, who could become the propagators of goodness and harbingers of a new way of life, were recognised with the title 'Vishnu'. There had been six till now, and the tribe of the Malayaputras had been founded by the sixth Vishnu, Lord Parshu Ram. Now the Malayaputras had recognised a seventh, one who would establish a new way of life in India: Sita. And Ravana had just Kidnapped her. (Tripathi, *Scion*, 2019, p.14).

The above sentences show how through subtle revisionist strokes a sacred narrative is humanised. What is created is almost an entirely new story of Rama. All the novels converge at the same juncture in the story/plot- the kidnapping of Sita. Tripathi himself says, in the "Note to the Narrative Structure" at the beginning of his book, "Each character has life experiences which mould who they are and their stories converge with the kidnapping of Sita" (Tripathi, *Sita,* 2017, p. xvii). Here the gods and animals in the original epic are given human forms and motives. Hanuman Bhai, Jataayu, and even Ravana belong to the Naga community - human beings born with deformities. Vayuputras, Nagas, and Malayaputras are all tribes that have individual physical features, and motives but are interdependent on one another. The milieu is retold from a human perspective and social structure. History as postmodern historiographers claim is a narrative. It is subjective in its selection of incidents and hence not very different from fiction. Capitalistic ideologies will invariably ooze into these mythological fictions. For example, the very role of Rama as the scared avatar is demolished in the introduction to *Sita the Warrior*.

> *O keeper of righteous vows, remember this,*
>
> *Whenever dharma is in decline,*
>
> *Or there is an upsurge of adharma;*
>
> *The Sacred Feminine will incarnate.*
>
> *(Tripathi, Sita, 2017, p. xii)*

Stories and characters from Ramayana were incarnations of good and evil, values, morals, ways of life, etc. Many of them became eternal codes of conduct for how to be a good human being, a king and a queen, etc. The plot though highly imaginative is based on historical data. "Literature as discourse forms the signifier; and the relation between crisis and discourse defines the work, which is a signification" (Lavers, 1972, p. 112-13). History uses myth to communicate the values and traditions of the past. But now in this capitalist society these signs have become signifiers signifying new revamped ideas and they become global signs, objects of language. "Myth has a double function; it points out and it notifies, it makes us understand something and it imposes it on us" (Lavers, 1972, p. 115). Here Tripathi decentralises mythical characters to highlight the reasons for political failures and disparity in power structures, which led to destruction and chaos. The meaning was already complete. But this new form postulates a new kind of knowledge, a past, a memory, a comparative order of facts, ideas, and decisions.

Familiar characters like Lord Rama, Sita, and Hanuman are provided with distinct personas and motivations. For instance, Rama is traditionally projected

as the chosen one but in the second book of the series *Sita*, Sita significantly overshadows Rama the crowned prince of Ayodhya. In an age of women empowerment and equal opportunity, Tripathi creates an army base for Sita too. When Rama is portrayed as a mortal prince, much younger than Princess Sita and as one who faces internal conflicts and undergoes frequent transformations as he matures Sita, on the other hand, is not the stereotypical mother goddess nor ideal wife but an important pawn in the political power game of supremacy. She is portrayed as a power-hungry, beautiful warrior capable of killing and plotting to ensure the political stability of her space.

Tripathi has taken great pains to showcase her strength and resilience. For example, Sita is much older than Rama. She is also depicted as being 'The Chosen Vishnu' avatar by one clan of gurus and has received training in that direction. The books portray Sita manipulating the younger naive Rama into marriage. This results in the union of two warring clans. The reference to the formation of Kerala by Parasurama, *jellikettu,* and *somarasa* are described as if they were the order of the day. Trade and commerce have been pictured as a competitive arena, where manipulation corruption, and malpractices exist similar to what exist today. When the texts are read in accordance with Barthes's explanation: "However paradoxical it may seem, myth hides nothing: its function is to distort, not to make disappear" (Lavers, 1972, p.120). In the same way, Tripathi uses a myth, distorts it, and exposes the public to the misdeeds and moral ailments of the society. Mythical signification is a process whereby what is historical and created by specific cultures is presented as if it were timeless, universal, and thus natural.

Ravana, too, is motivated to maintain the status quo. So, he kidnaps the chosen Vishnu – Sita. In his opinion, she is a more valuable captive than Rama who is the crown prince of Ayodhya. The incident related to Suparna and the chopping of her nose were used as a decoy to kidnap the real Vishnu. Steeped in myth and history, woven together with a compelling narrative style, Tripathi revises the stories and reintroduces Hindu mythology to the youth of the country in a new format. By creating new reasons and motives for their actions Amish is recreating history. These new stories have reverberations in current political and social issues. There was a time when the television series' Ramayana later followed by Mahabharata electrified the public. The whole nation watched it with awe and admiration, placing human actors to godly heights. Similarly Amish is creating new waves by portraying epic characters as common kings and warriors with humane interests and motives.

Myth and History cannot be separated. Both are based on memory. Roland Barthes argues in his essay that myth is a form of speech, it is "a system of communication", so it conveys a message. It cannot be treated as "an object, a concept or an idea: it is a mode of signification, a form" (Lavers, 1972, p.107). When Barthes made this statement, the nature of history was one of Western consumer capitalism and ideological reification. But today even culture is a commodity. Myth has the ability to "transform history into nature" (128). When transformed into 'nature' history loses its aura of past and pastness and becomes something that is gradual,

familiar, contemporary, and yet authenticated by historical reverberations. The novels here are read as "the third type of focussing is dynamic; it consumes the myth according to the very ends built into its structure: the reader lives the myth as a story at once true and unreal" (Lavers, 1972, p. 127). The truth about Indian culture and ethics is remoulded.

So, by revamping Indian mythology is Amish Tripathi imposing something on us consciously/unconsciously? Is he creating what Henry Lefebvre called social spaces? Is a capitalist modern space being created for modern modes of production? When Valmiki wrote Ramayana place nor space held a significant role. He did not have to create spaces for a particular group. When Tripathi's works are read at close quarters it can be seen that he has created new spaces for women like Sita, Suniana, Manthara, and even for non-humans like Hanuman, Jataayu, and others. Sita's associate Samichi, and the physician Roshini who is portrayed as Mantra's daughter are new characters to the original plot. Women are an integral part of modern consumerist society. The new 'history' being scripted by Amish Tripathi has ample space for women, which is absent in the original epic.

Tripathi is able to intervene at the juncture between myth and history. This is done by concentrating on the subjectivity of each character, as well as having a multi-perspective plot structure. The Indian psyche had an all-inclusive agenda as far as religious and social differences were concerned. But Amish Tripathi's books can be read as an active disseminator of religious ideology in a particular direction.

> The Lankan soldiers believed they were on their way to avenge the insult to their mighty King's sister, Shurpanakha, who had been injured by Prince Lakshmanan. While cosmetic surgery would take away the physical marks of the injury to her nose, the metaphorical loss of face could only be avenged with blood, The soldiers knew that. They understood that. (Tripathi, Ravana, 2019, p. 5)

The ideology of the society in which the writer lives has made him a tool to recollect, highlight, and propagate certain emotions in a land of diversity. Using an ancient story as his plot he hides nothing. The function of a myth is to distort, not to make things disappear. But if it is the major reason for the success of his books then the space, he has revamped is volatile and is highly susceptible to misinterpretation.

A serious reading of the spaces created by Tripathi raises several questions. The space provided by the text, the plot, is a familiar one. From the places that pre-existed new spaces are being created. He seems to be using the power of mythology to transform one cultural value into a universal and natural value. Any semiological argument based on Barthes postulates a relation between two terms, a signifier and a signified. The relation is not one of equality but of equivalence. So, in the first order of semiotics signifier and signified combine into a sign. Passion and a bunch of roses indicate love (a concrete entity). Calling something a sign is a recognition that there is an action to convey, a signified through a signifier. Signified and signifier existed before the production of signs. The recharged characters and retold stories are signs that signify cultural change. Sita, Rama, and

Ravana the titular heroes of the respective books existed before Tripathi wrote the novels but now they have become icons or signs that signify new meanings for new times.

References :

1. Rodriguez, Jeanette, and Ted Fortier. (2007). Editors. The Concept of Cultural Memory. *Cultural Memory: Resistance Faith and Identity*. Peter Lang, pp. 7-14.
2. Lavers, Annette. Translator. *Mythologies*. Roland Barthes, The Noonday Press, 1972.
3. Tripathi, Amish. (2015) *Scion of Ikshvaku*. Westland Ltd.
4. Tripathi, Amish. (2017). *Sita- Warrior of Mithila*. Westland Ltd.
5. Tripathi, Amish. (2019). *Ravana: Enemy of Aryavarta.* Westland Ltd.

Destruction of Lavish Architecture and Lush Green Beauty : A Reading of the Poem Ruins of a Great House

Dr. Rakhi Chauhan
Assistant Professor, Department of English
Bhagwandeen Arya Kanya (PG) College, Lakhimpur Kheri

Abstract :

The present paper focuses on Derek Walcott's poem ***Ruins of a Great House*** *and sees it through the lence of Post-Colonial theory. Along with Post- Colonial reading, it also focuses on this thing that how the great plantation house of the Caribbean island was destroyed by the British people. Britishers came to the native place of Caribbean and made them their slaves. They destroyed the beautiful natural landscape of island and exploited them beyond the limit. They left the scars on the heart of the native and created a fear inside them. Derek Walcott, one of the greatest poets and playwrights of Caribbean literature has the fervent love for his country and its people. Therefore, he paid attention on the affliction and miseries of Caribbean people and expressed these agonies through his poetry. Derek Walcott's poetry consists all the Post-Colonial elements like; Hybridity, Ambivalence, Reclaim of the past, identity crisis etc.*

Keywords :

Exploitation, nature, destruction, colonization, affliction.

Introduction :

Derek Walcott is one of the famous poets of the Caribbean islands and through his poetry he depicts the sufferings of the native people. Native people suffered too much by the hands of the colonizers. Therefore, most of the poetry of Derek Walcott talks about the war and colonization. *Ruins of A Great House* is one of the famous poems of Derek Walcott, written in 1956 and it depicts the after effects of colonization and at the same time explains the degradation of lush green beauty of the nature. This shows that how nature was exploited after the intervention of human beings as an authoritarian power. Nature as well as the native people of the Caribbean island, both were victimized and the only factor of their victimization was Britishers who came from other places and exploited them beyond limits. Derek Walcott, as an African writer has to face many problems especially in the matter of language's versification. He composed his most of the verses in English language that was very painful in itself

because it was the language of those people who made his country's people suffer. Derek Walcott uses a number of imageries throughout the poem in order to express the agonies and painful state of his native people. By doing so, Derek Walcott wants to expose the pathetic condition of Caribbean people in front of the whole world which is still unware from the horrific after effects of colonization.

Derek Walcott belongs to the Saint Lucia, an island in the West Indies that remained the colony of the Britishers for a long time. The people of this island underwent enormous struggles during British colonization. In this poem, Derek Walcott mainly talks about the theme of death and decay. As the very title of the poem indicates towards the destruction that was caused by the colonizers. Through this poem, he depicts the present condition of his island and at the same time reclaims the past also.

The present poem talks about the scars of slavery also. During the 1800s slavery is the most threating disease of the Caribbean islands and the people of this island faced this threating issue. Derek Walcott writes this poem from the view point of those people who lived in Caribbean island during this time. Derek Walcott says that slavery has been abolished but its scars are still fresh in the mind and heart of the people. The language that is used by Derek Walcott to depict the agony and pain of the people of Caribbean island is irregular and depicts the pain of people in a very real manner. Derek Walcott has made the use of a number of allusions, metaphors to support his thoughts and it can be said that to make the true depiction of the harsh and cruel picture of the slavery.

The poem *Ruins of a Great House* begins with an epigraph, a quote from Thomas Browne's *Hydriotaphia, Urn Burial.* With the use of this epigraph, Derek Walcott draws a comparison between the Caribbean island and Urn. Urn is basically a large metal container that is used to put the ashes of a dead person after the cremation ceremony. Therefore, it can be said that it is used to put the decayed things. In the present poem, Derek Walcott is presenting the dilapidated image of the Caribbean island and says that this island has become a place for urn. It is full of ashes and rotted dead bodies of the native people who suffered due to the colonizers. It looks like a completely ruined house:

> Though our longest sun sets at right declensions and makes but winter arches,
>
> It cannot be long before we lie down in darkness, and have our light in ashes…..

As the poem proceeds, the intensity of the anger also increases. With this spirit of resentment, the poet enters into this deserted and ruined plantation house. The metaphor of ruined plantation house is used in regard of former empire that once was in a glorious state. But now it is dejected and completely isolated. The poet is angry but pain can be felt in his thoughts and this pain overwhelms him when he sees the dead bodies of his native brothers in rotted state with the brutal traces of the colonizers. Thomas Browne said a very famous line in fifth chapter of the *Urn Burial*; "But man is a Noble Animal, splendid in ashes, and pompous in the grave, solemnizing Nativities and Deaths with equal lustre, nor omitting Ceremonies of bravery, in the infamy of his nature".

As Thomas Browne speculates on death and brevity of human life in the same way, Derek Walcott elucidates his views by saying that the whole life human beings remain busy in the hustle bustle of life and ultimately all these efforts put him to death. Every individual human being has his own choice to make the decision between good and bad. His good and bad decisions determine his path when he leads towards the glorious road of death.

Since the beginning of the poem, the pain can be felt in the voice of the speaker. He begins the poem with these lines:

> Stones only, the disjecta membra of this Great House,
>
> Whose moth- like girls are mixed with candle dust,
>
> Remain to file the lizard's dragonish claws.

The speaker expresses the ruined condition of the Great House and for it he makes the use of the allusion of 'disjecta membra' that means fragmented state. It indicates towards this thing that great house is nothing else except some scattered and painful scars of the past. Further he says that even the stones which are left there are not in well-arranged condition. In these stones the speaker sees the image of those tyranny which were made by colonizers to exploit the native people so, he says that these stones express the agonized and painful story of the natives. He compares the native girls with the nocturnal creature moth. Generally, moth is taken as a symbol of transformation and change and sometimes it is also connected with beauty, peace, tranquility and purity. As moths go through an incredible transformation in their lifetime, in the same way these native girls went through transformation but it took them from fortune to misfortune. As the Great House degraded, these native girls fell from the good days to evil days and lastly mixed up with the residue of candle which is completely waste and no longer of use. The Great House has become completely ruined like candle dust and it cannot be lit again. Now it is used by lizards which are symbol of impurity. The whole Great House has lost its purity and it will not be able to touch that glory and summit of height again.

As the poem proceeds, the speaker uses a number of images in order to depict the destruction. He states that the gates of the Great House on which the pictures of the Cherubs were carved are stained with blood and rust. In Christian mythology Cherubs are baby figures and they represent purity, grace and the innocence of the divine. In the present poem, these Cherubs figures shriek because anarchy and brutality has spread everywhere in the island and left its traces in the form of the stain of the blood. The speaker says that the vehicles the axle and the coach which are meant to make movement are in inactive positon because they all are blocked under the muck of cattle droppings. With the blocking of the axle and the coach wheel, he indicates towards the infertility of the Caribbean island which is blocked by the Britishers. They colonized the nation and made it sterile. Next, he gives the image of three crows who are taken as a symbol of death and represents the death of the Great House. They are sitting on the bough of Eucalyptus tree. Generally, Eucalyptus tree is taken as a symbol of prosperity, strength and abundance but here it is pictured in fragile condition and makes creaking sound when crows sit on its boughs.

The speaker states that it is not only the infrastructure of the Great House which was degraded by the colonizers rather the native land or nature of the Caribbean island was equally exploited. As the speaker enters in the island, the rotted smell of the dead lime quickens in his nose. These lime trees are not the native plants of the Caribbean people rather they were planted by the colonizers with some profit earn purpose. They not only earned the profit rather defended themselves from the fatal disease scurvy which make the system weak and in some cases even lead to death. He also gives the reference of another fatal disease, leprosy which is the cause of disfigurement and deformities. He calls it the 'leprosy of empire' because the Britishers disfigured the nation by making it deprive from its native crops and plants. They made the natives slave and used their physical strength for the plantation of lime tree to earn profit. Therefore, there is lime tree everywhere and no sign of native green plants can be seen anywhere. As the speaker says:

Farewell, green fields,
Farewell, ye happy groves!

The above line indicates towards the extinction of native plants which is the main cause of the imbalance in the ecosystem. He draws a comparison between the extinction of the native plants and the native people. As plants were deprived from its native land, in the same way native people were uprooted from its originality and compelled to be a stranger even in their own native land. He talks about Deciduous trees which shed their leaves annually and after it decorate themselves with new leaves after a certain period of time. But these trees are also no more and it all happened due to the authoritative behavior of human beings. The Britishers did not use the nature with beneficial purpose rather they used her with earn motive purpose. Therefore, they exploited nature beyond the limit and even tried to transform it according to their own comfort. In this way native tree deprived from its original root in the same way as native people detached from their culture and traditions being marginalized.

Further, the speaker gives the image of dead leaves which are scattered on the ground of the lawn. He says that if someone tries to clean the lawn, he will be witnessed of dead bodies of human beings as well as animals. This shows the brutality of the Britishers. He says:

Fallen from evil days, from evil times.

All the elements of nature including land and river had become the source of victimization of the colonizers and the traces of the brutality of the colonizers can be seen everywhere be it is bosom of the land or the surface of the river. He compares the flow of the water of the river with the freedom of the natives. As the river is clogged due to the lime trees, in the same way natives are in the grip of the colonizers and has lost his freedom. This Caribbean island seems to belongs more to the colonizers than the natives because they have overtaken it and managed it according to their own comfort. Natives have become isolated in their own home and even don't have the freedom of expression. The wind that is moving on in the island reminds the speaker of the brutality of the past. In the blowing sound of the lime trees, he hears the rattle of death and feels the pain of his all brothers who underwent through these agonies. Nature works like a tool in revealing the

intensity of the pain because she has been equally exploited and used by the colonizers for fulfilling their purposes. In this way nature has become the source of the voice for the voiceless, marginalized, and suppressed human beings.

The speaker thinks about those who sold natives as a slaves and started the slave trade. The colonizers misbehaved with slaves and imposed death warrants on them. As the speaker thinks about it, his anger increases. He says that the colonizers have gone from his land but the brutal scars which they left are still fresh in the mind and heart of the natives and prick like thornes on the soul of the natives. He says that the ashes have disappeared but the ember is still alive which mean that colonizers are no more but the pain which they gave is still fresh and alive in the mind of the natives in the form of bad memories. His amber pacifies when he reminds that the British was also once a colony of the Romans. He reminds Donne's words that 'No man is island' which mean that all human beings are interconnected with each other. Therefore, the activities of all human beings affect others directly or indirectly. By thinking all this, the speaker gets ready to show compassion while in reality there is not even a single space to show sympathy and compassion.

Thus to conclude, it can be said that Derek Walcott has interconnected the Caribbean island and the nature in a very beautiful manner. In the present poem, he has given the picture of the destruction of the Great House and the lush green beauty of the nature in a very picturesque manner. All the elements of the nature sing the painful song and the speaker uses them to show the sufferings and the pain of the natives. He says that the nature which always show her blessings upon human beings and bless them with her rich resources, has herself become the victim of the individual and selfish behavior of the human beings. Nature is equally degraded by the humans to fulfill their selfish motives. In the present poem, Derek Walcott expresses the grief and pain on the destruction of the Great House which in present nothing more than a heap of stones. With the destruction of the Great House, he also draws a parallel picture to show the degraded condition of the nature and with it make a plea to preserve and celebrate nature rather than exploited. He says that it should be treated with love and care for one man's sake.

References :

1. Bhabha, Homi K. (1994). The Location of Culture. New York: Routledge.
2. Brown, Stewart. (1992). The Art of Derek Walcott. Bridgend: Seren Books.
3. Fanon, Frantz. (2008). Black Skin, White Masks. New York: Grove Press.
4. Said, Edward W. (2014). Orientalism: Western Conceptions of the Orient. India: Penguin.
5. Walcott, Derek. (1987). Collected Poems 1948- 1984. New York: Farrar, Straus and Giroux.

From Awe to Aww : A Discursive Study of The Evolution of Monsters in Literature and Films

Dr. Sarath S.
Assistant Professor, Department of English
Govt. College Mananthavady, Wayanad, Kerala

Aswathy V.N.
Assistant Professor, Department of English
Govt. College Kalpetta, Wayanad, Kerala

Abstract :

Sociologist John Law believes that the monster archetype represents entrepreneurial capitalism, which derives its energy from the people. Ancient man's fear, which is sparked by uncontrollable and unexplained natural occurrences, drives him to worship various natural phenomena and build solace-giving figures. The paper makes an effort to analyze the development of "monsters" in literature and movies by following their history from antiquity to modernity. Monsters have changed over time from terrifying creatures to marvellous entities, whose presence in literature and the arts inspires awe rather than dread. The paper also digs deeply into contemporary theories like postcolonialism, Marxist theory, and psychoanalysis via the prism of theoretical interpretations of monsters.

Keywords:

Lusus Naturae, Mythologies, Dyadic pairs, The Human Monster, Humanoid, Fear of Bourgeois, Other and Shadow.

The oldest references to the existence of monster characters can be found in the folk literature, including ballads, folklore, and legends, which focus on mythology and religious tales. These creatures often pervade with awe inspiring powers and immense physicality, simultaneously captivate and terrify the imagination. Passes down through generation, stories of monstrous beings infiltrate the fabric of societies, shaping cultural identities and belief systems. Myths, according to Sir James J. Frazer, are "mistaken explanations of phenomena, whether of human life or of external nature" (Frazer 21). As a result, diverse natural occurrences including storms, thunder, lightning, draughts, sickness, and infertility were associated with myths about monsters. Ancient civilizations, driven by their fear of the unpredictable and enigmatic forces of nature, started to worship various natural phenomena. These early humans believed that these natural elements held

great power and influence over their lives, and that through worship, they could appease and gain favour from these entities. To better understand and communicate with these natural forces, ancient humans began creating figurines as representations of these powerful agents. These figurines served as physical embodiments of the natural phenomena, allowing humans to visualize and relate to them on a more tangible level. These sculptures depicted the characteristics and behaviours associated with each phenomenon, helping individuals connect with and comprehend the power these forces held. They created a complicated, abrasive, and horrifying representation of nature that combined aspects of the human and non-human realms. Nature's complexity and mystique were began to represent as Monsters. The article examines how the idea of monsters has changed throughout history in literature and movies, as well as how their functions have changed culturally and ideologically.

The earliest instances of this may be found in mythology from Assyria and Babylonia, where Pazuzu is the ruler of the wind demons. He is shown as the wind from the southwest, as well as the bringer of storms and draught. Pazuzu is shown as having a lion's head with talons in place of feet, a human body, two sets of wings, and a penis that resembles a snake. Similar to this, Lilitu, the most dreaded of the Mesopotamian demons, lived in deserts and barren country sides and was responsible for both male and female infertility. She is depicted as a wolf-female with a scorpion tail. Typhonis is a strong, terrifying monster that appears in Greek mythology. He is said to as the giant who started the storm and is frequently called the creator of all monsters. Greek mythology has a wide variety of mythological creatures, such as the Sphinx, whose puzzles tormented Greek travellers, Medusa, the enormous Gorgon who was depicted as having a woman's face and snakes for hair; it is said that any mortal who dares to gaze into her eyes directly will meet a chilling fate, transforming into an unyielding stone for all eternity. Monsters like Nasnas, Bahamut, and Ghouls, as well as kinder variations of spirits like Jinn, Marids, and Ifrits, may be found in Arabian mythology. These examples support the idea that for ancient mankind, "monsters" were not hideous, evil, or scary beings, but rather Gods whom people revered out of fear to prevent natural disasters.

Organised religion showcase God as kind and tranquil (anything cruel/bad done by God is justified using 'other') and God's enemy has been created/portrayed as 'Lusus Naturae'; deformed, horrifying, and brutish-looking. While monsters preserved their innate deformity as a euphemism for evil, God acquired a cultural meaning; the duality of Nature/ culture, Demon/God, Beast/ Man and Evil /Good has been evolved. Religion spread and utilise monster images via the scriptures to create binary and suppress anyone who question its authority/ narrative. It distinguished between actions that bring about God's grace and those that bring about disaster and fall; those who defy the unidentified force/God were labeled as heathens or monsters. Folktales and myths describe human actions in a reverent as well as blasphemous manner; according to holy texts, good deeds are

rewarded while wicked deeds are given deformities and are subject to destruction. Religion depicts God as intrinsically good and flawless, whereas evil is represented by grotesque, misshapen, and hideous beings. As a result, monsters have a negative reputation for being malevolent or other.

The majority of religious texts presented monsters as tempters, rebellious, and unconvinced people who argued against God's omnipotence. Monsters were designed as "imperfect men"-those who transgress from the standard as prescribed by sacred texts. The physical deformity used to reincarnate the spiritual flaws gave demons their strange and unsettling facial features. Religious texts used the use of monsters to instil dread in readers while avoiding critical questions about how many social, cultural, and physical events were not well explained by them. Christianity is the dominant religion in the West, which refers to the one that dominates many Westerners' narratives, civilizations, and worldviews. In the Bible, man is seen as God's ideal creation, and Christ, the God-son, is seen as man's saviour. Lucifer, the archangel, was made to fall from heaven and transform into Satan, to a metaphor of evil, an archetype of wicked attributes, since he questioned the might and authority of God. Monsters came to be seen as those who question and act against culture, norms, the established authority, discourse, etc.

Hinduism spread its doctrine through the struggle between Good and Evil in the East through the Ramayana and the Mahabharata, two of its great epics. With a few exceptions, all of Hinduism's Asuras/demons are portrayed as beings of disproportionate body, horrifying, and diabolical figures. The dharmayudha between gods/devas and demons/Asuras is the core of the religion. Asuras were seen as the source of all evil and were thus to be eliminated for the benefit of the gods. Ghatotkacha was the son of the demon Hidumbi and Bheema, one of the Pandavas, in the Mahabharata who fought for the dharma, but Lord Krishna's remark after his death is evidence of how these narratives propagate binary opposites. Monsters were defined in religious texts as evil, flawed entities that opposed Gods; these characteristics persisted for millennia.

The Zoroastrian faith was another significant Eastern religion. The battle between Ahura Mazda, the god of knowledge, and Angra Mainyu, the god of darkness, was represented in the Avesta, a sacred text of Iran. Following Angra Mainyu, Aka Manah is the most malevolent character in this novel. He opposes Vohu Manah and dulls human knowledge by filling their minds with wicked concepts. He is supposed to convey bad religious understanding rather than 'the good religion'. The Avesta mentions 45 demons, or daeva, who are confirmed as being diabolical and evil-doers. The term "the good religion" daevayasana was used to describe all rebels and heretics. The Islamic holy book, the Koran, describes evil as the tempter of man and as a fallen spirit that had been expelled by Allah because of his conceit. He goes by the name Ibilis and is described as a jinn (spirit). He defied Allah, and as a result, he was sent to hell with the punishment that, even though he

would no longer be able to influence Allah or his pious adherents, he would still be free to lure people to sin.

Myths of the Middle Ages, the core of the literature was based on battles between gods and god-men. The Monster of Troy, Cyclopes or Polyphemus, Charybdis, the cannibal Laestrygonians, Minotaur, Scylla and Charybdis, and the witch Circe were among the bad/evil/ monster figures that were vanquished by divine heroes in Homer's Iliad, Odyssey, and Virgil's Aeneid. Beowulf, an anonymous epic poem and a profane literary work in English, serves as an example of how monsters are used in literature as an excuse to highlight the hero's valour and glory. They served as the protagonist's objective correlatives and opponents while they battled the strong and mortal antagonist. Monsters are shown as being a menace to man and should be eliminated. Grendel and the Dragon were the evil powers opposing the noble and ideal hero; they engaged Beowulf in combat and were ultimately defeated. The religious good/bad dichotomy is used as the leitmotif in early writing.

In contrast to earlier accounts, the development of science, technology, and literacy has given the idea of monsters a fresh perspective as human-made things with historical and cultural significance. People started to doubt the existence of God, religion, and the binary distinctions between good and bad. The legendary and religious creatures were seen to be repulsive to the scientifically developed man. In order to inspire dread, fright, and astonishment in readers, writers started to utilize them as fictional characters. The Renaissance classic, *The Life of Gargantua and Pantagrual* (1532) by French author Rabelais centres on the exploits of two monstrous characters, Gargantua and Pantagrual. The book is well known for its sarcasm and humour and was written as a critique of authority. The *Arabian Nights* is a collection of Persian tales that uses magic and myth to create imaginary monsters that sparked amazement and awe. Jonathan Swift employed the literary device of monsters in *Gulliver's Travels* (1726) to illustrate the vanity and haughtiness of man. Gothic literature included creatures to engender dread in readers, were published during the Romantic era in English literature. The creature Victor Frankenstein, the scientist, produced in Mary Shelley's *Frankenstein or the Modern Prometheus* (1818) is able to voice his concerns but denied the rights of a human being. The narrative of Count Dracula and his three vampire wives is told in Bram Stoker's *Dracula* (1897), and created a cult in monster fiction. Jules Verne's sea monster in *Twenty Thousand Leagues under the Sea* (1870), shifted the monster's abode from land to the water. Following this trend, horrific traits developed in huge squids, man-eating sharks, and giant octopuses.

Monsters also got increasingly "technified" as technology advanced and man's exploration of other planetary systems and space was no longer seen as a far-off prospect. Many contemporary authors criticised the state of the world today through dystopian books that showed how man's experiments-on land, at sea, and in space-went awry. This was done in response to the new threat that nuclear weapons and contemporary warfare offered to the human race. The

outcome is the same whether a business or a lone scientist/madman is to blame for the innovation or discovery: a monster is produced that poses a threat to the survival of the planet (Schelde,1993, 56). The monster is one of the three safe stock characters-along with the hero and the scientist-and is a metaphor for faulty science (56).

Children's literature has grown in popularity over the past two decades, using fictional monsters often to inform and entertain young readers with the dual goals of amusement and instruction. Fantasy started to be associated with these books, the destruction of the world was caused by monsters. Rarely did physiognomy play any part in separating the excellent from the bad. The terrifying creatures in J. R. R. Tolkien's *Lord of the Rings*, such Crebian, the enormous crow, Sauron's spies, and the fallen monsters, are presented as savage and malevolent, the same applied to J.K.Rowling's and C. S. Lewis' *Harry Potter* and Chronicles of Narnia. However, because of their terrible nature, creatures like the Basilisk and Nazgul in *Harry Potter* and *Lord of the Rings* have acquired a bad reputation. These fantasy books harkened back to a time in mythology when both demons and gods had distorted appearances. They were revered in earlier times due of man's ignorance of several natural secrets. The use of myth, magic, and the idea of monsters in modern literature and movies as informational entertainment grew less offensive to readers and more socially acceptable.The introduction of technical monsters in the shape of androids and humanoids is a new development in this genre. Astronauts are attacked by extra-terrestrials in space, according to Arthur C. Clarke's *Space Odyssey* series. The extra-terrestrial being in Joseph Conrad's *Nostromo: A Tale of the Seaboard* is a self-fertilizing egg. When the egg hatches, it transforms into a "neonate" that lives within the host (a man) as a parasite and attaches to his mouth.

Literature gained benefit from modern and numerous readings owing to the introduction of literary theory in the first decade of the 20th century. The fundamental objective of critical theory is to locate the invisible and perceive the unseeable (McNally, 2011,6-7). The notion of the monster figure also obtained additional meanings in the hands of theorists with the advent of this new trend. The epic hero is a figure from mythology who battles monsters to safeguard the world or save maidens, the battlefield is symbolic of the field of life, where every creature lives on the death of another (Campbell,2008,205). He discusses how stories from many regions and civilizations all over the world frequently incorporate both the monster and the hero motifs. These monsters exhibit roughly the same traits across the world.

Archetypal critics like Jung and Frazer examined the mythological monsters in order to create their recurrent and common patterns. The archetypes of evil that frequently appeared in ancient narratives and which Jung referred to as "shadows" (Jung,1986,47) are what he regarded to be monsters (devils) as representations of man's alter-ego. The collective unconscious gave rise to these archetypes, which have been imprinted in men's unconscious minds since the dawn of time and whose literary representations

elicit identical spiritual and cultural reactions. According to Jung, the "shadow" pertains to the more fragile and less appealing components of a person's personality that he desires to hide, the darker side of his unconscious self. In its most profound meaning, the shadow is the invisible saurian [reptilian] tail that man is still pulling behind him, according to Carl Jung in Psychological Reflections (217). The Devil, who Jung refers to as the "dangerous aspect of the unrecognized dark half of the personality" in "*Two Essays on Analytical Psychology*" (94), is the most prevalent manifestation of this archetype when it is projected. Monsters from myths such as Pizuzu, Medusa, Cyclopes, Satan, Ibilis, Ravan, etc. are archetypes of "shadow" that have appeared in literature as Lord Dracula, Frankenstein's monster, Alex Delarge from A Clock Works Orange, Sauron from Lord of the Rings, and Lord Voldemort from the Harry Potter series, to name just a few.

Myth was viewed as a kind of ideology by Karl Marx. These beliefs must be repudiated and combated because, in his opinion, they have the twisted ability to incite mankind to turn against one another and against themselves (493). A capitalist class that creates the proletariat as its debased antithesis is represented by Dr. Frankenstein. As Franco Moretti notes in Pretend We're Dead, the Frankenstein monster might be seen as a metaphor for the proletariat in early industrial capitalism:

> like the proletariat, [Frankenstein] is a collective and artificial creature….the monster is disfigured not only because Frankenstein wants him to be like that, but also because this was how things actually were in the first decades of the industrial revolution….Frankenstein's invention is thus a pregnant metaphor for the process of Capitalist production, which forms by deforming, civilizes by barbarizing, enriches by impoverishing (Moretti, 1983, 85)

According to historical sociologist John Law, the monster archetype represents entrepreneurial capitalism that depends on the labour of the people for its survival. The novel's count Dracula is described by Marxist theorist Franco Moretti in "the dialectic of fear" as a representation of monopoly capitalism, fear of bourgeois; "capitalism is dead labour that, like a vampire, lives only by sucking living labour, and lives the more, the more labour it sucks." (Marx, 1990, 224)

Michel Foucault defends the transformation of monsters into the "confused community of "abnormals"" towards the end of the 19th century, at the height of the European attempt to establish imperialism around the globe, in his lectures on "The abnormals" in *Ethics: subjectivity and Truth* (51). The "human monster" has been defined as the first category of abnormals which breaches the constraints of both social and natural norms and is a transgressor of the "juridico-biological domain" (51); he calls it the "human monster." The human monster personifies "the impossible and the forbidden," as it is still human but exists beyond of recognized bounds in terms of law and medicine (51).Foucault's thesis examines how psychiatry transforms monsters into abnormals; his idea of an abnormal or deviant might be used to think about the way the West has generated the colonized abnormal or the Other.

Post colonialism is an influential theoretical notion that outlines the way the rational white Eurocentric race perceived non-Europeans as being black, strange, and dreadful. Post-colonial theorists gave monsters in literature a new perspective as representations of the unknowable subaltern other by analyzing their unquestionably Eurocentric nature. This tendency to portray uncharted, foreign regions as debased dates back to the medieval era. In the Iliad, Homer recounts Zeus gazing in awe at the far-off Ethiopians, referring to them as Hippomolgi, which is Greek for "horse-milkers." Additionally, he refers to some Eastern races as "barbaraphonoi" (barbarians) and calling them as the non - Greek speaking other. A number of East Asian races were identified by Pliny as straw-drinkers, snake-eating troglodytes, dog-milking Cynomolgi, parent-eating Anthropophagi, and all-devouring Panphagi in his Natural History, an encyclopedia that was written in AD 77–79 (Friedman 27).

Certain Dendros male are described in Mandiville's Travels as having "skins as coarsely haired as beasts, except for the face." These individuals swim just as well as they walk on land" (Evslin,2012,29). The names of its towns and inhabitants are utterly unpronounceable by anybody other than locals, according to Pliny, who wrote that "the Greeks give to Africa the name of Libiya" (219). G.C. Spivak analysed Frankenstein's monster and thought of it as the obvious example of the colonized other. Ethiopia is marked on many medieval maps of the west as a region "where there are men of diverse appearance and monstrous, terrifying, and perverse races as far as borders of Egypt" (Spivak,1985,48). She dispels the attempt of the writers who are primarily European to depict the East as the abode of devils. Africa is depicted as a realm of barbarians in Joseph Conrad's novel *The Heart of Darkness*.

With the development of movies, monsters gained popularity among the general populace, characteristic features of monsters were frequently used in movies as amusement. The monsters in literature have undergone all of the aforementioned evolutions, which can also be seen in movies. Film adaptations of the Old English poem Beowulf have been made for a contemporary audience. In movies like Dracula, Twilight Saga, Zombie Land, and others, major characters like vampires, zombies, monsters, elves, and werewolves were elevated to the status of legendary creatures. Man's entry to other planets and his reckless experiments became the central themes in movies such as E T, Alien Vs Predator, I am Legend, I Robot, Zathura and Avatar. The days of people getting dread while viewing a monster on their television are long gone, and nowadays, sound effects are mostly used to accentuate the scary components in films. Monsters have evolved from terrifying creatures to wonderful creatures that inspire more awe than aww.

References :

1. Appolodorus, *The Library.* Trans.J. G. Frazer. CUP, 1921, pp 21.
2. Campbell, J., *The Hero with a Thousand Faces*. New World Library, 2008, pp205.
3. Evslin, Bernard, *Gods, Demigods and Demons: An Encyclopaedia of Greek*

Mythology. Open Road Integrated Media, 2012, pp 29.

4. Friedman, John Block, The *Monstrous Race in Medieval Art and Thought*. Syracuse UP, 2000, pp 27.
5. Jung, C.G., Psychological *Reflections: An Anthology of the Writings of C. G. Jung*. Routledge, 1986, pp 47, 217.
6. Marx, Karl, *Capital: A Critique of Political Economy Vol.1*. Penguin, 1990, pp 224, 493.
7. Mc Nally, David. *Monsters of the Market: Zombies, Vampires and Global Capitalism*. Newyork UP, 2011, 6-7.
8. Michel, Foucault, *Ethics: Subjectivity and Truth,* The New Press, 1997, pp51
9. Moretti,F., *Signs Taken for Wonders :Essays in the Sociology of Literary Forms*, Verso, 1983, pp 85.
10. Schelde, Per. *Androids, Humanoids and Other Science Fiction Monsters: Science and Soul in Science Fiction Films*. New York UP, 1993, pp 56.
11. Spivak, Gayatri Chakravorty. *Three Women's texts and a Critique of Imperialism*. University Press Chicago, 1985, pp 48.

Work-Life Balance of Urban Middle-Class Women : Social and Cultural Perspectives from Bengali Literary Works of Post-Partition Era

Jayasree Das
Research Scholar,
Aliah University and SACT-I, at Harimohan Ghose College

Abstract :

Objective : *The current article's goal is to pinpoint the elements of middle-class women's work-life balance in post-partition Bengali literature (1947–1971) written by men, and to create a diagrammatic depiction of those elements through discourse analysis.*

Methods : *The works of renowned male West Bengal writers who wrote about women in the post-partition era (1947–1971) were listed in an excel spreadsheet and studied. We chose works of literature that focused on middle-class urban working women. The portrayals in the cited books and stories hint at aspects of working women's body types.*

Results : *Generally speaking, each person has particular needs that they must satiate by working for himself or a particular company. The current study examined how the work-life balance (WLB) of women is impacted by several circumstances in both fiction and reality. It was shown that key determinants of WLB include role overload, social support, time management difficulties, and concerns about child and dependent care, all of which have persisted since Bengali women began entering the workforce during the Second Partition.*

Conclusion : *The findings have theoretical implications that demonstrate how real-world factors and those influencing fictional characters are equivalent. The current study also fills a gap in Bengali middle-class urban married women's WLB research.*

Future studies in the topic are urged to focus on contemporary Bengali literature and literature from other nations, particularly Bangladesh.

Keywords :

Work-life balance, women, Bengali literature, post-partition era, variables

Introduction :

We want everything, we will have a job, we will take care of our family, and we will do other work as much as we can. I think that none of them can be left out. The connection between one and the other is hard, very hard. Though every work is tried to be prioritized equally, it is impossible.

Such was the perception of Bina Guha Thakurta-the telephone operator in the novel 'Durobhasini' authored by Jyotindro Nandi. This one narrative explains the perception of all working women of Bengal in post partition era towards wlb.

As previously stated, Bengal is an ethno linguistic region that is geographically located at the eastern extremity of the Indian subcontinent, directly above the Bay of Bengal (appendix-2 map). During India's Partition in 1947, this area saw political division. The area is inhabited by Bengalis, who speak Bengali as their native tongue.

The purpose of the present article is to identify the variables of work-life balance of middle class women from Bengali literature of post partition era (1947-1971) authored by male writers' and thereby developing a diagrammatic representation of the same through discourse analysis.

In order to represent the variables of work-life balance diagrammatically, initial focus was to look for evidence in the existing academic literature; however, the literature did not present a large number of evidences, which led to the idea that fictional literary works might be a potential source for such evidences. It is claimed that literature is frequently a reflection of society. (Wendy Griswold, 1981).

The current research work is theoretical and descriptive in character. This paper identifies and discusses the determinants of wlb with the aid of pertinent post-partition fiction literatures and earlier studies relevant to this subject. The components of fictional literature in this study have been analysed using critical linguistics (CL) and critical discourse analysis (CDA). The paper is concluded with a summary of the potential research areas.

The story behind the veil :

When Abotoronika was written by Narendranath Mitra or 'Baro Ghar Ek Uton' was authored bu Jatindra Nandi, World War II was over. The upheaval in Pakistan had begun. Bengal was full of refugees. The economic condition of West Bengal was necessitous. Unemployment and the price of goods have increased at the same time. It had become difficult to support a family with one's earnings. Even women folk were forced to work. They were also forced to change the social level when they are unable to earn enough to feed the family members. One such middle-class family comprised Shivnath Ruchi and Manju (Baro ghor ak uthon). Shivnath is the bank manager of Great Himalayan Bank; Ruchi is the second teacher of Kamalakshi Girls' School. Shivnath is jobless due to bank failure and have not been able to pay rent of the house for 2 months

A fairly well-to-do middle-class family; suddenly, the family's only earning member was infected with Thysis and he was admitted to a hospital in Jadavpur but he did not get a free bed there for the first year. Although he got a free bed in the next year, he needed 25 to 30 rupees for the small expenses of the medicine, which

his father, who was the accountant in the merchant's office, could not manage. Even after selling his wife's jewelry, it became difficult to raise the expenses of the remaining six boys and girls and run the hospital expenses. Such was the context of Narendranath Mitra's 'setar'.

Suryamukhi written by Jyotirindra Nandi was first published in April, 1952. There are many female characters. Most of these female characters are employed. Such as Sushila Bose, the mathematics teacher. Her mother was also a head-mistress. As her mother died and her father became a monk, Sushila, a widow, had to take up job to earn a living. Kamla, another teacher in the girl's school who teaches drill to the younger girls and drawing to the older girls, is also forced to take up a job as she is widow too. Head Mistress Aruna Sen is a single. According to her if there is no need, no one takes up teaching as a job because there is no respect for it. In each of the above cases, it is seen that girls are forced to take jobs to survive.

In Jyotirindra Nandi's novel Meerar Dupur (1953), Meera is forced to ask Tapesh Lahiri of Tollygaunge for a job as a clerk for 250 rupees. 'Her husband has recently undergone a major operation of his stomach. He has been fired due to long absence and how long will he sit crippled at home is not known. So, Meera recently has been trying to earn money.

In Indranath Mitra's novel 'durobhasini' written in the context of 1952, we see a change in the attitude or better said, mental change towards the working life of girls. The two main characters of this novel, Bina Guha Thakurta and Kamala both worked as phone operators. After Bina's family came to India from Bangladesh, Bina was forced to take a job. Kamala's house is in excellent condition. The elder brother is unemployed. The younger brother is a security prisoner. There are old parents at home. Kamala's job was a source of income in the family.

Definition of middle-class women :

It is generally acknowledged that the middle class can be viewed as both an economic class (after Marx) and a social class. (following Marx's Weber) Economically speaking, the middle class was what Tithi Bhattacharya refers to as the group with operational control. This group was in charge of the daily resources that had already been allotted and made decisions within the parameters set by those with strategic control.

Critical Discourse Analysis :

The terms CL and CDA are frequently used interchangeably (Christine Anthonis-sen, 2001). The hypothesis that was formerly known as CL is now referred to as CDA (Jane Mulderrig, 2011), and this word appears to be preferred. In the instance of the current study, fictional literary works, CDA sees language usage as a social practise and places importance on the context of that use.

All the novels/stories mentioned belong to the 5th phase of Beng ali literature i.e post partition era (1947-1971).Works of eminent writers of West Bengal of this era who have worked on female was listed in an excel sheet and studied. The literatures focusing on middle class urban working women were selected. The depictions presented in the identied novels and stories point towards variables of wlb of working women.

Women and the household support system :

In Abotoronika, Aarti, the heroine of the story, is also seen being pushed by her husband Subrata to get a job, giving examples of working wives in his friends' circle. Subrata takes Aarti to interview under the name of seeing her sick mother-in-law. She gets a job as young demonstrator in Mukherjee and Mukherjee. Her salary is fixed at Rs. 21 with a chance of getting permanent after three months. Aarti's getting a job is not well received by her in-laws. It was a surprise that Majumdar's house wife would work while they were still alive. Her in-laws commented, "It seems that our queen has come. At eight o'clock in the night, she remembered house and family. For two days, she has not even noticed the fever of her daughter"1, 'I never knew that a descent wife of a householder stays out till this night…'2 Angry, Aarti's mother-in-law wants to move to Pataldanga but Subrata makes it clear that he has done his best and he cannot afford to support such a big family on his own. On the first day she has to join office at 9 am. She feels shy to have food with her husband. The mother-in-law insists that she cannot not take care of the grand children ; she says that if Aarti goes to work, let her make arrangements for the son and daughter. The mother-in-law continuously expresses her anger while cooking. Though she has support of her husband in the beginning she loses it soon. He is not ready to accept her returning late or not offering him tea. 'You either have to quit your job or you have to leave me..', he said.3 Aarti, however, coped well with the family stress. Even when again Subrata is unemployed he again starts supporting her. 'Before going out for office Subrata helps his wife in cooking and household chores.'4

In Baro Ghor Ak Uthon, Shivnath (husband of Ruchi) is seen advising Ruchi to join corporate office because the salary is higher than school. But Ruchi believes it is impossible for girls to work with dignity anywhere other than school, and even she apply for job in other school, she does not care about recommendations. Ruchi loves her work and is compassionate towards her work. Ruchi has always tried to maintain her professional and personal life. Ruchi is never seen having the luxury of buying things at credit. Instead, when Shivnath buys an astray six-and-a-half-ana, she rebukes him for the luxury of buying at credit and threatens to take Manju to Kakababu in Ranchi. Shivanath is repeatedly reminded that he should seek the job of giving tuition when there is no hope of getting other jobs. Here, Ruchi does not have in-laws and her husband wants her to carry on with her job because he himself is lazy to find a new job but does not help her in household chores.

In Setar, Subimal's wife Neelima then took tuitions to teach music to the grandson and granddaughter of his cousin Nirod Dar's wife Rekha Boudi's 'Pisemshai' PN Biswas. Previously the same-in-laws did not allow her to give matriculation examination. Her association with Subimal's friends was objected too. Neelima had no formal training in singing. She learned singing by listening to radio records. The school also had music classes for two years. Still she took it as career. Even when her mother-in-law knowingly says that she is spending her days singing divine songs despite having bedridden husband, she does not say anything even when she is

suffering. The audience is not mesmerised by her talent but out of sympathy hands over some money to her. This humiliation fills her with grief but she also knows the use of her knowledge and how it will come in handy when Subimal returns home after his recovery. She even started saving money to send him for a change for a month or two, and knowing that she would not be able to earn money with just her voice and harmonium, she started taking sitar lessons before going for tuition, and after mastering the skills to work, she took sitar tuition too. She also took two more music tuitions.

Heeren's (Meera's husband) jealousy towards her comes in the way of balancing work and life. Her husband, Heeren, knows Meera's job is very much needed to run their family. He even acknowledges that verbally. But despite that, he can't accept the job mentally, keeps doubting Meera.

In Durabhasini, we see that Kamala's husband Binay does not supports her. Binay thought, "His income is not enough to buy all the happiness for Kamala.14 This simple recognition from his wife did not let Vinay to feel good. Inside he was very unhappy and even felt insulted. Vinay has fixed schedule.But that's not the case with Kamala. She doesn't have leisure time. Her schedule changes from week to week, sometimes in the morning, sometimes in the afternoon, sometimes in the evening. Even sometimes she has night duty too.15 'If you have time after household chores, morning cooking, then go for job, if not, don't do it, at this age mother will burn her hands cooking and you will work, I dont want you to do that job', he said. 16 He added, 'You need money, I will bring you money from where ever I can. I will give tuitions to two as before. I will do insurance brokering. Even then if I cannot manage I will steal but I will be happy that my wife will remains house wife. Your mind has hardened, you have become money minded. You are losing your tenderness. I don't want it.'17

Women & Time Management :

Aarti adapts well to handle family stress and compromises between work and life. "But after two weeks, Aarti showed Subrata how to really work... As soon as the journey of the day starts, Aarti's preparations for going to the office start too. In the morning, she takes a bath, quickly serves tea and glances at the newspaper."[5] From eight o'clock in the morning she chases Subrata to go to bath, she doesn't want to be late for office for any reason. Aarti's boss Himanshu Babu in the office likes discipline and does As 'Jhi' is not a "Brahmin" (a person of higher caste), she is opposed to take the responsibility of cooking, so Aarti's mother-in-law is given that responsibility. As the office was at 9:30 in the morning, Aarti went out earlier than Subrata, and instead of waiting for Subrata's left over food, she sat beside her with her own palate of food. Earlier, two of them boarded on the same tram, but now that too has stopped. Earlier on holidays, Subrata used to return from his friends house at two in the afternoon and Aarti would wait for him but after getting a job she finished eating before and wiping her face with a towel much before Subrata's arrival. Returning at night, as the evening falls, she lies down and rests. She does not feel the urge to make tea for her husband or make the bed.

Ruchi has 10-5 job.Even after taking care of her daughter and husband Ruchi (Baro Ghor ak Uthon) devotes time for her neighbour and later also for the 'Samiti'.

Every day she wakes up, practices music and takes care of the house and family and tries to practice at night as well. The importance of her work is clear to her. She doesn't care about what anyone else says. Neelima gets up early in the morning before anyone else in the house wakes up and sits down to clear her throat. The work of the family goes on throughout the day. Some days when she gets free in the afternoon, she plays the harmonium with music and keeps her hands and throat busy, Neelima tries to brush up her knowledge. Even when dinners are complete at early hours music is practised in her room.9 Even on the day before her husband's return 'Neelima cleaned the house with one hand, decorated the house, but the other hand remained on the string of her sitar. She played sitar between her household chores to show her greatest skill of music and artistry.'10

To balance work and life and to attend her ailing husband, Meera (Meerar Dupur) hires a domestic help named Malati.

In the novel Durabhasini we get an idea about the operators and their careers too. Veena Guha Thakurta is a phone operator. She worked when she was single, she worked even when she was married. Even though she managed her own family, she helped her friend's family with money, admitted her friend to the hospital when necessary, even rushed to her crematorium. She balanced work and life very well. Even when the complaint was filed in her name in the office, she didn't fear knowing how to manage. Married Kamala has tried to balance work and life. Thinking of her old mother-in-law's suffering, she wants to keep the combine hand.

Child and Dependent care in the lenses of women :

It is seen in Abotoronika, One-year-old son Bablu is repeatedly jumping from his cousin's lap to go to his mother. Meanwhile, three-year-old daughter Mandira comes and grabs Aarti's saree in her fist. "I will go to work, mother, take me along with you."6 Cries of children were heard from beyond the lane to the main road. Even sitting side by side in the tram with her husband, the sound of these cries started ringing in Aarti's ears.7 'Jhi'(domestic worker) is appointed for outside work and taking care of the boys and girls. Aarti feels comfortable leaving the burden of caring for the boys and girls in Bharti's (domestic worker) hands.

In the morning after doing household work and cooking, Ruchi (Baro ghor ak uthon) goes to school with her daughter Manju and on returning changes to dirty clothes. Every day she goes to bed with the thought how she will manage two 'roti and dal' for three of them at night, saving the cost of going to school and the cost of tiffin of her daughter.8

Working women from the prism of society :

Now let's come to what the common people's opinion was about women's employment as depicted in Surjomukhi. According to the folk it is a 'fashion '11 to stay alone abroad, unmarried and working. There is surely something wrong with the girls. The head mistress was laughed at and was called arrogant for being a reserved girl's school teacher. The

conduct of the Head Mistress was questioned in the assembly for finding out mistakes in a gentle man's English, for not giving leave to Nalini babu's daughter for fixing marriage, for not being member to the local women's association, for not giving leave to the municipal chairman's 9th class daughters for a picnic. Thus society makes it difficult for Aruna and other working women to balance work and life.

According to Amaresh (Meerar Dupur), another character in this story, "I'm not saying that working is bad. All the girls in civilized countries are doing it. They'll do it if they have to. Not now. ..." 12 Although men can accept women working for their needs, the idea that they can work for their own freedom or for their own passion has not yet been accepted.

Discussion :

Due to a variety of factors, including their class status and other social and cultural factors, women have entered the workforce in response to a range of requirements. Bagchi (1990) in her work on women in Calcutta states that "It was mainly economic need that led women in Calcutta to make the transition from the home to the world. But even a temporary respite from household chores spelt freedom for women; moreover it gave them command over money which they could claim as their own." The same has been represented in the novels/stories mentioned in this article.

Aarti of Abotoronika is trying to juggle work and life in several ways. Here Aarti's mental change is also noticeable. A free-spirited, self-reliant woman is emerging from her shell. She has also been seen selling machines at a discount while eating tea and cutlets with men. She is determined to go to work, despite the estrangement with her husband. She is determined to speak English fluently. She is not satisfied with getting all her husband's earnings on the first of the month. Women's empowerment has begun. When Subrata lost his job for the second time, she returned home and worked for the house. Subrata repeatedly trusted her and later it was seen that constant conflicts and emotional tension and lack of long-term experience created various complaints about the workplace. On being 15 minutes late, barrister HN Halder's daughter rebuked her, moreover, while teaching Kamla, daughter-in-law of iron merchant Rasmoy Pramanik of Boubazar, to run the machine, she lost her temper and she complained about her. Finally, Aarti protested against the rude comments against Anglo colleague and quit the job. Work also confuses life , she fails to carry it parallely. She would have been able to balance her work and life provided she had mental support and respect for her atleast from her family members in both good and bad times.

Ruchi (Baro ghor ak uthon) is able to maintain her career and personal life parallelly; no matter what happened she did not run away. To honour Shivnath, Ruchi lies to Lakshmi about Shivnath's office name; she is ashamed that she lives in a house where neighbor Kamala runs away with a married man, Shunita shares a house with a sick man; Maina rushes to the hospital to see her dying lover, but she never shirks her duty. She went to console Dr. K Gupta's wife, Baby, despite the fear of the police as she was not being able to help her with money when she was sick. She took Maina to get admission in her

school and also gave a nice speech in the Samiti. Ruchi is successful in maintaining harmony in her career and personal life. Ruchi is very compassionate according to the boys of the 'samiti'; not money minded like Shibnath. According to Charu Roy Ruchi is highly cultured. On the other hand, when Shivnath said that he would save money from tuition and start a business, it was more important than getting out of the slum Ruchi did not argue. Shivnath wanted to buy a saree for Ruchi with the money that will be received for election assistance from the Parijat, but Ruchi wanted to spend it on calcium injections and general tonic for their daughter. Till the end of the novel, Ruchi has balanced life and work.

Arati (setar) is successful in her career and personal life and can maintain harmony in both. Then comes the day when Subimal returns home after recovery and on that day she is supposed to sing at the 'jalsa' organized on the occasion of flood relief collection at Rangmahal Theater in North Kolkata. For the first time she was praised. She felt that all purposes and duties are meaningless to an artist if she is not rewarded with praise. Someone likes her song, her sitar resonates. Her skill is also of great use. She is self-satisfied, thinking that it is waiting to be used in wider service. She wants her talent to be blessed in the service of the country. But in the end she had to give in. Until the day before her husband's return, she manages the family with one hand and plays the best music on the sitar with the other hand but all in vain. Subimal is ready to use the money she has saved for the next 3 months and he does not want Neelima to do tuitions or sing in 'Jalsa'. Previously Subimal was not enthusiastic about music but Neelima was prevented from going to Jalsa because she wanted to listen to music on the pretext of illness. Stepping into the trap of feelings, Subimal won his wife's heart. Life and personal life were no longer feudal. She would have been able to fulfil her dream provided she had the support of her husband.

In Surjomukhi, we find that even teaching was not considered an honourable profession when teachers were women.

Despite her repeated disagreements with her husband about her job, Kamala (Durabhasini) has no negative thoughts about the workplace. Even though she is married, she goes to the office dressed as unmarried. Here we get to know how modern was her mentality. She knows that every work has its own set of rules and principles and she does not want to break them, which shows her morale and devotion to work. She left her husband's house and went to her father's house when Vinay hit her but didn't leave her job.

In this novel, we also get a picture of men's opinion about the career of girls. Girin Babu, being a high caste man, accepted his daughter's job because she not only earns money but also provides the last bit for the family. According to him, it is too hectic for the girls. There is no holiday, there is no rest, they don't get even one off day in a week. 13 Again Kamala's husband Vinay's could never accept her job out of ego. His wife's employment hurts his masculinity.

The context of each of the novels mentioned above is the same. Girls are forced to work for sick husbands or family or are widows without family.

To get a job is of necessity to them. Husband and his perceptions are the biggest obstacle in balancing work life and personal life. They could not free themselves from the pride of masculinity nor could they respect the working wife and her earnings. After that, lack of family support has become the biggest obstacle for girls; their families do not support them though they take jobs for their family. The families also accept women working if it is necessary, but connot not respect that job. After the family comes the society, who too looks down upon working women. Time management too is a challenge But in this case, everyone has passed. If needed, the domestic helper has been hired. Women have worked day and night both in office and at home to manage both. It is true that the presence of a child or a sick person in the house makes it difficult for them but even in that case they did not give up, they have prioritized their work and have handed over the work that could be done by others.

Girls who could not balance career and personal life could not do so only because they did not have the full support of their husbands.

Loyalty or job satisfaction is not clearly stated, but it is certainly present, otherwise it was not possible for a girl to go to work after enduring turmoil in her family life.

Treatment of women at workplace Support from colleagues is not available as they were secondary, then women did not have many options. Earning was the main thing not the work place or the job type.

Earning to run the family and that they had their own income was the motivation.

A lot has changed with the passage of time but even today for a middle class or lower middle class woman, husband, family, society and time management take precedence when comes to work-life balance.

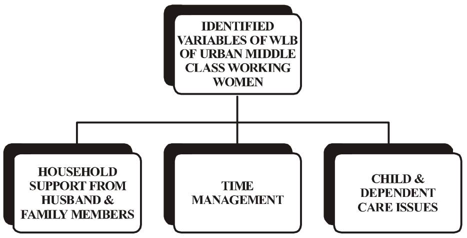

Figure 1 : Variables of wlb

Source : Constructed as part of the present study using evidence in Bengali literary works

Conclusion :

The ability of an individual to fulfil their obligations to their work, family, and other non-work-related responsibilities and activities is known as work-life balance. Giving each of these things equal time is not how you achieve balance. Instead, it is being able to devote enough time, effort, and thinking to ensure that others are content.

According to Mathew & Panchantham (2011), the main factors influencing the work-life balance of women entrepreneurs in India are role overload, dependent care concerns, health challenges, time management issues, and a lack of enough support. According to research by Jennings and McDougald (2007), family duties such home time demands, family duty level, household income, spouse support, and life course stage are contributors of work-life stress. Stress-based conflict was made worse by long working hours, working on the weekends, and needing to work extra on short notice. In their study, Deery and

Jago (2009) claimed that more widespread adoption of flexible work practises, including job sharing, flexible scheduling, working from home, and access to both paid and unpaid leave, can have a favourable impact on work-life balance .As a moderator of work-life conflict, Low and Schulenburg (2006) suggested a supportive work environment, management, and flexible work schedules. The study's conclusions showed that different factors contribute to conflict, and elements of facilitation, such as work overload, were strongly correlated with work-life conflict. In contrast, job involvement was positively correlated with work-family facilitation and negatively correlated with family-work conflict. Additionally, there is a positive correlation between family support and family-work facilitation, however there was a negative correlation between family involvement and family-work facilitation. The results also showed that work-family facilitation was substantially associated to organisational commitment and job satisfaction.(Aryee and others, 2005)Rajadhyaksha (2012) looked at factors affecting work and family concerns in India, and her findings suggested that stress management, gender equality, and flexibility are key contributors. Deepak Chawla and Neena Sondhi (2011) looked at factors affecting work and family concerns in India, and her findings suggested that Perceived Work Overload, Fairness of Rewards, Job Autonomy, Work Exhaustion, Work-Family Conflict and Turnover Intention are key contributors. According to Haddock, Zimmerman, and Ziemba (2006), having a supportive partner improves the employee's capacity to combine work and family. Therefore, it was discovered that marital assistance reduced individual role stress and improved wellbeing (Beutell and Greenhaus, 1981). Additionally, some research investigations (Allen, et al. 1998 and Wadsworth, 2003) separated the source dimensions of social support into job and non-work social support. House (1981) identified nine social support systems, including partners, spouses, family members, friends, neighbours, managers, coworkers, service providers, and professional organisations. Social support can lower work-related stress and improve both physical and mental health, according to Cassel (1976).

Thus, regarding the four WLB predictors of role overload, social support, time management issues, child and dependent care concerns, the results support the findings of prior research and empirical evidence. The study supports the idea put out in the literature (Hossain MI, 2018; Octosatrio S , 2018) that motivation is an individual WLB factor.

In general, each person has unique demands that they must satisfy by working for oneself or a chosen company. The current study looked at the factors that affect women's work-life balance in both fiction and reality and how they affect WLB. It was shown that important factors influencing WLB include role overload, social support, time management issues, child and dependent care concerns which have remained same from post partition era when women in Bengal started participating in work force till date. The results have theoretical ramifications that clarify variables influencing fictional characters are same as variables influencing real persons. Additionally, the current research fills a vacuum in WLB

research for middle-class urban married women in Bengal.

Future research in the field is advised to concentrate on Bengali literature from current period and literatures from other countries specially Bangladesh.

References :

1. Bailyn, L., Drago, R., & Kochan, T. A. (2001). *Integrating work and family life: A holistic approach.* A Report of the Sloan Work –Family Policy Network. MIT Sloan School of Management, Boston M.A.
2. Byrne, U. (2005). Work-life balance: Why are we talking about it at all? *Business Information Review, 22,* 53-59
3. Clark, S. C, (2000). Work/family border theory: A new theory of work/family balance.*Human Relations*. *53*(6), 747-770.
4. Frone, M. R. (2003) 'Work-family balance'. In: Quick, J. C., & Tetrick, L. E. (eds). *Handbook of occupational health psychology.* Washington, American Psychological Association, 143-162.
5. Clarke, M. C., Koch, L. C. & Hill, E. J. (2004) 'The work and family interface: Differentiating balance and fit'. *Family and Consumer Sciences Research Journal*, *33*(2), 121-140.
6. Burke, R. (2000). 'Do managerial men benefit from organisational values supporting work- personal life balance?'. *Women in Management Review, 15*(2), 81-87.
7. Grady, G., McCarthy, A., Darcy, C., & Kirrane, M. (2008). *Work Life Balance Policies and Initiatives in Irish Organisations: A Best Practice Management.* Cork, Oak Tree Press.
8. Greenhaus, J. H., Allen, T. D. (2006). Work–family balance: Exploration of a concept. *Paper presented at the Families and Work Conference*, Provo, UT.
9. Hill, E. J., Hawkins, A. J., Ferris, M., Weitzman, M. (2001). Finding an extra day a week: The positive effect of job flexibility on work and family life balance. *Family Relations.50*(1)*,* 49-58.
10. Jasodhara Bagchi (1993).Socialising the girl child in colonial Bengal.*Economic and Political Weekly*.28(41),2214-2219
11. Jasodhara Bagchi (1990).Representing Nationalism: Ideology of motherhood in Colonial Bengal. *Economic and Political Weekly*.25(42/43),WS65-WS71
12. Manfredi, S. & Holliday, M. (2004). Work-life balance: An audit of staff experience at Oxford Brookes University. The centre of diversity policy research: Oxford Brookes University.
13. Swami (2007). Work-life Balance: Organizational strategies for sustainable growth. *HRM Review,* 33-37.
14. Arachchige D. (2013).Work life balance: Does management care?*Proceedings of the HR Dialogue,* 5(1),22-26
15. Hossain MI. (2018) Work life balance trends: A study on Malaysian Generationy Bankers. *IOSR Journal of business and management*, 53(4),1-9
16. Archer K. (2011) Berdahl L.Explorations: Conducting empirical research in Canadian political science. *Oxford university press*
17. Smith KT. (2010) Work life balance perspectives of marketing professionals in Generation Y. *Services marketing quarterly*, 31,434-447
18. Kumarasamy MA, Pangil F, Isa MF. (2015) Individual, Organizational and Environmental factors affecting work life balance. *Asian Social Science*, 11(25),111-123
19. Kundani N, Mehta P. (2015) Identifying the factors affecting work life balance of employees in banking sector . *Indian journal of research*, 4(6), 328-331
20. Adikaram DSR, Jayatilake LVK. (2016) Impact of work life balance on employee job satisfaction in Private sector commercial banks of Sri Lanka. *International journal of scientific research and innovative technology*, 3(11)17-31
21. Otieno PA. (2016) The influence of work-life balance on job satisfaction and commitment of women employees at the commercial banks in Kisumu city. *Kenya.College of Humanities and Social Sciences*.(Chss),1-64

22. Birimisa N. (2016) Influence of flexibility on work life balance.Theses. *Rochester Institute of Technology*

23. Thompson C, Gregory JB. (2012) Managing Millennials: A framework for improving attraction, motivation, and retention. *The psychologist-Manager journal*,15,237-246

24. Khan of Sajidkirmani M. (2018) Relationship of family and work-life interface: a study of female doctor and nurses in public hospitals. *International journal of research in humanities, arts and literature*, 6(6), 403-416

25. Octosatrio S. (2018) Investigating the relationship between work-life-balance and motivation of the employees : evidences from the local Government of Jakarta. *International journal of academic research in business and social sciences,*8(2),205-221

26. Kahn, R .L., Wolfe, D. M., Quinn, R. P., Snoek, J. D., & Rosenthal, R. A. (1964). *Organizational Stress: Studies in Role Conflict and Ambiguity.* New York, Wiley.

27. Mathew, R.V., &Panchanatham. N.(2011). An Exploratory Study on the work-life balance of women Entrepreneurs in South India. *Asia Academy of Management Journal, 16*(2), 77-105.

28. Jennings, J., & McDouglas, M. (2007). Work-family interface experiences and coping strategies: Implications for entrepreneurship research and practice. *Academy of Management Review, 32*(3), 747-760.

29. Low & Schellenberg (2006). Use of Family Friendly Workplace Practices. IRPP Working Paper, number 2006-02, September 2006.

30. Deery, Margaret & Jago, L. (2009). A framework for work-life balance practices: Addressingthe of needs tourism industry. *Tourism and Hospitality Research,* 92(2), 97-108.

31. Aryee, S., Srinivas, E., & Tan, H. H. (2005). Rhythms of Life/: Antecedents and Outcomes of Work-Family Balance in Employed Parents. *Journal of Applied Psychology*, *90*(1), 132–146.

32. Rajadhyaksha, U. (2012). Work-life balance in South East Asia/: The Indian experience. *South Asian Journal of Global Business Research*, *1*(1), 108–127.

33. Chawla, D., & Sondhi, N. (2011). Assessing Work- Life Balance Among Indian Women Professionals. *The Indian Journal of Industrial Relation*, *47*(2), 341–352.

34. Health Canada. Reducing work-life conflict: what works? What doesn't? (2008). Retrieved from *Canadian Centre for Occupational Health and Safety* (CCOHS) website https://www.ccohs.ca/

35. Stein, S. J. (2007) Make your workplace great: the 7 keys to an emotionally intelligent organization. *Wiley*.

36. Bird, J. Work-life balance defined - what it really means! five steps to better work life balance. Available from worklifebalance-defined.html.

37. Loghan, G.(2002) Work-life balance in the northern Ireland civil service. The Northern Ireland Civil Service (NICS).

38. Torun, F. (2007)Work life balance: any improve for business. *GRIN Verlag*.

39. SathyanarayanaS,Gargesha,Sudhindraand BellaveLakshmi (2018),"An Empirical investigation on determinants of work life balance in IT sector: Evidence from India","Arabian Journal of business and management review (Kuwait Chapter)", Volume-7(1), ISSN:2224-8358.

40. Shanmugam, Merlin(2017),"Impact of parenthood on women's careers in the IT sector-A study in the Indian context"," Gender in management: An International Journal",Volume-32,Number-5,pp.352-368.

41. Sigroha,Anju(2014),"Impact of work life balance on working women: a comparative analysis"," The Business and Management Review",Volume-5,Number-3.

42. Scholaris, Dora and Marks, Abigail (2004)," Work-Life balance and the software worker", "Human Resource Management Journal",Vol-14,Number-2,pp.54-74.

42. Virick, Meghna, Lilly, Juliana and Casper, Wendy (2007)," An analysis of work life

balance among layoff survivors”,”Career Development International”,Vol-12, Number-5, pp. 463-480.

43. Hiramnoy Bandyopadhyay. (1970), *Udbastu. Calcutta: Sahitya Samsad*, Bengali

44. Sandip Bandyopadhyay (1994).*Deshbhag: Smriti aar Satta, Calcutta: Progressive Publishers*,

45. Prafulla Chakraborty.(1999) *The Marginal Men: The Refugees and the Left Political Syndrome in West Bengal, Calcutta: Naya Udyog*. English

46. Dipesh Chakrabarty (1998) “Remembered Villages: Representation of Hindu-Bengali Memories in the Aftermath of Partition*”, Freedom, Trauma, Continuities: Northern India and Independence.* D.A. Low and Howard Brasted eds., New Delhi: Sage Publications. DOI : 10.1080/00856409508-723247

47. Sushil Kumar Dey (1945). *Bangla Prabad, Calcutta: Sahitya Samsad*. Bengali

48. EDITORIAL (10TH MAY1960).” Purbabanger Udbastu”*, Jugantar*.

49. Indubaran Ganguly (1997), *Colony Smriti, Calcutta: Author*. Bengali

50. GOVERNMENT OF WEST BENGAL, *Five Years of Independence, August 1947-August 1952*, Calcutta: Government of West Bengal 1953.

51. Samar Guha. *Non-Muslims behind the Curtain of East Pakistan*. Dacca: East Bengal Minorities Association, no date. English

52. Asok Mitra (1953), *Census of India, 1951*, Volume VI, Part III: Calcutta, Calcutta: Government of West Bengal.

53. STATE STATISTICAL BUREAU, *Report on the Sample Survey for Estimating the Socio-Economic Characteristic of the Displaced Persons from East Bengal,* Calcutta: State Statistical Bureau, 1951.

54. Joya Chaterji, *The Spoils of Partition, Bengal and India, 1947—1967*, Cambridge: Cambridge University Press, 2007.DOI : 10.1017/CBO9780511497384

55. “Serious Unemployment in India”, *The Statesman,* 7 February 1949.

56. Sri Vishnu Sharma (5th sep-oct1950), “Satyam Priyam”. *Prabashi.*

57. Burke, R. J., & Greenglass, E. R. (1999). Work–family conflict, spouse support, and nursing staff well-being during organizational restructuring. *Journal of Occupational Health Psychology, 4*(4), 327–336. https://doi.org/10.1037/1076-8998.4.4.327

58. Haddock, Shelley & Zimmerman, Toni & Lyness, Kevin & Ziemba, Scott. (2006). Practices of Dual Earner Couples Successfully Balancing Work and Family. Journal of Family and Economic Issues. 27. 207-234. 10.1007/s10834-006-9014-y.

59. Greenhaus, Jeffrey & Beutell, Nicholas. (1985). Source of Conflict Between Work and Family Roles. The Academy of Management Review. 10. 76-88. 10.2307/258214

60. Cassel, J. (1976) The Contribution of the Social Environment to Host Resistance. American Journal of Epidemiology, 104, 107-123. http://aje.oxfordjournals.org/content/104/2/107.full.pdf+html

61. Wendy Griswold (1981). American Character and the American Novel: An Expansion of Reûection Theory in the Sociology of Literature, *American Journal of Sociology*, 86 ,740.

62. Ruth A. Inglis (1938), An Objective Approach to the Relationship between Fiction and Society, *American Sociological Review,* 3, 526.

63. Penny Summereld (2004), Culture and Composure: Creating Narratives of the Gendered Self in Oral History Interviews, *Cultural and Social History*, 1,65.

64. James Thompson (Durham, 1996), Models of Value: Eighteenth-Century Political Economy and the Novel ,212.

65. Tithi Bhattacharya (2005). The sentinels of culture: Class, Education, and the Colonial Intellectual in Bengal (1948-85). Delhi, Oxford : OUP,64-65

66. Paul Hamilton(2002). Historicism, *London. New York, Routledge*.141

67. Hans Bertens (2001) .Literary Theory. London, New York Routledge.176

68. Christine Anthonissen (2001). On the Eectivity of Media Censorship: An Analysis of Linguistic, Paralinguistic and Other Communicative Devices Used to Defy Media Restrictions. *unpublished PhD dissertation*, *University of Vienna*.

69. Jane Mulderrig (2011).Manufacturing Consent: A corpus-based critical discourse analysis of New Labour's educational governance. *Educational Philosophy and Theory*. 43,562.

70. Teun A. Van Dijk(1993), Principles of Critical Discourse Analysis, Discourse & Society. 4 ,249.

71. House, J. S. Work stress and social support. Mass: Addison Wile. 1981.

72. Cassel, J. Social support as a moderator of life stress. Psychosomatic Medicine. 1976; 38: 300-314.

73. Hobson, C.J., Delunas, L. and Kesic, D. Compelling evidence of the need for corporate work-life balance initiatives: results from a national survey of stressful life-events. Journal of Employment Counselling. 2001; 38: 38-44.

74. Wadsworth, L. L. The application of role-identity salience to the study of social support and work-family interaction. The university of Utah. Unpublished doctoral dissertation. 2003.

APPENDIX-1
Narrations Found in Literary Works

Abotoronika by Narendranath Mitra

P-122

N1 : Sarojini looked at her son and said, "It seems that our queen has come. At eight o'clock in the night, she remembered house and family. For two days, she has not even noticed the fever of her daughter".

N2 : P-Priyagopal Babu said, 'I never knew that a descent wife of a householder stays out till this night…'

P-137

N3 : You either have to quit your job or you have to leave me…..

P-140

N4 : Before going out for office Subrata helps his wife in cooking and household chores.

P-129

N5 : But after two weeks, Aarti showed Subrata how to really work... As soon as the journey of the day starts, Aarti's preparations for going to the office start too. In the morning, she takes a bath, quickly serves tea and glances at the newspaper. The responsibility of cooking food inevitably fell upon Sarojini. Aarti sometimes goes to kitchen for helping with chopping of vegetables and fish. She does what she used to do before taking the job. Sarojini has to take the main responsibility of cooking.

After serving food to Subrata quickly, Aarti sits at the same place, calls Sarojini and asks her to serve whatever has been cooked. Now no more rice is left on Aarti's plate. She eats faster than Subrata, if it is late, she sits down with another plate next to him....

P-128

N6 : One-year-old son Bablu is repeatedly jumping from his cousin's lap to go to his mother. Meanwhile, three-year-old daughter Mandira comes and grabs Aarti's saree in her fist. "I will go to work, mother, take me along with you."

P-129

N7 : Cries of children were heard from beyond the lane to the main road. Even sitting side by side in the tram with her husband, the sound of these cries started ringing in Aarti's ears.

Baro Ghor Ak Uthon By Jyotirindro Nandi

P-340

N8 : "....I have to teach at school from ten till five o'clock. Even after returning from school, I have to do this and that at home. I have to see that whether I have money after keeping aside market expenses for

the next day, for going to school and for managing Manju's tiffin. For those who have to go to sleep with the thought of stocking up on pulses and curries, it goes without saying that the ideal vision is not preserved - at least in this state people cannot.

Setar by Narendranath Mitra

P-45

N9 : Neelima gets up early in the morning before anyone else in the house wakes up and sits down to clear her throat. The work of the family goes on throughout the day. Some days when she gets free in the afternoon, she plays the harmonium with music and keeps her hands and throat busy, Neelima tries to brush up her knowledge. Even when dinners are complete at early hours music is practised in her room.

P-51

N10 : Neelima cleaned the house with one hand, decorated the house, but the other hand remained on the string of her sitar. She played sitar between her household chores to show her greatest skill of music and artistry.

Surjomukhi by Jyotirindro Nandi

P-107

N11 : "I'm not saying that working is bad. All the girls in civilized countries are doing it. They'll do it if they have to. Not now. ..."

Durobhasini by Narendranath Mitra

P-20

N12 : It is too hectic for the girls. There is no holiday, there is no rest, they don't get even one off day in a week.

P-112

N13 : Binay thought, "His income is not enough to buy all the happiness for Kamala

P-113

N14 : This simple recognition from his wife did not let Vinay to feel good. Inside he was very unhappy and even felt insulted. Vinay has fixed schedule.But that's not the case with Kamala. She doesn't have leisure time. Her schedule changes from week to week. Sometimes in the morning, sometimes in the afternoon, sometimes in the evening.Even sometimes she has night duty too.

P-113

N15 : If you have time after household chores, morning cooking, then go for job, if not, don't do it, at this age mother will burn her hands cooking and you will work, I dont want you to do that job.

P-113

N16 : You need money; I will bring you money from where ever I can. I will give tuitions to two as before. I will do insurance brokering. Even then if I cannot manage I will steal but I will be happy that my wife will remain house wife. Your mind has hardened, you have become money minded. You are losing your tenderness. tenderness I don't want it

APPENDIX-2

The Bengal Region

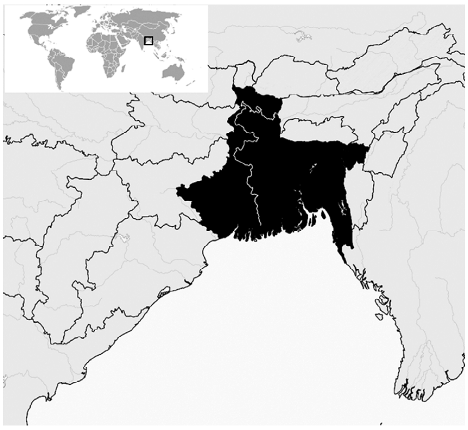

Source: https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Map_of_Bengal.svg

'कवितावली में वर्णित शंकर-स्तवन का भाव'

प्रो॰ राजेश तिवारी
हिन्दी विभाग
डी॰ए॰वी॰ कॉलेज, कानपुर, उत्तर प्रदेश

कु॰ शालिनी
पी॰एच॰डी॰ शोध छात्रा, हिन्दी विभाग
डी॰ए॰वी॰ कॉलेज, कानपुर, उत्तर प्रदेश

Corresponding Author :
कु॰ शालिनी
E-mail : shalinikumari788@gmail.com

बीजक शब्द

शरणागति, आकर्षण, उपादेयता, अखण्ड, आत्मिक।

परिचय :

'कवितावली' गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा रचित भक्तिकाल की प्रसिद्ध रचना है। डॉ॰ उदय भानु सिंह के अनुसार गोस्वामी तुलसीदास जी ने सं0 1631-80 के बीच कवितावली की रचना की है। जिसकी भाषा ब्रजभाषा है। 'कवितावली' का उत्तरकाण्ड सबसे अधिक व्यापक एवं उनकी गहन आत्मीयता से सम्बद्ध है। इस कृति की रचना का मन्तव्य आत्मबोध एवं यथार्थ की अभिव्यक्ति के साथ-साथ माया की गहन संसक्ति से जकड़े जीव (लोक) की जागृति की समस्या से सम्बद्ध है। तुलसीदास आत्मबोध एवं लोक दोनों के यथार्थ संकट, व्यथा तथा उन सबसे मुक्ति की चर्चा निरन्तर कवितावली के 'शंकर-स्तवन' खण्ड में किया है, जिसका अखण्ड आरम्भ वह उनके स्वरूप निरूपण से करते हैं। शिव का स्वरूप कैसा है?

भस्म अंग, मर्दन अनंग, संतत असंग हर।
सीस गंग, गिरिजा अर्धंग, भूषन भुजंगबर।।
मुंडमाल, बिधु बाल भाल, डमरू कपालु कर।
बिबुधबृंद-नवकुमुद-चंद सुखकंद सूलधर।।
त्रिपुरारि, त्रिलोचन, दिग्बसन बिषभोजन, भवभयहरन।
कह तुलसिदासु सेवत सुलभ सिव सिव सिव संकर सरन।।[1]

शंकर अर्थात् 'शुभ'। शंकर की शरणागति का भाव है- 'शुभता का विस्तार' क्योंकि जहाँ शंकर हैं वहाँ मंगल है, मानवता का मंगल। शंकर अपने शरीर पर भस्म रमाते हैं, वस्त्र के समान भस्म को धारण करते हैं एवं संसार को यह संदेश देते हैं कि राख या भस्म ही इस जगत् का अंतिम सत्य है। सभी तरह के शारीरिक आकर्षण से ऊपर उठकर ही मनुष्य जीवन की मंगल कामना की जा सकती हैं। शंकर कमदेव का मर्दन करने वाले हैं, जीवन में जब तक कामवासना रहेगी तब तक उसका मंगल होगा ही नहीं। वासना अपूर्णता का प्रतीक है, इसकी उपस्थिति में मनुष्य संतुष्टि को नहीं प्राप्त कर पाता, उसकी इच्छापूर्ति कभी होगी ही नहीं। इसका एक प्रमुख कारण संग भी है। शिव सर्वदा असंग हैं। संग सभी समस्याओं की जड़ हैं। असंग रहने में आत्मउत्थान का भाव निहित हैं। शंकर जी ने अपने मस्तक पर गंगा को धारण किया है। गंगा अर्थात् शीतलता को धारण किया है अतः भाव यह है कि जो शीतलता को

धारण करेगा वह सर्वतोभावेन उन्नति के शीर्ष पर पहुँचता हैं। मस्तिष्क की तपन विवेक का हरण कर लेती है और विवेक शून्य व्यक्ति से प्रगति बहुत दूर हो जाती हैं। उनके अर्धाङ्ग में पार्वती जी हैं, जिस कारण उन्हें अर्द्धनारीश्वर कहा जाता है। यह स्वरूप प्रतीक है सत्य का जो जीवन के दो पहलू हैं। नारी-नर के एवं नर-नारी के बिना अधूरा है। यह सम्पूर्णता को दर्शाता हैं। पुरुष और प्रकृति से मिलकर ही सृष्टि का संचालन होता है, शंकर जी ने गले में रूप धारण किया है यही उनके आभूषण हैं। वह भुजगेन्द्रहार को धारण करने वाले हैं। शंकर काल को पराजित कर देते हैं। उनके गले में मुण्डमाला है, जिसका भाव है शरीरनिष्ठ होने की चाह से मुक्ति। स्वरूप बोध की शिक्षा शरीर परिवर्तनशील है निरंतर मृत्यु की ओर बढ़ता है। उनके मस्तक पर चन्द्रमा विराजमान हैं। चन्द्रमा मन का प्रतीक है। चन्द्रमा शीतल है व शंकर उष्म दोनों का स्वभाव विपरीत है लेकिन शंकर जी ने चन्द्रमा को अपने शीर्ष पर धारण किया और समन्वय का भाव स्थापित किया। समन्वय एक अच्छे राष्ट्र की अनिवार्य शर्त हैं। उनके हाथों में डमरू और कपाल सुशोभित हैं। डमरू का अर्थ है 'नादः'। साकारात्मक ऊर्जा का नाद। **'शब्दम् गुणम् आकाश'** आकाश का गुण शब्द है और वह शब्द शंकर जी के द्वारा धारण करने वाले डमरू के नाद से निकल मनुष्य को साकारात्मक ऊर्जा से भर देता है। वह शूलधारी है। यह शूल कोई शस्त्र नहीं है। यह प्रतीक है एकत्व का क्योंकित सतह पर असंख्य भाव वस्तु और विचार हो लेकिन भीतर गहराई में सब कुछ एक होना चाहिए। एकत्व का विचार मंगलकारी हैं। शंकर जी कल्याण की परिसीमा हैं वह सुख के दाता हैं। आज प्रत्येक मनुष्य भागम-भाग में लगा अपना जीवन जी रहा है। आनन्द उसके जीवन से बहुत दूर हैं वह वास्तविक सुख की पहचान खो बैठा हैं, जिसकी प्राप्ति शंकर-स्तवन से ही संभव हैं। गोस्वामी तुलसी दास ने शंकर-स्तवन के प्रयोजन से जिन पदों की रचना की है वह कल्याणकारी, मंगलकारी एवं सर्वतोभावेन उत्कर्ष के शिखर पर पहुँचने का भाव हैं। शिव आसुरी शक्ति के शत्रु तीन नेत्रों वाले त्रिकालदर्शी हैं। उनके तीसरे नेत्र से सूक्ष्म से सूक्ष्म कण परिचित है। वह विस्तार का प्रतीक है। वह दिगम्बर है, जिसके वस्त्र स्वयं चारों दिशा हैं अर्थात् दिखावे से कोशों दूर का व्यक्तित्व जो स्वयं में पूर्ण है। वह विषभोजी अर्थात् विष का पान करने वाले हैं। अतः स्वयं समस्याओं का पान कर परिवार समाज और राष्ट्र को विषमुक्त करने की चाह शिवत्व हैं। आज मनुष्य तमाम प्रकार के भय से ग्रसित है। शंकर जी भय का समूल नाश करने वाले हैं जहाँ शंकर हैं वहाँ भय लेशमात्र भी स्थान प्राप्त नहीं कर सकता है। अतः ऐसे स्वरूप को धारण करने वाले शंकर जी की शरणागति मानवता के मंगलभाव की शरणागति है। वह मानव के परम रक्षक हैं। मानवता के रक्षक हैं। उनके द्वारा धारण करने वाली सभी विभूतियों की उपादेयता मनुष्य का कल्याण और उसका सुख है। कवितावली में उनके महान उपासक गोस्वामी तुलसीदास ने जो शंकर-स्तवन का भाव समज को प्रदान किया है उसको आत्मसात करने में संसार का मंगल ही मंगल है। यही शिवत्व का जागरण है। शिव भोले है वह भाव का भोग करते हैं और वन्दना करने मात्र से जिनका मन प्रसन्न हो जाता है, उनका स्तवन कल्याणप्रद है-

वन्दे वन्दनतुष्टमानसमति प्रेमप्रियं प्रेमदं
पूर्ण पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्यैकवासं शिवम्।
सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं
विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपत्ता कृति शकरम्।।[2]

मनुष्य की वाणी सुखकारी हो ऐसा प्रयास करना चाहिए, क्योंकि सभी प्रकार के सुखदाता मंगलकारी भावों के प्रदाता शंकर केवल वन्दना करने मात्र से प्रसन्न हो जाते हैं। उन्हें प्रेम अत्यंत प्रिय हैं। वह प्रेम की भक्ति स्वीकार करते हैं। इस प्रकार से प्रेम किया जाए कि जीवन अमृतमय हो जाए। वह प्रेम प्रदान करने वाले हैं पूर्णानन्दमय है। आनन्द के स्वामी हैं। स्वयं गरल का पान कर संसार को अमृत देने वाले हैं। अमृत अर्थात 'आनन्द'। आनन्दित मनुष्य अपने

व्यक्तित्व का सर्वतोभावेन विस्तार करने में विश्वास रखता है। उसके विस्तार में संसार का आनन्द निहित हैं। इस प्रकार व सम्पूर्ण ऐश्वर्यो के दाता, भक्तों की अभिलाषा को पूर्ण करने वाले हैं। मनुष्य हर प्रकार के भोगों से लिप्त अपना जीवन निरूद्देश्य रूप से व्यतीत कर रहा हैं। अतः जीवन को एक सही दिशा में सोद्देश्य पूर्ण बनाना ही शिवत्व की प्रासंगिकता एवं जागरण हैं। शिवत्व की शरणागति के परिणामस्वरूप वर्तमान में अवसाद की ओर ले जाने वाली समग्र क्रियाओं से मुक्ति और आनन्द की स्थापना निश्चित है। आज हर जगह स्वार्थ ने अपना स्थान बना लिया है कोई किसी के भाव का आदर नहीं करता, लेशमात्र भी कष्ट नहीं सहता, ऐसे समाज को पतन से बचाने के लिए शंकर के चरित्र को आत्मसात करना चाहिए, जिन्होंने सम्पूर्ण सृष्टि के मंगल के लिए विष पान कर लिया। शंकर भक्त गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं-

''गरल-असन दिगबसन ब्यसनभंजन जनरंजन।
कुंद-इंदु-कर्पूर-गौर सच्चिदानंदघन।।''[3]

शंकर जी ने गरल का पान करके विश्व को विषमुक्त करने का महान कार्य किया। हमें उनके चरित्र से प्रेरणा लेकर जीवन को सुखकारी बनाना चाहिए। हम प्रयास करें कि गरल रूपी असन यदि स्वयं पान करना पड़े तो हम पीछे न हटें। अकर्म रूपी गरल से बचें और राष्ट्र हीत की बात करें। रामचरितमानस में भी यही भाव प्रकट हुआ है-

गरल कंठ उर नर सिर माला।
असिव बेष शिव धामकृपाला।।[4]

शिव जी के कण्ठ में गरल हैं स्वयं समस्याओं के गरल का पान कर परिवार समाज और राष्ट्र को गरल मुक्त करने की चाह शिवत्व है। शिव दिगम्बर है दिशाएँ ही जिसका अंबर है। वह सभी व्यसन के भंजन हैं अर्थात् नाश करने वाले हैं। वह विश्व को व्यसनमुक्ति का मार्ग दिखाते हैं। आज हम व्यसन में लिप्त भोगी जीवन की चाह करते हैं उसी में रमे अपने विनाश की ओर बढ़ रहे हैं। स्त्री-पुरुष कोई इस व्यसन रूपी व्याल से बचा नहीं है। वह हर प्रकार से अपना पतन कर रहा है। मनुष्य अपने पतन का कारण स्वयह बन रहा स्वास्थ्य का पतन, व्यक्तित्व का पतन, चरित्र का पतन आदि के ओर वह तेजी से बढ़ रहा है। अतः आत्मरक्षा के लिए हमें तुलसीदास जी के शंकर-स्तवन के भाव की शरणागति करनी होगी। शंकर जी के चरित्र को आत्मसात करना होगा तभी हमारा कल्याण है अन्यथा हम अपने विनाश से बच नहीं सकते जीवन के विनाश से भयावह है चरित्र का विनाश मानवता का विनाश, अपनत्व का विनाश, परोपकारी भाव का विनाश। शिव से बड़ा कोई विश्व में परोपकारी नहीं है। वह जनरंजन है। जन के कल्याण के प्रतीक हैं। वह जन के आनंद हैं। मानव जीवन प्राप्त करना अनुपम वरदान है। अगणित योनियों में भ्रमण करने के पश्चात् यह मनुष्य जीवन मिलता है। पेट-पालने और सुख-चैन के साधन जुटाने की सुविधा एवं प्रतिभा तो पशु-पक्षियों को भी प्राप्त है। मनुष्य जीवन की सार्थकता यह है कि वह विवेकवान, संयमी, सद्गुणी और उदार बनें। अपना आत्मिक स्तर ऊँचार उठाते हुए, अपूर्णता से पूर्णता की ओर चले। इस दिशा में जितनी प्रगति होगी, उतना ही उसका जीवन सार्थक माना जाएगा। आत्मिक विभूतियों की अभिवृद्धि इस बात पर निर्भर है कि वह दूसरों के साथ कितना उदार व्यवहार करता है? आत्मिक सद्गुणों में आत्मसंयम और परोपकार- ये दो ही प्रधान हैं शिव दोनों के दाता हैं। शिव से बड़ा कोई परोपकारी नहीं वहं स्वयं निर्वस्त्र रहते हैं लेकिन संसार को देने का भाव उनमें सबसे प्रबल हैं।

जनता का उनसे बड़ा हितैषी कोई दूसरा नहीं। वह कुन्द के पुष्प, चन्द्रमा और कपूर के समान गौरवर्ण वाले हैं। गौरवर्ण प्रतीक है सात्विकता का। सात्विक चरित्र शिव होता है। वह अपनी आचरण की सभ्यता से परिवार समाज और राष्ट्र के साथ-साथ अपना भी कल्याण करता है। यदि वर्तमान समय की बात की जाए तो सात्त्विकता आचरण में न्यून है। यही कारण है मनुष्य का मन नाना प्रकार की उथल-

पुथल से भरा जीवन के सही अभीष्ट को नहीं प्राप्त कर पाता है अपने अभीष्ट को प्राप्त करने के लिए शंकर सा मांगलिक बनना पड़ेगा। जो उनके शरणागत से ही संभव है। अखण्ड शिवरूपी अमृत का पान करने वाले गोस्वामी तुलसीदास जी ने शिव महिमा का गायन करते हुए कहा-

कर कपाल, सिर मालब्याल, बिष-भूति-बिभूषण नाम सुद्ध, अबिरूद्ध, अमर, अनवध, अदूषन।[5]

अर्थात् 'जिनके हाथ में कपाल सिर पर चन्द्र गले को सर्पों की माला और शरीर में हलाहल विष तथा भस्म ही उनकी शोभा है।' शंकर किसी भी चीज का त्याग नहीं करते सब उन्हें प्रिय है वह सबका स्वीकार करते हैं। सबको प्रयोजनीय बनाते हैं। उन्होंने कपाल जैसे त्याज्य वस्तु को भी स्वीकार कर उसे धारण किया तथा विश्व को संदेश दिया कि वह सृष्टि के प्रत्येक कण को स्वीकार कर श्रेष्ठता को प्राप्त करें और अपना जीवन परमार्थिक लक्ष्य की ओर अग्रसर करें। वह सर्पो की माला तथा विष को धारण करने वाले हैं। भस्म रमाने वाले हैं पर फिर भी वह शुद्ध, अविरूद्ध, अमर, अमल तथा निर्दोष हैं कारण उनका सम्पूर्ण अस्तित्व परमार्थ के लिए समर्पित हैं। मनुष्य भी परमार्थी बनें, ऐसी भावना गोस्वामी तुलसीदास ने 'कवितावली' के 'शंकर-स्तवन' खण्ड में प्रस्तुत की है। शुद्ध मन ही संसार में श्रेष्ठकर है। वही मंगल का कारक हैं। सभी के मंगल की कामना को हृदयगम्य एवं आत्मसात करना होगा तभी मनुष्य निर्दोषी बनेगा। अपने सभी दोषों का नाश शिवत्व के जागरण से ही संभव हैं।

'शंकर' का अर्थ है 'कल्याण करने वाला' अतः शंकर का कार्य केवल सृष्टि का कल्याण करना है। जैसे संसार में लोग अन्नक्षेत्र खोलते हैं, ऐसे ही भगवान शंकर ने मुक्ति का क्षेत्र खोल रखा है। वह मुक्ति के दाता हैं-

मुक्तिजन्म महि जानि ग्यान खानि अघ हानिकर। जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइअ कसन।।[6]

'मोक्ष की जन्मभूमि, ज्ञान की खान और पापों का नाश करने वाली जानकार जहाँ शिव-पार्वती जी निवास करते हैं उस काशीपुरी की सेवा क्यों न कीजिए? अर्थात् अवश्य ही काशी का सेवन करना चाहिए।' काशी संगीत, कला और ज्ञान व्यापार का मुख्य केन्द्र रहा। काशी की अद्भुत महिमा है। यहाँ जीवन जीवन्त रूप से जीने की पद्धति है। यहाँ शिव स्वयं अम्बा के साथ निवास करते हैं यह तपोभूमि हैं। शिव के शिवत्व को जानना है तो काशी को जानना परम आवश्यक हैं। यह परम मंगलकारी हैं। कवितावली में भी गोस्वामी तुलसीदास इसी भाव को प्रकट करते हैं-

मंगल की रासि, परमाथ की खानि जानि
बिरचि बनाई बिधि केसव बसाई हैं।[7]

'अर्थात् विधाता ने काशी को मंगल की राशि और परमार्थ की खानि जानकर रचा है और श्री विष्णुजी ने उसे बसाया है। शास्त्र में भी आता है- **काशीमरणान्मुक्तिः।**

'अल्बर्ट आइंस्टीन' ने कहा था कि ''वेस्टर्न साइंसेस इण्डियन मैथमैटिक्स के बिना एक कदम भी नहीं बढ़ सकता और वह मैथमैटिक्स इसी जगह (काशी) पैदा हुआ। हजारों सालों से पुरी दुनियाँ से लोग यहाँ आते रहे हैं। गौतम बुद्ध ने अपनी पहली शिक्षा भी यहीं आकर दीं। अगर मनुष्य भारत में जन्म लेता हैं तो काशी की यात्रा, दर्शन और सेवा उसका पहला सपना होना चाहिए। काशी रस्मों से भरी हैं। यह अनुष्ठानों का केन्द्र रही हैं। भीतरी प्रक्रिया करने से ज्यादा श्रेष्ठ कुछ नहीं होता स्वयं को जानने की वह सबसे अच्छी प्रक्रिया है स्वयं को जानना एक अनुष्ठान है, जिसे सप्तऋषि पूजा कहते हैं। सप्तऋषि यानी वो सात ऋषि जो शिव के पहले शिष्य थे। शिव के शिवत्व रूपी संदेश को फैलाने के लिए वह दूर जाने वाले थे। दूसरों को शायद इसका एहसास न हो किन्तु यह जीवित सच्चाई है शिव ध्यान का प्रतीक है और काशी ध्यान का प्रमाण। शिव विलक्षण है। उनसा पूरे ब्रह्माण्ड में कोई दूसरा

नहीं है। उनसा परोपकारी कोई नहीं उनसा कोई दानी नहीं। तुलसीदास जी कहते हैं-

दानि जो चारि पदारथको, त्रिपुरारि,
तिहूँ पुरमें सिर टीको।
भोरो भलो, भले भायको भूखो,
भलोई कियो सुमिरें तुलसी कों॥
ता बिनु आसको दास भयो, कबहुँ
न मिट्यो लघु लालचु जी को।
साधो कहा करि साधन तै, जो पै
राधौ नहि पति पारबती को॥[8]

शिव पुरुषार्थ के दाता हैं पुरुषार्थ अर्थात् मनुष्य जिसकी याचना करें। अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष- इन चोरों पदार्थ के दाता हैं। पुरुषार्थ पर ही मनुष्य का मंगल टिका है। इन धर्मरूपी वृक्ष के मूल शिव है-

मूलं धर्मतरो र्विवेकजलधेः।[9]

धर्म शब्द में जो भाव हैं, जो ऊँचाई हैं, जो गहराई हैं, जो दिव्यता हैं वह अन्य नहीं हैं। धर्म वह जिसका आचरण करने से मनुष्य को मनुष्य से से प्रेम हो जाए। सबके कल्याण की बात धर्म की बात हैं। सबमें सम्पूर्ण सृष्टि आ गई। प्रकृति-पुरुष का संयोग आ गया। समन्वय का भाव आ गया। हमें धर्म को शिव के रूप में समझने की परम आवश्यकता है। धर्म के मार्ग पर चलना और उससे अर्थ की प्राप्ति करना श्रेष्ठ है। इससे धन में वृद्धि होती है। श्रेष्ठ व्यक्ति धर्म के मार्ग पर चलकर धन अर्जित करता है और अपने व्यक्तित्व का विस्तार करता है। काम का अर्थ है- सांसारिक सुख और मोक्ष का अर्थ है सांसारिक सुख-दुःख और बन्धनों से मुक्ति। यह दोनों पुरुषार्थ काम और मोक्ष के साधन हैं। अर्थ से काम और धर्म से मोक्ष साधा जाता है। यह साधना के स्तर पर किया जाए तो विश्व मंगल होगा। त्रिपुरासुर का वध करने वाले शंकर तीनों लोकों के स्वमी हैं। त्रिपुरासुर का वध असंभव था किन्तु शिव से सम्भव किया ऐसे ही शंकर मनुष्य के प्रयासों को भी सम्भव में परिवर्तित करके उसका मंगल करते हैं। वह बहुत भोले हैं। शुद्ध भाव मात्र से वह प्रसन्न हो संसार का कल्याण करते हैं, जिनके स्मरण मात्र से मनुष्य कष्टों से मुक्त हो जाता है। शिव की शरणागति ही परमसुखकारी हैं। शिव सबके स्वामी हैं- वह भूतनाथ कहलाते हैं। शिव-स्तवन में निरंतर स्वयं को लगाए रहने वाले गोस्वामी तुलसीदास लिखते हैं-

भूतनाथ भयहरन भीम भयभवन भूमिधर
भानुमंत भंगवंत भूतिभूषन भुजंगबार।[10]

अर्थात् 'जो भूतों के स्वामी, सब प्रकार के भय दूर करने वाले, भयंकर भय के आश्रय स्थान भूमि को धारण करने वाले हैं। शिव भूतों के भी स्वामी हैं', इसलिए नाट्य मण्डल में भी सबसे पहले भूतगणों के शिव की स्थापना का विधान हैं-

'आदौ निवेश्यो भगवन सार्धं भूतगणैः शिवः।[11]

शंकर भय का हरण कर लेते हैं। वह अभय हैं, आज मनुष्य का सबसे बड़ा भय है- अविश्वास। शिव विश्वास के प्रतिरूप हैं-

'भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।'[12]

शिव समस्त जगत् के स्वामी एवं भर्ता हैं। वह मनुष्य जीव-जन्तु एवं वनस्पति सबके भरण पोषण का भार वहन करते हैं। वह भूमि को धारण करने वाले हैं। पशु विलक्षण परात्पर परब्रह्म परमेश्वर का नाम शिव हैं। पाश-संयुक्त पशुतुल्य अशिव जीवों को पाशमुक्त करने वाली उपासना शिवोपासना हैं-

अशिवाः पाशसंयुक्ताः पशवः सर्वचेतना।
यस्माद विलक्षणास्तेभ्यस्तरस्मादीशः शिवः स्मृतः॥[13]

विकसित व्यक्ति समाज के लिए और सुन्दर समाज व्यक्तियों के लिए उपयोगी हैं। व्यक्ति और समाज का विभाजन उसी प्रकार हैं, जिस प्रकर शरीर और उसके अवयवों का विभाजन। कोई अवयव पूरा शरीर नहीं है पर प्रत्येक अवयव शरीर से अभिन्न हैं उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति समाज से भिन्न भी है और अभिन्न भी। इसलिए उसे शिवत्व को धारण करके समस्त संसार के मुक्ति की कल्पना को सत्य एवं

शाश्वत करने का प्रयास करना चाहिए, क्योंकि सत्य हर प्रश्न का उत्तर है, हर समस्या का समाधान हैं।

सूर्य का उदय होना जितना निश्चित है, उतना ही यह भी निश्चित है कि मध्याह्न के उपरांत वह ढलेगा और धीरे-धीरे अस्ताचल की गोद में पहुँचकर मुँह छिपा लेगा। मृत्यु शाश्वत सत्य है। मृत्यु निश्चित है। अन्यान्य की तरह अपनी भी मृत्यु के सत्य को स्वीकार कर लेता है, तो वह जीवन के श्रेष्ठतर सदुपयोग की बात सोची जा सकती है। इस प्रकार मृत्यु की सुनिश्चित पर विश्वास करने के उपरान्त दृष्टिकोण में भारी परिवर्तन होता है। यह विचारधारा समान रूप से बनी रहे तो, व्यक्ति अधिकाधिक शालीनता और उदारता अपनाता है।

सज्जन और परमार्थपरायण बनता है। मृत्यु का स्मरण करके किसी को घबराने की आवश्यकता नहीं है, जो सुनिश्चित हैं उसके लिए समय रहते तैयारी करना बुद्धिमानी है। समय ही जीवन है। एक-एक पल को हीरे-मोतियों से भी बढ़कर मानना चाहिए और उसका श्रेष्ठतम सदुपयोग बन पड़े इसका प्रयत्न करना चाहिए। जिसने यह कर लिया, समझना चाहिए कि उसने मृत्यु को जीत लिया। जीतने का तात्पर्य है लाभ उठा लिया। शंकर-स्तवन में प्रतिपल रमे रहने वाले गोस्वामी तुलसीदास ने मृत्यु को अपने अराध्य से स्वयं माँगा-

जीनेकी न लालया दयाल महादेव! मोहि
मालुम है तोहि मरिबेईको रहतु हैं।[14]

गोस्वामी जी ने मृत्यु को जीत लिया था अर्थात् अपने जीवन का लाभ उठा लिया था तत्पश्चात् उन्होंने स्वयं शंकर से अपने मृत्यु की याचना की। यह भाव शिवत्व के अराधना से ही संभव है। सत्य का बोध शिवत्व की शरणागति से ही संभव है। सत्यबोध हर समस्या का समाधान है। काशी में वह मृत्यु की इच्छा से रहने की बात करते हैं। काशी मोक्षदायिनी है। यहाँ शिव मनुष्य को स्वयं में आत्मसात् कर लेते हैं और उसे मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। जीव मात्र में जैसे मनुष्य श्रेष्ठ है वैसे ही तीर्थों में काशी श्रेष्ठ है, क्योंकि काशी साक्षात् करुणामयी अलौकिक मूर्ति हैं। जहाँ प्राणीमात्र सुखपूर्वक देह त्याग कर उसी समय विश्वेश्वर के ज्ञानरूप ज्योति में प्रवेश कर तद्रूप कैवल्यपद को प्राप्त करते हैं।

येषां कापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसीपुरी।
अमर मरणं सर्वे वाञ्छन्तीह परे च के।।
भुक्तिमुक्तिप्रदा चौसा सर्वदा शंकर प्रिया।।[15]

अर्थात् शिवपुराण में भी उल्लेख मिलता है कि जिन प्राणियों को कहीं भी गति नहीं मिलती उनकी गति वाराणसीपुरी में होती है। देवगण भी यहाँ मृत्यु प्राप्त करने की इच्छा करते हैं तो औरों की बात ही क्या है, के भुक्ति-मुक्ति प्रदायिनी यह काशी भगवान शंकर को सर्वदा प्रिय हैं। अतः शंकर के शाश्वत शरणागत तुलसीदास काशी के मंगलदायी अमृत का पान करके उनके प्रेमप्रियत्व को प्राप्त कर अपना उद्धार करते हैं। शिव उद्धारक हैं। अतः उनकी शरणागति, उनका स्तवन हैं। जिसका जागरण सदैव समाज एवं राष्ट्र के मंगल का जागरण है।

अतः गोस्वामी तुलसीदास द्वारा उनकी सुप्रसिद्ध रचना 'कवितावली' में की गई 'शंकर स्तवन' की प्रत्येक पंक्ति के एक-एक शब्द में विश्व मंगल की कामना है, जिसका स्तवन गोस्वामी तुलसीदास जी ने किया है। उनका स्वरूप विश्व में अखण्ड कल्याण का परिचायक हैं। आज वर्तमान समय में हर व्यक्ति उन्नति की इच्छा रखता हुआ जाने-अनजाने अपनी अवनति की ओर द्रुत गति से बढ़ रहा है, जिसके परिणामस्वरूप वह मानवता से विमुख होता हुआ भौतिक आडम्बर में सुख ढूंढ रहा है, जो कि उसे कभी प्राप्त नहीं हो सकता है, क्योंकि सुख त्याग में है, जो व्यक्ति वस्तु को सुख मानता है उसे वास्तविक सुख कभी प्राप्त ही नहीं होता है। अतः शंकर का अभिवादन विश्व के कल्याण का एकमात्र मार्ग है।

शिवलोकवासी पं॰ श्री मदनमोहन जी ने निम्नलिखित सूक्ति को जीवन का आधार बताया है-

"असारे खलु संसारे सारमेतच्चतुष्टयम्।
काश्या वासः संता संगो गंगाम्भः शिवपूजनम्।।[16]

अर्थात् इस असार संसार में यही चार बातें सार हैं- काशी का निवास, महात्माओं का संग, गंगाजल का सेवन और शिव का पूजन। यह चार बातें चार सत्य हैं, जिस पर मनुष्य का कल्याण टिका है। काशी प्रतीक है पवित्रता का, निस्वार्थ जीवन शैली का, परोपकारी व्यक्तित्व का, यहाँ लोग शरण लेना चाहते हैं। क्षणकर के लिए भी छोड़ना नहीं चाहते।

अतः काशी शिव की नगरी है। यहाँ का मरण भी किस प्रकार मंगलजनक होकर आध्यात्मिक तत्वज्ञान की प्राप्ति कराने में समर्थ है यह जान लेना ही शिवत्व का स्तवन तथा जागरण है। शिव को जानना है तो महात्माओं का संग परम आवश्यक है। महात्मा सत्य पर आरुण होता है सत्य शाश्वत है, वह शिवत्व का अंग है अतः संतों का सानिध्य कल्याणकारी होता है। गंगा प्रतीक हैं शीतलता का शीतलता स्थायित्व प्रदान करती है। भौतिक स्थायित्व प्रदान करती है। भौतिक विचार के पीछे गतिमान मनुष्य आन्तरिक सुख की प्राप्ति कर स्थायित्व प्राप्त करता है वह भागमभाग एवं दिखावे की दुनिया का त्यागकर शंकर स्तवन में प्रतिस्थापित होता है अपने अभीष्ट उद्देश्य को प्राप्त करता है। अतः 'कवितावली' में वर्णित शंकर स्तवन का भाव सर्वतोभावेन विश्व के कल्याण का स्तवन हैं।

सन्दर्भ :

1. 'कवितावली', गोस्वामी तुलसीदास, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ॰142
2. कल्याण, जनवरी 1993 का विशेषांक, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ॰26
3. 'कवितावली', गोस्वामी तुलसीदास, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ॰143
4. 'रामचरितमानस', गोस्वामी तुलसीदास, गीताप्रेस, गोरखपुर, 1/92/1-8
5. 'कवितावली', गोस्वामी तुलसीदास, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ॰143
6. 'किष्किन्धाकाण्ड', 'रामचरितमानस', गोस्वामी तुलसीदास, गीताप्रेस, गोरखपुर, 4/1 श्लोक।
7. 'कवितावली', गोस्वामी तुलसीदास, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ॰159
8. वही, पृ॰145
9. 'अरण्डकाण्ड', रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास, गीताप्रेस, गोरखपुर, श्लोक-1
10. 'कवितावली', गोस्वामी तुलसीदास, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ॰143
11. नाट्यशास्त्र भरतमुनि, उत्तरार्द्ध 1/23/3
12. बालकाण्ड, रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ॰4
13. शिवोपनिषद् 1/10
14. 'कवितावली', गोस्वामी तुलसीदास, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ॰151
15. शिवपुराण, कोटिरुद्रसंहिता 22/27-28
16. कल्याण, जनवरी 1993 का विशेषांक, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ॰85

Traumatized Cyborgs : A Posthumanist outlook in Pat Cadigan's *Synners*

C. Fansta Fernando
Ph.D. Research Scholar,
Reva University, Bangalore

Dr. Beena. G
Professor, School of Arts,
Humanities & Social Sciences, Reva University, Bangalore.

Abstract :

Science Fiction is a broad genre of fiction that enables the authors to postulate on communal, diplomatic, rhetorical and ethnic issues which leads to formulate innovative ideas and to analyse the current situation and experiments with technical substitutes. Cyborg Studies is a sub-genre in science-fiction as the term cyborgs is represented as a hybrid form of humans and machines. Cyborgs are an exemplar of three different forms in literary studies as in through the fictional narratives, material and theoretical concepts. Posthumanism, a contemporary literary theory foregrounds on the traditional boundaries between the human, the animal and technological. Post humanist Cyborgs challenges the traditional notions of human identity and embodiment and also provides a pathway for the cyborg future through the technological advancements and the phantom reality of cyberspace. The present study is an attempt to probe into the world of cyborged bodies through the traumatic world of Posthumanism. In order to examine the cyborgs infringement, this research paper focuses on technological transcendence as the cyborg identity depicts the posthuman form of resilience connected with technology. Pat Cadigan's fictional characters focuses on the exploration of traumatized cyborgs in relation to the post humanist world of digital technology which is depicted through Donna Haraway's A Cyborg Manifesto. The findings of the study reveal that the trauma confronts the inner self of both mind and body through technological artifacts. This research paper also details the way by elaborating the multiple facets of cyberspace and cyberculture which focuses on technical transcendence through Pat Cadigan's characters.

Keywords :

Science Fiction, Traumatized Cyborgs, Posthuman, Pat Cadigan, Cybertechnology.

Science Fiction is a prominent genre of fiction literature which enables the readers to delve into the world of science and technology through imaginative concepts. Science Fiction has undergone a numerous changes in the 20th century through the technological advancements as they pave the way for a scientific progress in biotic and abiotic entities. Science Fiction deals with some specific

concepts such as scientific data and theories, space exploration, time travel, artificial intelligence and cybernetics. To put it in simple terms, Science Fiction has been labeled as "Literature of Ideas" as it brings in the scientific advancement in technology and also enables the readers in the futuristic world of Utopian and Dystopian society featuring the totalitarian government.

Cyberpunk Literature is a sub category of Science Fiction and is the assimilation of science and technology in the futuristic world. Usually the cyberpunk narratives are the outlander who proposes to fight against the suppressed people in the society. The term "cyberpunk" was first coined by the writer Bruce Bethke in one of the short story collections. Most of the themes in the cyberpunk fiction deal with the brain-computer interfaces, artificial intelligence, transfiguration of bodies and the technological enhancement in humans. The cyberpunk narratives take place in the disincarnated world of cyberspace and cyborgs.

William Gibson was the first writer to use the term "cyberpunk" in the novel *Neuromancer* (1984). In this novel the character Henry Dorsett Case is represented in anti-utopian world as a computer hacker, dissection between the rich and poor in the cyberspace and artificial intelligence world. For instance some of the cyberpunk movies such as *The Terminator, The Matrix, Blade Runner 2049* retells the concepts of cybernetics and artificial intelligence. The common motif of Cyberpunk Literature includes posthuman subjectivities, Isolation of oneself, revengeful acts and also philosophical fables.

The term "cyborg" in other words is denoted as "cybernetic organism" which implies the interrelation of human and machines. William Gibson used the term "cyberspace" in his short story *Burning Chrome* which includes data systems which aids in virtual communication activities. The advanced technologies in 980s which was centered for women totally transformed the cyberspace data as an equitable arcadia. Stacy Alaimo, an eminent Professor in her work *Trans corporeal Feminism and the Ethical Space of Nature* defines the term "trans corporeal feminism" through the lens of post humanist ideologies and the material feminist theory.

Donna Haraway, a renowned American Professor is specialized in her work *A Cyborg Manifesto: Science, Technology and Socialist- Feminism in the late Twentieth Century* as it's the gateway for the relationship of human and machines. In the 20th century and 21st century the machines play a vital role as they are focused on cultural aspects of interrelation with nature and humans. Haraway depicts the "cyborg" as the humanoid machine rejecting the patriarchal notions of life. As Haraway illustrates that the cybernetics dwells among humans as it's the evolution of Technology which brings a drastic change in the cognitive psychology of humans. The technological enhancement enables the humans to develop one's identity which is evident through the online games as the technology is achromatic.

Posthumanism and the Traumatic studies are represented as an exemplar of contemporary culture. Posthumanism is defined as the pre-eminence of the Human as in an exegesis of the consciousness and

subjectivity of human body. Post humanist critics like Rosi Braidotti, Francesca Ferrando, Katherine Hayles has interpreted in their essays on the technological embodiment of humans and cyborgs as in the prospects of Traumatic studies. Psychological Trauma is embedded in the bodily consciousness of cyborgs as in through the fictional characters of Pat Cadigan. Critical Posthumanism is an interpretation of the cultural binaries of the body and mind, human and machine as in the juncture of human embedded through Technoscience.

Pat Cadigan, an acclaimed American Science Fiction writer is the one who popularized the cyberpunk movement and most of her writing focuses on the interconnection between humans and technology. The writer Pat Cadigan is distinguished often as the "Queen of Cyberpunk" as the writer is specialized in the cyberpunk writings from the year 1980's. She is the first female cyberpunk writer to be awarded Arthur C. Clarke award for the novel *Synners* (1992). Her magnificent works are entitled as *Mindplayers* (1987), *Synners* (1991), *Fools* (1992), *Tea from an Empty Cup* (1998), *Dervish is Digital* (2001). Pat Cadigan characters challenges the aspects of fantasy in the era of cyberpunk through the bodiless concept.

Pat Cadigan novel *Synners* exaggerates on the multiple facets in the world of cyberspace and cyberculture. She stresses on the female characters as they are the incorporeal identities in the cyber technology. The concept of humanity is not just transmitting the existent culture in the technology basis but to lay emphasis on the distinction in humans. The novel illustrates more on the amalgamation of human and machine and also on the community spaces. The writer emphasizes more on the hardships which humans undergo in the form of cybernetics. Through the elucidation of cyborgs one can focus more on the gender interpretations in the era of cybertechnology.

In Pat Cadigan novel *Synners* the story revolves around the characters Gina, Gabe, Mark and Sam as in a implicit way of connection with cybertechnology. The representation of the male characters involves more in the cyberspace as they are isolated from material bodies. The characters Gina and Mark are the people who are synthesizing the music videos for a media company Diversifications Inc, as they are the leading business assets in the company, Gina and Mark were stipulated for a surgical procedure as they are the ones who restructures the music world and attracts the listeners through their rock music videos as they have reframed the old versions of technology.

The character Mark in Pat Cadigan *Synners* is anticipated to undergo the surgical process as he was amazed by the use of technology whereas Gina was very resistant to undergo the surgical transformation. As in the phrase which Mark uttered as in when he in his senses after the surgical procedures "And his self was getting greater all the times, both ways, greater as in more wonderful and greater as in bigger" (PC 232). Mark reminiscences some incidents when he was in the prison and was astonished to see this technological transformation. The representation of mankind has entered into the machinery world and that's how through the advancement in technologies has attained that holiness and eternal life in the world of cyberspace. Through Pat Cadigan

portrayal of characters Mark has that phenomenal attitude as in the transformation that has been done to his body through the machines is like having a rebirth in life.

The narration of Mark's transformation in his body is interpreted through the concept of Julia Kristeva, a French philosopher on the maternal subject of humans. Pat Cadigan interprets the transformation of body in Mark is actually purely based on the machines and so Mark on the other hand is clearly seen that he deliberately is forced to be happy as in the transformation of his body but on the other side Mark is trembled with fear as in how is he going to adapt to this technological transformation. Mark feels that this transformation of machine is like having a rebirth from his mother's womb as that helps Mark to attain that heavenly bliss.

Pat Cadigan' s *Synners* also depicts through the Lacanian visions of psychoanalytic method of examining the postmodern theory in the perspective of the how the innovative technologies in this cyberculture depicts the posthuman narration through the oedipal fantasy in literature, an exemplar of the fantasy world of humans which is analysed as detectable effect in machines. In the novel *Synners* Pat Cadigan examines the character Gina happiness as in when she undergoes the bodily transformation as that's the reason for the intimate action with Mark and that's the main reason for Gina to be happy with the transformation. The exaggeration of the Gina's transformation is completely related to the cyborg body transgressions as it's connected to the arbitrary boundaries. This technological transformation leads to the intraventricular syndrome as that not only affects the person who has cerebral palsy but also gets disseminated through internet in the form of brain socket.

As the novel progresses one can clearly define what Mark undergoes as soon the bodily transgressions takes place as he suffers from stroke this transgressions completely leads him to his death when he is transmitted to the cyberspace world through spike, a form of virus which is transferred via internet not only causes death for Mark but whereas it strikes the whole webwork. So the narration again starts as in how Gina, Gabe, and Sam overcome the spike virus and rebuild a whole network to enable the online users a comfortable place to land in. As these people thrash the computer virus they felt bad as they weren't able to save their close friend Mark, so in remembrance of Mark they merged a virus named as Art Fish and so collaborated with Mark and renamed as 'Markt', a new computer virus.

The next character to be analysed in Pat Cadigan *Synners* is Gabe Ludovic, a person who is hired in the company Diversifications Inc, as he is a person who has to break free from the lousy job and gets entangled in the virtual world. Gabe reminiscences most of his time cherishing the way he lives in this virtual world that Gabe forgets the reality of life. The character Gabe has injected into a new form of deadly virus named as "Alternate World Syndrome" (AWS) as that's a form of virus which is developed from the technology driven in the west regions. This virus is interrelated with that of the machinery developments and that's how it responds to the characters in the virtual world. The fourth character to be analyzed in Pat Cadigan *Synners* is Sam who is a

computer code hacker by profession at an early age. Sam way of living is completely different when compared to the other characters in the novel as its only for the livelihood means Sam does this work but on the whole Sam hails the profession of a computer hacker. Through the narration of events Sam character gives a realistic portrayal of cyberpunk figure.

Pat Cadigan in her works usually portrays the female protagonists as an independent and strong character as in even when there is a technological transformation in the humans. The message which Cadigan conveys to the world through her writings is that without the human connection with technology life will literally be hard to survive as in the human world revolves only on technology. The humans perspectives completely changes when the technology is embedded in the body of humans as in the form of cyborgs, robots, and avatars as that how artificial intelligence takes over the humanity. The cyborg transformation in the characters not only changes the physical appearance but also the realistic life of human as that's how the reality world of cyberspace evolves the human race without gender discrimination.

The final endings of the novel is that all these central protagonists Gina, Mark, Gabe and Sam associate together to fight against the deadly virus and in that sense the computer chip which was accessed in Sam body was removed and finally to end it in a happy note the deadly virus which was created by the technology was completely destroyed. Finally Gabe moves to Los Angeles and Gina moves to San Francisco to earn their living. The destruction of socket technology still revolves around them as in when Gina utters "Every technology has its original sin. Make us original sinners. And we've got to live with what we made" (PC 435).

References :

1. Alaimo,Stacy. "Trans-Corporeal Feminism and the Ethical Space of Nature" In Stacy Alaimo and S. Hekman (Edited) *Material Feminism* Bloomingtion: Indiana, UP. 2008. (237-264)
2. Balsamo, Anne. *Technologies of the Gendered Body: Reading Cyborg Women*. Durkham: Duke, UP . 1996. Print.
3. Balsamo, Anne . "The virtual body in cyberspace". In D. Bell and B. M. Kennedy (Edited.). *The Cybercultures Reader*. London: Routledge. 2000. Print.
4. Baudrillard, Jean . *Simulacra and Simulations*. Stanford: Stanford, UP 1988, Print .
5. Cadigan, Pat. *Synners*. New York: Four Walls Eight Windows.1999.Print.
6. Botting, Fred. *Sex, Machines and Navels: Fiction, fantasy and History in the Future Present*. New York: Manchester UP, 1999.Print
7. Foster, C. Thomas. "Trapped by the body?: Telepresence Technologies and Trasgender Performance in Feminist and Lesbian Rewritings of Cyberpunk Fiction". D. Bell and B.M.Kennedy (Ed.). *The Cybercultures Reader* London: Routledge. 2000.Print.
8. Haraway, Donna. *A Manifesto for Cyborgs: Science, technology, and socialist feminism in the 1980s*. London: Routledge, 2000. Print.
9. Hawthorne, Susan and Renate, Klein. *Cyberfeminism: Connectivity,Critique and Creativity*. USA: Spinifex Press, 1999. Print.
10. Kember, Sarah. *Cyberfeminism and Artificial Life*. London, Routledge, 2002. Print.
11. Kristeva, Julia. *Powers of horror: An Essay on Abjection*. New York: Columbia UP, 1982. Print.

12. Lefanu, Sarah. *Feminism and Science fiction*. Bloomington: Indiana, UP 1988. Print.

13. Lundwall, Sam J. *Science Fiction: What It's All About*. NewYork: Penguin Putnam, 1971. Print.

14. Lupton, Deborah. "The Embodied Computer/User" .D. Bell and B. M. Kennedy (Ed.). *The Cybercultures Reader* (477-488) London: Routledge. 2000.Print.

15. Sandoval, Chela. "New sciences: Cyborg Feminism and the Methodology of the Oppressed". In D. Bell and B. M. Kennedy (Ed.). *The Cybercultures Reader* London: Routledge. 2000. Print

16. Springer, Claudia. *Electronic Eros: Bodies and desire in the post industrial age*. Austin: University of Texas, 1996.Print

17. Squires, JA. *Fabulous Feminist Futures and the lure of Cyberculture*. London: Routledge, 2000.Print.

18. Stone, A.R. "Will the real body please stand up? Boundary stories about virtual cultures". In D. Bell and B. M. Kennedy (Ed.). *The Cybercultures Reader (* 504 - 528). London: Routledge, 2000. Print.

19. Sterling, Bruce. *Mirrorshades: The Cyberpunk Anthology*. New York: Ace Books, 1986. Print

20. Wakeford, N. "Gender and landscapes of computing in an internet café". In G. Kirkup, et. Al (Ed.). *The Gendered Cyborg: A Reader* (291-304). London:Routledge, 2000. Print.

21. Wilbur, S. "An Archeology of Cyberspaces: Virtuality, community, identity." In D. Bell and B. M. Kennedy (Ed.). *The Cybercultures Reader* (45 - 55). London: Routledge, 2000. Print.

22. Wilding, Faith. "Next bodies". In A. Jones (Ed.). *The Feminism and Visual Culture Reader* (26- 29). London: Routledge, 2003. Print.

23. Wolmark, Jenny. *Aliens and Others: Science fiction, Feminism and Postmodernism*. Hemel Hempstead: Harvester Wheatsheaf, 1993. Print.

अवैध संबंधों के यथार्थ को उजागर करता नाटक 'दूसरा आदमी दूसरी औरत'

देवानंद यादव
शोधार्थी, हिंदी विभाग
इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय अमरकंटक, मध्य प्रदेश

शोध सारांश :

रति भाव के कारण स्त्री-पुरुष की ओर एवं पुरुष स्त्री की ओर आकर्षित होता है। जिसका परिणाम स्त्री-पुरुष का यौन संबंध के रूप में सामने आता है। भारतीय समाज में स्त्री-पुरुष का यौन संबंध तभी स्थापित हो सकता है, जब दोनों एक दुसरे के साथ विवाह के बंधन में बंधे हो। विवाह उपरांत ही स्त्री- पुरुष का यौन संबंध स्थापित करने की सामाजिक मान्यता प्राप्त होती है। विवाह के अभाव में स्त्री-पुरुष का यौन संबंध बनाना भारतीय समाज में वर्जित माना जाता हैं । इसे समाज में अच्छा नही माना जाता है। परन्तु विवाह के बिना भी स्त्री-पुरुष के बीच यौन संबंध बनते आये है। जिसे भले ही समाज अच्छे दृष्टी से न देखे, पर स्त्री-पुरुष अपनी शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए यौन संबंध बनाते है। विभा रानी ने अपने नाटक 'दूसरा आदमी दूसरी औरत' में स्त्री-पुरुष के यौन संबंध को नाटक का वर्ण्य विषय बनाया है।

बीज शब्द :

स्त्री-पुरुष अवैध संबंध, हिंदी महिला नाट्य लेखन, विभा रानी के नाटक, 'दूसरा आदमी दूसरी औरत' नाटक।

विभा रानी कृत 'दूसरा आदमी दूसरी औरत' नाटक के कथानक को दो भागों में बांट कर देखा जा सकता है। पहला पति-पत्नी के बीच असंतोष एवं प्रेम-सौहार्द की भावना की कमी तथा दूसरा स्त्री-पुरुष के अवैध संबंधों के जाल में जूझता पारिवारिक जीवन। नाटक में शोमा और उसके पति के बीच व्यवहार को देखकर पता चलता है कि पति-पत्नी के संबंधों में स्नेह, माधुर्य और सहानुभूति की कमी है। इस कमी की पूर्ति के लिए शोमा संभव सिंह के साथ शारीरिक संबंध बनाती है, परंतु उसे वहां भी असंतोष का ही सामना करना पड़ता है। जयदेव तनेजा के अनुसार *''संयुक्त परिवार व्यवस्था ने नैतिकता और मर्यादा के नाम पर स्त्री का सर्वाधिक दमन और शोषण किया है। यही कारण है कि मध्य काल में नारी की इस दयनीय स्थिति के विरोध में आधुनिक काल के जागरूक, शिक्षित एवं आत्मनिर्भर स्त्री ने न केवल संयुक्त परिवार के ढांचे को ही तोड़ दिया है बल्कि उस सामंती व्यवस्था से विद्रोह करके पुरुष के समान अधिकारों को पाने या छीन कर हासिल करने की लड़ाई भी छेड़ दी है।''*[1]

विभा रानी के नाटक 'दूसरा आदमी दूसरी औरत' में पति-पत्नी के असंतुष्ट दांपत्य जीवन का वर्णन किया गया है। शोमा का पति उससे स्नेहपूर्ण व्यवहार नहीं रखता। वह उससे दूरी बनाकर रहता है। शोमा जब मुंबई नौकरी करने के लिए आती है। वहां उसकी मुलाकात ऑफिस के बॉस संभव सिंह से होती है। संभव सिंह हंसमुख, जिंदादिल और काम के प्रति कमिटेड व्यक्ति है। उसके व्यवहार को देखकर शोमा को अपने पति का ख्याल आता है। वह कहती है, *"बाप रे बाप आदमी है या टॉकिंग मशीन? और एक मेरे यहां चौबीस घंटे में चौबीस लब्ज भी नहीं सुनाई देते। मन अकुलाता है किसी से बात करने को, किसी के साथ हंसने-बोलने को। लेकिन जब कभी कोशिश की, आधे से ज्यादा बातों के तो जवाब ही नहीं मिले। कभी किसी का मिला भी तो बस यही की (नकल करते हुए) मेरे पास फालतू बातों के लिए वक्त नहीं है। या फिर, अपना काम देखो और मुझे भी काम करने दो।"*[2] शोमा का शादी के बाद जीवन पूरी तरह बदल गया। वह खुलकर हंस भी नही सकती, न किसी से बात कर सकती है, बरसात में भीग भी नही सकती है। एक बार शादी के बाद वह बरसात में भीग गई थी। तो उसके पति ने उससे कहा- *"मिलाभीगा बदन लेकर फुदकती फिर रही है। शर्म नहीं आती? मां-बाप ने यही सिखा कर भेजा है? इस घर में रहना है तो शरीफों की तरह रह, वरना जहां मर्जी हो वहां जाकर मुंह काला कर।"*[3] शोमा करती है कि *"उस दिन से बरसात मेरी जिंदगी से रूठकर चली गई।"*[4] केवल बरसात ही शोमा की जिंदगी से रूठकर नहीं गई। तो इसके साथ ही उसकी खुशियां, उसका चैन, उसका अरमान, उसकी इच्छा, आकांक्षाएं सब कुछ उसकी जिंदगी से विवाह के उपरांत रूठकर चला गया। भारत में शोमा जैसी न जाने कितनी स्त्रियां हैं, जिनका विवाह उपरांत सारी खुशियां रूठ कर चली जाती हैं। और वे विवाह उपरांत संत्रास एवं घुटनपूर्ण जीवन जीने के लिए विवश हो जाती है।

पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था के कारण पुरुषों द्वारा सुंदर स्त्री की अपेक्षा करना। जिसके कारण स्त्रियों को अपना अधिक-से-अधिक समय अपने सौंदर्य प्रसाधन में लगाना पड़ता है। इस संदर्भ में डॉ॰ सुधा सिंह कहती हैं, *"सुंदर दिखना स्त्री के लिए आवश्यक अहर्ता बना दी गई है। सुंदर और आकर्षक दिखना न केवल स्त्री के लिए आवश्यक है बल्कि उसकी आर्थिक सुरक्षा से भी जुड़ा हुआ है। साथ ही यह अत्याधिक श्रम की भी मांग सकता है। आकर्षक व्यक्तित्व बनाए रखना, आकर्षक केश विन्यास, सुंदर कपड़े आदि के पीछे जाया किया गया समय, किसी भी तरह से किसी पुरुष कैरियर के लिए किए गए श्रम से कम नहीं है। यह कठिन परिश्रम की मांग करता है।"*[5] शोमा देखने में बहुत खूबसूरत न होने के कारण उसका पति उसे घर की नौकरानी के समान व्यवहार करता है। वह अपनी पत्नी को मनहूस समझता है। शोमा कहती है *"मैं कैसे गलत साबित की जा रही हूं। अब इसमें मेरा क्या दोष कि मैं सुंदर नहीं। उनके सपनों में कोई जन्नत की हूर थी। पिता के दबाव में शादी कर ली। वे तो ताने देकर चले जाते हैं। भुगतती मैं हूं। मैंने कई चिट्ठियां डाली, एक का भी जवाब.... फोन करने पर उठाते नहीं।"*[6] शोमा अपने पति के इस व्यवहार से अत्यंत दुःखी होती है। वह बाहर सांत्वना पाने की तलाश से निकलती है। और उसे मिलता है संभव सिंह। वह संभव सिंह में अपने प्रेम को देखती है। और संभव सिंह को आत्मसमर्पण कर देती है। संभव और उन दोनों में एक रिश्ता बनता है। यह रिश्ता भले ही दुनिया और समाज की नजरों में नाजायज हो। परंतु शोमा और संभव सिंह के लिए यह रिश्ता आत्मीयता, स्नेह एवं प्रेम का रिश्ता है।

नाटक सेक्स और शारीरिक संबंध के विषय पर समाज को नए सिरे से सोचने के लिए मजबूर करता है। प्रेम में मन के मिलन के साथ तन का मिलन भी आवश्यक मान लिया गया है, परंतु तन का मिलन मन के मिलन के ऊपर भारी नहीं पड़ना चाहिए। प्रेम

में देह को इतना महत्व नहीं दे देना चाहिए कि वह समाज और नैतिक बंधनों का भी उल्लंघन कर दे। विभा रानी नैतिक बंधनों के उल्लंघन और समाज के उल्लंघन को प्रेम के लिए स्वीकार नहीं करती। प्रेम में मन महत्वपूर्ण है देह बाद में आता है। विभा रानी के अनुसार *"सेक्स और शारीरिक संबंध पर समाज की सोच मुझे शुरू से परेशान करती रही है। देह को मन की तुलना में इतना आगे बढ़ा दिया गया है कि मन की शुचिता के बदले हम केवल तन की शुद्धता पर केंद्रित हो गए हैं। मेरा मानना है कि शरीर हमारे मन के सभी भाव के साथ-साथ प्रेम की भी अभिव्यक्ति का माध्यम है। लेकिन इसका मतलब यह भी नहीं है कि देह इतनी महत्वपूर्ण हो जाए कि मन और समाज दोनों हमसे छूटने लगे। यह नाटक संबंधों के अंतर्संबंध को नए सिरे से उद्घाटित करता है।"*[7]

'दूसरा आदमी दूसरी औरत' नाटक में शोमा का पति उसे मनहूस और नौकरानी के समान समझता है। क्योंकि उसका विवाह उसकी इच्छा के अनुरूप किसी सुंदर लड़की से न होकर शोमा से हो गया था। शोमा दिखने में एक साधारण स्त्री के समान है। इस कारण उसका पति अक्सर उसे ताने देता रहता है। एक बार उसके पति के कुछ फ्रेंड और उनकी वाइफ घर पर डिनर के लिए आने वाली होती है। उस पर उसका पति उससे कहता है कि तुम डिनर बना देना और मेहमानों के सामने मत आना। *"सुनो शाम को मेरे कुछ फ्रेंड आ रहे हैं अपनी वाइफ के साथ। खाने-पीने का इंतजाम कर देना। और हां, ध्यान रहे कि तुम उन लोगों के सामने नहीं आओगी। 'क्यों'? मेरे इस क्यों पर वे मेरी ओर तनिक मुड़े, एक तिरछी मुस्कान मुझ पर डाली और बोले, 'शकल देखी है कभी आईने में! मैंने पूछा, 'उनकी बीवियों से क्या कहोगे?' 'कह दूंगा, नहीं हो।' 'अगर सामने पड़ गई तो?' 'तो कह दूंगा कि नौकरानी हो'।"*[8] 'अपने पति द्वारा अपना अपमान एवं अपने को नौकरानी तुल्य समझने के कारण वह बहुत व्यथित होती है। और घर से, पति से दूर, मुंबई शहर में आती है नौकरी की तलाश में। वहां पर उसकी मुलाकात जब संभव सिंह से होती है, तो वह उसकी ओर आकर्षित होती है। उसे संभव का व्यवहार अच्छा लगता है और वह उससे प्रेम करने रखती है। संभव भी उसकी ओर आकर्षित होता है। दोनों के बीच में शारीरिक संबंध स्थापित होते हैं। शोमा कहती है। *"उस दिन से मैं जैसे अपने आप में नहीं रह गई। संभव ने जिस तरह से मुझे छुआ, अपने में समेटा, लगा जैसे सीप में स्वाति की बूंद समाती चली जा रही है। मेरे रोम-रोम को वह एक भाषा दे रहा था और मैं सपनों के सतरंगे तिलिस्म में पहुंच गई थी। जहां केवल वह था और मैं। दस साल से... शादी के दस साल से मैं जिस जलते रेगिस्तान में भटक रही थी, संभव का स्पर्श उस रेगिस्तान में बारिश की नन्ही-नन्ही बूंदे बनकर बरस रहा था। मेरा मन बिजली की तरह चमकने और कोयल की तरफ कूकने लगा था और गूंगे, बहरे बन गए मेरे शरीर का रेशा-रेशा फूल बनकर खिलने लगा था। मुझे लग रहा था कि मैं सब को पुकार-पुकारकर कहूं कि हां, यही तो.... यही तो मैं चाहती रही हूं बरसों से।"*[8] शोमा बरसों से जिस भावनात्मक लगाव को चाहती थी। वह लगाव उसे अपने पति में नहीं मिला। इस कारण वह अपने पति से विमुख होकर संभव सिंह की ओर आकर्षित होती है। शोमा कहती है- *"जीवन में अभिव्यक्ति बहुत जरूरी है। अगर यही अभिव्यक्ति मुझे मिली होती तो...! ये हम कैसे किसी को बताएं कि हम औरतें तभी किसी से जुड़ती हैं, जब उन्हें अपनों से भावनात्मक सहारा नहीं मिलता।"*[10] शोमा संभव सिंह के साथ रहती है, उनके साथ डिनर करती है, घूमती है। इसी बीच संभव सिंह की पत्नी चार दिनों के लिए उसके घर पर आई है। संभव शादीशुदा है। उसके बच्चे भी हैं। शोमा जानती है कि संभव शादीशुदा है। उसके बच्चे है। इसके बावजूद भी वह उससे प्रेम करने लगती है। उसके साथ शारीरिक संबंध बनाती है। संभव की पत्नी आने पर शोमा को एहसास होने लगता है कि संभव केवल उसे भोग की वस्तु (दूसरी

औरत) भर समझता है। संभव शोमा के साथ उसके घर में तो प्यार करता है और उसे अपनी दिल की बातें भी बताता है। परंतु उसे समाज, कंपनी तथा अन्य लोगों के सामने लाने से बचता है। संभव भी पितृसत्तात्मक पुंसवादी पुरुष के समान स्त्री को केवल भोगना चाहता है। उसे सामाजिक प्रतिष्ठा एवं सम्मान नहीं देना चाहता। शोमा को लगने लगता है कि संभव भी उसके पति के समान उसके साथ व्यवहार कर रहा है। शोमा कहती है- *"संभव ! तुम्हारी बातों से पति की बू आ रही है।...एक घटिया भारतीय पति की बू, जहां उसकी बातें, उसके विचार, उसकी इच्छाएं, उसकी सोच, सबसे ऊपर हो जाती है। उसकी उम्मीदें गिव एंड टेक के बदले केवल टेक ही टेक होकर रह जाती है। यही तो देखती आई हूं पति पत्नी के बीच एंड आई हेट।"*[11] जब संभव की पत्नी उसके घर आती है तो वह शोमा से दूरी बना लेता है। परंतु उसका पति उसके घर आता है तो संभव उससे अपेक्षा रखता है कि शोमा उसे सब बातें बताएं। परंतु धीरे-धीरे जैसे समय व्यतीत होता है। इन दोनों में दूरी बढ़ने लगती है। संभव ऑफिस के सिलसिले में ज्यादातर काम से बाहर रहता है या ऑफिस में होने के बावजूद भी वह ज्यादातर काम में ध्यान देता है। इससे शोमा नाराज होती है। उसे लगता है कि वह केवल दूसरी औरत है। वह जिस आत्मसम्मान और सुख प्राप्ति के लिए संभव सिंह के निकट आई थी। वह उससे छीनता हुआ दिखाई देता है। शोमा कहती है- *"संभव ने मुझे जता दिया कि मैं कौन हूं दूसरी औरत, जिसकी कहीं कोई अहमियत नहीं। न घर में, न समाज में, उसका अपना कोई वजूद नहीं होता। उसे कोई अपना नहीं कहता। छिः, मैं दूसरी औरत। सोच कर ही दम घुटने लगता है। दूसरी औरत का दर्जा पाने के लिए मैं घर छोड़कर निकली थी। संभव आता, बात करता, प्यार करता, लेकिन सारे गिले-शिकवे, मान अपमान का अंत होता, इस चारदीवारी के भीतर, इस बिस्तर पर। बाहर में तो वह फिर से मिस्टर संभव सिंह था। एक हैसियतदार आदमी। और मैं। इस नौकरी ने मुझे खुले आकाश की ऊंचाई दी, वहीं मैंने खुद को इस चारदीवारी और दूसरी औरत के वजूद तक समेट कर रख लिया।"*[12] नाटक में यह दिखाने का प्रयास किया गया है जब कोई स्त्री बाहर किसी दूसरे मर्द से प्रेम की तलाश में जाती है। तो उसे प्रेम के बदले केवल वासना मिलती है। वह दूसरे पुरुष के भोग की वस्तु मात्र बनकर रह जाती है। शोमा के साथ भी कुछ इसी तरह से होता है। वह अपने पति से स्नेह, प्रेम एवं आत्मसम्मान की लालसा रखती है। परंतु वह लालसा पूरा नहीं कर पाता। इसकी तलाश में वह संभव सिंह के पास जाती है। उसके पास जाने के बाद उसे पहले तो लगता है कि वह भी उस से प्रेम करता है, उसका सम्मान करता है। परंतु धीरे-धीरे उसे एहसास होने लगता है कि वह संभव के जीवन में दूसरी औरत है। एक बाजारू औरत के समान। *"अपनी सुविधा से रिश्ते बनाना और उसके साथ खेलना खूब आता है तुम लोगों को।... रंडी समझकर... हां, रंडी समझ कर रखा है न मुझे कि जब जी में आया, चले आ, घुसने!.... सच बोला तो आग लग गई? क्या हूं मैं? सिर्फ देह ही तो। ये मत करो, वहां मत जाओ, ऐसे मत रहो। मनाहियाँ सिर्फ बिस्तर पर नहीं रह जाती न? देह को रौंदते हुए सोचा भी है कभी कि मुझे मेरे आत्मा को तुम कितना रौंद रहे हो? मेरा पति भी कभी-कभी इस कोने में पड़े इस फर्नीचर को देह समझ लेता था।"*[13] शोमा समझ जाती है कि पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था में सभी पुरुष एक समान होते हैं। वह केवल स्त्री को भोगना चाहते हैं। उसका लाभ उठाना चाहते हैं। परंतु उससे प्रेम नहीं करते, उसका सम्मान नहीं करते। नाटककार विभा रानी ने भी यही संदेश इस नाटक के माध्यम से देने का प्रयास किया है कि जो स्त्री किसी परपुरुष के साथ अवैध संबंध बनाती है। उसका स्थान केवल दूसरी औरत का रह जाता है। वह केवल उसके साथ बिस्तर में ही सुख प्राप्त कर सकती है। परंतु समाज में उसे कोई स्थान नहीं दे सकता। न वह पुरुष

जिसके साथ वह संभोग करती है। और न वह समाज जिस समाज में वह रहती है। पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था केवल स्त्री को भोगना ही जानता है। वह सिर्फ अपना वर्चस्व स्त्री के ऊपर कायम करना चाहता है। नाटक में स्त्री पुरुष के अवैध संबंधों को चित्रित किया गया है। ''यौन आकांक्षा, यौन आकर्षण एवं यौन संतुष्टि से मानव सदैव प्रभावित एवं आकर्षित रहा है। जब सामान्य रूप में नैतिकता को मानकर जीवन व्यवहार चलते हैं तब उनमें कोई आरोप नहीं लगता किंतु जब नैतिकता को तोड़कर जीवन व्यवहार चलते हैं वह अनैतिक ठहराए जाते हैं। पत्नी के होते हुए अन्य स्त्री के साथ तथा पति के होते हुए अन्य पुरुष के साथ संबंध प्रेमत्रिकोण, अनैतिक संबंध, विवाहेत्तर संबंध आदि के ही अलग-अलग रूप हैं। यह संबंध समाज में प्रश्रय पा रहे हैं। यौन कुंठाएँ, एक पक्ष का अनैतिक मार्ग, मुक्त स्वातंत्र्य की आकांक्षा और यौन संबंधी नई मान्यताएं समाज में रूढ़ हो रही है।''[14]

निष्कर्ष :

दांपत्य जीवन में पति-पत्नी के बीच प्रेम एवं विश्वास का होना आवश्यक है, परन्तु जब पति-पत्नी के बीच प्रेम एवं विश्वास ख़त्म हो जाता है। तब दोनों ही प्रेम की तलाश में बाहर भटकते हैं और ऐसे में वे मकड़जाल में फंस जाते हैं, जहां प्रेम नहीं मिलता केवल वासना की पूर्ति होती है। नाटक 'दूसरा आदमी दूसरी औरत' में शोमा और संभव सिंह के रिश्तो का अंत भी यही होता है। दोनों ही अपने पति-पत्नी से प्रेम न मिल पाने के कारण बाहर प्रेम की तलाश में आते हैं और केवल वासना की पूर्ति कर पाते हैं। जिसे समाज में केवल अवैध संबंध के रूप में ही मान्यता मिल सकती है। नाटक स्त्री-पुरुष के बीच सेक्स एवं शारीरिक संतुष्टि की नई व्याख्या समाज के सामने प्रस्तुत करता है।

सन्दर्भ सूची :

1. जयदेव तनेजा, रंगकर्म और मिडिया, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2015, पृष्ठ संख्या-69
2. विभा रानी, दूसरा आदमी दूसरी औरत, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण-2021, पृष्ठ संख्या-15
3. वही, पृष्ठ संख्या-27
4. वही, पृष्ठ संख्या-27
5. सुधा सिंह, ज्ञान का स्त्रीवादी पाठ, ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण-2015, पृष्ठ संख्या-55
6. विभा रानी, दूसरा आदमी दूसरी औरत, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण-2021, पृष्ठ संख्या-38
7. वही, भूमिका से
8. वही, पृष्ठ संख्या-38
9. वही, पृष्ठ संख्या-34
10. वही, पृष्ठ संख्या-34
11. वही, पृष्ठ संख्या-43
12. वही, पृष्ठ संख्या-45, 46
13. वही, पृष्ठ संख्या-67
14. डॉ॰ दीपा कुचेकर, हिंदी नाट्य साहित्य में महिला रचनाकारों का योगदान, विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण2012, पृष्ठ संख्या-317

Exploring the Impact of Violence and Gender Power Dynamics in Barbara Kingsolver's *Unsheltered*

Kowsalya RM
Research Scholar, Department of English
Hindustan Institute of Technology and Science, Chennai

Dr. Prem Shankar Pandey
Assistant Professor and Technical Editor
Department of English, Hindustan Institute of Technology and Science, Chennai

Abstract

Barbara Kingsolver's novel, Unsheltered, portrays the intertwined effects of violence and gender power dynamics on individuals and communities. This paper examines the ways in which Kingsolver's characters navigate and resist the oppressive structures that define their lives. The paper contributes to the understanding of the impact of violence and gender power dynamics, highlighting the transformative potential of resistance and solidarity. By exploring the complex ways in which gender and violence intersect in Unsheltered, the paper underscores the importance of challenging patriarchal structures and supporting marginalized communities. Overall, the paper aims to raise awareness and foster a deeper understanding of the ways in which these issues impact individuals and communities.

Keywords :

Barbara Kingsolver, gender power dynamics, violence, resistance, solidarity.

Introduction :

Barbara Kingsolver's novel *Unsheltered* is a complex exploration of the impact of violence and gender power dynamics on individuals and communities. The novel follows two different time periods and two different families who are connected by their experiences of struggling against the status quo. Through the characters of Mary Treat, Willa Knox, and their families, Kingsolver depicts the ways in which violence and gender power dynamics shape their lives and experiences. This research paper examines the impact of violence and gender power dynamics in *Unsheltered*, highlighting the ways in which these themes are intertwined and contribute to the novel's larger themes of power, oppression, and resistance.

Gender Power Dynamics :

Gender power dynamics refer to the ways in which gender shapes social relationships and power structures. These dynamics reflect the ways in which gender-based norms and expectations shape our understanding of what it means

to be a man or a woman, and how individuals are expected to behave in different social settings. Gender power dynamics often result in the marginalization of women and non-binary individuals and the perpetuation of gender-based violence and discrimination. These dynamics can also intersect with other forms of oppression, such as race and class, to produce complex power dynamics that shape individuals' experiences and opportunities.

Gender Power Dynamics in Barbara Kingsolver's *Unsheltered* :

The paper highlights the struggles of Mary Treat and Willa Knox, two female characters who navigate their lives and careers in different time periods, but who face similar obstacles related to gender-based power dynamics.

Impact of Gender-Based Power Dynamics on Mary Treat :

Mary Treat is a naturalist and scientist who challenges gender norms in the 1870s by pursuing a career in a male-dominated field. Despite her considerable achievements, she is constantly belittled and dismissed by her male colleagues, who refuse to take her work seriously and seek to silence her. This situation highlights the ways in which gender-based power dynamics limit women's opportunities and shape their experiences, even when they possess considerable talent and drive.

Treat's contributions to science are remarkable, yet her gender leads her to face criticism and sexism from her peers, preventing her from advancing in her career. Kingsolver's portrayal of Treat in the novel highlights the societal bias that can restrict the potential of women in fields dominated by men. This gender bias demonstrates that the status quo is biased against women, making it difficult for them to succeed and be recognized for their talents and hard work.

Impact of Gender-Based Power Dynamics on Willa Knox :

Willa Knox is a journalist in the present day who faces her own struggles with gender-based power dynamics. Despite her education and professional experience, she is unable to find stable work and must rely on her husband's income to support her family. Her husband, Iano, also struggles with his own gender-based power dynamics as a man who is unable to provide for his family in the way that society expects him to. Willa's experience highlights the ways in which gender norms and expectations shape our understanding of what it means to be a successful and valued member of society and how difficult it can be to challenge these norms.

Willa's inability to find work highlights the challenges women still face in the workplace, despite significant progress in recent years. Willa is well-educated and qualified, but her gender prevents her from attaining a position of power and influence. This is a powerful commentary on how gender-based power dynamics remain relevant in our society today and can have a detrimental impact on the lives and careers of women.

Impact of Violence in *Unsheltered* :

The theme of violence is an important aspect of Barbara Kingsolver's novel *Unsheltered*. The novel explores the impact of various forms of violence on the characters and their relationships, including physical, emotional, and structural violence.

Physical Violence :

Physical violence is a significant theme in the novel, and Kingsolver depicts instances of violence against women, including Mary Treat and Tig, Willa's daughter. Mary Treat is sexually assaulted by a colleague, while Tig experiences violence in her romantic relationship. The violence against these women is used to illustrate the consequences of gender-based power dynamics, which permeate society and contribute to the marginalization and victimization of women.

Emotional Violence :

Emotional violence is another theme that features prominently in *Unsheltered.* The novel depicts the emotional violence experienced by Willa and her family due to their financial struggles and the stress of maintaining their home. The emotional violence inflicted on these characters underscores the ways in which economic inequalities can contribute to the exploitation of vulnerable individuals and the perpetuation of social inequality.

Structural Violence :

Structural violence is a third theme that is explored in *Unsheltered*. The novel examines the ways in which structural violence is perpetuated through institutions and systems that are designed to maintain the status quo. This is illustrated in the novel through the portrayal of the town's historical society, which perpetuates a myth of progress and prosperity that erases the experiences of marginalized individuals and communities.

Intersectionality :

Unsheltered also explores the intersectionality of various forms of oppression, including race, class, and sexuality. Through the character of Tig, Kingsolver examines the experiences of queer individuals and the ways in which homophobia and transphobia contribute to their marginalization and oppression. The novel also explores the experiences of individuals from different socioeconomic backgrounds, highlighting the ways in which economic inequality intersects with other forms of oppression to perpetuate social injustice.

Resistance and Solidarity :

Despite the pervasive presence of violence and oppression in *Unsheltered*, the novel also highlights the transformative potential of resistance and solidarity. Mary Treat and Tig both resist the violence and oppression that they face, and their experiences inspire Willa and her family to challenge the status quo and fight for a better future. The novel also depicts acts of solidarity and support between characters, such as the relationship between Tig and her partner, or the support that Mary receives from her sister and other women in her community. These acts of resistance and solidarity illustrate the potential for individuals and communities to work together to challenge the systems of oppression that limit their opportunities and perpetuate social inequality.

Conclusion :

In *Unsheltered*, Barbara Kingsolver explores the impact of violence and gender power dynamics on individuals and communities, highlighting the ways in which these themes intersect with other forms of oppression, such as race and class. Through the characters of Mary Treat, Willa Knox, and their families, Kingsolver depicts the transformative potential of resistance and solidarity, as

well as the pervasive nature of violence and oppression in society. By examining the experiences of these characters, the novel underscores the importance of recognizing and challenging the systems of power and inequality that shape our lives and perpetuate social injustice. Overall, *Unsheltered* is a powerful and thought-provoking exploration of the impact of violence and gender power dynamics on individuals and communities and a reminder of the importance of working towards a more just and equitable world.

References :

1. Connell, R. W. (2009). *Gender and Power: Society, the Person, and Sexual Politics*, John Wiley & Sons.
2. Foucault, Michel. (1980). *Power/ Knowledge: Selected Interviews and Other Writings, 1972-1977*. Edited by Colin Gordon, Pantheon Books.
3. Kingsolver, Barbara. (2018). *Unsheltered*. HarperCollins Publishers.

दाम्पत्य के अनंत आतंक में प्रतिरोधी स्त्री-पुरुष मन

प्रियंका श्रीवास्तव
शोधार्थी, पंजीयन संख्या-42000541
लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब

डॉ० रीता सिंह
(शोध निर्देशिका), असिस्टेंट प्रोफेसर
लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब

शोध सार :

स्त्री जीवन में पर्व-त्योहार का विशेष महत्व है। विशेषकर पतियों के लिए स्त्री के द्वारा रखें गए करवा के व्रत का यदि अपना ऐतिहासिक महत्व है, तो समसामयिक सबसे बड़ी विडंबना भी इसी के साथ शुरू हो जाती है, जिससे दाम्पत्य जीवन सुखी दिख सकता है, लेकिन वास्तव में विभिन्न कष्टों से, विडंबनाओं से भरा होता है। समाज की अपनी कुछ सीमाएँ होती है, इन्हीं सीमाओं के भीतर हमारे संस्कारों का जन्म होता है। सामाजिक संरचना में देखें, तो स्त्री-पुरुष दोनों के विकास क्रम में अंतर और समाज का दोनों के मूल्यांकन के प्रति भिन्न नजरियाँ रहा। ऐसे में दोनों के संस्कार भी अलग रहे। संस्कार कभी शिक्षा पर हावी होता है, तो कभी फैशन के रूप में हमारे जीवन का हिस्सा बने रहकर स्वयं को समृद्ध बना रखता है। पति की लंबी उम्र के लिए व्रत का संस्कार इस सत्य से पड़े नहीं है। पढ़ी-लिखी डिग्रीधारी कामकाजी ऊँचे ओहदे पर असिन औरतें भी पति की लंबी उम्र के लिए यदि व्रत रखती है तो संस्कारवश ही, भले ही पति-पत्नी का सामान्य जीवन शीतयुद्ध के समान ही क्यों न हो। इस व्रत की वास्तविकता को बिना जाने अन्य अनेक पूजा-पाठ की तरह औरते इस व्रत का भी बखूबी बड़े गर्व से पालन करती दिखती है। हकीकत में पति की लंबी उम्र का वैज्ञानिक बोध बिल्कुल भी नहीं है। इसके बावजूद आए दिन करवाचौथ उत्सव का रूप धारण करने लगा है, लेकिन इसके जो बाइप्रोडक्ट्स माहौल बनते जा रहे है इस ओर यदि यशपाल ने अपना ध्यान खींचा हैं, तो सुधा अरोड़ा ने भी। एक ओर यशपाल की कहानी 'करवा का व्रत' है, तो दूसरी ओर सुधा अरोड़ा की कहानी 'करवाचौथी औरत'। इन्हीं दोनों की कहानियाँ 'करवा का व्रत' और 'करवाचौथी औरत' को केंद्र में रखकर दाम्पत्य की नई चुनौतियों को विषय बनाकर खोखली नैतिकता से जन्में विषाक्त परिवेश का विश्लेषण इस शोध आलेख का अभिष्ठ है।

बीज शब्द :

पर्व त्योहार, संस्कार, करवा का व्रत, शीतयुद्ध, माहौल, उत्सव, खोखली नैतिकता, बाइप्रोडक्ट्स।

मूल आलेख :

एक तरफ स्त्री विमर्श शिखर पर है। स्त्री सशक्तिकरण के सरकारी, गैर सरकारी एवं सामाजिक संस्थान द्वारा प्रयास भी जारी है, इसके बावजूद आस्था और विश्वास के नाम पर, संस्कार के निर्वाह के नाम पर ढोंग बन चुके करवाचौथ का उत्सव भी बखूबी हमारे जीवन का हिस्सा है। स्त्री हो या पुरुष, विवाह के साथ ही उनसे हँसी-मजाक में कराई जाने

वाली दूध से अँगूठी निकालने जैसी तरह-तरह की रश्मे इस तथ्य को सामने रखती है कि पति हो या पत्नी भले इन दोनों के रिश्ते को सामान कहा जाता है। गाड़ी के दो ऐसे पहिए बताए जाते हैं, जो आगे-पीछे नहीं समानांतर चलते है, पर सत्य तो यह है कि दोनों में से किसी एक को दूसरे पर शासन करना है, हुकूमत चलाना है। संस्कार के तहत पुरुष संदर्भ को देखें, तो स्वामी बनने की नसीहत संस्कार के रूप में उसे मिलती है और पत्नी द्वार निभाए जाने वाला विभिन्न तरह के तीज, करवाचौथ का व्रत इसका प्रमाण क्योंकि व्रत का इतिहास बतलाता है कि इसका उद्देश्य सामने वाले को प्रसन्न कर अपनी इच्छा की पूर्ति है और सामने वाले को प्रसन्न करने का प्रयास ही उसकी श्रेष्ठता का प्रमाण है। जब पति श्रेष्ठ है तो अपनी श्रेष्ठता को बचाए रखने का उसका प्रयास भी जरूरी बन जाता है। ऐसे में पत्नी से अपनी श्रेष्ठता को बनाए रखने का प्रयास शुरू करता है, इस प्रयास में पति की पहली चिंता यही बनती है कि पत्नी सिर पर न चढ़ जाए अर्थात उस पर हावी न हो जाए क्योंकि सिर पर चढ़ना और हावी होना यानि खुद को पति से उत्तम मान लेना या उसके समकक्ष स्वयं को मान लेना। दांपत्य में पहला आतंक पुरुष के मन में यही रहता है कि पत्नी को कैसे अपनी मुट्ठी में रखा जाए। संस्कार के नाम पर पुरुषों को सिखाया जाता है कि स्त्रियाँ खासकर पत्नियाँ पैर की धूली के समान होती है। सेविका है और अगर उसे अधिक प्रेम दिया जाए, उसकी हर बात को मान लिया जाए तो सिर पर चढ़ जाएगी। ऐसी सोच और संस्कार के अंतर्गत पुरुष का गठन होता है और वह स्वयं को स्वामी मानने भी लगता है।

दाम्पत्य में दोनों के बीच एक वर्ग संस्कार से अगर स्वामी है तो दूसरे को तो दास होना ही पड़ेगा। 'होने' और 'मानने' का अंतर ही समस्या को जन्म देती है और समस्या आतंक को। यशपाल की कहानी 'करवा का व्रत' में पति कन्हैयालाल का गठन इन्हीं संस्कारों के तहत हो रहा है। हेमराज जैसे भुक्तभोगी की सीख मिलती है और बॉस की पत्नी का प्रत्यक्ष उदाहरण दिखता है, तो पुरुष से पति बना कन्हैयालाल भी आतंकित हो उठता है। हेमराज समझाता है - "बहू को प्यार तो करना चाहिए, पर प्यार से उसे बिगाड़ देना या सिर चढ़ा लेना भी ठीक नहीं। औरत सरकश हो जाति है, तो आदमी को उम्र भर जोरू का गुलाम बना रहता है।"[1] हेमराज की सीख में कहीं न कहीं उसके भुक्तभोगी होने की संभावना अधिक है और बॉस की पत्नी तो प्रत्यक्ष उसके आँख के सामने हैं। इसी कारण अपनी पुरुष सत्ता को पति सत्ता में बचाए रखने के लिए कन्हैयालाल अपनी पत्नी लाजवंती की दो बातों को मानता है, तो तीसरी को न भी कर देता है। डॉ॰ अजय कुमार साव अपने आलेख 'अस्मिता के सवाल और यशपाल' में इस संदर्भ में लिखते हैं- "नव विवाहित दंपति कन्हैयालाल और लाजवंती का जीवन प्रचलित संस्कारों द्वारा पोषित होने के कारण ही पौरूष-भाव द्वारा प्रदूषित भी है। संस्कारगत सबक पुरुष को उनके किन्हीं इंसानी भावों को दबाए अतीत की ओर खींचती है, तो स्त्री को भविष्य की ओर प्रेरित करती है।"[2] संस्कारगत सबक ही है जो कन्हैयालाल को लाजों की तीसरी बात को मानने से मना करता है, यद्यपि कन्हैयालाल की व्यक्तिगत इच्छा लाजो की हर इच्छा को पूरा करना था पर संस्कार के साथ-साथ यह डर कि कहीं सिर पर न चढ़ जाए बॉस की पत्नी की तरह, हेमराज और बॉस जैसा परिणाम न हो जाए और अगर ऐसा हो गया तो समाज क्या कहेगा, इस डर में कन्हैयालाल लाजों को न भी कर देता है। यशपाल लिखते हैं - "लाजो के कहने का ढंग कुछ ऐसा था कि कन्हैया का दिल इंकार करने का न करता, पर इस ख्याल से की बहू सरकस न हो जाए दो बातें मान कर तीसरे पर इनकार भी कर देता।"[3] कन्हैयालाल का यह आचरण दाम्पत्य में स्वयं को भयमुक्त रखने के प्रयास में है। कन्हैया के आचरण के बारे में विश्लेषण करते हुए डॉ. साव आगे लिखते हैं- "ऐसा करना कोई शौक नहीं बल्कि भय का परिणाम है। पारंपरिक संस्कारों से पोषित पति अस्मिता की ऐसी-तैसी होने का भी।

भय के साये में जो पति स्वयं है, वह यदि भय की सृष्टि करता है तो यह स्वाभाविक ही है।''[4] भय के सृष्टि के मूल में पति की उस अस्मिता की रक्षा है, जो संस्कार के कारण उसे मिले है। भले ही वास्तविकता में करवा के व्रत को निभाने के दिखावे की संस्कृति की तरह उसका (व्रत का) कोई औचित्य न हो, पर संस्कार हावी है। कन्हैया के आचरण को स्वाभाविक कहा जा सकता है पर अनुकरणीय नहीं क्योंकि इस स्वाभाविक आचरण का परिणाम सुखी दाम्पत्य को अस्वाभाविक और असह्य बना देता है।

करवाचौथ के व्रत के पीछे कई पौराणिक कथा है, जिसमें सबसे प्रचलित और मान्य कथा सात भाइयों की एकलौती बहन 'करवा' का भूलवश दीपक को चाँद समझकर अपना व्रत तोड़ने और परिणामस्वरूप पति की मृत्यु से जुड़ा है। भाई के बहन प्रेम में पड़कर की गई धूर्तता के कारण करवा के पति की मृत्यु हो जाती है, परंतु वह अपने पति का अंतिम संस्कार नहीं करती बल्कि पति के मृत देह के साथ साल भर तपस्या करती है, कष्ट झेलती है और अपने सतीत्व से पति को यमराज से जीतकर पुनर्जीवित करती है। नवभारत टाइम्स के अनुसार- ''यह व्रत अखंड सौभाग्य और पति की लंबी उम्र की कामना करते हुए किया जाता है।''[5] इसी विश्वास के तहत स्त्रियों द्वारा एक समय तक व्रत का पालन किया जाता रहा और यशपाल की 'करवा का व्रत' की लाजवंती अपने पति के लिए इसी विश्वास के तहत व्रत रखती है। लाजवंती के मन में यह विश्वास है कि व्रत करने पर पति की आयु लंबी होगी और अगले जन्म में यही पति मिलेंगे और इसी विश्वास के तहत कन्हैया के लिए व्रत रखती है और इसी विश्वास के कारण जन्मे आतंक के कारण अपने प्रति कन्हैया का उपेक्षित नजारियाँ देख व्रत तोड़ भी देती है साथ ही सोचती हैं कि इस जन्म तो निबाह हो नहीं रहा अगले जन्म के लिए उसी मुसीबत को क्यों गले लगाएँ - ''ये ही जनम निबाहना मुश्किल हो रहा है।... दूसरे जन्म के लिए वही मुसीबत पक्की कर रही हूँ।''[6] लाजवंती आठवीं पास पढ़ी-लिखी स्त्री है पर संस्कार के कारण यह विश्वास करती है कि व्रत से उसी पति की प्राप्ति हो सकती है और इसी के तहत व्रत करती है- ''...जनम-जनम ये ही मिलें इसीलियें मैं भूखी मर रही हूँ।''[7] लाजवंती के व्रत करने के पीछे कोई वैज्ञानिक कारण नहीं है न ही कोई बहुत बड़ा मनोविज्ञान छिपा है इसके मूल में भी सीख और संस्कार है। यशपाल लिखते हैं- ''जन्म-जन्म यही पति मिले इसलिए दूसरे व्रतों की परवाह न करने वाली पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ भी इस व्रत की उपेक्षा नहीं कर सकतीं।''[8] डॉ॰ अजय कुमार साव मार्क्सवादी आलोचक यशपाल द्वारा लाजों के व्रत तुड़वाने की घटना का विश्लेषण सामाजिक-पारिवारिक संरचना की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि में करना उचित मानते है और उल्लेख करते हैं - ''यहाँ सवाल अगले जन्म में पाने या न पाने का नहीं, बल्कि वर्तमान दाम्पत्य जीवन में अनपेक्षित, मानवीय ही नहीं, इतना हिंसक और क्रूर जो कुछ घटित हो रहा है, उससे मुक्ति का सवाल मुख्य है।''[9] और इसी मुक्ति के लिए लाजों अपने इस जीवन की निरर्थकता को जब देखती है, व्रत तोड़ देती है।

दाम्पत्य के बिगड़ते चेहरे की पृष्ठभूमि को जानने के लिए यह विचारणीय प्रश्न बन जाता है कि आज की पढ़ी-लिखी या अनपढ़, नौकरीशुदा या गृहवधु यह व्रत क्यों करती है। यशपाल लिखते हैं ''पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ भी इस व्रत की उपेक्षा नहीं कर सकती। 'आज की स्त्रियाँ जानती है कि इस तरह के व्रत का कोई फायदा नहीं है। वैज्ञानिक धरातल पर ऐसे व्रत व्यर्थ है। ऐसे में प्रश्न बनता है कि ये स्त्रियाँ इस प्रकार का व्रत करती क्यों है। अगर उनसे पूछा जाए व्रत से क्या फायदे मिल रहे है, तो जवाब उनकी ओर से कुछ नहीं आएगा। पूछा जाएगा फिर क्यों करती हो। तो बस यह जवाब मिलता है कि करना पड़ता है इसलिए। अब इस करना पड़ता है के पीछे कारण क्या है। पति का आदेश, संस्कार या कुछ और। अगर पति के आदेश की बात करें तो इतना तो निश्चित है कि वर्तमान में जब पति को परमेश्वर

मानने का कान्सेप्ट ही खत्म हो चुका है। स्त्री विमर्श इस बात की माँग करता है और मानता है कि पति-पत्नी रिश्ते में बराबर है और इस सोच को आत्मसात किए स्त्रियाँ भी मंच पर बड़े-बड़े भाषण देते नहीं थकती। पति की हर आज्ञा को मौन हो यूँ ही स्वीकार कर लेने को वो तैयार नहीं है, तो ऐसे में पति के केवल आदेशानुसार व्रत करना संभव नहीं दिखाता। 'करवा का व्रत' की लाजवंती और 'करवाचौथी औरत' की सविता भी पति की हर आज्ञा को स्वीकार नहीं कर रही। लाजों के अंदर मुखर विरोध है और करवाचौथी औरत सविता के मन में मौन विरोध, तो ऐसे में उसकी आज्ञानुसार भूखे-प्यासे व्रत करने का सवाल ही पैदा नहीं होता। यशपाल के यहाँ लाजवंती पर शिक्षा से मिले संस्कार बुरी तरह हावी है और इसलिए मानती है व्रत करके सौभाग्य की प्राप्ति हो सकती है- "मैं व्रत कर रही हूँ कि अगले जन्म में 'इन' से ही व्याह हो और मैं सुहा ही नहीं रही हूँ।"[9] वहीं सुधा अरोड़ा की कहानी 'करवाचौथी औरत' की सविता तक आते-आते स्त्रियाँ इस मानसिकता से बाहर निकल चुकी है कि व्रत से सौभाग्य की प्राप्ति होगी बल्कि व्रत फैशन है। सविता अगले जन्म में अपने ही पति को पति के रूप में पाने के विश्वास तले व्रत नहीं करती बल्कि आज की स्त्री की तरह उस मजबूरी के मनोविज्ञान में व्रत करती नजर आती है, जो जानती है व्रत के फायदे नहीं पर करना जरूरी है। अपने व्रत की तुलना कुतिया के भूखे रहने से करती है। कुतिया फ्लॉपी का भोजन पसंद न होने के कारण भूखे रहना और सविता द्वारा व्रत करना एक ही है- "आज फ्लॉपी ने भी मेरे साथ करवा चौथ का व्रत रखा है।"[10] पौराणिक ग्रंथ तर्क देते हैं कि करवा के व्रत से दाम्पत्य में सुख, समृद्धि और प्रेम को बढ़ावा मिलता है। यह व्रत स्वस्थ दाम्पत्य का आधार होता है। वहीं सविता का कथन बतलाता है कि व्रत के मूल में भावना भूखे रहने की मजबूरी बस है।

विवाह उपरांत पुरुष का पति संदर्भ स्त्री के पत्नी रूप के आर्थिक उपलब्धि को पूरा करने का उत्तरदायित्व निभाता है साथ ही प्रेम, सहानुभूति की अपेक्षा रहती है, तो स्त्री का पत्नी रूप पुरुष के दैनंदिनी पारिवारिक जिम्मेदारी को उठाने का संकल्प, साथ ही शांति की व्यवस्था की अपेक्षा रहती है। ऐसे में अगर दोनों में से किसी एक के भी अभीष्ट की पूर्ति में बाधा दिखती है। किसी के भी समझौते में सामंजस्य की कमी दिखती है तो संबंध दिशाहीन हो जाता है। करवाचौथ पर लाजवंती के मायके से सरगी के आए पैसे जब दोस्तों के बीच न चाहते हुए भी किसी कारणवश कन्हैयालाल खर्च कर देता है और उसके लिए सरगी नहीं लाता है, तो पत्नी की आर्थिक उपलब्धि जिसके मूल में प्रेम रहा हो कि प्राप्ति में बाधा की सृष्टि होती है और दांपत्य में तनाव का सृजन हो जाता है। लाजो मुँह फुला कर बैठ जाती है और पति का अभीष्ट शांति की स्थापना में बाधा बनती है। उसके उतरे हुए चेहरे को देखकर भी माफी माँगना कन्हैयालाल का संस्कार अनुमति नहीं देता। भले गलती उसकी क्यों न हो वरना पत्नी सरकस हो सकती है। वहीं दूसरी, जिस व्यवस्था की चाहत पुरुष करता है जिसके अंतर्गत पारिवारिक जिम्मेदारी करवाचौथी औरत सविता को निभानी है, उसकी पूर्ति नहीं होती क्योंकि घर की कुतिया भूखी रह जाती है, ऐसे में दाम्पत्य में तनाव की सृष्टि होती है। लाजो अपने अभीष्ट की पूर्ति के लिए तमाशा नहीं करती पर उसका फुला मुँह कन्हैयालाल का अभीष्ट व्यवस्था के अंदर शांति स्थापना में बाधा लगता है, वहीं सविता द्वारा कुतिया को भोजन न करवाने के कारण सविता का पति नाराज जरूर होता है पर कुत्तिया के लिए अलग से कुछ बनाने का आदेश नहीं देता बल्कि खुद जाकर उसका भोजन तैयार करता है। पति का स्वरूप बदल रहा है जहाँ लाजों द्वारा खाते वक्त मौन रहकर, मुँह फुलाकर नाराजगी व्यक्त करने पर कन्हैयालाल क्रोधित हो जाता है, उसे मारने को उठता है। वहीं 'करवाचौथी औरत' सविता के यहाँ पुरुष कन्हैयालाल का परिष्कृत वर्तमान रूप नजर आता है, जो नाराजगी व्यक्त जरूर करता है पर उम्मीद कुछ नहीं रखता। फ्लॉपी के लिए वो खुद

भोजन तैयार करता है और उसके अपने लिए भी चिप्स तैयार करने की फरमाइश बेटी द्वारा की जाती है, पति खुद मौन है।

पति की लंबी उम्र के लिए की जा रही व्रत योजना वास्तव में किन जटिलताओं से ग्रसित है इसे भली-भाँति समझा जा सकता है कहानी 'करवा का व्रत' और 'करवाचौथी औरत' के माध्यम से। एक ओर तलाक की संख्या दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। दाम्पत्य जीवन स्त्री-पुरुष के लिए सबसे बड़ी मजबूरी बनते जा रही है, वहीं पति की उम्र के लिए करवा का व्रत रखा जाना स्त्रियों के द्वारा कम नहीं हुआ बल्कि और भी शान-शौकत के साथ इसका पालन किया जा रहा है। धार्मिक संस्कार के अंतर्गत पत्नी के लिए व्रत करना जरूरी होता है भले व्रत के पीछे की भावना में अंतर आ गया हो। एक संस्कार हावी है जिसके तहत व्रत हो रहा है पर दूसरा संस्कार जो कहता है कि व्रत के दिन क्रोध, किसी की बुराई, मुख से अपशब्द नहीं निकालना चाहिए ताकि व्रत के फल की प्राप्ति हो वो गायब है। वर्तमान में व्रत के औचित्य का ज्ञान नहीं है स्त्रियों को। व्रत संस्कार में है इसलिए इसे निभाना है, मूल संवेदना जो है वो समाप्त है। करवाचौथी सविता का आचरण इसे व्यक्त करता है- "उधर सविता ने खीझ में अपना सिर झटक दिया। अब सारा दिन चाय की तलब सताएगी।"[11] सविता को व्रत को लेकर कोई खुशी या उत्साह नहीं है बल्कि नियम है, संस्कार से बनाए गए है इसलिए निभाना जरूरी है। दाम्पत्य का आतंक है कि विवाहित है तो रश्मों को निभाना पड़ेगा। भले ही उसका कोई फायदा होते न दिखे। इसके पीछे कोई वैज्ञानिक कारण न हो। एक ओर जहाँ इस रश्मों को लेकर स्वयं पत्नी उत्साहित नहीं है वहीं दूसरी ओर पत्नी की अपेक्षा रहती है कि पति जरूर उत्साहित दिखे और अगर वो उत्साहित नहीं है तो भी उसके आचरण में पत्नी के प्रति प्रेम, आदर, श्रद्धा, एहसान अधिक से अधिक दिखे और अगर ऐसा नहीं दिखता तो दाम्पत्य में तनाव की सृष्टि होती है। लाजों सोच बैठती है- "इन्हीं के लिए व्रत रख रही हूँ और यही ऐसी रूखाई दिखा रहे है।" उन मर्दों को ख्याल है न कि हमारी बहू हमारे लिए व्रत रख रही है, इन्हें जरा भी ख्याल नहीं।[12] पति द्वारा एहसान न मानना दाम्पत्य में तनाव को जन्म दे रहा है। करवाचौथी औरत सविता के दर्द के पीछे भी यहीं कारण है कि उसके किए गए व्रत के प्रति एहसान न मानकर पति मेज पर रखा भोजन कैसे कर सकता है। ऐसे में एक सवाल उठकर खड़ा हो जाता है कि पति एहसान क्यों माने। क्योंकि उसने तो व्रत करने कहा नहीं और उसके एहसान न मानने के कारण ही सविता जैसी करवाचौथी औरत परिवार में तिरस्कृत है। न तो बच्चे ही पूछ रहें है और न ही कोई और।

सुधा अरोड़ा की 'करवाचौथी औरत' की सविता उपेक्षा सह कर भी व्रत कर रही है जबकि वो जानती है इसका कोई फायदा नहीं है। वहीं यशपाल ने बहुत पहले ही अपनी कहानी 'करवा का व्रत' में लाजवंती के माध्यम से दिखा दिया है कि उपेक्षा होते ही स्त्री व्रत तोड़ देती है। संस्कारों से लड़ने का साहस यशपाल के यहाँ दिख रहा है, जबकि लाजवंती संस्कारगत जड़ता से बुरी तरह प्रभावित है और विश्वास करती है कि व्रत के बदले पति की प्राप्ति हो सकती है। केवल इस जन्म में ही नहीं बल्कि अगले जन्म में भी। यशपाल के यहाँ संस्कारगत जड़ता टूटती भी है और उसका कुछ परिष्करण भी हुआ है क्योंकि हेमराज भी मारना-पीटना बुरा मानता है। 'मारपीट बुरी बात है।' कन्हैयालाल भी लाजवंती की तीन में से दो इच्छा को पूरा कर रहा है। वहीं दूसरी ओर सुधा अरोड़ा की सविता उपेक्षित होकर भी अनमने भाव से ही सही व्रत को कर रही है। भले ही भावना-संवेदना में बदलाव आ चुका है। न तो पति की लंबी उम्र की इच्छा, न ही अगले जन्म उसी पति की प्राप्ति का संकल्प है, पर संस्कारगत जड़ता से निकल नहीं पाती और इसीलिए व्रत तोड़ नहीं पाती। यशपाल की लाजों सुधा अरोड़ा की सविता से पुरानी है पर उसका यह व्यवहार उसे सविता से आगे और

आधुनिक बनाता है। डॉ॰ अजय कुमार साव लिखते हैं- "यशपाल ने कन्हैयालाल के माध्यम से यह दिखाया कि जिस स्त्री के पत्नी रूप को हम निरीह मानते है, वह हिंसक भी हो सकता है, जो कि स्वाभाविक और मानवीय अस्मिता के संदर्भ में अनिवार्य है।"[13] भले ही संस्कारवादी जड़ता में जकड़ा समाज का एक भाग लाजों द्वारा व्रत तोड़ने को उचित न समझता हो, पर मानवीय अस्मिता के संदर्भ से देखे तो स्वाभाविक ही नहीं अनिवार्य भी है।

संस्कार के नाम पर शिक्षा स्त्री-पुरुषों दोनों को ही मिलती है। जिसमें स्त्रियों को एक ओर व्रत की परंपरा सौगात के रूप में मिलती है, तो दूसरी ओर यह शिक्षा कि जो इच्छा अपने मायके में पूरी नहीं हो सकी, ससुराल में पति के साथ पूरी हो जाएगी। जब इस सोच के तहत स्त्रियों का गठन होता है तब अनकही बातों को भी पति द्वारा समझने की उम्मीद रखी जाती है। वास्तव में अनकही बातों को न समझने और सुनने की प्रताड़ना है दाम्पत्य में। पति-पत्नी दोनों की अपेक्षा रहती है कि जो बातें कही भी नहीं गई हो सामने वाला न केवल उसको सुने और समझे बल्कि मान भी लें। इसी सोच के तहत पति चाहता है भले ही अपने मुँह से जाहीर न करें पर पत्नी हैं तो सेवा करें। विवाहित कन्हैयालाल सोचता है कि पत्नी है तो खाना पड़ोसे, पानी से हाथ धुलवाए, बिस्तर लगाए मूल रूप से सेवा करते रहे। - 'मुझे बाजार या होटल से खाना पड़े तो शादी का क्या लाभ।'[14] पुरूष के लिए विवाह का लाभ ही सेवा से जुड़ा है। तो दूसरी ओर संस्कार से मिली सीख के तहत 'करवा की व्रत' की लाजवंती भी सोचती है - 'बहुत सी चीजों के शौक थे। उसके पिता और बड़े भाई पुराने ख्याल के थे। सोचती थी, ब्याह के बाद इन चीजों के लिए कन्हैया से कहती।"[15] उसकी इच्छाएँ, कम से कम सभी इच्छाए कन्हैया के सामने जाहीर नहीं है पर दाम्पत्य की जटिलता ही है कि कन्हैया के द्वारा पूरा न होने का अफसोस है और ऐसे में प्रेम में सहज स्वाभाविक रूप से पाने की उम्मीद जिन चीजों की रहती है उसके लिए नखरा बनावटीपन शुरू हो जाता है और अगर तब भी पूरा न हो तो संवेदनाहीन संबंध ही देखने को मिलता है जैसा कि 'करवाचौथी औरत' सविता का संबंध है। जहाँ पति से कोई इच्छा नहीं, पति के घर लौटने पर चेहरे पर कोई खुशी नहीं, न ही संवेदना है न ही कोई अपेक्षा और शिकायत या प्रतिकार। लाजों अपने मन को मार रही है और मारते-मारते कन्हैयालाल को अभिनय के लिए विवश करके जाती है। इस विवश पति का वर्तमान रूप कैसा स्वरूप गठन कर रहा है यह भी विचारणीय है। तो करवाचौथी औरत की सविता मन मार चुकी है। बड़ी नीरसता से संबंध निभा रही है। लाजवंती के यहाँ उम्मीद जिंदा है, इसलिए मुखर विरोध है, पर सविता ने तो उम्मीद का दामन ही छोड़ दिया है। स्त्रियों के संबंध में देखें तो व्रत करने पति ने नहीं संस्कार ने कहा पर उदासी गुस्सा, खीझ पति पर है। दूसरी ओर पुरूष के संबंध में देखें तो खुश होकर पत्नी पूरे परिवार की सेवा करेगी ऐसा कोई वायदा पत्नी ने नहीं किया संस्कार ने बताया पर पूरा न होने पर अफसोस है और खीझ है तो पत्नी पर। सविता का पति घर लौटते ही भूखी कुतिया को देख कहता है- "ह्वॉट रबिश, यू कांट बी सो क्रुएलय बौखलाते हुए साहब मजबूत कदमों के साथ रसोई में दाखिल हुए, डीप फीजर से फ़्लॉपी का मनपसंद पोर्क मिंसड निकाला, डिफ्रॉस्ट किया और गैस पर चढ़ा दिया।[16]

करवाचौथ का व्रत पति अस्मिता को भी आहत करता है। यद्यपि वर्तमान में करवाचौथ के व्रत के प्रति पति-पत्नी दोनों को विश्वास नहीं है पर उत्सव के रूप में इसका पालन स्त्रियों के लिए आज भी जरूरी हो जाता है। करवाचौथ के व्रत को निभाने के पीछे स्त्री की अपनी वजह रही है। पति की ओर से कोई जोर जबरदस्ती नहीं है परंतु फिर भी यह महसूसने पर वो बाध्य है कि व्रत करके उसपर एहसान किया जा रहा है। पत्नी की इसी सोच के तहत दाम्पत्य में पति प्रताड़ित भी हो जाता है और आतंकित भी। लाजों

सोचती है- ''इन्हीं के लिए व्रत रख रही हूँ और यही ऐसी रूखाई दिखा रहे हैं।' इन्हीं के लिए व्रत कर रही हूँ और इन्हें गुस्सा ही आ रहा है।''[17] यद्यपि कन्हैयालाल ने लाजवंती को व्रत रखने नहीं कहा पर बावजूद इसके यह उम्मीद रहती है पत्नी की कि पति का आचरण उसके अभिष्ठ के अनुसार रहें, चुकी उसके लिए व्रत रखा जा रहा है इसलिए एहसानमंद रहें और जब ऐसा नहीं रहता तो यही बात पत्नी के लिए तकलीफदेह हो जाती है। लाजवंती को भी इसी बात की तकलीफ है। यहाँ दाम्पत्य की समस्या के मूल में कारण यही है। यद्यपि कन्हैया का व्यवहार लाजों के प्रति कई दिनों से रूखा था पर करवा के व्रत के दिन लाजों द्वारा भूखे-प्यासे रहना उसके लिए व्रत करना और उस पर उसकी उपेक्षा ही दाम्पत्य की समस्या बन जाती है। वर्तमान में स्त्रियाँ इस बोध के तहत व्रत से नहीं जुड़ी है कि वही पति मिलेगा या उसकी आयु लंबी होगी बल्कि यह सोच है कि व्रत है तो निभाना है। 'करवाचौथी औरत' की सविता इसी मानसिकता के तहत व्रत कर रही है। अगर महानता की जाती है तो उस महानता के बदले कम से कम प्रशंसा की इच्छा जरूर रहती है। पति व्रत की अपेक्षा नहीं रखता लेकिन करवा का व्रत करती औरत पति से बदले में उसके साथ व्रत करने और व्रत न तो कम से कम उसके प्रति कृतज्ञता का बोध रखने की अपेक्षा रखती है। इसी के तहत यशपाल के यहाँ पति कन्हैयालाल लाजवंती को पहले तो व्रत रखने से मना करता है सिर्फ इतना ही नहीं उसके न मानने पर एक समझौते के तहत स्वयं भी लाजवंती के लिए व्रत रखता है ताकि पत्नी की भावना आहत न हो और होता भी कुछ ऐसा ही है- ''पति को उपासे दफ्तर जाने पर उसका हृदय गर्व से फूला नहीं समा रहा था।''[18] सुधा जी की 'करवाचौथी औरत' के यहाँ ऐसा नहीं है। बल्कि उनके यहाँ वो नया पुरुष है जिसने यथास्थिति को मौनता के साथ स्वीकार भी कर लिया है और बेपरवाह भी हो गया है। व्रत को कन्हैयालाल की तरह व्यर्थ समझता है। व्रत का फायदा नहीं है पर इतने वर्षों में उसे यह समझ में आ गया है पत्नी को इन बातों को समझाने का भी कोई फायदा नहीं इसलिए इस व्रत से उसे कोई लेना-देना भी नहीं है। न तो वो इनकार ही करता है और न ही स्वीकार कर कन्हैया की तरह खुद व्रत करता है बल्कि एक तरह से कहा जाए तो बेपरवाह हो उठता है। आफिस से आता है तो भूखी पत्नी के प्रति कोई चिंता नहीं दिखाता पर कुतिया का भूखा रहना उसे खलता है। सविता जब कहती है कि फ्लॉपी ने भी व्रत रखा है- ''आज फ्लॉपी ने भी मेरे साथ करवा चौथ का व्रत रखा है।''[19] इस पर पति का 'ह्वॉट रबिश' कहना इस तथ्य की पुष्टि करता है किस तरह इस व्यवस्ता से उसे चिढ़ है। डॉ॰ अजय कुमार साव लिखते हैं- ''अप्रिय और गैरजरूरी को आचरण बनाना कहीं न कहीं मौन-मूक समझौता की विवशता का सूचक है।''[20] कन्हैयालाल का व्रत करना और करवाचौथी औरत सविता के पति का बेपरवाह होना मौन-मूक समझौता की विवशता ही है। एक और करवाचौथी औरत लाजों कन्हैया की पीड़ा का कारण बनती है, तो दूसरी ओर करवाचौथी औरत सविता खुद पीड़ा में है। यहाँ एक और बात विचारणीय है कि कन्हैयालाल नव विवाहित है, अतः फैशन के तौर पर एक बार मन न रहते हुए भी व्रत करना उसके लिए संभव है और वो कर लेता है। वहीं करवाचौथी औरत की सविता और उसके पति दाम्पत्य में एक लंबा समय बीता चुके है। उनके घर में बड़े होते बच्चे इसका सबूत है। ऐसे में जिन चीजों के प्रति कन्हैयालाल फैशन में, पत्नी को खुश करने के लिए निर्वाह कर रहा है उसके प्रति वितृष्णा पैदा हो चुकी है। ऐसा नहीं है कि सविता का पति अपनी पूर्वनिर्धारित योजना के तहत या सीख के तहत उसके प्रति उपेक्षित व्यवहार रखता है बल्कि उसकी स्वाभाविकता में चीजे घटित हो जाती है। वर्तमान में देखें पत्नी के करवाचौथ के व्रत से पति को कोई खुशी नहीं है, कोई भावना नहीं है और न ही कोई बाध्यता है कि ऐसा वह करें लेकिन पत्नी के अंदर अगर वो पति के लिए व्रत रखे

तो पति भी उसके लिए व्रत रखें ऐसी चाहत पाई जाती है और अनकही ये चाहत भी दाम्पत्य में समस्या को जन्म देती है। ऐसा नहीं है कि सविता का पति सविता के बारे में कुछ नहीं सोच रहा बल्कि खाने की टेबल पर खाते हुए चाँद के निकलने को लेकर चर्चा करता है परंतु वह स्वयं इस ढोंग का हिस्सा नहीं बनना चाहता हैए बेपरवाह हो चुका है। सविता का पति कन्हैयालाल के ही भविष्य की छवि है तो सविता भी लाजवंती का ही बदला रूप, जिसे अब भी लाजों की तरह पति द्वारा परवाह न करने के कारण अपनी परवाह होती है लेकिन एक लंबे समय को दाम्पत्य में बीता चुकने के कारण लाजों की तरह क्रांतिकारी हो व्रत नहीं तोड़ती। कुछ तो है जो उसे व्रत तोड़ने से रोक रहा है पर पति की उपेक्षा के कारण अगले जन्म में उसी पति का वरदान भी नहीं माँगती। लाजों अपने बारे में सोचकर व्रत तोड़ती है वहीं सविता व्रत और आशीर्वाद के दौरान सिर्फ और सिर्फ अपने बारे में सोचती है। सविता के पति का व्यवहार जानबूझकर ऐसा नहीं है और न ही कोई पूर्वनिर्धारित योजना और पत्नी पर गुस्सा है परंतु जो स्वाभाविक रूप से मान्य नहीं है उस आचरण से मुक्त होने का कम से कम खुद को मुक्त रखने का प्रयास है, कन्हैयालाल की तरह जबरदस्ती में चीजों को मानने को तैयार नहीं है।

वैवाहिक जीवन में स्त्री अपने अनुरूप व्यवस्था चाहती है तो पति का अभीष्ठ शांति की स्थापना है और व्यवस्था और शांति का टकराव ही समस्या को जन्म देता है। पत्नी की व्यवस्था कहती है कि व्रत जब पति के लिए हो रहा है तो पति कम से काम उसके प्रति आदर, श्रद्धा और एहसान का भाव रखें, वहीं दूसरी ओर पति शांति के लिए जो होता है होने देता है रोकता नहीं, भले ही कितनी ही वितृष्णा क्यों न भरी हो उसके होने के प्रति। करवाचौथ के बदले जिस आदर, श्रद्धा और उपकार का भाव पत्नियाँ पाना चाहती है वास्तव में वो अर्जित व्यवहार है। पर जब करवाचौथ के मामले में सामने पति को दिख रहा है कि इस कृत का कोई फायदा नहीं तो पत्नी के प्रति ऐसी भावना के जन्म का सवाल ही नहीं उठता और ऐसी अवस्था ही दाम्पत्य में तनाव के घेरे में चला आता है और पति आतंक में जीने को बाध्य।

यशपाल के यहाँ लाजों का पति कन्हैयालाल दाम्पत्य में प्रवेश करते ही शुरू से अंत तक डरा हुआ है। शुरुआत में पति सत्ता में अपनी पुरुष सत्ता को बचाए रखने का डर है इसलिए मारपीट तक नहीं पहुँचता पर पत्नी की तीन बातों में से दो बातों को मानकर एक को छोड़ देता है ताकि पत्नी सिर पर न नाचे। लाजवंती के विरोध के बाद इस डर में जी रहा है कि लाजवंती कहीं संबंध-विच्छेद न कर ले और समाज में उसकी जग हँसाई न हो जाए या फिर पलटकर उसे जवाब देने की उसकी आदत न बन जाए। पहली अवस्था में वो समाज की इस भूमिका से आतंकित है कि समाज उसे जोरू का गुलाम न मान ले या पत्नी उसके सिर पर तांडव न करें और दूसरे भाग में इस डर से आतंकित है कि कहीं पत्नी के छोड़ कर चले जाने पर पत्नी को न संभाल पाने की बदनामी न मिले। विमर्श में तो विरोध-प्रतिरोध का तांता लगा रहता है पर जब संस्कारों की बात आती है तो स्त्रियाँ मौन ही नहीं कुसंस्कारों (जड़ संस्कारों) को और खाद-पानी देते रहती है। वहीं 'करवाचौथी औरत' में घर की स्त्री आतंकित है संबंध को बचाने के लिए तभी फ्लॉपी के प्रसंग को लेकर पति और बच्चों द्वारा चार बातें सुनकर भी चुप रह जाती है। उसकी आत्मा में असंतोष इस हद तक भरा पड़ा है कि पति के साथ के लिए रखे जाने वाले व्रत में ही वो पति का साथ या सलामती नहीं माँगती। आधुनिक कहानी होते हुए भी सविता के मन में अपनी स्थिति को लेकर खीझ है पर विरोध नहीं। दूसरे का विरोध कर पाना तो दूर खुद अपने संस्कारों का भी प्रतिरोध या विरोध नहीं कर पाती है। लाजों इस जन्म में अपनी स्थिति में बदलाव लाती है वहीं सविता पुनर्जन्म के विश्वास को अपने मन में पालती है कि अगले जन्म में वह किसी साहब के घर की

पालतू कुतिया बने। यहाँ सवाल खड़ा होता है वैवाहिक जीवन में जब इतना असंतोष और आतंक है तो साथ में क्यों है। कानूनी व्यवस्था में अलग होने का उपाय है तो अलग क्यों नहीं हो सकते। तो इसके पीछे भारतीय समाज और उसके संस्कार ही उतरदायी है। कानूनी व्यवस्था में अलग होने का विकल्प है परंतु सामाजिक व्यवस्था में अलग होना और समाज द्वारा उसे स्वभाविकता से स्वीकार कर लेना उतना सहज नहीं है। भारतीय समाज में तलाक का सवाल भी इज्जत के सवाल से जुड़ा हुआ है, प्रतिष्ठा से जुड़ा हुआ है और सामाजिक प्रतिष्ठा को न तो 'कन्हैयालाल' जैसा मध्यवर्गीय पुरुष खो सकता है और न ही सविता जैसी मध्यवर्गीय नारी। अतः मजबूरी की तरह उसे ढो रहे है। डॉ॰ अजय कुमार साव लिखते हैं- "यथार्थ तो यह है कि आज विवाह स्त्री-पुरुष संबंध में व्याप्त कुंठा का एक अनिवार्य कारण के समान होने के कारण-अप्रासांगिक बन गया हैं।"[21] अप्रसांगिक होने के बावजूद इस कुंठाग्रस्थ दाम्पत्य को निभाते रहना नियति है। दाम्पत्य के मूल में प्रेम की मजबूरी जुड़ जाती है और ऐसे में प्रेम की तलाश घर के बाहर शुरू हो जाना स्वाभाविक है क्योंकि वहाँ न तो आतंक है और न ही असंतोष। समाज की नजर में नैतिकता के विरुद्ध है पर वर्तमान में देखे तो दाम्पत्य को बचाए रखने का साधन यहीं है।

निष्कर्ष :

सुखी दाम्पत्य के लिए संस्कारों के परिष्करण की जरूरत है। पुरुष संस्कार में परिष्करण का कार्य स्त्री द्वारा ही संभव है क्योंकि संस्कारों निर्माण भले ही पुरुषसत्ता द्वारा होता है पर व्यवहार में उसे शामिल करने का काम स्त्रियाँ ही करती है। परिवार के बीच पलता पुरुष अपने घर-परिवार में ही माँ, बहन आदि को देखते हुए यह उम्मीद लगा बैठता है कि घर परिवार की जिम्मेदारी का निर्वाहन स्त्री के कर्तव्य क्षेत्र के अंतर्गत है और विवाह के बाद संस्कार के कारण ही उम्मीद पत्नी पर आ बैठती है और जब ऐसा नहीं होता तो कन्हैयालाल जैसा नव विवाहित बल प्रयोग करता है और करवाचौथी औरत सविता का पति समय के साथ समझौता कर बेपरवाह हो जाता है। पत्नी-पति के संदर्भ में संस्कार के परिष्करण का कार्य कर सकती है और करती भी है परंतु अपने संस्कार के अंतर्गत पुनः उसी संस्कारों को पुनर्जीवित करती है। 'करवा के व्रत' में जब कन्हैयालाल व्रत करने की सोचता है तो लाजों कहती है 'क्या पागल हो। कहीं मर्द भी करवाचौथ करते है।' कहीं न कहीं उन्हीं संस्कारों को पुनर्जीवित कर रहा है, जिसके विरोध में संघर्ष है। अतः पूजा होनी है तो पति की क्योंकि वो स्वामी है। ऐसे में दाम्पत्य की समस्या का समाधान कैसे हो। पुरुष उलझा हुआ है वह स्वामी बने या नहीं। ऐसे में पत्नी की इच्छा के प्रति आपेक्षित आचरण ही पुरुष को दाम्पत्य के आतंक से राहत दे सकता है पर प्रश्न हैं पत्नी के संस्कार का परिष्करण कैसे हो। संस्कार से मिले पति को परमेश्वर मानने के व्यवहार से आज स्त्रियाँ मुक्त है न तो लाजों के लिए ही कन्हैयालाल परमेश्वर है और न ही सविता के लिए उसका पति, क्योंकि अगर पति को परमेश्वर मानती तो उसके किसी भी व्यवहार से असंतुष्टि नहीं होती। लाजों से सविता तक का सफर करती हुई स्त्रियाँ अब तो इस तथ्य से भी परिचित हो गई है कि व्रत करके पति की उम्र न तो लंबी हो सकती है और न ही वहीं पति दुबारा मिल सकता है पर व्रत करने की जो भारतीय संस्कृति है, उससे मुक्त नहीं हो पा रही। समाज भी उस पर अब उस तरह से हावी नहीं है। करे तो करें, न करें तो न करें। जब पूछने वाला भी कोई नहीं फिर भी चली आ रही व्रत की संस्कृति में बँधा स्त्री का संस्कार पोषित व्यक्तित्व का फैशनेबूल संस्करण ही दाम्पत्य में समस्या का जन्मदाता है, दोषी है। अतः दाम्पत्य के अनंत आतंक के साये से ग्रसित स्त्री-पुरुष मन का संस्कार ही सुखी दाम्पत्य का बीज बन सकता है।

संदर्भ सूची :

1. यशपाल 'करवा का व्रत' कहानी www.hindisamay.com

2. साव, डॉ॰ अजय कुमार 'अस्मिता के सवाल और यशपाल', 'पैरोकार' पत्रिका, वर्ष-4, अंक-1, जनवरी-मार्च 2015, पृष्ठ-12
3. यशपाल 'करवा का व्रत' कहानी www.hindisamay.com
4. साव, डॉ॰ अजय कुमार 'अस्मिता के सवाल और यशपाल', 'पैरोकार' पत्रिका, वर्ष-4, अंक-1, जनवरी-मार्च 2015, पृष्ठ-12
5. नवभारतटाइम्स डॉट कॉम
6. यशपाल 'करवा का व्रत' कहानी www.hindisamay.com
7. वही
8. वही
9. साव, डॉ॰ अजय कुमार 'अस्मिता के सवाल और यशपाल', 'पैरोकार' पत्रिका, वर्ष-4, अंक-1, जनवरी-मार्च 2015, पृष्ठ-14
10. अरोड़ा, सुधा करवाचौथी औरत : कहानी www.hindisamay.com
11. वही ए
12. यशपाल 'करवा का व्रत' कहानी www.hindisamay.com
13. साव, डॉ॰ अजय कुमार 'अस्मिता के सवाल और यशपाल', 'पैरोकार' पत्रिका, वर्ष-4, अंक-1, जनवरी-मार्च 2015, पृष्ठ-15
14. यशपाल 'करवा का व्रत' कहानी www.hindisamay.com
15. वही
16. अरोड़ा, सुधा करवाचौथी औरत : कहानी www.hindisamay.com
17. यशपाल 'करवा का व्रत' कहानी www.hindisamay.com
18. वही
19. अरोड़ा, सुधा करवाचौथी औरत : कहानी www.hindisamay.com
20. 'अस्मिता के सवाल और यशपाल' - अजय कुमार साव, 'पैरोकार' पत्रिका, वर्ष-4, अंक-1, जनवरी - मार्च 2015, पृष्ठ-16
21. वही

'एक थी मैंने एक था कुम्हार' : उपन्यास में खेती से पलायन किसान विवशता

मधु बाला
(सहायक आचार्य हिन्दी)
राजकीय महिला महाविद्यालय हिसार, हरियाणा

सारांश :

साहित्य समाज में घटित घटनाओं को अभिव्यक्त करता है। साहित्य समाज का दर्पण होता है। हिन्दी साहित्य में किसान जीवन को लेकर भक्तिकाल में तुलसीदास जी ने किसानों की दशा का वर्णन किया और उपन्यास विधा के अन्तर्गत किसान जीवन के विस्तृत स्वरूप का चित्रण करने का प्रयास मुंशी प्रेमचंद ने किया। 20वीं सदी का अंतिम दशक और 21वीं सदी का आरम्भिक दौर भारत में परिवर्तन के तौर पर साबित हुआ है। भूमंडलीकरण, बाजारीकरण, उपभोक्तावाद और सूचना प्रौद्योगिकी ने आम जनमानस को बहुत हद तक प्रभावित किया है। भारत प्रगतिशीलता के दौर में प्रविष्ट हो चुका है पर दूसरी तरफ समाचार पत्र में किसानों की आत्महत्या की खबरें मिलती है। बाजारवादी व्यवस्था, सरकारी व्यवस्था, सरकारी नीतियां किसानों को विविध षड्यंत्रों में फंसाकर खोखला बनाती जा रही है। हरि भटनागर ने अपने उपन्यास में प्राकृतिक आपदा से त्रस्त किसान, गांव से शहर की ओर पलायन, भ्रष्ट प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा किसानों का शोषण व भूमि अधिग्रहण की समस्या और इन समस्याओं से जूझते किसान की जिजीविषा को चित्रित किया है।

बीज शब्द :

बाजारवाद, भूमि-अधिग्रहण, भ्रष्ट प्रशासन, किसान, सता और ऋण आदि।

21वीं सदी में किसान जीवन को आधार बनाकर बहुत कम उपन्यास लिखे गए हैं। जिसमें भारत की लगभग 60% आबादी गांव में रहकर कृषि पर आश्रित होकर अपना जीवन यापन करती हैं। कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी है। वर्तमान समय में खेती घाटे का सौदा होने के कारण आज किसान खेती को छोड़कर दूसरे व्यवसाय को अपनाना चाहते हैं। "अगस्त 2018 की नाबार्ड की रिपोर्ट के अनुसार भारत में किसानों की संख्या मात्र 14.07 करोड़ है और जिनमें से 52.5% किसान कर्जदार हैं। यह रिपोर्ट यह भी बताती है कि एक किसान परिवार की कुल मासिक आय 8,931रूपये है, वह भी तब, जब पूरा परिवार कृषि के कार्य में जुटता है।"[1] प्राचीन समय में रीतिकालीन कवि घाघ ने खेती को श्रेष्ठ मानते हुए लिखा है।

'उत्तम खेती मध्यम बान, निषिद्ध चाकरी भीख निदान।'

लेकिन आज खेती घाटे का सौदा बन गई है। किसान का पुत्र आज किसान नहीं बनना चाहता। आज किसान अपने खेत को बेचकर अपने पुत्रों को नौकरी करवाना पसंद करता है। खेती का कार्य करना उसकी विवशता है। संजीव कृत 'फांस' उपन्यास का एक पात्र शिबू अपनी बेटी से कहता है, ''अकेला होता तो चला भी जाता कहीं... नागपुर, नासिक, मुम्बई, दिल्ली... लेकिन ये दो-दो मुगलियां, बायको इन सबको लेकर कहाँ जाऊँ''[2] इसके प्रतिउत्तर में शिबू की पुत्री कहती हैं, ''तुम ही नहीं, इस देश के सौ में से चालीस शेतकारी आज ही खेती छोड़ दें अगर उनके पास कोई दूसरा चारा हो। ४० लाख ने तो किसानी छोड़ भी दी।''[3] यदि आज किसान के पास कोई दूसरा विकल्प है, तो वह खेती करने की बजाय दूसरे कार्य को करना पसंद करेगा। हरि भटनागर ने अपने उपन्यास 'एक थी मैना था कुम्हार' उपन्यास में कृषक जीवन की पीड़ा, परिश्रम, बेबसी, भूख और दरिद्रता का यथार्थ मार्मिक चित्रण किया है।

उपन्यास का मुख्य पात्र भोला नामक किसान था। वह खेती किसानी के साथ-साथ मिट्टी के बर्तन बनाने का भी कार्य करता था। अकेला खेती के सहारे उसके परिवार का भरण-पोषण नहीं होता था। वह अपने आर्थिक स्तर को सुधारने के लिए शहर में बड़े मियां (गधे) की पीठ पर लादकर मिट्टी के कुल्हड़ बेचने जाता था। कुछ समय के बाद वह मंगल, चुन्नु हलवाई और गणेश के पास अपनी उधारी के पैसे मांगने जाता है, तो उसे पैसे नहीं मिलते। वह अपने आप पर गुस्सा करता है, ''ऐसे धंधे से क्या फायदा? जब समय पर दो पैसे ना मिल सके। काहे के लिए खट रहा है वह।''[4] समय पर पैसे न मिलने के कारण कुम्हार परेशान हो जाती है। यहां पर भोला की व्यथित मनोदशा को उजागर किया गया है।

जंगल की मिट्टी पर उस क्षेत्र में रहने वाले लोगों का अधिकार होता है। उपन्यास का पात्र भोला मिट्टी के कुल्हड़ बनाने के लिए वहां से मिट्टी लेकर आता था। लेकिन पटवारी और बाबू मिलकर उससे पैसे वसूलते हैं। यह कानून खदान महकमे के अधिकारियों द्वारा नहीं बनाया गया है, अपितु यह कानून स्वयं पटवारी द्वारा बनाया गया है। पटवारी भोला को समझाते हुए कहता है, ''अब तक तू यहां का राजा था, जितनी चाहता था, माटी काढ़ ले जाता था, अब कानून बन गया है, मतलब महीने-महीने पैसे लगेंगे, समझा।''[5] इस उद्धरण से स्पष्ट होता है कि प्रशासनिक अधिकारी भोले-भाले किसानों की अज्ञानता का फायदा उठाते हैं और उनसे मन-माने पैसे वसूलते हैं।

भारत में अधिकतर किसान गरीबी के कारण पैसों के अभाव में बीमारियों का समय पर इलाज न करने के कारण अप्राकृतिक मौत का ग्रास बन जाते हैं। गांव में स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी होती है, यदि वैद्य हकीम कोई दवाई दे दें, तो उसकी कोई गारंटी भी नहीं होती। यदि घर का मुखिया बीमार पड़ जाए तो उसके पूरे परिवार को खानें तक के लाले पड़ जाते हैं। कुम्हार जब बीमार पड़ा तो उसके घर की सारी जमा पूंजी उसके इलाज पर लग गई। घर पर खाने के लिए कुछ नहीं बचा था। चार सालों से सूखे की समस्या भी झेल रहे थे। खेतों से अनाज भी बहुत कम निकला था। भोला की पत्नी की चिंता निम्न शब्दों में देखी जा सकती है, ''चार साल के सूखे ने खेती की कमर तोड़ दी थी। छे बोरा अनाज कोई अनाज होता है, वह भी चार महीने में छिज गया था। आगे क्या होगा? - कुम्हारिन परेशान थी। खुद कम से कम खाए, कुम्हार को भी दो रोटी कम दे, लेकिन गोपी को तो रोटी चाहिए थी। उसे कैसे रोके! बढ़ती उम्र का पौधा। दिन में दस बार रोटी माँगता था। और फिर बड़े मियां-उनका कितना पेट काटे।''[6]

खेती घाटे का सौदा होने के कारण आज सभी खेती के कार्य को छोड़कर दूसरे कार्य को अपनाना

पसंद करते हैं। खेती के लिए किसानों के पास साधनों का अभाव है। उसके पास न तो समुचित पानी की व्यवस्था है और न बिजली की। की बार फसल की रोपाई के लिए पैसे नहीं होते, जिसके कारण वह बीज नहीं खरीद पाता और फसल की समय पर बुआई नहीं कर पाता। फसलों को यदि समय पर नहीं बुआई नहीं की तो पैदावार नहीं होंगी और किसान को अगली फसल पर निर्भर रहना पड़ता है। उपन्यास का पात्र अवध खेती के कार्य को छोड़कर शहर में जाकर कुली का कार्य करता है। वह बड़े मियां से कहता है कि मैंने यह बात किसी को नहीं बताई है कि मैंने खेती करना छोड़ दिया है। शहर में जब मेरा काम जम जाएगा, तो तभी सबको बता दूंगा। इधर खेती में पिछले चार सालों से सूखे की समस्या को झेल रहा था। खेती में कुछ न होने के कारण अब मैं शहर में जाकर मजदूरी करने लगा हूं। यह बात तुम भी किसी को नहीं बताना।

सरकार द्वारा किसानों की जमीन किसी विशेष उद्देश्य के लिए की जाती है। लोक कल्याण की भावनाओं को मद्देनजर रखते हुए ही सरकार किसानों की जमीन अधिग्रहण कर सकती हैं। कभी-कभार प्रशासनिक अधिकारी नेताओं के साथ मिलकर किसानों की जमीन वैसे ही हड़प लेते हैं। भोला की व उसके आसपास की बस्ती की जमीन मंत्री को भाई को सौंपी जानी थीं। सभी अधिकारी उस जमीन को हड़पने के लिए अनेक मंत्रणाएं करते हैं। पटवारी और बाबू एक दिन लिखित आदेश लेकर बस्ती में पहुंच जाते हैं। बाबू बस्ती के लोगों से कहता है कि, ''क्या है कि गवर्नमेंट ने एक ऑर्डर निकाला है। ऑर्डर है कि सड़क किनारे और उसके आजू-बाजू जो लोग बसे हैं उनके पास जमीन का पट्टा या कोई सा कागज हो तो उसे दिखाएं, अगर कुछ नहीं है तो वह जमीन कब्जे की मानी जाएगी, गवर्नमेंट सबको हटाएगी।''[7] बस्ती के सभी लोग एकत्रित होकर पंद्रह दिन तक कार्यालय में जाते हैं, पर कलेक्टर से वो नहीं मिल पाते हैं। पटवारी उन्हें यही कहता कि कलेक्टर यहां वहां मीटिंग में गया हुआ है। एक मामूली किसान हररोज कार्यालय के चक्कर नहीं लगा पाता। पटवारी की भोला को अकेला देखकर किसी कागज पर उसके अंगूठे के निशान लगवा लेता है कि भोला ने अपनी जमीन स्वेच्छा से दी है। गांव में आकर अधिकारी बस्ती में पोस्टर चिपका देते हैं और बस्ती को खाली करने का आदेश दे देते हैं। देखते ही देखते भोला की आंखों के सामने उसका झोपड़ा जेसीबी द्वारा गिरा दिया जाता है। और बस्ती के लोग एकत्रित होकर विद्रोह करते हैं कि, ''काकी चूड़ियों से भरा हाथ लहराते जोरों से चीखीं-चढ़ाओ जेसीबी। लहास गिरा दी जाएगी जानहरों की। हमारी ही जमीन मिली थी दफन होने को। सत्यानाश हो इनका। हम लेटे जात हैं चढ़ा दो जेसीबीए नाशपीटे, हत्यारों।''[8] यहां पर बस्ती के लोगों का प्रशासनिक अधिकारियों के प्रति विद्रोह देखने को मिलता हैं। लेकिन भोला स्तब्ध रहकर देखता रह जाता है और अपना सामान लपेट कर जंगल की ओर प्रस्थान कर लेता है। भोला से उसका पालतू पक्षी मैना उससे प्रश्न करती है, तुम चुपचाप जंगल में चले आए हो, जो तुम्हारे दुश्मन है क्या वो तुम्हें जंगल में चैन से रहने देंगे। कुम्हार कहता है, ''कोई कितनी बार हमें उजड़ेगा? हर बार हम बस जाएंगे। जब तक साँसा, तब तक आसा।''[9] इस वक्तव्य से भोला की जिजीविषा स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। भारतीय किसान विपरीत परिस्थितियों में भी अदम्य साहस रखता है।

निष्कर्ष :

उपन्यासकार हरि भटनागर जी ने अपने उपन्यास के माध्यम से किसानों के समक्ष आने वाली नित नवीन समस्याओं को बेबाकी से चित्रित किया है। किसान छल-प्रपंचों से ठगे जाते है, परन्तु कभी भी हिंसा से वो समाधान नहीं निकालते हैं और न ही आत्महत्या करते हैं। उपन्यास का किसान पात्र भोला अदम्य जिजीविषा का ध्वजवाहक है। उपन्यासकार ने

इस बात की ओर भी संकेत किया है कि यदि अन्नदाता ऐसे ही खेती से पलायन करता रहा तो एक दिन में राष्ट्र में खाद्यान्न की समस्या आ जाएगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. हिन्दी साहित्य में किसान विमर्श, वत्सल प्रकाशन, बीकानेर, पृ॰ सं॰100
2. संजीवए फॉंसए वाणी प्रकाशन दिल्लीए पृ॰ सं॰17
3. वही पृ॰ सं॰17
4. हरि भटनागर, एक थी मैना एक था कुम्हार, समय प्रकाशन, भोपाल, पृ॰ सं॰ 15
5. वही, पृ॰ सं॰ 75
6. वही, पृ॰ सं॰ 26
7. वही, पृ॰ सं॰ 119
8. वहीं, पृ॰ सं॰ 178
9. वही, पृ॰ सं॰ 180

Exploring the Revolutionary Essence of Badal Sircar in Indian Literature

Sadaf Mushtaq Nasti
Research Scholar
School of Comparative Languages and Culture DAVV Indore, MP

Yawer Ahmad Mir
Research Scholar, English
School of Comparative Languages and Culture DAVV Indore, MP

Abstract :

Indian literature boasts a rich tapestry of diverse voices and narratives that reflect the country's cultural, social, and historical complexities. Within this vibrant literary landscape, Badal Sircar emerges as a revolutionary figure who reshaped the conventions of Indian theatre and left an indelible mark on the realm of literature. With his bold and innovative approach, Sircar challenged traditional narratives, brought socio-political issues to the forefront, and redefined the boundaries of artistic expression. Badal Sircar was a prominent playwright, director, and theatre activist who revolutionized the Indian theatre scene with his bold and experimental approach. Through his innovative techniques and socio-political themes, Sircar challenged traditional narratives and brought a new perspective to the realm of Indian literature. This paper will delve into Sircar's life, examine his notable works, analyse his unique theatrical style, and explore the enduring impact he has had on Indian literature. This research paper aims to explore the revolutionary essence of Badal Sircar in Indian literature, examining his life, notable works, theatrical techniques, and enduring impact. By examining Badal Sircar 's life, works, theatrical techniques, and impact on Indian literature, this research paper aims to provide a comprehensive understanding of his role as a revolutionary figure in Indian theatre. Sircar's dedication to social and political issues, coupled with his experimentation with theatrical conventions, have left an indelible mark on the literary landscape of India, inspiring generations of artists to challenge norms and push boundaries in their creative endeavours.

Keywords :

Badal Sircar, Indian literature, revolutionary theatre, socio-political, artistic expression, innovative approach.

Introduction :

Badal Sircar, a prominent figure in Indian literature, is deeply influenced by the tumultuous era of British India's struggle for independence and partition. This background fuelled his exploration of socio-political themes in his works, reflecting his strong sense of social responsibility. His seminal play, *Ebong Indrajit*, encapsulated the post-independence

generation's existential turmoil in India, breaking away from traditional theatrical norms. *Baki Itihas* challenged prevailing notions of heroism and societal constructs, while *Pagla Ghoda* delved into human psychology and societal pressures. Sircar's revolutionary spirit found expression in his relentless exploration of socio-political issues, addressing caste discrimination, gender inequality, corruption, and abuse of power. He pioneered the "Third Theatre," aiming to engage the masses with innovative staging, minimalist sets, and audience participation. Despite facing criticism and censorship, Sircar remained committed to artistic integrity. His enduring legacy inspires playwrights, directors, and activists to voice their opinions and challenge norms. Sircar's revolutionary essence reshaped Indian theatre, redefined artistic expression, and fostered societal discourse and change. His life, works, and enduring impact underscore the transformative power of literature and theatre in shaping society.

Overview of Badal Sircar 's significance in Indian literature :

Badal Sircar, a luminary in Indian theatre, is a transformative figure whose pioneering spirit, bold experimentation, and commitment to social and political commentary through theatre have left an indelible mark on Indian literature. Born in 1925, his plays challenged traditional narratives, shattered artistic conventions, and brought marginalized voices to the forefront, catalysing societal change. He fearlessly tackled caste discrimination, gender inequality, corruption, and abuse of power, sparking critical dialogue. Sircar's "Third Theatre" concept bridged the gap between elite and populist theatre, emphasizing audience engagement, non-realistic elements, minimalist sets, and experimental staging techniques. His enduring legacy as a playwright, theatre practitioner, and social and cultural critic continues to resonate with audiences, fostering conversations on social justice, inequality, and human rights. Sircar's ability to transcend language and culture makes him significant not only in Bengali literature but also in the broader Indian literary landscape. This research paper explores his life, notable works, unique style, and lasting impact on Indian literature and theatre, revealing his revolutionary essence.

Life and Influences of Badal Sircar :

Born in 1925 during the tumultuous years of India's struggle for independence and partition, Badal Sircar's upbringing in a politically charged environment deeply influenced his artistic sensibilities and commitment to addressing societal issues. He began his journey in Calcutta, where he attended Presidency College and developed a strong interest in theatre, actively participating in college drama groups. Influenced by renowned playwrights like Bertolt Brecht, Anton Chekhov, and Samuel Beckett, Sircar was drawn to Brecht's concept of "epic theatre" that challenged traditional storytelling forms. Sircar's exposure to the Indian People's Theatre Association (IPTA) further solidified his commitment to using theatre as a tool for social change. IPTA, a progressive cultural movement, demonstrated the power of theatre in engaging with political and social issues. In the 1970s, Sircar introduced the revolutionary concept of the "Third Theatre," bridging the gap between elitist highbrow and populist commercial

theatre. This movement aimed to create socially relevant, artistically innovative theatre that engaged the masses. It utilized non-realistic elements, minimalistic sets, and innovative lighting and sound techniques. Audience engagement and interaction were paramount, breaking down the performer-spectator barrier. The Third Theatre also incorporated music, movement, and improvisation, challenging traditional notions of performance. Sircar's Third Theatre movement addressed pressing socio-political issues, inspiring a generation of theatre practitioners and challenging established norms. It became a catalyst for change, fostering a more inclusive and socially conscious form of storytelling in Indian theatre. Badal Sircar's life experiences and artistic influences have significantly shaped his revolutionary approach to theatre, leaving an enduring impact on Indian literature and inspiring artists and audiences alike.

Notable Works of Badal Sircar :

Badal Sircar's plays are a fearless exploration of society, power dynamics, personal relationships, and existential dilemmas. They delve into themes of identity, alienation, disillusionment, and the search for meaning. Through his works, Sircar exposes social inequalities, caste discrimination, gender disparities, corruption, and abuse of power, giving voice to the marginalized. His plays challenge societal norms, advocating for justice and equality, and act as catalysts for social change. *Ebong Indrajit* critiques societal expectations, offering a searing commentary on conventional notions of success, relationships, and happiness. The play's fragmented narrative reflects the inner turmoil of a post-independence generation grappling with identity and meaning. In *Baki Itihas*, Sircar challenges the glorification of historical narratives, emphasizing the importance of recognizing marginalized voices and alternative perspectives. The play questions the notion of heroism and power, presenting a collage of vignettes that prompt a more inclusive understanding of history. *Pagla Godha* explores fragmented identities and the struggle for authenticity, shedding light on the masks people wear to conform to societal expectations. It critiques a society that values conformity over individuality, urging viewers to reflect on their own roles and masks in different contexts. Sircar's plays serve as vehicles for socio-political commentary, compelling audiences to confront societal injustices, engage in meaningful dialogue, and inspire change. Through his profound insights into the human condition and his dedication to addressing pressing issues, Sircar's works continue to provoke thought and inspire conversations on vital topics within Indian society.

Theatrical Techniques and Innovations of Badal Sircar :

Badal Sircar's impact on Indian theatre is marked by his innovative techniques that challenged tradition and expanded artistic expression. His theatre emphasized social and political engagement, experimentation, and audience interaction, transforming the Indian theatrical landscape. Sircar's incorporation of non-realistic elements in his staging is a notable contribution. He believed that realism often fell short in capturing the complexity of human experiences. By using symbolic, poetic, and metaphorical elements, Sircar conveyed deeper meanings. Minimalist

sets and props allowed the audience to focus on characters and ideas, intensifying the theatrical experience and fostering a deeper connection with the emotions and themes on stage. Sircar's theatre was known for its emphasis on improvisation and audience interaction. He believed in making theatre a collaborative and dynamic art form, where the audience actively participated. Actors responded spontaneously to the audience's reactions, creating immediacy. Sircar encouraged direct engagement with the audience, breaking the fourth wall and inviting participation. This approach created a more democratic and inclusive theatre environment, valuing the audience's presence and input. Sircar's theatrical innovations have left a profound impact on Indian theatre, inspiring generations of practitioners to push the boundaries of artistic expression and engage with social and political issues. His legacy enriches the Indian theatre landscape, encouraging diversity, experimentation, and socially conscious storytelling. His techniques continue to provoke thought, inspire dialogue, and create transformative experiences for both performers and audiences.

Sircar's Impact on Indian Literature :

Badal Sircar's contributions to Indian literature have earned widespread acclaim, firmly establishing him as a revered figure in Indian theatre and literature. His plays are celebrated for their innovative storytelling, social commentary, and their profound exploration of the human condition. Critics have praised Sircar's unique theatrical aesthetics that challenged conventional norms and expanded artistic expression. His works are recognized for their deep exploration of societal issues, psychological depth, and poetic language. Sircar's ability to captivate audiences with thought-provoking narratives and powerful character portrayals has earned him a dedicated following and made his works significant contributions to Indian literature. Beyond their initial reception, Sircar's works have influenced subsequent generations of playwrights and theatre practitioners in India. His innovative theatrical techniques, social and political engagement, and commitment to authenticity have inspired many artists. His non-realistic approach to theatre, use of symbolism, minimalism, and improvisation, as well as the blending of sociopolitical commentary with artistic expression, have become hallmarks of Indian theatre influenced by his works. This legacy can be seen in the works of contemporary playwrights who continue to explore themes of identity, power dynamics, and social justice. Badal Sircar's plays have had a significant sociopolitical impact by challenging the status quo and initiating conversations on pressing societal issues. Fearlessly addressing topics such as caste discrimination, gender inequality, corruption, and abuse of power, Sircar brought these issues to the forefront of public consciousness, prompting critical dialogue and advocating for change. His plays served as catalysts for social transformation, urging audiences to question established norms and advocate for justice and equality. Sircar's sociopolitical impact extended beyond the theatre as he actively participated in theatre activism and cultural movements, using his platform to champion social justice and raise awareness about critical issues. His works became a means of political resistance and empowerment for marginalized communi-

ties. In conclusion, Badal Sircar's impact on Indian literature is far-reaching and diverse. His innovative storytelling, sociopolitical engagement, and ability to provoke critical dialogue have left an indelible mark on Indian literature and the cultural landscape, inspiring subsequent generations of artists and advocating for social and political change.

Challenges and Controversies :

Badal Sircar's plays, known for their bold and provocative content, often courted controversy as they confronted societal norms and addressed sensitive issues. This bold approach challenged established power structures and exposed social inequalities, leading to censorship, opposition, and negative reactions from conservative segments of society. For instance, Sircar's play "Raktakarabi" (Blood and Flowers) was initially banned due to its critique of political and religious institutions but later gained recognition as a significant work of Indian theatre. Similarly, "Bhoma" faced backlash for its portrayal of religious iconography, sparking debates on artistic freedom and cultural sensitivity. Despite these controversies, Sircar's plays garnered significant appreciation and recognition from progressive audiences and the artistic community. His unflinching exploration of social and political themes contributed to the evolution of Indian theatre's engagement with these issues. Sircar's outspoken nature and critical exploration of societal issues invited scrutiny and criticism from various quarters, particularly from conservative and nationalist groups who perceived his works as subversive threats to established power structures. His commitment to addressing issues like caste discrimination, gender inequality, and corruption made him a target of political and social backlash. Despite these challenges, Sircar remained undeterred, firmly believing in theatre's transformative power to provoke thought and bring about social change. His works, which continue to be relevant in contemporary Indian society, inspire artists, writers, and activists to address pressing social issues, promote inclusivity, and strive for justice. In today's context, Sircar's plays serve as a reminder of the importance of artistic freedom, dissent, and critical engagement with societal norms. They encourage individuals to question existing power structures and challenge injustices. His legacy is evident in the works of contemporary playwrights who draw inspiration from his themes, aesthetics, and fearless engagement with sociopolitical issues. Badal Sircar's enduring impact lies in his ability to inspire critical thinking, promote social change, and push the boundaries of artistic expression. His works are a testament to the ongoing struggle for justice and equality in society.

Conclusion :

Badal Sircar's contributions to Indian literature are profound and far-reaching. His bold and innovative approach to theatre challenged traditional narratives, brought socio-political issues to the forefront, and redefined the boundaries of artistic expression. Plays like *Ebong Indrajit*, *Baki Itihas*, and *Pagla Ghoda* captured the existential angst, social inequalities, and struggles for authenticity in post-independence India. Sircar's works received critical acclaim for their unique theatrical techniques and profound exploration of complex themes. His emphasis on social and political engagement, incorporation of non-realistic

elements, and use of improvisation and audience interaction have inspired subsequent generations of playwrights and theatre practitioners in India. Sircar's legacy serves as a reminder of the importance of dissent, artistic freedom, and the ongoing struggle for justice and equality in society. Further research and exploration of his literary legacy are crucial. Scholars and researchers can delve deeper into his plays, examining their impact on Indian literature, theatre, and society. By studying Sircar's contributions, researchers can shed light on his unique artistic vision, his role in challenging societal norms, and his enduring relevance in contemporary Indian society. His works continue to inspire and provoke audiences, encouraging them to question established norms, seek authenticity, and strive for a more inclusive and just society.

References :

1. Katyal, A. (2015). *Badal Sircar: Towards a Theatre of Conscience*. SAGE Publishing India.
2. Kumar, B. (2015). Decolonizing the Indian Theatre. *Journal of Literature, Culture and Media Studies*, 5(9 & 10).
3. Mitra, S. (2004). Badal Sircar: Scripting a Movement. *TDR/The Drama Review*, 48(3), 59-78.
4. Mudi, A. (2011). Badal Sircar. *Indian Literature*, 55(5), 35-38.
5. Sircar, B. (1974). *Evam Indrajit*. Translated by G. Karnad.
6. Sircar, B. (1999). *Evam Indrajit*. In *Three Modern Indian Plays (Tughlaq, Evam Indrajit & Silence! The Court is in Session).*
7. Tamilarasi, S. (2019). Postmodern Techniques in the Select Plays of Badal Sircar. *Language in India*, 19(6).

Magic in the Mundane: An Analysis of Magical Realism in Salman Rushdie's Midnight's Children

Yawer Ahmad Mir
Research Scholar,
DAVV Indore, MP

Abstract :

Salman Rushdie's Midnight's Children stands as a hallmark of magical realism in literature, intertwining the extraordinary within the ordinary. This paper undertakes a comprehensive analysis of the magical realism embedded in the narrative. It explores how Rushdie seamlessly weaves mystical elements into the fabric of the mundane, thereby shaping a narrative where the extraordinary becomes an inherent part of everyday existence. The abstract nature of magic intertwines with the reality of historical events, blurring the lines between fact and fiction. Through a critical lens, this study examines the mechanisms employed by Rushdie in employing magical realism, elucidating the impact of such narrative techniques on the reader's engagement and the broader thematic elements within the novel. Through this analysis, the paper seeks to unveil the nuanced and intricate layers of magical realism in Midnight's Children, delving into its significance in the realm of literary expression and its broader implications in storytelling. The thesis of this paper revolves around a comprehensive analysis of the role and impact of magical realism in Midnight's Children. It aims to explore how Rushdie's use of this narrative technique shapes the reader's engagement, enriches the novel's thematic elements, and delves into the significance of this style within the broader context of storytelling and literary expression. This examination will illuminate the intricacies of Rushdie's use of magical realism, shedding light on its purpose and effect within the narrative.

Keywords :

Blurred Realities, Extraordinary in the Ordinary, Interweaving of Fact and Fiction, Magical Realism, Narrative Technique.

Introduction :

Salman Rushdie's *Midnight's Children* stands as a pivotal work in modern literature, acclaimed for its unique narrative style and thematic depth. Set against the backdrop of post-colonial India, the novel weaves a tale intricately connected to the country's history and the lives of its people. Rushdie, a prominent figure in contemporary literature, employs

rich and complex storytelling that captures the essence of the era and the nation's cultural evolution. Within the literary landscape, magical realism stands as a genre that merges the ordinary with the extraordinary, blurring the lines between reality and the fantastical. This narrative technique imbues the mundane with enchanting elements, creating a captivating and often allegorical storytelling experience. The significance of magical realism lies in its ability to transcend the confines of reality, allowing authors to infuse their narratives with elements that challenge perceptions and delve into deeper societal, political, or historical issues. In the context of *Midnight's Children*, Rushdie employs magical realism as a tool to blend historical events with fantastical occurrences. The novel showcases a tapestry where magical elements are seamlessly integrated into the characters' lives and the broader historical context. These elements serve as allegories, portraying the complexities of a changing nation and its people. The narrative's magical realism isn't merely ornamental but serves as a reflective tool, mirroring the complexities of reality in a heightened, fantastical manner.

Understanding Magical Realism :

Magical realism, as a narrative technique, intertwines the ordinary with the extraordinary, creating a world where fantastical elements seamlessly coexist within the realistic fabric of a story. This literary style blurs the boundaries between the mundane and the magical, embedding enchanting occurrences into the everyday lives of characters. It's characterized by its fusion of the miraculous or impossible with the commonplace, often presented in a matter-of-fact or unremarkable manner. Historically, magical realism finds its roots in the folklore and storytelling traditions of various cultures, where myths, legends, and fantastical elements were integrated into the fabric of daily life narratives. In literature, the term was first coined in the 20th century and is closely associated with Latin American authors like Gabriel Garcia Marquez. The genre gained prominence as a post-colonial literary movement, particularly in regions where cultural complexities, colonization, and societal changes formed a rich backdrop for this narrative technique. In contemporary fiction, magical realism continues to play a vital role in shaping narratives that transcend traditional storytelling. It serves as a vehicle for authors to explore complex themes, historical events, and societal issues in a way that is both engaging and thought-provoking. It enables the blending of reality with fantastical elements, creating a space where the improbable becomes conceivable, challenging perceptions, and enriching the reading experience. The exploration of magical realism in literature involves understanding its unique characteristics, such as the infusion of the supernatural into everyday occurrences, the seamless blending of the fantastical and the real, and the symbolic or allegorical nature of these elements. Understanding its historical origins and its contemporary role in storytelling is crucial in appreciating its significance in enriching literary landscapes and providing unique perspectives on cultural, historical, and social themes.

Salman Rushdie's *Midnight's Children* :

Salman Rushdie's *Midnight's Children* embarks on a remarkable journey, intertwining personal narratives with the tumultuous historical landscape of post-

colonial India. The novel revolves around Saleem Sinai, born at the exact moment of India's independence, endowed with unique telepathic gifts linking him to other children born in the same hour. Rushdie masterfully weaves a tale that intricately connects the personal with the political, delving into themes of identity, history, and the intricacies of a nation in flux. The novel's structure and style showcase Rushdie's innovative approach to storytelling, employing a blend of historical facts and magical elements. His prose is rich, vivid, and often lyrical, embracing a nonlinear narrative that mirrors the chaos and complexity of India's post-independence era. Within this narrative tapestry, instances of magical realism are pervasive. Rushdie uses this literary device to illustrate the cultural and political upheavals of the time. Whether through Saleem's telepathic connections or surreal occurrences that intertwine with historical events, magical realism serves as a vehicle to portray the fantastical in the mundane, highlighting the larger-than-life events within the lives of ordinary individuals. These instances add depth to the story, symbolizing the multifaceted nature of the country's evolution and the challenges of its people.

Mechanisms of Magical Realism in the Novel :

In *Midnight's Children*, Salman Rushdie adeptly entwines the extraordinary with the ordinary, seamlessly integrating magical elements into the everyday lives of characters. This fusion crafts a world where the supernatural becomes an inherent part of reality, blurring the boundaries between the mundane and the fantastical. Such interweaving of the extraordinary into the commonplace serves as a reflection of the cultural and historical intricacies within post-colonial India. Rushdie's masterful use of magical realism challenges the conventional perception of fact and fiction. The blurred lines between reality and imagination prompt readers to question what is real and what is allegorical, highlighting the complexity of historical truth within the narrative. This technique not only enriches the storytelling but also symbolizes the multifaceted nature of history itself. Furthermore, the significance of magical realism within the context of historical allegory is paramount. The magical occurrences in the novel serve as allegories for significant historical events, providing a lens through which the complexities of history are vividly portrayed. The magical elements, while fantastical in nature, hold a mirror to the socio-political realities of the time, offering a profound exploration of the cultural and historical transformations of the nation.

Impact on Reader Engagement :

In *Midnight's Children*, the presence of magical realism significantly impacts the reader's engagement, offering a unique and immersive reading experience. The infusion of magical elements into the narrative prompts an engaging exploration, captivating the reader's imagination and curiosity. The blend of the extraordinary with the ordinary sparks a sense of wonder and intrigue, fostering a deep connection between the reader and the story. Emotionally and intellectually, the inclusion of magical realism evokes a multifaceted response from the reader. It prompts both a sense of enchantment and a thought-provoking reflection on the

complexities of the human experience. The interplay between the fantastical occurrences and the historical context encourages readers to navigate through a myriad of emotions, from awe to contemplation, stimulating a more profound engagement with the novel's themes. The connection between narrative techniques and reader perception is pronounced. The seamless integration of magical realism influences how readers perceive and interpret the story. Rushdie's utilization of this technique shapes the reader's understanding of the complexities of history and the societal transformations within the narrative, provoking a deeper reflection on the nuances of reality and imagination. This interweaving of the extraordinary with the mundane not only enriches the reader's experience but also prompts a more profound contemplation of the underlying themes and messages conveyed in the novel.

Significance and Implications :

Magical realism's role in literary expression holds profound significance, serving as a unique vehicle for authors to explore complex themes and narratives. In *Midnight's Children*, Salman Rushdie's use of magical realism showcases its pivotal role in challenging conventional storytelling. This narrative technique transcends traditional boundaries, enabling authors to interweave historical truths with fantastical elements, fostering a deeper understanding of cultural, social, and political complexities. It enriches literary expression, elevating the storytelling experience by offering a nuanced and multi-layered narrative. The broader implications of magical realism in storytelling extend beyond individual novels. Its ability to merge reality with the extraordinary has transformed the way narratives are crafted and perceived. This technique provides a platform for authors to depict societal intricacies, historical events, and cultural transformations in a manner that captivates readers while offering profound insights into the human condition. Rushdie's use of magical realism in *Midnight's Children* stands as a testament to the power and depth of this narrative technique. Its significance in literary expression, the evocative storytelling it enables, and the broader implications for fiction solidify its place as a pivotal tool in crafting narratives that transcend the boundaries of traditional storytelling, offering readers a more immersive and thought-provoking experience.

Conclusion :

In conclusion, the analysis of magical realism in Salman Rushdie's *Midnight's Children* has revealed the intricate interplay between the extraordinary and the mundane, shaping a narrative that transcends conventional storytelling. The integration of magical elements within the everyday lives of characters in *Midnight's Children* provided a unique lens through which the complexities of post-colonial India were portrayed. Magical realism served as a vehicle for Rushdie to intertwine historical truths with fantastical occurrences, blurring the lines between reality and imagination, ultimately offering a deeper understanding of cultural and societal complexities. This narrative technique significantly impacted reader engagement, fostering a blend of emotional enchantment and intellectual contemplation, compelling readers to navigate a narrative that challenged their perceptions of reality and history. The significance of magical realism in

Midnight's Children extends beyond mere storytelling—it stands as a testament to its role in shaping literary expression and offering a lens through which authors depict the intricacies of the human experience and societal transformation. Thus, the exploration of magical realism in Rushdie's masterpiece not only elucidates its impact on reader engagement but also underscores its significant role in redefining storytelling, enriching literature and offering profound insights into the complexities of history and human existence. *Midnight's Children* stands as a testament to the enduring power and significance of magical realism in the literary landscape.

References :

1. Rushdie, S. (1981). *Midnight's children*. Random House.
2. García Márquez, G. (1970). *One hundred years of solitude*. Harper & Row.
3. Leal, L. (1955). *Magical realism in Spanish American literature*. Hispania, 38(2), 184-190.
4. Zamora, L. P., & Faris, W. B. (Eds.). (1995). *Magical realism: Theory, history, community*. Duke University Press.
5. McHale, B. (2003). *What was postmodernism? Modern Language Quarterly*, 64(4), 696-699.
6. Franz, C. (2019). "Redefining reality: The curious case of magical realism". *Journal of Literature and Art Studies*, 9(2), 136-144.
7. Vaquero, M. J. (2011). "Post-colonial discourse in Midnight's children". *Journal of Post-Colonial Cultures and Societies*, 3(1), 43-58.
8. Flores, A. (1999). "Myth and history in Salman Rushdie's Midnight's children". *Texas Studies in Literature and Language*, 41(3), 305-322.
9. Wood, M. (1982). "Rushdie's children". *New York Review of Books*, 29(12), 25-30.
10. Roh, F. (1978). *Realism in our time: Literature and the class struggle*. Monthly Review Press.
11. Iannone, C. (1997). "Rushdie's post-colonial masquerade". *Modern Age*, 39(3), 252-261.
12. Bowers, M. A. (2007). "The political use of magical realism in Rushdie's Midnight's children". *South Asian Review*, 28(1), 100-112.
13. Hutcheon, L. (1988). *A poetics of postmodernism: History, theory, fiction*. Routledge.
14. Kipfer, S. (2007). "Magical realism as postcolonial discourse". *Postcolonial Text*, 3(2), 1-15.
15. Jameson, F. (2002). "Postmodernism and consumer society". In H. Foster (Ed.), *The anti-aesthetic: Essays on postmodern culture* (pp. 111-125). New Press.

Contextualizing The Channel of Status Quo Through Environmental Power Dynamics in The Select Novels of Barbara Kingsolver

Kowsalva R M
Research Scholar,
Department of English,
Hindustan Institute of Technology and Science,
Chennai.

Dr. Prem Shankar Pandey
Assistant Professor and Technical Editor,
Department of English,
Hindustan Institute of Technology and Science,
Chennai.

Abstract

Kingsolver's writing highlights the consequences of environmental degradation, which affect not only the natural world, but also the health and well-being of the people who depend on it. The novel portrays how environmental issues can exacerbate existing social and economic inequalities, as those with the least power are often the most vulnerable to the impacts of environmental degradation. At the same time, her novels celebrate the power of ordinary people to come together and fight for environmental justice, even against powerful economic and political interests.

Keywords :

Barbara Kingsolver, Environmental power dynamics, Hegemony, Power theory, Status quo.

1. Introduction :

Barbara Kingsolver's writing focus on environmental degradation which affects not only the natural realm, but also the realm of mankind. Her novels portray various theories like ecocriticism, feminism, ecofeminism and even social theories. The domain of the research is to study the environmental power dynamics with relation to the status quo in the novels of Barbara Kingsolver. The objectives of the research study are as follows:

i. To analyse the actions of Kingsolver's characters in the novels and identify instances where they challenge the status quo.

ii. To explore the intersection of environmental power dynamics with issues of race and class in Kingsolver's treatment of characters and themes.

iii. To examine the various factors that contribute to power dynamics in environmental issues, including economic interests, politics, and social inequality, as presented in the works of Kingsolver.

iv. To evaluate the depiction of Kingsolver's characters as either agents of change or victims of the status quo, and the implications of these portrayals for the novel's themes and messages.

2. Statement of Purpose :

The hypothetical question of the research is how does the status quo is expressed through environmental power dynamics in the novels of Barbara Kingsolver. The research suggests that the portrayal of environmental power dynamics in Kingsolver's novels challenges the dominant narratives about the relationship between humans and the natural world. Her novels often centre on marginalized communities and their relationship to the environment, offering a counter-narrative to the dominant narrative that prioritizes the interests of the powerful over those of the vulnerable. Most of her protagonists are suppressed but at the end or during the course of the novel they resist accepting the traditional and suppressive norms of the society.

In the novel *The Bean Trees,* Taylor Greer becomes aware of discrimination and social injustice during her stay with the political refugees was in fact a real incident called Sanctuary movement in USA which inspired Barbara Kingsolver to give reference in this novel. The supports for individuals who are suppressed due to the dominant political society picture the status quo of the people and how power impacts in the lives of refugees. The essence of environmental aspect is induced by Kingsolver at the same time in the novel by comparing the symbiotic relationship between the wisteria vines and the rhizobia with the relationship of people in the community of Oklahoma. Barbara Kingsolver's socio-political stances are mostly real as she happened to give the real incidents happened in USA. In *Pigs in Heaven,* Kingsolver challenges the conventional American lifestyle by presenting the lifestyle of Cherokee Nation. Along with this instance, images of nature's cycle and systems recur throughout the novel. In the novel, *The Poisonwood Bible;* it is about the missionary family, The Prices. In this novel, due to political turmoil the family shift from their place to Congo. The cultural differences between the Prices' family and the natives in the village of Kilanga are demonstrated by Kingsolver through the image of demonstrative garden in the novel. Climate and the garden are poorly managed and organized and the same is symbolized by the family in the novel. Unity and strength are shown in the novel by depicting the images and symbols of natural world in relation to mankind.

In the novels of Barbara Kingsolver, the issue of societal rules, images of environment with the relation to mankind, gender issues, and the conflict between the natives and the refugees plays a vital role in shaping the plot of her novels. The way Kingsolver unties the problem in her stories and later provide a solution or a satisfactorily ending to the novel makes her novel to be unique.

3. Methodology :

The research is carried out by the qualitative process. Through analysing the primary and secondary data, the study is being conducted for understanding the

concept of environmental power dynamics with relation to status quo in the novels of Barbara Kingsolver. Michael Foucault's Power theory and Antonio Gramsci's Theory of Hegemony are the fundamental theories applied to conduct the research on power dynamics. Rob Nixon and Rachel Carson's environmental aspects highlight the environmental point of view of the research. By merging these theories, environmental power dynamics is studied through the research.

4. Literature Review :

William Purcell, ***Is Barbara Kingsolver's "The Poisonwood Bible" a 'Postcolonial' Novel?*** **(Researchgate, 2012)** this article tells that Kingsolver's text is clearly rooted in an anti-colonialist ideology. It takes the European powers and the United States to task for all of the misery that colonialism, neo-colonialism, and hegemony have helped to bring about. At the same time, it clearly articulates the author's deep-felt solidarity with the African masses.

Venugopal, Pisharody Rajitha. ***Presenting An Other America: A Study of Select Works by Barbara Kingsolver*** **(Shodhganga, 2021)** In this thesis, Kingsolver's sense of place is related to three further aspects-agrarianism, environmentalism, and the connections with other peoples and cultures. In each of these cases, the question of the nation is also deliberated upon.

L S Javkar, ***Select Novels of Barbara Kingsolver A Study in Ecofeminism*** **(Shodhganga, 2018)** conveys that Eco feminists fight against anthropocentrism and androcentric. Anthropocentrism exists in the relationship between humans and nature. In order to show their supremacy over nature, human beings subject nature to brutal exploitation and domination, and androcentric makes women inferior to the male point of view.

Swatilekha Mahato, ***Women and Nature: Eco-feminist Reading of Barbara Kingsolver's Prodigal Summer and Flight Behaviour.*** **(International Journal of English Language, Literature and Humanities, 2015)** discusses the fact; eco-feminists argue that any attempt to liberate women will not be successful without an equal attempt to liberate nature. Each female protagonist makes their own choices in life. All these female characters acknowledge and appreciate the intrinsic values in surrounding places.

Lindsey McIntosh, ***The Natural Woman in the Literature of Wilma Dykeman and Barbara Kingsolver.*** **(Marshall, 2019)** tells that Dykeman and Kingsolver introduce environmentalism and feminism as prominent themes within their literature. The theme of environmentalism is shown through the development of water pollution and climate change in the works of each author. On the other hand, the theme of feminism is shown through the main characters in the author's fiction, as well as through the authors themselves.

Mary E Dickson, ***Re-enactments of Ecofeminist themes.*** **(ProQuest Dissertations Publishing, 2017)** talks about how Kingsolver anticipates her larger project: not to undermine but to unearth and shed light on the overarching tenet insistent upon the interconnectedness of all life. For Kingsolver, that inter-connectedness, even interdependence, embodied in ecosystems embracing

plants, animals, and humans, is axiomatic, but she extends the feminist claim to include abiotic entities and phenomena.

Ahmad Jasim Mohammad Alazzawi, Cultural Eco-Feminism in Barbara Kingsolver's novel The Bean Trees. (Iraqi Academic Scientific Journals, 2019) here Kingsolver effectively includes the harmony of individuality with the longing desire to live in a community, and the interaction and conflict between humans and the nature in which they live. She described the environment when it is affected by unnatural factors and how human beings have been affected by such pollution. She also gives a clear picture of how the industry and wrong use of resources could affect nature and destroy the landscape.

Sarah J. Hirsch, Protecting Systems of Nature and Gender: Ecofeminism in Barbara Kingsolver's Prodigal Summer and Ruth Ozeki's All Over Creation. (OPUS, 2017) this article implores the range of rhetorical styles employed by Kingsolver and Ozeki to represent the many strategies that real-life readers can learn from and utilize in their own advocacy for feminism and environmentalism.

Dr T. Kanchana Devi, A Study of Woman and Nature in Barbara Kingsolver's Flight Behavior. (The Indian Review of World Literature in English, 2022) This paper talks about Barbara Kingsolver's strong protagonist who is environmentally receptive and makes choices in favour of the environment and humanity. Flight Behaviour, thus, reflects the relationship of human beings with each other, with their surrounding place and details on a young woman and her genuine problems of the world in which she spreads her new wings. Thus, Barbara examines the environmental destruction on the earth and its effect on humans and nonhumans and creates environmental awareness to avoid the ecological crisis in the near future.

Bénédicte Meillon, Measured Chaos: EcoPoet(h)ics of the Wild in Barbara Kingsolver's Prodigal Summer. (Ecozon, 2019) here Kingsolver's presentation of nonhuman nature is ambivalent. On the one hand, it is self-consciously anthropomorphic in a way that foregrounds the inevitable human subjectivity that mediates our contact with all others. On the other hand, it also acknowledges the otherness of animals, forever ungraspable and coexisting with us in a universe of multitudinous co-evolutions. Despite this acknowledgement of otherness, Kingsolver's anthropomorphism also genuinely induces empathy for animals' plights and emotions.

Dr. S. Y. Hongekar, Eco-feminism in Barbara Kingsolver's Prodigal Summer. (Vivek Research Journal, 2017) in this article, ecofeminists argue that the ideology which sanctions the oppression of nature is the same as that which authorizes oppression based on race, class and gender. In exploring gender differences in relation to nature, Prodigal Summer exposes the dichotomy of nature vs. civilization in which "nature is coded nonwhite and female while civilization denotes white and male," while recognizing the origins of this duality and exploring its historical usefulness in explaining human/nature relationships. Her female characters take the initial part to maintain

an ecological balance as well as human health. Women in Prodigal Summer play a vital role in protecting animals and crops. They first think about the well fair of the community rather than their own selfish thought of increasing their bank balance. Their devotion to saving crops, trees and animals somewhere makes them outstanding in their lives.

Aubrey A. Laughlin, Deconstructing Exploitative Systems and Restoring a Balanced Biosphere. (Scholar Works, 2016) in this paper, Kingsolver exudes her own hope for the future of humanity and the entire ecosystem through the story of Prodigal Summer - the belief that people can save the planet. Often espousing common principles of ecology and theories of sexual selection, Kingsolver's female protagonists lead the way in establishing healthier interconnections between humans, nonhuman animals, and the environment.

Sabah Atallah Khalifa Ali, Barbara Kingsolver Evaluating Her Contribution to the Eco-Feminist Novel. (Research gate, 2020) this paper tells that Kingsolver anxiously tackles issues related to environmental pollution, which is the outcome of industrialization. Her novels are warnings against the danger of man's abuse of the natural world through excessive mining, wrong agricultural practices and mountain removal.

Rejani G S, The Butterfly phenomena: A Study of Climate Change on Barbara Kingsolver's Flight Behaviour. (Journal of Emerging Technologies and Innovative Research, 2018) this article reflects the actuality of climate change and Monarch butterfly migration. It also focuses on the story of a young woman trying to change her life and a deeply humane account of working people responding to the local effects of the global climate crisis.

T Eswar Rao, Woman and Climate Change in Barbara Kingsolver's Flight Behaviour. (The Creative Launcher, 2021) in this article, Kingsolver merges both the scientific and ecological facts in her novel one and the other and reinstates Barry Commoner's first law of ecology that "everything is connected to everything else" to an extreme she provides an alternative perspective that even science is possible through fiction.

Abhra Paul, Writing the Earth: An Ecocritical Reading of the Selected Works of Barbara Kingsolver. (IITJ Theses, 2021) The study concentrates on interpreting and analysing Barbara Kingsolver's works within the ecocritical context. Kingsolver's works exhibit an understanding that the human and the nonhuman interact and intersect in a meaningful way.

Dr Prabhavati Arvind Patil, Socio-Ecological Issues in Barbara Kingsolver's Unsheltered. (International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology, 2022). This paper deals with Kingsolver's novel, Unsheltered which is more concerned with the immediate environment and power structures that impact upon the communities within the story. It presents more symbiotic and holistic relationship structures between society and the environment.

Debra J. Rosenthal, Climate-Change Fiction and P Climate-Change Fiction and Poverty Studies: Kingsolver Studies: Kingsolver's Flight Behavior, Diaz's "Monstro," and Bacigalupi's "The Tamarisk Hunter." (Carroll Collected, 2019) This paper is a comparative study about climate change and its consequences by approaching the works of Kingsolver and Diaz.

Buddhi Prasad Adhikari, Traumatic Memory and Quest for Identity in Barbara Kingsolver's Animal's Dream. (Elibrary, 2010) This paper deals with the reality of one traumatic event that is not reinforced in this encounter, but instead trembles as an incommensurable void is given voice between the viewer and the place. Traumatic memory should also be looked at from a sociological perspective, which gives us the notion of cultural trauma.

Christopher Lloyd and Jessica Rapson, Family territory to the circumference of the earth: local and planetary memories of climate change in Barbara Kingsolver's Flight Behaviour. (Research archive, 2017) This article suggests that Barbara Kingsolver's Flight Behaviour responds to this challenge by charting interactions between local and planetary environments, prompting readers to contextualize the micro-geographically bounded human experience and memory within the macro context of the Anthropocene.

Gorton, Ceri. The Things That Attach People: A Critical Literary Analysis of the Fiction of Barbara Kingsolver. (Nottingham Library, 2009) This assessment posits that there exists a difficult but fruitful tension between writing fiction for readers and writing to a political agenda. Kingsolver promotes both of these through her narrative strategies and preoccupations. In the end, Kingsolver's pursuit of popular appeal, far from compromising her politics, is a political strategy in itself. Two thousand nine.

Harrison, Summer Gioia. "Environmental Justice Metafiction: Narrative and Politics in Contemporary Ethnic Women's Novels by Louise Erdrich, Linda Hogan, Ruth Ozeki, and Karen Yamashita" (Penna Library, 2012) This article talks about Environmental injustice has a disproportionate impact on women, low income populations, and people of color. This thesis also examines the intersection of literary narratives with broader environmental, social, economic, and historical narratives to understand how the exploitation of nature is linked to the exploitation of people.

5. Research Questions

I. Do Kingsolver's characters challenge the status quo through their actions within the novels?

II. Does Kingsolver's treatment of issues such as race and class intersect with environmental power dynamics in the novels?

III. Are the power dynamics in environmental issues explored in Kingsolver's works primarily related to economic interests, or are other factors, such as politics and social inequality, also important?

IV. Are the characters in Kingsolver's novels depicted as agents of change or as victims of the status quo?

6. Result :

Kingsolver's writing, thus, creates a hope in people that making the world a kinder and more secure place in order to live peacefully with interdependency. She also alerts her readers to the importance of community and the contribution that it makes to the life of each and every human being. Barbara Kingsolver raises her voice in praise of nature, family, and joys of everyday life while examining the genesis of war, violence, and poverty in the world.

7. Contributions :

The secondary data that have contributed to the idea of environmental power dynamics are well related to the hypothetical question and research objectives. The power theory and the theory of hegemony pave way to understand the concept of power dynamics whereas the environmental aspects of Rob Nixon and Rachel Carson bring more insights to the research study.

8. Conclusion :

The research paves way to find the status quo of the characters in the novels of Barbara Kingsolver with relation to environmental power dynamics. As the novel has references to the real incidents happened in the society of America, this research also deals with the autobiographical sketch of Barbara Kingsolver. This research details viewpoint of Kingsolver in terms of power in society highlighting the dominant and the oppressed part of the society and its relation with environment. As an environmental activist, Kingsolver adds her touch of ecological perspectives in her novels which reflects in the people and their position in their society.

References :

1. Adhikari, Buddhi Prasad. 2010. "Traumatic Memory and Quest for Identity in Barbara Kingsolver Animal's Dream". *E library* [Online]. Available: https://elibrary.tucl.edu.np/bitstream/123456789/12640/1/Full%20Thesis%286%29.pdf
2. Alazzawi, Ahmad Jasim Mohammad. 2019. "Cultural Eco-Feminism in Barbara Kingsolver's novel The Bean Trees". *Iraqi Academic Scientific Journals* [Online]. Available: https://www.iasj.net/iasj/pdf/74340950937c84a9
3. Carson, Rachel. 2000. *Silent Spring*. India: Penguin Modern Classics.
4. Devi, Kanchana T. 2022. "A Study of Woman and Nature in Barbara Kingsolver's Flight Behavior." *The Indian Review of World Literature in English* [Online]. Available: https://www.worldlitonline.net/2022-january-articles/article-9.pdf
5. Dickson, Mary E. 2017. "Re-enactments of Ecofeminist themes." *ProQuest Dissertations Publishing* [Online]. Available: https://www.proquest.com/openview/2785e425eeb861885e62d0-ee89720f0e/1?pq-origsite=gscholar&cbl=18750
6. Foucault, Michael. 1980. *Power/Knowledge: Selected Interviews and Other Writings 1972-1977* in Colin Gordon (ed.). New York: Pantheon Books.
7. Gramsci, Antonio. 1996. *Selections from the Prison Notebooks* in Qunitin Hoare, Geoffrey Nowell-Smith (eds. & trans.). India: Orient Black Swan Publishers.
8. Gorton, Ceri. 2009. "The Things That Attach People: A Critical Literary Analysis of the Fiction of Barbara Kingsolver." *Nottingham Library* [Online]. Available: http://eprints.nottingham.ac.uk/10758/1/Ceri_Gorton.pdf
9. Javkar, L S. 2018. "Select Novels of Barbara Kingsolver A Study in Ecofeminism." *Shodhganga* [Online]. Available: https://shodhganga.inflibnet.ac.in:8443/jspui/handle

10. Kingsolver, Barbara. 1988. *The Bean Trees*. New York: HarperCollins Publishers.

11. Kingsolver, Barbara. 1990. *Animal Dreams*. New York: HarperCollins Publishers.

12. Kingsolver, Barbara. 1993. *Pigs in Heaven*. New York: HarperCollins Publishers.

13. Kingsolver, Barbara. 1998. *The Poisonwood Bible*. New York: Harper Collins Publishers.

14. Kingsolver, Barbara. 2009. *The Lacuna*. New York: HarperCollins Publishers.

15. Kingsolver, Barbara. 2012. *Flight Behaviour*. New York: Harper Collins Publishers.

16. Laughlin, Aubrey A. 2016. "Deconstructing Exploitative Systems and Restoring a Balanced Biospher." *Scholar Works* [Online]. Available: https://scholarworks.sjsu.edu/etd_theses/4762/

17. Mahato, Swatilekha. "Women and Nature: Eco-feminist Reading of Barbara Kingsolver's Prodigal Summer and Flight Behaviour." *International Journal of English Language, Literature and Humanities*, 2015. https://ijellh.com/OJS/index.php/OJS/about

18. McIntosh, Lindsey. 2019. "The Natural Woman in the Literature of Wilma Dykeman and Barbara Kingsolver." *Marshall*, [Online]. Available: https://mds.marshall.edu/cgi/viewcontent.cgi? article= 3046& context=asa_conference

19. Nixon, Rob. 2013. *Slow Violence and the Environmentalism of the Poor*. New York: Harvard University Press.

20. Patil, Prabhavati Arvind. 2022. "Socio-Ecological Issues in Barbara Kingsolver's Unsheltered." *International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology* [Online]. Available: https://www.ijarsct.co.in/Paper4678.pdf

21. Paul, Abhra. 2021. "Writing the Earth: An Ecocritical Reading of the Selected Works of Barbara Kingsolver." *IITJ Theses* [Online].Available: http://theses.iitj.ac.in:8080/jspui/handle/123456789/239

22. Purcell, William. 2023. "Is Barbara Kingsolver's The Poisonwood Bible a Postcolonial Novel?" *Research gate* [Online]. Available: https://www.researchgate.net/publication/349423683_Is_Barbara_Kingsolver's_The_ Poisonwood_Bible_a_'Postcolonial'_Novel . [Accessed 2023, Feb 20].

23. Rao, Eswar T. 2023. "Woman and Climate Change in Barbara Kingsolver's Flight Behaviour." *The Creative Launcher* [Online]. Available: https://www.redalyc.org/journal.pdf

24. Rejani, G S. 2018. "The Butterfly phenomena: A Study of Climate Change on Barbara Kingsolver's Flight Behaviour." *Journal of Emerging Technologies and Innovative Research* [Online]. Available: https://www.jetir.org/papers/JETIR1810815.pdf

25. Rosenthal, Debra J. 2019. "Climate-Change Fiction and P Climate-Change Fiction and Poverty Studies: Kingsolver Studies: Kingsolver's Flight Behavior, Diaz's Monstro, and Bacigalupi's The Tamarisk Hunter." *The Carroll Collected* [Online]. Available: https://collected.jcu.edu/cgi/viewcontent.cgi=fac_bib_2019

26. Venugopal, and Pisharody Rajitha. 2021. "Presenting An Other America: A Study of Select Works by Barbara Kingsolver" *Shodhganga* [Online].Available: https://shodhganga.inflibnet.ac.in:8443/jspui/handle/10603/334048

व्यक्तित्व

गुरुनानक की साधना - पद्धति (नाम - मार्ग)

डॉ॰ हरजिंदर कौर
(सहायक प्रोफेसर)
खालसा कॉलेज ऑफ एजुकेशन रंजीत एवेन्यू,
अमृतसर (पंजाब)-143001

शोध सार :

गुरुनानक मध्ययुगीन धर्म संस्थापकों में एक महान धर्म-संस्थापक थे। उन्होंने साधना पद्धति को परम्परा के अनुकूल निर्मित करने की अपेक्षा अपनी भक्ति-साधना को मौलिक और स्वतन्त्र बनाए रखने का भरसक प्रयत्न किया। गुरु नानक अपने युग के एक महान विचारक, प्रगतिशील समाज सुधारक, उत्कृष्ट कवि होने के साथ-साथ महान भक्त भी थे। उनका भक्तिकालीन निर्गुण काव्य परम्परा में विशिष्ट स्थान है। स्वतंत्र चिंतन, स्वानुभव और आचरित सत्य के आधार पर इन्होंने अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया था। गुरु नानक ने मानव-कल्याणर्थ सहज-साधना-मार्ग का प्रचार किया। इसे 'गुरुमार्ग' या 'नाम-मार्ग' की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। इस लेख के माध्यम से गुरु-कवि की साधना-पद्धति के अन्तर्गत परम्परा से चले आते-कर्म- मार्ग, योग-मार्ग, ज्ञान-मार्ग और भक्ति-मार्ग का अध्ययन-विश्लेषण किया गया है।

बीज शब्द :

गुरु नानक, साधना - पद्धति, नाम मार्ग।

मूल आलेख :

परम्परागत भक्ति के दो रूपों वैधी भक्ति और प्रेमा भक्ति अथवा रागात्मिका भक्ति में से गुरु नानक ने प्रेमा-भक्ति को स्वीकार किया। गुरुनानक में भले ही भक्ति-मार्ग के अनेक तत्व मिलते हैं, परन्तु इन्होंने भक्ति मार्ग के वैधी रूप की आलोचना की है। वैधी भक्ति के जटिल और कठिन विधि-विधानों को उन्होंने निरर्थक कहा है। वैधी भक्ति के तिलक, माला, आसन, मूर्ति-पूजा, यज्ञोपवीत, धूप-दीप को निरर्थक कहा है। इस संदर्भ में गुरुनानक की निम्न पंक्तियां अवलोकनीय है।

पडि पुस्तक संधिआं बाद।। सिल पूजसि बगुल समाध।।
मुखि झूठ विभूषण सारं।। त्रैपाल तिहाल विचार।।
गलि माला तिलकु लिलाटं।। हुइ धोतो बसत्र कपाटं।।
जे जाणसि ब्रहर्म करमं।। सभि फोकट निसचउ करमं।।

रागु आसा ए बार - सलोकु।

गुरुनानक ने प्रेमा - भक्ति अर्थात् रागात्मिका भक्ति को अधिक महत्व दिया परमात्मा की प्रेमा-भक्ति के द्वारा ही साधक को प्रभु-प्राप्ति सुलभ होती है। भक्ति के अनेक उपकरणों में प्रभु-नाम, सत्संगति, प्रभु का आदेश, दृढ़ विश्वास, आत्म-समर्पण-भाव, दैन्य-भाव, प्रभु-स्मरण, प्रभु-कीर्तन और परमात्मा की कृण आदि उपकरणो का वर्णन बहुतायक से हुआ है। गुरु नानक-वाणी में दैन्य-भाव देखने योग्य है। गुरुकवि अपने युग के महापुरूष होते हुए भी अपने बारे में इस प्रकार कहते हैं -

"हउ पापी पतित परम पाखण्डी ए तू निरुमल निरंकारी।
तू पूरा हम ऊरे होछे ए तू गउरा हम हउरै।।"

- राग सौरठि।

गुरु नानक ने प्रभु कृपा को सभी साधनों का मूल कहा है । इस संसार में उसी साधक का उद्धार होता है ए जिस पर परमात्मा की कृपा होती है-

जिसु नदरि करै सो उबरै हरि सेती लिव लाई।

रागु सिरी।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि गुरुनानक ने परम्परागत भक्ति मार्ग के वैधी रूप का खण्डन किया है और प्रेमाभक्ति के अनेक तत्वों का निरूपण किया है। इतना होने पर भी गुरु नानक की भक्ति साधना में नवीनता और मौलिका के दर्शन होते है। अधिकांश विद्वानों का मत है कि गुरु नानक ने स्वतन्त्र चिंतन, स्वानुभव और आचरित सत्य के आधार पर अपने भक्ति सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया था। गुरु नानक की भक्ति-साधना को 'नाम-साधना' अथवा 'नाम-मार्ग' भी कहा जाता है। गुरु नानक के नाम-मार्ग का अध्ययन-विश्लेषण अनाक्ति पंक्तियों में प्रस्तुत किया है।

गुरु नानक की साधना-पद्धति 'नाम-मार्ग' :

गुरुनानक की भक्ति साधना को नाम-मार्ग की संज्ञा से अभिहीत किया जाता है। गुरु नानक ने भी परमात्मा नाम को ही जप, तप और संयम का सार तत्व कहा गुरुकवि का कथन है -

"नामे नामि रहे वैरागी साचु रखिया उरि धारे ।
नानक बिन नावै जोगु कदे न होवै देखहु रिदै बोचारै।"

- रागु रामकली-विध गोसटि।

इस प्रकार गुरुनानक के अनुसार परमात्मा नाम को स्मरण करते हुए सांसारिक सुखों का भोगना ही समुचित और शोभनीय है। इतना ही नहीं मनुष्य का जीवन तभी सफल कहलाएगा जब वह नाम को अपने जीवन में धारण करेगा। प्रभु नाम में व्यतीत होने वाला मनुष्य जीवन ही उत्तम है, धन्य है। अतः प्रभु नाम के महत्त्व को गुरु चिंतन में सर्वोपरि स्थान प्राप्त है।

नाम मार्ग का साधना पक्ष :

नाम का स्वरुप :

गुरु नानक की वाणी में नाम से अभिप्राय परमात्मा और उसका हुक्म है। उन्होंने कहा भी है कि परमात्मा को श्वास-श्वास से सिमरन करना और उम सर्वव्यापक परमात्मा में एकाकार हो जाना ही 'नाम-भक्ति' है। गुरु नानक की वाणी में 'नाम' परमात्मा के किसी संज्ञा-वाचक नाम का बोध नहीं कराता है। यह 'नाम' परमात्मा की ही भांति अलख और सर्वव्यापी है। 'नाम' उसकी सृजन-शक्ति है। प्रिसिपल तेजा सिंह के अनुसार - "वह समस्त प्रक्रिया जिसके द्वारा साधक दृश्यमान जगत में परमात्मा में लीन होता है, नाम कहलाती है। जीवात्मा के परमात्मा से मिलन तक के व्यवहार को नाम कहा जाता है। नाम है नामी के रंग में रंगा जाना। इस प्रकार नाम एक मार्ग जिसके द्वारा जीवात्मा परमात्मा से साक्षात्कार कर उसमें अभेद हो जाती है। गुरु नानक के 'नाम-मार्ग' को पांच अवस्थाएं स्वीकार की गई है - नाम का जाप, नाम-जप, नाम-सिमरन, नाम-लिव और नामी में अभेदता।"[1]

- **नाम का जाप :** गुरुनानक के नाम-मार्ग में 'नाम का जाप' से अभिप्राय है- "परमात्मा के गुणवाचक नामों का नाम जपना। गुरुकवि ने जपुजी के आरम्भ में जो मूल-मन्त्र दिया है उसे ही प्रभु के नाम-जाप के रूप में लिया जाता है। उनके अनुसार प्रभु का नाम-जाप साधक के लिए प्रभु भक्ति में आरम्भिक अवस्था का घोतक है। प्रभु-नाम मनुष्य के समस्त जीवन, सम्पूर्ण कार्य-व्यवहार को प्रबुद्ध और शुद्ध करता है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि नाम-जाप एकमात्र रटन नहीं है अपितु उसमे ध्यान को केन्द्रित करके साधक परमात्मा का ध्यान करता है। इस प्रकार नाम जाप से 'नाम-जप' की अवस्था में साधक पहुँचता है।"

- **नाम-जप :** नाम-जाप को जब ध्यानपूर्वक गायन किया जाता है तब 'जप' को अवस्था होती। 'जप' अवस्था में साधक का मन परमात्मा के ध्यान में केन्द्रित हो जाता है जाप 'जिह्वा' का अभ्यास है और 'जप' मनन का विषय बन जाता है। इनके द्वारा परमात्मा रूपा अमृत को प्राप्त किया जा सकता है-

''जपहु त एको नामा।। अवरि निराफल कामा।। रहाउ।
रसना नामु जपहु तब मथीए इन विधि अमृत पावहु।।1।।

- राग सूहो-चउपदे।

गुरुसाहिब का कथन है कि गुरुमुख 'नाम-जपु' द्वारा मन को सुन्दर बनाता है 'गुरमुख नाम जपै मन रुड़ा' इस प्रकार साधक 'हउमे' अर्थात् अहकार के प्रभाव को कम करता हुआ कार्य-व्यापार में गुरुकृपा सहायक होती है।

- **नाम-सिमरन :** गुरुनानक ने नाम-सिमरन द्वारा आचरित-जीवन को प्रस्तुत किया है क्योंकि 'नाम-सिमरन' कंवत मूल-मन्त्र और गुरु-मन्त्र का रटन एवं पठन ही नहीं रह जाता है। इसके द्वारा साधक सच्चा एवं उदात्त जीवन व्यतीत करने को तैयार होता है। इसके द्वारा यह सांसारिक सुखों की ओर से ध्यान हटाकर परमात्मा की ओर लगाता है। इस अवस्था में साधक परमात्मा को पूर्णता में लीन होने को उत्सुक होता है और वह परमात्मा की प्रशंसा करने लगता है। इसमें साधक को मानव-जीवन को नश्वरता का आभास होता है और वह अनश्वर परमात्मा को प्राप्त करने के लिए लालायित होता है।

- **नाम-लिव :** नाम-सिमरन की प्रौढ़-अवस्था को नाम लिव कहा जाता है। भक्ति के क्षेत्र में इसे 'अजपा-जप' कहा जाता है। इस अवस्था में साधक प्रत्येक खास से परमात्मा का सिमरन करता है। इसमें साधक के व्यक्तिगत आन्तरिक भाव, ब्राह्माण्ड के समष्टिगत आन्तरिक भाव में मिलकर विलिन हो जाते है। 'नाम-लिव' से ही जीवन सार्थक और पूर्ण बनता है ।

- **नामी में अभेदता :** इस अवस्था में साधक को प्रभु नाम का विस्माद् रूप दिखाई देता है। इस अवस्था में साधक पूर्ण रूप से प्रभु में लीन हो जाता है। इस सन्दर्भ में कवि का कथन है -

''गुरमुखि जागि रहे दिन राती।। साचे की लिव गुरमति जाती।।''

- रागु मारू-सोलहे।

इस अवस्था में साधक परमात्मा में लीन होकर सारी सृष्टि के प्रत्येक वस्तु में उसी का रूप देखता है। यह अवस्था अवर्णनीय है। इस सन्दर्भ में कवि को निम्न पंक्तियाँ अवलोकनीय है :

''विसमादु नाद विसमादु वेद।।
विसमादु जीभ विसमादु भेद।।
विसमादु रूप विसमादु रंग।।
विसमादु नागे फिरहि जंत ।
वखि विडाणु रहिआ विस्मादु।।
नानक बुझणु पूरे भागि।''

-रागु आसा ए वार-सलोक।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि प्रभु - नाम के प्रति आश्रित जीवन व्यतीत करने से एक प्रकार की विशेष अभिरुचि बन जाती है। उस अभिरुचि के आधार पर फिर सुन्दर व्यवहार बन जाता है। परमात्मा - नाम के प्रभाव से विशिष्ट रसास्वादन एवं आनंद की प्राप्ति होती है। इसके पश्चात् जीव परमात्मा में लीन होकर रहता है और हमेशा परमात्मा का जप करता है। इस नाम - मार्ग में हदय ज्ञान होता है, मुख भक्ति होती है और व्यवहार वैराग्य होता है।[2] इस प्रकार नाम पर आधारित जीवन, मन, वचन और कर्म द्वारा विस्मादी जीवन का निर्माण करता है। ये तीनों पक्ष अनेकता में एकता के भाव को जागृत करते हैं और मनुष्ण परमात्मा - आनन्द को प्राप्त करता है।

नाम-मार्ग का साधना-पक्ष (व्यावहारिक पक्ष) :

गुरु नानक के नाम - मार्ग के सिद्धान्त पक्ष को जान लेने के बाद उसके साधना-पक्ष अर्थात् व्यावहारिक

पक्ष को समझ लेना भी अपेक्षित है। नाम-मार्ग के व्यावहारिक पक्ष में प्रभु को प्राप्त करने के लिए अनेक अवस्थाओं में से होकर जाना पड़ता है। साधक को अपने जीवन में नाम-मार्ग को अपनाने के लिए गुरु की महती आवश्यकता होती है।

गुरु नानक की वाणी में गुरुको अत्यन्त आवश्यकता बताई गई है। इसके बिना मनुष्य सब कुछ होता हुआ भी कुछ नहीं है। क्योंकि गुरुके बिना उसको न सांसारिक और नही परलौकिक लाभ प्राप्त हो सकता है। तत्सम्बन्धी उनकी भावनाओं का यदि समीकरण किया जाए तो निम्नलिखित तथ्य सामने आते है-

गुरु के बिना :

1. परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती।
2. वास्तविक मार्ग नहीं, व्यर्थ में प्राणी उलझा रहता है।
3. मुक्ति अथवा तुरीयावस्था को प्राप्ति नहीं होती।
4. जान की प्राप्ति नहीं होती।
5. भक्ति और प्रेम की भावना उत्पन्न नहीं होती और न ही अहंकार कि मैल उतरती है।
6. प्रतिष्ठा नहीं मिलती।
7. राम - नाम की प्राप्ति नहीं होती।[3]

गुरु नानक देव ने गुरु के सद्गुणों के सम्बन्ध में अपने विचार निम्नलिखित ढंग से व्यक्त किए है- "मैं अपना गुरु उसे बनाता हूँ, जो हदय में सच्चाई को दृढ़ कराता है। अकथनीय परमात्मा का यह कथन करता है और साथ ही शब्द ब्रह्म से मिलाप कराता है। परमात्मा के लोगों का कुछ दूसरा कार्य अथवा व्यवसाय ही नहीं रहता। सत्य परमात्मा को सत्य ही प्यारा होता है।"[4]

गुरुनानक के मतानुसार साधक को सच्चा गुरुही प्रभु-नाम-मार्ग की ओर आगे बढ़ाता है। सच्चे गुरु के बारे में गुरुकवि कहते हैं कि सद्गुरु हमेशा सत्य को अपनाता है और सत्य को ही लोगों के ह्रदयों में दृढ़ करवाता है। वह स्वयं परमात्मा का ध्यान एवं मनन करता है और फिर उसके शब्द से मेल करवाता है-

"सो गुरुकरउ जि साचु दृढ़ावै।।
अकथु कथावे सबदि मिलावें।
हरि के लोग अवर नहीं कारा।।
साचउ ठाकरू साचु पिआरा।
-रागु धनासरी, अष्टपदीआ।

इस प्रकार सद्गुरु साधक को नाम मार्ग के प्रथम सोपान में "1 ओकार सतिनामु करता पुरष निरभव - निरबैरू अकाल मूरति अजूनी सैभं गुरप्रसादि" का मूलमन्त्र बतलाता है। साधक के लिए इस मूल मन्त्र में पूर्ण विश्वास बनाए रखना अनिवार्य है। इसके आधार पर ही वह अपने जीवन को ढालता है और सिख - समाज का अंग बन जाता है। वह परमात्मा की ज्योति को ही सर्वत्र देखता है। उसे इस बात का पता है कि परमात्मा के वियोग में दुःख है और उसके मिलन में आनन्द है। वह प्रत्येक कार्य परमात्मा को सम्मुख रखकर करता है। गुरुनानक के मतानुसार मनुष्य के कार्यों के फल को परमात्मा ही देता। परन्तु इससे मनुष्यों में अकर्मण्यता न आ जाए, गुरुसाहिब परिश्रम एवं उद्यम पर विशेष महत्व देते हैं। इस प्रकार नाम-मार्ग पर चलते हुए मनुष्य को विशेष परिश्रम करना पड़ता है। वह परिश्रम से डरता नहीं क्योंकि वह उसके कार्य-व्यवहार का एक अंग बन जाता है।

गुरुनानक के नाम - मार्ग में पुरूषार्थ अर्थात् उद्यम का भी विशेष महत्व है। साधक को आत्मा, मन और शरीर को हमेशा पुरूषार्थ में लगाए रखना चाहिए। जो व्यक्ति पुरुषार्थ करता है, परमात्मा भी उसी की मदद करते है। मनुष्य को किसान, मजदूर, व्यापारी की भांति पुरूषार्थ करते हुए जीवन को उन्नत एवं सफल बनाना चाहिए। यह पुरूषार्थ सच्चाई, ईमानदारी और पवित्र ह्रदय से होना चाहिए। निःस्वार्थ भाव से किया गया प्रेम मनुष्य को परमात्मा के समीप पहुँचा देता है। मनुष्य को परमात्मा के अतिरिक्त और कोई अन्य स्वार्थ नहीं होना चाहिए।[5]

'गुरुग्रन्थ' में 'अरदास' का अर्थ मात्र प्रभु के सम्मुख प्रार्थना करना ही है। राग धनासरी में 'आरती' के अधिकतर पद अरदास के सुन्दर रूप हैं। जहाँ भी प्रभु से याचना की गई है, वहीं पर अरदास का उदाहरण बन गया है। यथा -

''सा बुधि दीजै जितु विसरहि नाही।
सा मति दीजै जितु तुधु धिआई।
सास सास तेरे गुण गावा ओट नानक गरचरणा जीउ।''[6]

साधक प्रभु की आराधना में सत्संगति में रहता हुआ समाज के प्रत्येक व्यक्ति के प्रति सामूहिक रूप में प्रार्थना करता है। इस सम्बन्ध में डॉ॰ शेर सिंह लिखते है- ''भारतीय मतों में सर्वप्रथम सिख-धर्म में समूह पूजा पर ही बल दिया गया है। गुरु साहिब ने मानव मन में संगति में बैठने की शक्ति को अनुभव किया और इसे धर्म का भाग बनाया। सामूहिक पूजा द्वारा जीवन की सामूहिक उन्नति सम्भव है। अतः यह गुरुमार्ग का एक विशिष्ट अंग माना जाता है।''[7]

नाम मार्ग में सत्संग के साथ-साथ कीर्तन का भी बहुत महत्व है। कीर्तन के द्वारा साधक परमात्मा से मिलता है। वह नाम के गायन, श्रवण एवं मनन से परमात्मा को अपने हृदय में लाता है। गुरु नानक ने साधक को नाम मार्ग में पांच अवस्थाओं में से गुजरते हुए दिखलाया है। यह पांच अवस्थाएं या खण्ड है। 'धरम- खण्ड', 'विज्ञान-खण्ड', 'सरम खण्ड', 'करम खण्ड' तथा 'सच खण्ड। अन्तिम अवस्था या 'सच-खण्ड' में साधक परमात्मा स्वरूप हो जाता है। साधक इन अवस्थाओं में से अग्रसर होता हुआ सच खण्ड में प्रवेश करता है। यहाँ पहुंचकर साधक अपने साध्य में एकाकार हो जाता है। अभेदत्व और एकाकार की इस चरम अवस्था को गुरु कवि निम्न पंक्तियों में दर्शाते है

''सच खण्ड वसे निरंकार।। करि करि वेखै नदर निहाल।।
तिथे खंण्ड मंडल वरमंड।। जे को कथै त अंत न अंतु।।
तिथे लोअ लोअ आकार।। जिवि हुकम तिवे तिव कार।।
वेखे विसै करि वीचारू।। नानक कथना करड़ा सारू।।

-जपुजी, पउड़ी-37

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि गुरु नानक ने परम्परागत प्रभु प्राप्ति के मार्गो- (1) कम-मार्ग, (2) योग मार्ग, (3) ज्ञान-मार्ग तथा (4) भक्ति मार्ग का वर्णन अपने काव्य में अवश्य किया है लेकिन गुरु कवि ने इनमें से किसी एक मार्ग को ही आधार रूप में स्वीकार नहीं किया है। परम्परागत मार्गों में उन्होंने भक्ति मार्ग को महत्व दिया है। भक्ति मार्ग के वैधी भक्ति रूप की उन्होंने आलोचना की है और प्रेमा भक्ति अर्थात् रागानुगा भक्ति पर बल दिया है। इनकी भक्ति पद्धति को नाम-मार्ग की संज्ञा से अभिहित किया जाता है।

गुरु नानक ने अपनी नाम भक्ति के अन्तर्गत 'नाम' शब्द का प्रयोग परमात्मा की सृजन शक्ति के रूप में लिया है। इस प्रकार नाम एक मार्ग है। जिसके द्वारा साधक परमात्मा से एकाकार होकर अभेद हो जाता है। गुरु नानक के नाम मार्ग की पांच अवस्थाएं है। (1) नाम जाप, (2) नाम-जप, (3) नाम -सिमरन, (4) नाम-लिव और (5) नामी में अभेदता। इस नाम मार्ग के लिए सच्चे गुरु को अनिवार्यता होती है। इसमे पुरुषार्थ, अरदास अर्थात् प्रार्थना और सत्संगति पर बल दिया जाता है। सामूहिक प्रार्थनाए सामूहिक उपासना गुरुनानक की परम्परागत साधना में अद्वितीय देन है। इसी तरह कीर्तन को भी महत्व है। नाम मार्ग में साधक पाँच अवस्थाओं - (1) धर्म-खण्ड, (2) ज्ञान-खण्ड, (3) श्रम-खण्ड, (4) कर्म खण्ड एवं (5) सच-खण्ड। इन पांच खण्डो में जीवन बिताता हुआ साधक परमात्मा के गुणों को धारण करता है। ऐसी अवस्था में साधक स्वयं मुक्ति पाता है और दूसरों को भी मुक्ति के लिए प्रेरित करता है। गुरुनानक के निम्न शब्द दृष्टव्य है।

''जिनि नाम धिआइआ गए भसकति धालि।।
नानक से मुख उजले केति छूटी नालि।।''
-गुरु ग्रंथ साहिब जपुजी, पृष्ठ-8

सन्दर्भ :

1. डा॰ पदम गुरचरण सिंह : युग प्रवर्तक गुरुनानक और उनकी वाणी (1990), पृष्ठ-120
2. वही, पृष्ठ-122
3. डा॰ रतन सिंह जग्गी : गुरु नानक : व्यक्तित्व, कृतित्व और चिंतन (1975), पृष्ठ-594
4. डा॰ जयराम मित्रः श्री गुरुग्रन्थ दर्शन (1960), पृष्ठ-324
5. डा॰ पदम गुरचरण सिंह : युग प्रवर्तक गुरु नानक और उनकी वाणी (1990), पृष्ठ-123
6. डा॰ मनमोहन सहगल : गुरु ग्रन्थ साहिब : एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण (1971), पृष्ठ-372
7. डा॰ शेर सिंह : गुरमत दर्शन-अनुवादक प्रो॰ चमनलाल नारंग (1970), पृष्ठ- 465

18वीं एवं 19वीं शताब्दी में लख़नऊ के प्रमुख संगीतज्ञों पर संक्षिप्त चर्चा एवं उनका योगदान

अमित कुमार
शोधार्थी
संगीत एवं ललित कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय

सारांश :

लखनऊ उत्तर भारत का एक ऐसा शहर है जो भारतीय संस्कृति एवं इतिहास का एक मुख्य बिन्दु रहा है। कभी प्रभु श्री राम के राज्य का एक हिस्सा रहा है तो कभी नवाबी शासन का केन्द्र। ब्रिटिश हुकूमत से जुड़े अनेक इतिहासों का साक्ष्य लखनऊ की भूमि रही है। ऐसी अनेक कहानियों के साथ-साथ लखनऊ हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत के कई महान विभूतियों की जन्मभूमि व कर्मभूमि भी रहा है। इस लेख में हम उन संगीतज्ञों (गायक एवं वादक) की चर्चा करेंगे कि किस प्रकार उन्होंने ना केवल हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत की साधना की व प्राचीन गायन-वादन परंपरा को संजोया इसके अतिरिक्त नयी संगीतिक शैलियों का अविष्कार भी किया और उनको प्रचार-प्रसार में लाने हेतु अपना अतुलनीय योगदान दिया ।

प्रस्तुत लेख में हम अवध अथवा लखनऊ के प्रमुख संगीतज्ञों की सांगीतिक सेवा में नवाबों की भूमिका पर भी संक्षिप्त चर्चा करेंगे। इस शोधपत्र में अवध के प्रथम नवाब सआदत अली खाँ से लेकर अंतिम नवाब वाजिद अली शाह के शासनकाल तक हिन्दुस्तानी संगीत किन-किन अवस्थाओं से होकर गुज़रा, इसमें क्या-क्या परिवर्तन हुए, संगीतज्ञों की प्रसिद्धि, पलायन एवं उनकी तत्कालीन स्थिति पर संक्षिप्त विवरण समायोजित करने का प्रयत्न किया गया है।

बीज शब्द :
लख़नऊ, नवाब, ख़्याल, टप्पा, दरबार

भारतीय सभ्यता अत्यंत प्राचीन सभ्यताओं में से एक मानी जाती है। यहाँ के विभिन्न शहरों, प्रांतो व सभ्यताओं के नाम अत्यन्त प्राचीन कथाओं से जुड़े हुए हैं, जिससे इस देश की प्राचीनता का प्रमाण मिलता है। समय-समय पर एक ही स्थान अलग-अलग नामों से जाना गया। इन बदले हुए नामों की भी अलग-अलग कहानियां प्रसिद्ध हैं। हमारा आज का विषय ऐसे ही एक प्राचीन व प्रसिद्ध शहर पर आधारित है। 'लख़नऊ' भारत के प्राचीन राज्य कोसल का एक हिस्सा है। ऐसा कहा जाता है कि भगवान राम के राज्य की सीमा लखनऊ से होकर जाती थी, उन्होंने अपने छोटे भाई लक्ष्मण को यह हिस्सा दे दिया था। तब यह शहर लक्ष्मणपुर या लखनपुर के नाम से जाना जाता था, जो बाद में बदलकर लख़नऊ हो गया लेकिन इस पर पर्याप्त मतभेद हैं।

मुस्लिम इतिहासकारों की मानें तो बिजनौर के शेख यहाँ आये और 1526 ई॰ में बसे और यहीं रहने लगे। उस समय एक वास्तुविद्य से यहाँ एक किला बनवाया गया। उस वास्तुविद का नाम लखना था। यह किला लखना किला के नाम से प्रसिद्ध हुआ। कालांतर में परिवर्तित होते होते इस शहर का नाम लखनऊ पड़ा। एक अन्य कथा के अनुसार भगवान राम के छोटे भाई लक्ष्मण का जन्म इस स्थान पर हुआ जो बाद में अपभ्रंश होते होते लख़नऊ हो गया।

18वीं सदी के मध्य दिल्ली पर नादिरशाह के आक्रमण के पश्चात दिल्ली के ततकालीन बादशाह मोहम्मदशाह रंगीले का लगाव संगीत से हटने लगा जिस कारण यहाँ के दरबारी संगीतज्ञों ने दिल्ली से निकलकर दूसरे दरबारों का रूख किया। इस समय लखनऊ में आसिफुद्दौला नबाब हुआ करते थे। दिल्ली से कलाकारों के पलायन करने के इसी क्रम में सिद्धार खाँ के पौत्र मोदू खाँ एवं बख़्शू खाँ भी दिल्ली से लखनऊ दरबार में आ गए। यहाँ नबाब आसिफुद्दौला ने इन्हें राजाश्रय दिया।

लख़नऊ में शास्त्रीय संगीत का उद्‌गम इसी समय से माना जाता है। मोदू-बख़्शू तबला वादक थे। इनके साथ कई अन्य विधा के कलाकारों ने भी लखनऊ पलायन किया व अपने क्षेत्र में यहीं से प्रसिद्धि पायी। इनमें से कुछ प्रमुख कलाकारों का विवरण प्रस्तुत हैं।

गुलाम रसूल - आप आसिफुद्दौला के दरबार में नियुक्त थे, आप लख़नऊ के ही निवासी थे। गुलाम रसूल ने नवाब के दीवान हसनराज खाँ से अनबन होने के कारण दरबार जाना छोड़ दिया। आप ध्रुपद-धमार गायन में निपुण थे, साथ ही साथ ख़्याल गायकी को चलन में लाने के लिए भी आपने भरसक प्रयास किये। आपके पुत्र शोरी मियाँ (गुलाम नबी शोरी) टप्पा गायन शैली के आविष्कारक हैं। जिन्होंने संगीत के क्षेत्र में अलग पहचान बनायी। गुलाम रसूल 18वीं शताब्दी के अंत में इस दुनिया को अलविदा कह गये।

बड़े मुन्ने खाँ - आप बड़े मुहम्मद खाँ के घराने से संबंध रखते हैं। आपका काल 18वीं शताब्दी माना जाता है। आप ख़्याल गायक थे एवं आप मधुर व सुरीली आवाज़ के मालिक थे। आपके नाना भी बड़े मुहम्मद खाँ के घराने के शार्गिद थे। 18वीं शताब्दी में ख़्याल गायन का तेजी से प्रचार-प्रसार हो रहा था। जिसका केन्द्र लख़नऊ एवं इसके आस-पास के क्षेत्र थे। आप लखनऊ के निवासी थे इसलिए इस कला में पारंगत थे और पूरे उत्तर भारत में अपनी कला के लिए प्रसिद्ध थे। जीवन में अनेक प्रसिद्धियों को प्राप्त करने वाले बडे मुन्ने खाँ 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ मे 1812 ई0 में इस दुनिया से विदा ले गये।

मुराद अली खाँ - बड़े मुहम्मद खाँ के सबसे छोटे पुत्र उस्ताद मुराद अली खाँ अपने पिता के समान ही उत्कृष्ट श्रेणी के गायक थे। अट्ठारहवीं शताब्दी के ख़्याल गायकों में आपने लोकप्रियता की नये आयाम बनाये। आपने-अपने पिता से ख़्याल गायन की तालीम ली। बड़े मुहम्मद खों ने अपने सभी पुत्रों में सबसे छोटे होने के कारण मुराद अली खाँ को बड़े प्यार और आत्मीयता से गाने की तालीम दी। ऐसा कहा जाता है कि ये अपने पिता के विवाहेतर संबंध स्त्री के गर्भ से जन्में थे। प्रेमिका का पुत्र होने के कारण भी यह अपने पिता को पुत्रों में सबसे प्रिय थे। तीव्र स्मरण शक्ति एवं बुद्धि के कारण मुराद खाँ ने शीघ्र ही अपनी परंम्परा की गायन शैली में निपुण हो गये और शास्त्रीय संगीत जगत में प्रसिद्धि पायी। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में आपका इंतकाल लखनऊ में ही हुआ।

उस्ताद मीर अली - उन्नीसवीं सदी के सर्वाधिक लोकप्रिय गायकों में आप सबसे उत्कृष्ट हुए ऐसा ग्रंथकारों का कथन है। आपके समकाल सम्पूर्ण उत्तर भारत में आपके समान सुरीला एवं मधुर ख़्याल गायक दूसरा कोई नहीं था। आपने शोरी मियाँ से

टप्पा गायन, सेनिया परंपरा के छज्जू खां से ध्रुपद व ख़्याल गायन की शिक्षा गुलाम रसूल से प्राप्त की थी। इतने गुणीजनों से विभिन्न प्रकार के गायन शास्त्र का ज्ञान लेने की वजह से भी आपका विभिन्न अंगों एवं विधाओं की गायकी पर आपका उत्कृष्ट अधिकार था। आपके पिता ख़्वाजा बाशिद परिज़ादा के नाम से जाने जाते थे। आप मूलतः लखनऊ निवासी थे तथा तत्कालीन नवाब मुहम्मद अली शाह के दरबार में आपको राजाश्रय प्राप्त था। दरबारी गायक होने के कारण आपको 1200 रूपये का वेतन दिया जाता था। एक बार नवाब साहब के दीवान नासिरुदीन आपके इस बर्ताव से बहुत ख़फ़ा हुए कि आपने अपने जीवन में कभी भी किसी के घर या महल में जाकर गाना-बजाना नहीं किया। दीवान ने अपनी इस नाराज़गी के कारण आपका वेतन कम कर दिया। बात यहाँ तक बढ़ गयी की नवाबी आदेशानुसार आपको लखनऊ से चले जाने का फ़रमान भी भेज दिया गया, जो लखनऊ के संगीत श्रोताओं के बीच एक हृदयविदारक घटना थी, किन्तु इस राजाज्ञा की कोई अवहेलना न कर सका। मीर अली भी अपना साजो सामान बांधने लगे थे। जब यह बात नवाब साहब तक पहुँची तो उन्हें लखनऊ दरबार से एक नायाब नगीना खो जाने का एहसास हुआ उन्होंने तुरंत ही अपने आदेश को रद्द कर दिया और मीर अली के निश्चय की मन ही मन प्रशंसा करने लगे। वाजिद अली शाह के समय काल में आपकी मृत्यु हो गयी।

दिलावर खाँ - आपका जन्म विद्वान संगीतज्ञ मुबारक अली खाँ के पुत्र के रूप में हुआ। आप बड़े मुहम्मद खाँ के प्रौत्र थे। संगीत की शिक्षा आपको अपने पिता के सानिध्य में ही प्राप्त हुई। अपने घराने की गायकी को आपने अपनी गायन कला में आत्मसात कर लिया था। आपने वर्तमान में बहुप्रचलित ख़्याल गायन शैली को समृद्ध करने के लिए सफल प्रयास प्रयास किये। आपकी गायन शैली में मिठास एवं बेफिक्री का वैचित्रय संयोग प्राप्त होता था। जिससे आप श्रोताओं के चित्त को मंत्रमुग्ध कर दिया करते थे। आपका तानों को गाने का ढंग आपके श्रोताओं को आश्चर्य चकित कर दिया करती था। आप लखनऊ में संगीत सेवा करते करते ही स्वर्गवासी हो गये।

उस्ताद इनायत हुसैन खाँ - सन् 1849 में आपका जन्म आपके नाना फतबुदौला के घर हुआ जो लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह के सलाहकार व वजीर थे। आप उस्ताद महबूब खाँ के पुत्र थे, अतः आपको प्रारंभिक शिक्षा अपने पिता व नाना से ही प्राप्त हुई। सन् 1857 की गदर के कारण आप पिता के साथ रामपुर आ गये यहाँ तानसेन के वंशज उस्ताद बहादुर खाँ का सानिध्य आपको प्राप्त हुआ। खाँ साहब ने 4 वर्ष तक आपको केवल स्वर साधना के अभ्यास तक ही सीमित रखा तथा आगे 5 साल तक राग गौड़सारंग की साधना में डाल दिया। इसी बीच रामपुर के सभी संगीतज्ञ और संगीत श्रोता उस्ताद बहादुर खां से अनुरोध करने लगे कि उनके शिष्य इनायत हुसैन खाँ का गायन सभी को सुनना है। बहुत अधिक अनुरोधों के पश्चात् खाँ साहब इसके लिए मान गये। प्रस्तुति का निर्धारित दिन समय 24 घंटे बाद ही था। इनायत हुसैन इससे काफी घबराये हुए थे, तथी उस्ताद बहादुर खाँ ने उनको मात्र 10 घण्टे की साधना में गौड़सारंग, मुल्तानी, श्री व पुरिया धनाश्री 4 रागों के गायन की ऐसी तालीम दी कि जब इनायत हुसैन ने गायन प्रस्तुत किया तब सभी श्रोता व गायक आश्चर्य चकित रह गए। हस्सू हद्दू आपकी गायकी से ऐसे प्रभावित हुए कि अपनी बेटी से आपकी शादी करवा दी व आपको संगीत की शिक्षा देना प्रारंभ किया।

सर्वप्रथम आपको रामपुर दरबार में राजाश्रय प्राप्त हुआ किन्तु आप मनमौजी स्वभाव के थे, जिसके कारण किसी एक स्थान पर अधिक समय तक नहीं रुके फलतः आपको दतिया, नेपाल, अलवर तथा हैदराबाद में भी दरबारी गायक के पद पर सेवा का अवसर प्राप्त हुआ। आप चौमुखी गायन शैलियों के

कलाकार थे, ध्रुपद-धमार, ख़्याल, टप्पा एवं ठुमरी सभी गायन शैलियां आपकी सुरीली आवाज़ पर आकर्षित लगती थीं। टप्पा आपको विशेष प्रिय था। आप 'इनायत पिया' व 'इनायत मियाँ' के नाम से पदों की रचना किया करते थे। आपकी शिष्य परंपरा में भी एक से बढ़कर एक संगीत विद्वान हुए जिनमें 'उस्ताद मुश्ताक़ हुसैन खां (रामपुर), उस्ताद फ़िदा हुसैन खाँ (बड़ौदा), उस्ताद हैदर हुसैन खाँ (रामपुर), उस्ताद हफ़ीज़ खाँ (मैसूर), उस्ताद अमान अली खाँ (पूना) व ग्वालियर महाराज के भाई भैया गनपतराव'। सन् 1919 में आपने अपने सभी संगीत रसिकों से अलविदा ली और इस नश्वर संसार को त्याग दिया।

शोरी मियाँ - 18वीं शताब्दी में लखनऊ के सुप्रसिद्ध कलाकार गुलाम रसूल के पुत्र शोरी मियाँ के नाम से प्रसिद्ध हुए। आपका वास्तविक नाम गुलाम नबी था। ख़्याल एवं तत्कालीन प्रसिद्ध अन्य गायन शैलियों का गायन करने के लिए आपकी आवाज़ बहुत पतली थी। हालाँकि यह आवाज़ बेहद मधुर व सुरीली थी परंतु इन्हें ख़्याल की तानबाजी से संतोष न हुआ। अतः आप अपनी आवाज़ के शैली की खोज में लग गये। आप पंजाब गये जहाँ आपने पंजाबी भाषा सीखी। पंजाबी भाषा में पदों की रचना कर आपने उन पदों को रागों का आधार लेकर एक नवीन गायन शैली का अविष्कार किया जो 'टप्पा' के नाम से प्रसिद्ध हुई। आप बेहद सरल स्वभाव के थे। नवीन गायन शैली के आविष्कारक शोरी मियाँ सन् 1910 में लखनऊ की मिट्टी में चिर निद्रा में लीन हो गये।

फिरोज़ खाँ - अदारंग उपनाम से प्रसिद्ध ख्याति प्राप्त कलाकार उस्ताद फिरोज़ खां उच्चकोटि के ख्याल रचनाकार, सितार की गतों के रचनाकार, बेमिसाल ध्रुपद गायक व वीणा वादक भी थे। आप वर्तमान काल में सुप्रसिद्ध की ख़्याल गायन शैली के प्रर्वतक नियामत खाँ (सदारंग) के भतिजे थे। आप दोनों की जोड़ी सदारंग-अदारंग के नाम से विश्व प्रसिद्ध हैं। आपने न सिर्फ ख़्याल की असंख्य बंदिशों की रचना की साथ ही साथ सितार की अनेक गतों की रचना आपने की जो फिरोजखानी गतों के नाम से उक्त काल में प्रचलित रहीं। आपने अपने काल के सितार बाज को परिष्कृत करने में बहुत अधिक योगदान दिया।

गुलाम रज़ा खां - आप जौनपुर के निवासी थे। आपके पिता का नाम मुहम्मद रज़ा था, आप नग़माते आसफ़ी नामक प्रसिद्ध ग्रंथ के रचयिता थे। गुलाम रज़ा ने सितार की शिक्षा लख़नऊ के दरबारी संगीतकार मसीत खाँ से पायी थी। मसीतखानी गत के एक से प्रसिद्ध सितार की गत के रचनाकार यही मसीत खाँ थे। मसीत खां उस समय के प्रसिद्ध सितार वादकों में से एक थे। उनका शिष्य होने के कारण गुलाम रज़ा को भी दरबार के साथ-साथ संगीत गोष्ठियों में वादन प्रस्तुत करने का मौका निरंतर मिलने लगा। यह गोष्ठियाँ अक्सर सूबे के अमीर परिवार के लोगों द्वारा की जाती थी। संगीत की महफिलों में निरंतर प्रस्तुति देने के साथ इनको यह अनुभव हुआ कि श्रोताओं का जो सम्मान कभी पद या ख्याल के कलाकारों को मिलती थी वही जब ठुमरी, टप्पा व तराना गायन शैली को मिलने लगी थी। ध्रुपद-धमार, ख़्याल से कम समय में प्रस्तुत होने वाली गायन शैलियों जैसे ठुमरी, टप्पा व तराना से प्रेरित होकर श्रोताओं की मनोवृत्ति को ध्यान करते हुए गुलाम रज़ा खाँ ने तीनताल मध्यलय तथा द्रुत लय में बजने योग्य नवीन गत शैली का अविष्कार किया और इसे प्रचार में लाये। यही वादन शैली आगे चलकर रज़ाखानी गत के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस वादन शैली का निर्माण करने से पहले आपने अनुभव किया कि लखनऊ के नवाब, रईस व अन्य श्रोता गंभीर वादन शैली मसीत खानी गत से पर्याप्त संतुष्ट नहीं थे। अतः आपने ठुमरी तथा तराने जैसी धीमी तीनताल में बध्य नवीन गत का निर्माण किया जो आगे चलकर रज़ाखानी बाज या गत के नाम से प्रचलित हुई।

उपरोक्त लेख के तथ्यों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि, 18वीं एवं 19वीं शताब्दी में हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत अनेक नए परिवर्तनों से होकर गुज़रा। इसमें कई विद्वानों ने अपना योगदान दिया व नई गायन-वादन शैलियों पर कार्य किया जिनमें से अधिकतर वर्तमान समय में प्रचलित हैं। इस काल में लखनऊ के नवाबों का भी पूर्ण सहयोग संगीतज्ञों को मिलता रहा जिनमें आसफुदौला, नवाब मुहम्मद अली शाह, एवं वाजिद अली शाह का नाम मुख्य रूप से प्राप्त होता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. संगीत की तपोभूमि उत्तर प्रदेश, डा0 मधुमिता भट्टाचार्य।
2. हिंदुस्तानी संगीत के महान रचनाकार सदारंग-अदारंग, शैलेन्द्र कुमार गोस्वामी।
3. नेमत खां-फीरोज़ खां एवं समकालीन संगीत, डा0 मनु कल्याल।
4. भारत के संगीतकार, डॉ0 लक्ष्मीनारायण गर्ग।
5. Musical Heritage of Lucknow, Dr. Susheela mishra Manjit singh.

An Allegory at Play : A Study of Jogen Chowdhury's Selected Works

Somaditya Datta
Assistant Professor
Department of Visual Arts, Assam University Silchar

Abstract

Although much has been written on the celebrated artist, Jogen Chowdhury and his art of different times and decades by different scholars, writers, and critics, about his use of metaphors, formal distortions, decorative expressiveness, organic play, surreal and fantastic evocation, elemental and mythical exposures within mundane settings (hyphenated by dark space and the illumination of objects, motifs floating within), this writing, however, tries to take a different turn wherein some other aspect is taken into consideration and scrutiny. This aspect is the nature of his connection to the material world, the world both within him and without. The tendency toward spontaneity, an elemental sensuality radiating through the opulence of the flesh, defying moral or symbolic ground and coming closer to a world of the body even at the cost of the archetypes through aesthetic means. For this attempt chronological method or holistic approach to forming a uniform intention is avoided. By taking into focus a few of his works from different times, the study tries to bring out what lies in the interstices of the entwining lines, surface, color, and form.

Keywords :

Allegory, body, memory, wounds, art,

Introduction :

The practice of Jogen Chowdhury reveals multitudinous aspects of expression and style, idioms, and subjectivity, but primarily centers on the imagination of the human body, as the leitmotif of his art and anything around him in reality. This is located by noted writer R. Sivakumar who made a substantive reading of the painter and his form that has "deep-seated vulnerability" with a "coherence of naivety and distortion in the relaxed contour" (Sivakumar, 1996, p. 56) Sivakumar's mentioning of infantile experience corresponding to "the boneless expansive amplitude of flesh/surface" (1996), refers to displacement and associations within the personal realm leading the image to unknown conditions rather than signs. It is this transformative stance from an object to a body, from usual familiarity to an ambiguous and absurd subjective experience, unwinds fluid relation and inter-connective experience that metamorphose

his shapes and un-form his bodies. The study discusses these shapes done at different times and their revealing nature that amounts to personal history and its effects that have sensitized the artist all along through time.

It is to be mentioned that the body is understood at different levels of inquiry. Levi Strauss in 1963 mentioned the body as a surface used for imprinting ritual practices like drawings on the flesh to mark and identify oneself with the group or community (Schildkrout, 2004, pg. 321). This of course is different from the metaphoric body that writers or artists create on account of personal affliction or compulsion. The presence of the real body (other than the representational/conceptual/ mimetic ones) and its ethno-cultural existence interfacing with real-time scarification or piercing makes a crucial difference from the other one that exists more as a symbolic token of expression within the acceptability of culture. But then the use of the mask as a recognizable and symbolic device to build a metaphorical real, to connect the mythical and the origin is bent on an aesthetic practice that mediates to reach the transcendental in many cultures. This medium of the magical mask with its sophisticated technique imbued with specific lines, color, pigment, form, surface, texture, gluing, cutting, carving, and so on touches upon the difference in the anthropological end of practice in cultures. On the other hand, the pathological body, as an object of investigation for knowledge both as a subject in medical science and political culture apart from numerous other exploitative reductions, is condensed to a mere agency for the sign. The study posits Jogen Choudhury as an aesthetic practitioner and a subject of a historical (political) crisis relating to the partition of the Indian subcontinent and the subsequent Bangladesh war of 1971. Although trained in a colonial academic setup, he transforms human form and cultural objects into a subjective realm by assimilating peripheral and eclectic resources. This, enhanced his very practice and nuances, as a potential expressive device for his thoughts and realizations in the post-colonial times. The human body as a subject is at many levels suspended by the surrogated wounds and marks, the textural skin and body, and the mythical (iconographic) physiognomy, apart from the use of movement and gestures of the limbs, fingers, mouth, and the (indigenous) eyes and nose as markers to his expressivity. The use of pen, ink, pastel, and paper forms an important part of his repertoire as acts of inscribing, scribbling, drawing, and smudging, induce a closer participation of the hands almost simulating a child's.

An Allegory At Play: A Study of Selected Works By Jogen Chowdhury:

If one starts to observe Jogen Choudhury's work, for instance, 'Reminiscence of a Dream' and then does not adhere to the title somehow - a difficult proposal though - a nakedness emerges gradually and a succulent mass is seen with a sense of physicality both shocking and unembellished. Shocking because it is 'here' with a sense of temporality, and discomforting to the eye to which it fits in. The eye of the audience perhaps, gradually transmutes into an organ in the process of viewing. An affectation entwines the mutual reciprocation, as the spatial field evolves into a discursive terrain and a movement from identity to

association to consciousness takes hold of the situation. It becomes both familiar and intimate. One can realize in anguish or addiction that one has a similar mass almost like a pulp and is afflicted with dents and decay although, generously draped in public. Absurd and surreal, they may fumble a viewer but more than that they remain as pathological excerpts buried in the half-light of the flickering senses. The painstaking miniaturized surface, with the subtle crosshatchings, brings the audience closer to the microscopic and hence to the desirability of the flesh. Shocking again, because the audience comes closer to the scribbles as if they hold out an inscription to decipher. The skin coalesces into a sensual shape causing a revelation un-triumphantly by the physical act of drawing (the line). The lump palpable and lush reveals this revelation as the body–whose formation slowly builds the inside and the outside into a conflated whole. Shocking, that one becomes vulnerable as one enters the delusional mesh of the body. The skin that hides distortion and anxiety becomes porous and immediate. An allegory wraps the surface with infinitesimal pores forming a mosaic of cellular (tinged with colors) custodies/assumptions or predilections almost like a cluster/colony inhabiting a surface. Absence on the other hand like a blind saint wanders intermittently in between the passages of memory and startlingly stays for some time, in the networks, loitering into those interspersed lands/territories. And yes, Jogen Chowdhury's work has territories mingling into a rhapsody of anxiety and guilt, desire and corruption, shockingly oozing out in the awakened hours, adulterated by the sensuous intermingling of the incongruent particles from time immemorial. They seem to deposit themselves on the embankment of the shape, shimmering in its own self-absorbed materiality. They make pixelated compartments in a deceitful arrangement and the body becomes a piece of stirring evidence of lives hooked in the microscopic and the infinite.

An unending dream :

There is a return to the most fascinating experience-in the hallowed light of dream, metaphor, memory, and enactment of the humanized project by Jogen Choudhury, unlike the contrary in a post-modern age. It is the birth of a new allegory that brings art vis a vis the body, a reality immersive, intense, and 'transgressive'. To the artist, temporal events, personal loss, and historical dilemmas replenish and delude the mind both simultaneously, and meander slowly into the drawings, where eclectic and indigenous sources on the other side embolden his sensibilities. They creeps into the vestiges of memory, affecting the sensations, and protrudes into each other to manifest a malleability that touches not only the primordial at times but also the vulgar, that the respectful societies often gleefully disdain. It is the manifestation of something real and tactile (scathing at times), sensuous and living that grows and floats without a past or future like a mythical shape in the alluring darkness. This field of opaque black is the opportunity to render the shape into a non-susceptible motif - a careful registration, delineated as a projection and made prominent to witness its state of presence. The darkness (the black) is both presence and absence- an associative exoticism. The artist projects his shapes of the ordinary as a compulsion, banking on this

very darkness. A sense of mortality and mundaneness overlaps with this presence. This again is reflected by the antiquarian nature of tone, the hue of the surface and form, revealing a kind of documentation (as seen in many ethnographic, medico-anatomical treatises of the previous centuries), mellowed by time and age. The reference to a fish comes at this point as a good example from 'Reminiscence of a Dream' (see Fig. 1).

The fish lies still as a dead matter cut off from the background as if death (recurrence in the form of decay, corruption, etc.) alone seems incompetent. It is meticulously rendered in a minute and careful attention, feeding the body with scales, dwarfed fins, and eyes, and paradoxically remembering the fish as a life incarnate in front of the blurring backdrop. Fish/a dead phallus/libido/martyr or anything is resurrected (in its death) painstakingly while its inversion aids a coldness to its demeanor. There is a translucent darkness around a blown-up sunflower with a melancholic ring smearing the image. A fantastic revelation of land and the sea. Both are very intimate to the artist and his past. Both leave every other thing wrapped in the darkness. A projection however dreamlike takes center stage. A gothic pallor haunts their physicality. The mundane wash and tiny bubble-like scales of the fish (if one effort to imagine), shower an ephemeral quality like little clouds loaded enough to shower rain on the arid flame-like/mountainous petals of the flower at any time to retrieve what was once alive. The disk floret gloomy and big seems to have a credible life of its own with its dark interwoven mesh almost reliving the moment of scorched emotions after being burnt or torched by its own flame. A sense of solitude haunts the bodies separated by the darkness yet bound within a singular frame. A loss of both worlds is witnessed in their choreographed separation for eternity no matter in which world the artist prolongs himself. Both the cultural motifs, excavate from the depth of the anguish, a ruptured presence that haunts the very fall out of the partition. This fallout is given a body, rather, two bodies, silent yet eerie.

The wounded :

I would like to place here, two works of Jogen Choudhury where the male body lies almost like the fish mentioned in Fig.1, but with a scar on the back, (see Fig.2 & Fig.3). A scar is marked on the body and the artist has attentively etched it on the surface to locate its relevance and frailty. These bodies like most of his are boneless, organic, and floating. They almost cut across the expanse of the paper in a desirable amount, spreading or crouching their limbs and arms in wavy uninterrupted contour. At times they are abrupt and angular, bulging their weight at certain intervals. The scar on these bodies is almost like a motif sewn spontaneously with the body. It appears to form a slit, the shape borrowed from familiar patterns/style and the wound is given an aesthetic language. The wound at times appears as an angular schematized undulation on the body, covering an area on the back and becoming a residual remain of the physical state, exposed as if its un-attendance is its very expression of communication. It is unstitched and left open deliberately to be diagnosed by the audience or to remind of the futility of delineating a border separating the nation-states. Delicate and thin the slit becomes an orifice without a word to speak. The

artist revisits the pain each time by enacting it once again on the body - a metonymic experience so to speak. These solitary forms are not lonely or self-contained and are made to live repeatedly with the wounds in real time. A presence however ironic prevails in the image consistently in spite of the lyricism (assimilated by various organic traditions mentioned by Shreyasi Chatterjee in “Exchanging Gazes” (Chatterjee, pg.81) it evokes.

Nothing can be more shocking than to gaze at a body, bare and visible, with a scar, from the back (the subject is unaware of such an act), yet its presence is a conscious attempt that remarkably takes way the secured lush indoors of erotic pleasure and demystifying its physical landscape with a slit as pristine and subtle as if swept by a scalpel, (see Fig.4). But then again it can be thought of as a leaf emerged on the back with its contour forming a muted shadow all around and merging with the surface. A wound tender and patterned inward, forms a relief in the midst of the crosshatches, forming an intricate mesh, in a delicate pattern with reasonable depth and intensity around the edges and corners, at the sensuous joints, and around the central line creeping up toward the neck as the backbone. What becomes fascinating is the presence of the flesh tint surrounding the slit, amidst the line works, making the body extremely sensual, with the head and the body - mapped in continuity by the soft-edged contour- extending the entire mass on the verge of ambiguity. The texture all around in the background offers a muted space that brings the defined contour of the body conducive to the mental sphere of the artist. The back remains no more a dilemma to Jogen Chowdhury for recognition, as long as the web of stitched lines commemorates the opening of the body by the wound inflicted on its surface by the artist. The back becomes the new front. The slit or opening is a surgical intervention, carefully inserted like a familiar act done by medical practitioners to enquire and heal. Here it is done by the artist where such acts resemble the political cleansing of an authoritarian state. Does the artist slit open to see a bloodless life, patterned and decorative, as if intimately woven to give the last touch of breath to the floating mass as if like interlinked windows of a lost house or is it the other way around? Jogen Chowdhury has seen wounds and the perilous human condition during partition. As a practitioner, he endows himself with the gift of reassuring the audience of the non-healing tendency of open wounds and their provocative human nature.

If we take into consideration the bare body (imagined) by Jogen Chowdhury in his work (referring to the cited example above) it is noticeable that the human condition at a fundamental level of existence for him, is of utmost importance as a practitioner. He remains engrossed in drawing bare lines, wavy and wiry, curling around and enclosing a space (a compulsion of the past) in a ceaseless play of organic spontaneity. This is partly for the confession that hangs around the mental sphere of the artist while dealing with empty spaces and partly by a general anxiety of a body, any-body, as a token of isolation/distress, to curl within and float with one’s own limbs and arms as if a return to the familiar foliage/creepers in

his childhood days or the artisanal forms of traditional and folk practice. The distorted shapes with their elongated and narrow/tubular limbs and swollen bodies in close-up or whole, re-lives their seclusion. But they can also be a result of solitude, a fall out of the violent past, where frontiers disfigured and uprooted lives.

Conclusion :

The ornamental repetitions of the decorative continuity of linear motifs in playful gestures with bold and sinuous lines and pastel smudges are but an outcome in fragments of the larger bodies that enhance a practitioner like Jogen Chowdhury. This enhancement, real and extensive makes for a more lyrical, fragmented, and anecdotal reference to his smaller body of drawings. The body has been explored by the artist in different thematic and settings, making and unmaking it at various levels of perception and understanding, as fragments, as close-ups, and as a whole, and more recently as the elaborate spatial design of patterns interspersing with writings in a miniaturized form. The body bears the wounds it gets exposed to, alongside the movements of the arms or limbs with the profound stillness of the torso and the indigenous eyes. Ethnic, popular, and local planes of interactive relations, intersect the bodies that refer to varied characters and the nature of cultural and aesthetic practice, in closer vision and experience. The study thus brings the aforesaid argument in the light of delineating an aesthetics where line color, form, mass, surface, and the treatment in building up the shapes attempt to upset and dislocate the iconic, many a time into a pathological field of loss.

Plates :

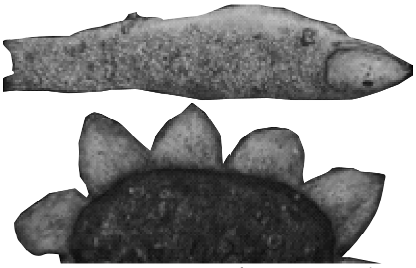

Fig.-1 : Reminiscence of a Dream, Ink and Pastel on paper, 2002

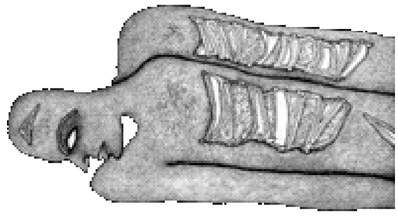

Fig. 2 Untitled II, Pen, Ink and Pastel on paper, 2006

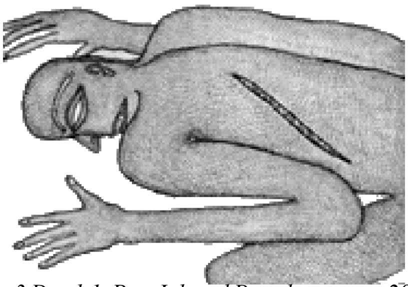

Fig. 3 Dead-1, Pen, Ink and Pastel on paper, 2004

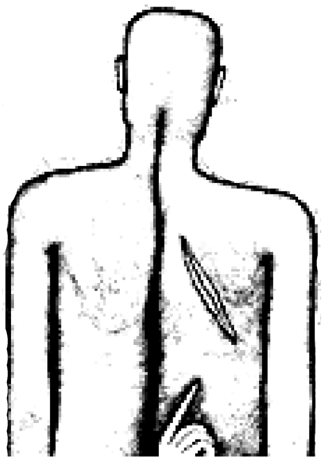

Fig. 4 The wound, Ink and Pastel on paper, 2001

References :

1. Sivakumar, R. (1996). Images of experience: An interview with Jogen Chowdhury. *Cima Exhibition, Kolkata, Jogen Chowdhury special issue*, 56-70
2. Kapur, Geeta. (1999) Jogen Chowdhury – Smearing the ghost with ink, 'The Fine Art resource catalog' exhibition in Berlin, reprinted version, *Jogen Chowdhury special issue*, 46-55, PDF
3. Naumayer, Erwin. (2002) Remembrance of a Dream, *Jogen Chowdhury special issue,* 85-91, PDF
4. Chatterjee, Shreyasi. Exchanging gazes, *Jogen Chowdhury special issue*, 81-84, PDF
5. Schildkrout, E. (2004). Inscribing the Body. *Annual Review of Anthropology*, *33*, 320–321. http://www.jstor.org/stable/25064856

Images :

1. https://www.mashindia.com/emami-art-celebrates-60-years-of-jogen-chowdhurys-work-with-retrospective-exhibition/ 21/09/2023 (Fig.1)
2. https://www.sothebys.com/en/buy/auction/2021/modern-and-contemporary-south-asian-art/untitled-ii/ 21/09/2023 (Fig.2)
3. https://www.mutualart.com/Artwork/Dead—I/A28ADED47E0B3CB0 (Fig.3)
4. https://www.glenbarramuseum.com/storage/documents/1619961193_JOGENCHOWDHURY-19552020115558.pdf_1.pdf, Pg. 78 (Fig.4)

बाबासाहेब डॉ॰ भीमराव अम्बेडकर के पत्रकारिता सिद्धांत (पत्रकारिता शिक्षण से संबद्ध विद्यार्थियों पर विशेष अध्ययन)

शालिनी श्रीवास्तव
शोध छात्रा
जनसंचार एवं पत्रकारिता विभाग,
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ

प्रो॰ गोपाल सिंह
शोध निर्देशक
विभागाध्यक्ष, जनसंचार एवं पत्रकारिता विभाग,
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालयए लखनऊ

शोध सार :

प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधार्थी ने डॉ॰ भीमराव अम्बेडकर की पत्रकारिता के विषय में व्यापक अध्ययन किया है एवं उनके पत्रकारिता के सिद्धांतों की विवेचना प्रस्तुत की है और यह भी उल्लेखित किया है कि कैसे ये सिद्धांत आधुनिक पत्रकारिता के लिए प्रासंगिक एवं मार्गदर्शक हैं। शोधार्थी ने इस शोध में शोध प्रश्नावली के माध्यम से किसी भी प्रकार की पत्रकारिता शिक्षा ले रहे अथवा शिक्षा प्राप्त कर उत्तीर्ण विद्यार्थियों से ये जानने का प्रयास किया है कि क्या उन्हें डॉ॰ भीमराव अम्बेडकर के पत्रकारिता संबंधी सिद्धांतों की जनाकारी है, क्या ये सिद्धांत उनकी पत्रकारिता शिक्षा संबंधी पाठ्यक्रम अथवा पुस्तकों इत्यादि में उल्लेखित थे। इस प्रकार आज की पत्रकारिता शिक्षा में भीमराव अम्बेडकर जी के पत्रकारीय अवदान और मूल्यों की जानकारी प्रदान की जा रही है अथवा इसका अभाव है। इस प्रश्न का एवं इसी प्रकार के शोध प्रश्नों का उत्तर जानने का प्रयत्न किया गया है।

मुख्य शब्दावली :

डॉ॰ अम्बेडकर, पत्रकारिता, पत्रकारिता शिक्षा, पाठ्यक्रम, पत्रकारिता सिद्धांत।

शोध उद्देश्य :

भारत में पत्रकारिता पहले एक पेशा थी। अब वह एक व्यापार बन गई है। अखबार चलाने वालों को नैतिकता से उतना ही मतलब रहता है जितना कि किसी साबुन बनाने वाले को। पत्रकारिता स्वयं को जनता के जिम्मेदार सलाहकार के रूप में नहीं देखती। भारत में पत्रकार यह नहीं मानते कि बिना किसी प्रयोजन के समाचार देना, निर्भयतापूर्वक उन लोगों की निंदा करना जो गलत रास्ते पर जा रहे हों-फिर चाहे वे कितने ही शक्तिशाली क्यों न हों, पूरे समुदाय के हितों की रक्षा करने वाली नीति को प्रतिपादित करना उनका पहला और प्राथमिक कर्तव्य है। व्यक्ति पूजा उनका मुख्य कर्तव्य बन गया है। भारतीय प्रेस में समाचार को सनसनीखेज बनाना, तार्किक विचारों के स्थान पर अतार्किक जुनूनी बातें लिखना और जिम्मेदार लोगों की बुद्धि को जाग्रत करने के बजाय गैर-जिम्मेदार लोगों की भावनाएं भड़काना आम बात हैं।... व्यक्ति पूजा की खातिर देश के हितों की इतनी विवेकहीन बलि इसके पहले कभी नहीं दी गई। व्यक्ति पूजा कभी इतनी अंधी नहीं थी जितनी कि वह आज के भारत में है। मुझे यह कहते हुए प्रसन्नता होती है कि इसके कुछ सम्मानित अपवाद हैं, परंतु

उनकी संख्या बहुत कम है और उनकी आवाज़ कभी सुनी नहीं जाती।'' (बाबासाहेब, डॉ. आंबेडकर, संपूर्ण वांग्मय, खंड-1, पृ. 273)

उपरोक्त शब्दों को पढ़कर लगता ही नहीं कि ये बातें बीते समय के बारे में लिखे गए डॉ. अम्बेडकर के विचार हैं जिसे उन्होने उस समय की पत्रकारिता के लिए व्यक्त किया था स्पष्ट है कि उस समय की पत्रकारिता की स्थिति आज की पत्रकारिता से अधिक भिन्न नहीं थी। यही कारण है कि उन्होंने पत्रकारिता के जिन जरूरी मूल्यों और सिद्धांतों की विवेचना की वे आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं किन्तु इस देश का दुर्भाग्य ही कहेंगे कि आज पत्रकारिता की शिक्षा के दौरान अधिकांशतः हम पाश्चात्य देशों के विचारकों के पत्रकारिता मूल्यों के बारे में ही अधिक पढ़ते हैं बल्कि ये कहना गलत नहीं होगा कि हम पत्रकारिता के भारतीय विचारकों एवं महान उद्देश्यों को ध्यान में रखकर की गयी पत्रकारिता के मूल्यों को पढ़ने और उनसे प्रेरित होने में कोई रूचि नहीं रखते। अधिकांशतः यह प्रवृत्ति देखने को मिलती है बाकी कुछ अपवाद स्वरूप मूल्यों के उपासक सदा ही हर क्षेत्र में होते हैं। पत्रकारिता शिक्षा भी अन्य डिग्री लेने की दौड़ जैसी हो रही है और आज के पत्रकारिता भी कोई मिशन नहीं बल्कि जीवकोपार्जन के लिए किये जाने वाले किसी व्यवसाय जैसी हो गयी है। आज की आवश्यकता है कि पत्रकारिता शिक्षण के पाठ्यक्रम में बासाहेब अम्बेडकर के पत्रकारिता के मूल्यों अथवा विचारों के विषय में विस्तार से बताया जाए जिससे भावी पत्रकारों में भी व्यवस्था के द्वारा मूक कराये गए शोषितों, वंचितों के नायक बनने का गुण परिलक्षित हो सके। इसी उद्देश्य से शोधार्थी ने प्रस्तुत शोध में मीडिया अध्ययन से जुड़े विद्यार्थियों से ये जानने का प्रयास किया है कि उन्हें बाबासाहेब अम्बेडकर की पत्रकारिता के विषय में उन्हें कितनी जानकारी है और क्या यह उनके पाठ्यक्रम का हिस्सा रहा है क्या पत्रकारिता शिक्षा के दौरान उन्हें बाबासाहेब अम्बेडकर के पत्रकार के रूप में किये गए संघर्ष एवं कार्यों के विषय में विस्तार से जानने का अवसर मिला।

बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर मुख्यतः भारतीय संविधान के निर्माता एवं दलितों के उत्थान के लिए अग्रणी भूमिका अदा करने के लिए जाने जाते हैं। बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर ने पत्रकार एवं सम्पादक के रूप में कार्य करने की शुरुआत क्यों की इसे वे स्वयं ही अपनी लेखनी से स्पष्ट कर चुके हैं और उनके शब्दों से उनके पत्रकारिता संबंधी सिद्धांतों और विचारों का भी बोध होता है। उन्होंने दलितों के उत्थान का जो बिगुल फूंका उसे उस समय की मेन स्ट्रीम मीडिया में जगह नहीं मिलती थी जिसके स्पष्ट कारण थे उस समय सम्पूर्ण मीडिया जगत में दलितों का प्रतिनिधित्व शून्य मात्र था या यूँ कहें कि सम्पूर्ण मीडिया अथवा पत्रकारिता जगत की प्रभुत्ता किन्हीं सत्ता सम्पन्न सवर्णों के हांथों में क्रेंद्रित थी जिसे देखते हुए डॉ. अम्बेडकर ने एक पत्रकार के रूप में कार्य करने का निश्चय किया। उनके इस संकल्प का उद्देश्य मात्र दलित कल्याण नहीं वरन सभी बेजुबान, वंचितों की आवाज़ों को मंच देना था इसलिए उनके अखबार का नाम मूकनायक था जो सभी बेजुबानों की आवाज़ का नायक था साथ ही वैज्ञानिक सोच वाले नव भारत निर्माण के लिए उन्होंने अपनी पत्रकारिता के माध्यम से लोगों को प्रेरित किया। उन्होंने अपने लेख में लिखा था *'भारत के बाहर के लोग विश्वास करते हैं कि कांग्रेस ही एकमात्र संस्था है, जो भारत का प्रतिनिधित्व करती है, यहां तक कि अस्पृश्यों का भी। इसका कारण यह है कि अस्पृश्यों के पास अपना कोई साधन नहीं है, जिससे वे कांग्रेस के मुकाबले अपना दावा जता सकें। अस्पृश्यों की इस कमजोरी के और भी कई कारण हैं। अस्पृश्यों के पास अपना कोई प्रेस नहीं है। कांग्रेस का प्रेस उनके लिए बंद हैं। उसने अस्पृश्यों का रत्ती भर भी प्रचार न करने की कसम खा रखी है। अस्पृश्य अपना प्रेस स्थापित नहीं कर सकते। यह स्पष्ट है कि कोई भी समाचारपत्र बिना विज्ञापन राशि के नहीं चल सकता। विज्ञापन राशि केवल व्यावसायिक विज्ञापनों से आती है। चाहे छोटे व्यवसायी हो या बड़े, वे सभी*

कांग्रेस से जुड़े हैं और गैर-कांग्रेसी संस्था का पक्ष नहीं ले सकते। भारत के एसोसिएटेड प्रेस का स्टाफ, जो भारत की समाचार एजेंसी है, सम्पूर्ण रूप से मद्रासी ब्राह्मणों से भरी पड़ी है। वास्तव में भारत का सम्पूर्ण प्रेस उन्हीं की मुट्ठी में है और वे पूर्णतया कांग्रेस के पिट्ठू हैं, जो कांग्रेस के विरुद्ध किसी समाचार को नहीं छाप सकते।'

आज के दौर में जब भी बाबासाहेब अम्बेडकर की बात होती है तो उन्हें मात्र दलितों के उत्थान के लिए कार्य करने वाले युगपुरुष के रूप में जाना जाता है। जबकि उन्होंने दलितों के उत्थान के साथ ही सम्पूर्ण मानवता के उत्थान का संकल्प लिया था। उन्होंने जिस प्रबुद्ध भारत की कल्पना की थी वहां सभी को समानता और अभिव्यक्ति का समान अधिकार दिया जाता है। उनका मानना था कि यदि किसी देश का एक भी तबका विकास से अछूता रह जायेगा तो सम्पूर्ण देश विकसित राष्ट्र कभी नहीं बन सकता। उन्होंने मानवीय मूल्यों की रक्षा के लिए, कमजोर एवं निचले वर्ग के उत्थान के लिए पत्रकारिता को ही सर्वश्रेष्ठ माध्यम के रूप में देखा और प्रयोग भी किया। उन्होंने विदेश से उच्च शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात भी मराठी भाषा में समाचार पत्रों का प्रकाशन किया जिससे स्थानीय दलित जो अंग्रेजी भाषा से अनभिज्ञ थे और अपनी स्थानीय भाषा मराठी अच्छे से जानते थे इस विमर्श में हिस्सा ले सकें। अपने मुद्दों को भलीभांति पढ़ समझ सके और भविष्य में उन्हें किसी नायक की आवश्यकता न पड़े बल्कि वे स्वयं ही अपने नायकत्व में सक्षम हो सकें अपने अधिकारों के लिए अपनी आवाज़ उठा सकें।

इस संदर्भ में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक दत्तोपन्त ठेंगड़ी ने अपनी पुस्तक 'डॉ॰ अम्बेडकर और सामाजिक क्रान्ति की यात्रा' में लिखा है- 'भारतीय समाचार-पत्र जगत की उज्ज्वल परंपरा है। परंतु आज चिंता की बात यह है कि संपूर्ण समाज का सर्वांगीण विचार करनेवाला, सामाजिक उत्तरदायित्व को माननेवाला, लोकशिक्षण का माध्यम मानकर तथा एक व्रत के रूप में समाचार-पत्र का उपयोग करनेवाला डॉ॰ अम्बेडकर जैसा पत्रकार दुर्लभ हो रहा है।' उक्त विचार ही बाबा साहब की पत्रकारिता का संदेश और सार है।

डॉ अम्बेडकर की पत्रकारिता लोक नायक से प्रबुद्ध भारत तक की यात्रा :

बाबासाहेब दो भीमराव अम्बेडकर ने अपने विचारों को जनता तक पहुंचाने के लिए कई पत्र निकाले जिसके माध्यम से वे वैज्ञानिक एवं मानवतावादी सोच वाले नव राष्ट्र निर्माण और दलित उत्थान के अपने आंदोलन को गति देना चाहते थे। उनका मानना था कि- *"जैसे पंख के बिना पक्षी होता है, वैसे ही समाचार-पत्र के बिना आंदोलन होते हैं।"* मूकनायक (1920), बहिष्कृत भारत (1924), समता (1928), जनता (1930), आम्ही शासनकर्ती जमात बनणार (1940), प्रबुद्ध भारत (1956) का संपादन लेखन और सलाहकार के तौर पर काम करने के साथ इन प्रकाशनों का मार्गदर्शन भी किया। मूकनायक के प्रकाशन के समय बाबा साहेब की आयु मात्र 29 वर्ष थी और वे तीन वर्ष पूर्व ही 1917 में अमेरिका से उच्च शिक्षा लेकर लौटे थे। अधिकांशतः लोगों के मन में ये सवाल उठता है कि उन्होंने अपने पत्र की भाषा मराठी क्यों रखी जबकि वो अंग्रेजी भाषा में पत्र प्रकाशित करके अंग्रज सरकार तक दलितों की स्थिति प्रभावी ढंग से रख सकते थे और प्रसिद्धि भी पा सकते थे। किन्तु जैसा कि पत्र का नाम से ही स्पष्ट था कि यह पत्र मूक नायक था जो कि उन बेजुबान लोगों की आवाज़ था जिनकी आवाज़ों को सदियों से मूक कर दिया गया था यही कारण था कि उनकी भाषा मराठी में ही इस पत्र का प्रकाशन हुआ, जिससे उन्हें भी आत्म सम्मान का बोध हो। जिससे उन्हें अपनी आवाज़ के नायक को पढ़ने समझने का सुअवसर प्राप्त हो और वो भी मेन स्ट्रीम मीडिया में अपने मुद्दों से जुड़े विमर्श को जान सकें और उसमें प्रतिभागी बनें।

दलित शब्द के विषय में आज जो धारणा बनी हुई है, उसे तोड़ते हुए इस विषय में प्रोफेसर संजय द्विवेदी, जो कि भारतीय जनसंचार संस्थान, नई दिल्ली के महानिदेशक हैं उन्होंने डॉक्टर अम्बेडकर की पत्रकारिता संबंधी आलेख में ये जिक्र किया है कि दलित शब्द की उत्पति कहां से हुई, जो एक रोचक जानकारी है। उन्होंने लिखा है *''इस संबंध में मैं प्रोफेसर सतीश प्रकाश का ज़िक्र जरूर करना चाहूंगा। पिछने दिनों एक कार्यक्रम में मुझे उन्हें सुनने का अवसर मिला, जहां उन्होंने एक बहुत महत्वपूर्ण जानकारी साझा की। ये जानकारी थी 'दलित' शब्द की उत्पत्ति के बारे में। प्रोफेसर प्रकाश ने बताया कि 'दलित' शब्द की उत्पति हिंदी से नहीं हुई। असल में 'जे॰ जे॰ मोसले' वर्ष 1832 में मराठी भाषा में इसका प्रयोग करते थे और जो शब्द इस समाज की पहचान के लिए बनाए गए थे, उस से समाज खुद नफरत करता था। इसलिए अंग्रेजी साहित्य में दलितों का वर्णन करने के लिए इस शब्द की उत्पत्ति हुई। इसलिए इसके मायने भी अंग्रेजी जैसे हैं। दरअसल ये दलित नहींए बल्कि 'द लिट' है। लिट का अर्थ होता है झलना। यानि वे लोग जो अंधेरे से उजाले की ओर चले गए, वे 'द लिट' कहलाए। इसलिए प्रोफेसर सतीश प्रकाश का मानना है कि 'दलित' एक ब्रांड है, जो हर कोई नहीं बन सकता।''*

डॉ॰ अम्बेडकर ने 27 सितंबर,1951 को केंद्रीय मंत्रिमंडल से इस्तीफा दे दिया था। अपने त्यागपत्र देने के कारणों के संबंध में उन्होंने वक्तव्य 10 अक्टूबर, 1951 को नई दिल्ली में जारी किया, संसद के बाहर इस वक्तव्य को जारी करने का कारण उन्होंने बताया कि संसद में उन्हें वक्तव्य देने से रोका गया था, क्योकि वे वक्तव्य की प्रति अध्यक्ष को सौंपना नहीं चाहते थे। अपने वक्तव्य में उन्होंने त्यागपत्र देने के कारणों के बारे में बताया, जिसमें उन्होंने तीसरी वजह जो बताई वह पत्रकारिता से संबंधित थी उन्होंने कहा कि, *'तीसरे, हमारे यहां के अखबार भी हैं, जो कुछ लोगों के लिए सदियों पुराने पक्षपात और अन्य के खिलाफ पूर्वाग्रह रखते आए हैं। उनकी धारणाएं तथ्यों पर कम ही आधारित होती हैं। जब उन्हें कोई रिक्त स्थान दिखाई देता है, वे उसे भरने के लिए ऐसी बातों का सहारा लेते हैं, जिसमें उनके प्रिय लोग बेहतर नजर आएं और जिनका वे पक्ष नहीं लेते, वे गलत नजर आएं। ऐसा ही कुछ मेरे मामले में हुआ है, ऐसा मुझे लगता है।''* (शर्मिलारेगे, पृ॰ 258)।

उन्होंने समाचार पत्रों को बहिष्कृतों पर होने वाले अत्याचारों के लिए विचार विमर्श करने और उन्हें न्याय का मंच उपलब्ध कराने का एक बेहतरीन माध्यम बताया। उन्होंने लिखा- *''बहिष्कृत लोगों पर आज हो रहे और भविष्य में होने वाले अन्याय पर योजनाबद्ध तरीके से विचार करना होगा। उसी के साथ भावी प्रगति तथा उसे प्राप्त करने के रास्ते की सच्ची जानकारी के संबंध में भी चर्चा करनी होगी। चर्चा करने के लिए समाचारदृपत्र जैसी दूसरी जगह नहीं है।''* (मूकनायक, पृ॰ 34)

जातिवादी समाचार पत्रों को चेतावनी देते हुए उन्होंने लिखा- *''ऐसे समाचार-पत्रों से हमारा कहना है कि समाज में यदि कोई एक जाति पतन की ओर जाती है तब उसकी अवनति का कलंक दूसरी जातियों पर लगने से रोका नहीं जा सकता है। समाज एक नाव की तरह ही है। जिस तरह किसी बोट (पानी वाली जहाज) में बैठकर सफर कर रहे होते हैं। यदि उसी समय किसी यात्री के मन में जान-बूझकर दूसरे यात्रियों को हानि पहुंचाने की इच्छा उठती है तो इस तरह हानि पहुंचाने की नीयत से उठी गड़बड़ी देखने लायक होती है। किसी यात्री ने अपने दुष्ट स्वभाव के कारण यदि दूसरे के कमरे* (पानी की जहाजों में अलग-अलग कमरे हो*ते हैं) में छेद कर दिया तो बोट में दूसरों के साथ देर से ही सही स्वयं उसे भी डूब कर जल समाधि लेनी पड़ेगी यानीमरना पड़ेगा। उसी तरह एक जाति का नुकसान करने से, प्रत्यक्ष न सही पर अप्रत्यक्ष रूप से दूसरी जाति को हानि पहुंचाने वाली जातिकी भी हानि निश्चित है। यहां*

संदेह करने की कोई गुंजाइश नहीं है। इसलिए स्वयं का हित साधने वाले समाचार-पत्रों द्वारा दूसरों का नुकसान करके, अपना हित साधने की मूर्खता से हम लोगों को सीखने की आवश्यकता नहीं है।'' (मूकनायक, पृ० 34)।

डॉ० अम्बेडकर लिखते हैं कि *''एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडिया के सभी कर्मचारी मद्रासी ब्राह्मण हैं। एसोसिएटेड प्रेस ही समाचारों की मुख्य प्रसारक एजेंसी है। सच्चाई यह है कि एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडिया पूरी तरह से इन्हीं के हाथ में है। ये सभी कांग्रेस समर्थक हैं, वे कोई भी ऐसा समाचार नहीं प्रकाशित होने देते जो कांग्रेस के खिलाफ हो। ये ऐसी वजहें हैं जिनके संबंध में अछूत कुछ भी करने की स्थिति में नहीं हैं।''* (डॉ० आंबेडकर, 1993)।

राजनीतिक भटकाव को समाप्त करने में अख़बारों की बड़ी भूमिका हो सकती है इसे स्पष्ट करते हुए डॉक्टर अम्बेडकर ने कहा था *''आधुनिक प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में अच्छी सरकार के लिए समाचार-पत्र मूल आधार है। इसलिए भारत के अनुसूचित जाति के अतुलनीय दुर्भाग्य और दुर्दशा को ख़त्म करने में तब तक सफलता नहीं मिल सकती, जब तक 8 करोड़ अस्पृश्यों को राजनीतिक रूप से शिक्षित न कर लें। यदि विभिन्न विधानसभाओं के विधायकों के व्यवहार की रिपोर्टिंग करते हुए समाचार पत्र लोगों से कहें कि विधायकों से पूछो ऐसा क्यों है, कैसे हुआ, तब मेरे दिमाग में कोई दुविधा नहीं है कि विधायकों के व्यवहार में बड़ी तबदीली आ सकती है। इस तरह वर्तमान दुर्व्यवस्था, जिसके भोगी हमारे समुदाय के लोग हैं, पर रोक लग सकती है। इसलिए मैं इस समाचार पत्र को एक वैसे साधन के रूप में देख रहा हूं, जो वैसे लोगों का शुद्धिकरण कर सकता है जो अपने राजनीतिक जीवन में गलत दिशा में गए हैं।''* ऐसा उन्होंने आल इंडिया शिड्यूल्ड कास्ट्स फेडरेशन ने जनवरी 1945 में अपने साप्ताहिक मुख-पत्र ''पीपल्स हेराल्ड'' की शुरुआत की। इस पत्र का मुख्य उद्देश्य अस्पृश्यों की आकांक्षाओं, मांगों, शिकायतों को स्वर देना था। इस पत्र के उद्घाटनकर्ता के रूप में डॉक्टर अम्बेडकर ने ये वाक्य कहे थे।

1937 के विधानसभा चुनाव में मराठी समाचार पत्र की भूमिका का हवाला देते हुए डॉ० आंबेडकर ने सुझाव दिया, *'समाचार पत्र न केवल मतदाताओं को प्रशिक्षित करते हैं बल्कि यह भी सुनिश्चित करते हैं कि जिसे उन्होंने अपने मत से चुना है, वे उनके साथ खड़े हैं, अपना कर्तव्य ठीक ढंग से निभा रहे हैं और किसी के साथ कोई दुर्व्यवहार नहीं कर रहे।'* उन्होंने आगे कहा, *'मैं सोलह वर्षों तक बॉम्बे में एक साप्ताहिक का संपादन किया है। इस पत्र ने जो व्यापक प्रभाव उत्पन्न किया, उसका प्रमाण बॉम्बे के विधानसभा चुनाव में दिखा, जिसमें मैंने सभी समुदायों का वोट प्राप्त कर कांग्रेस के अपने प्रतिस्पर्धी को हराया।'*

द प्रिंट में प्रकाशित एक लेख में दिल्ली यूनिवर्सिटी के हिंदू कॉलेज में इतिहास के एसोसिएट प्रोफेसर **रतन लाल** लिखते हैं कि - अम्बेडकर के ज़माने से लेकर अब तक मीडिया की दुनिया में बहुत कुछ बदल चुका है। लेकिन, बहुत कुछ यथावत भी है। दलितों के लिए मेनस्ट्रीम मीडिया के दरवाजे अमूमन आज भी बंद हैं। उत्तर-आंबेडकर काल में कांशीराम ने उनके आन्दोलन को आगे बढ़ाते हुए कई पत्र निकाले। आज व्यक्तिगत प्रयास से कुछ व्यक्ति और संगठन छिटपुट पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित कर रहे हैं। व्यक्तिगत प्रयास से अनगिनत सोशल मीडिया पेज, ट्विटर, फ़ेसबुक ग्रुप, यू-ट्यूब चैनल, वीडियो ब्लॉग और ब्लॉग चला रहे हैं। लेकिन ऐसा क्यों है कि सैकड़ों दलित करोड़पति, डिक्की और बामसेफ जैसे संगठन, सैकड़ों विधायक/संसद/मंत्री, दर्ज़नों ताकतवर राष्ट्रीय नेताओं, हज़ारों नौकरशाहों के होने के बावजूद आज मुख्यधारा में ऐसा कोई अंग्रेज़ी/हिंदी अखब़ार/ टीवी चैनल नहीं है, जो दलितों और पिछड़ी जातियों से जुड़े मुद्दों पर संवाद कर सके, उनके विश्व दृष्टि की नुमाइंदगी का दावा कर सके। यह दलित नेतृत्व और नए उभरे मध्यम-वर्ग की बौद्धिक सीमाओं को भी दर्शाता है।

भारतीय पत्रकारिता के लिए डॉ॰ अम्बेडकर के कहे गए उपर्युक्त कथनों के विश्लेषण से ज्ञात होता है की उन्होंने पत्रकारिता के जिन सिद्धांतों को अपनाये जाने की वकालत की वे निम्न हैं :

- पत्रकारिता तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए धारणाओं पर नहीं।
- पत्रकारिता को किसी भी प्रकार के पक्षपात और पूर्वाग्रह से मुक्त होना चाहिए।
- पत्रकारिता व्यवसाय नहीं है इसे मिशन के रूप में होना चाहिए।
- पत्रकार स्व-नैतिकता के गुण का पालन करें।
- निर्भीकता पत्रकारों का महत्वपूर्ण गुण होना चाहिए।
- पत्रकारिता सामजिक हित को ध्यान में रख कर की जानी चाहिए।
- पत्रकारिता में व्यक्ति पूजा का कोई स्थान नहीं होना चाहिए।
- सनसनीखेज समाचार की जगह पत्रकारों को वस्तुगत पत्रकारिता करनी चाहिए।
- पाठकों के तर्क एवं विवेक को जाग्रत करना पत्रकारिता का दायित्व है न कि जान भावनाएं भड़काना।

साहित्यावलोकन :

डॉक्टर अम्बेडकर की गहन अध्येता अध्येता गेल ओमवेट बाबासाहेब की पत्रकारिता को राष्ट्र निर्माण के लिए डॉ॰ अम्बेडकर का स्वप्न कहती हैं- *''डॉ॰ अम्बेडकर का बुनियादी संघर्ष एक अलग स्वाधीनता का संघर्ष था। यह संघर्ष भारतीय समाज के सर्वाधिक संतप्तवर्ग की मुक्ति का संघर्ष था। उनका स्वाधीनता संग्राम उपनिवेशवाद के विरुद्ध चलाए जा रहे स्वाधीनता संग्राम से वृहत और गहरा था। उनकी नजर नवराष्ट्र के निर्माण पर थी।''* (गेल ओमवेट, पृ॰ 149)।

इस संदर्भ में वरिष्ठ विचारक और चिंतक दत्तोपन्त ठेंगड़ी ने अपनी पुस्तक 'डॉ॰ अम्बेडकर और सामाजिक क्रांति की यात्रा' में लिखा है, कि- ''भारतीय समाचार-पत्र जगत की उज्ज्वल परंपरा है। परंतु आज चिंता की बात यह है कि संपूर्ण समाज का सर्वांगीण विचार करने वाला, सामाजिक उत्तरदायित्व को मानने वाला, समाचार पत्र को लोकशिक्षण का माध्यम मानकर तथा एक व्रत के रूप में उपयोग करने वाला आंबेडकर जैसा पत्रकार मिलना दुर्लभ हो रहा है।''

दलित पत्रकारिता के संदर्भ में **मीडिया स्टडीज ग्रुप** द्वारा किया गया शोध भी दलित आदिवासियों एवं पिछड़ों की भागीदारी के संदर्भ में मीडियकर्मियों की सामाजिक पृष्ठभूमि के विषय में 2006 में किया गया ये शोध बताता है कि 21वीं सदी में भी भारत की मीडिया का सामाजिक चरित्र बदला नहीं है और जाति वर्चस्व यहां अब भी काम कर रहा है।

शोध प्रविधि :

प्रस्तुत शोध के लिए शोधार्थी द्वारा मिश्रित (गुणात्मक एवं मात्रात्मक शोध) का प्रयोग किया गया है। बाबासाहेब डॉ॰ भीमराव अम्बेडकर की पत्रकारिता के इतिहास और उससे संबंधित साहित्य का अध्ययन उपलब्ध पुस्तकों और शोध अध्ययन के माध्यम से किया गया है एवं प्रश्नावली के माध्यम से जनसंचार एवं पत्रकारिता के शिक्षण से संबद्ध विद्यार्थियों से प्रश्न पूछ कर सर्वे विधि द्वारा पत्रकारिता शिक्षा के पाठ्यक्रम में अम्बेडकर के पत्रकारिता सिद्धांत के विषय में पढ़ाया जाता है अथवा नहीं, पत्रकारिता शिक्षा से जुड़े अथवा पूर्व में उर्त्तीण हुए छात्रों को अम्बेडकर के पत्रकारिता सिद्धांतों एवं इतिहास की कितनी जानकारी है इसका विश्लेषण किया गया है।

डाटा विश्लेषण :

प्रश्नावली से प्राप्त संख्यात्मक डाटा का विश्लेषण गणितीय विधि द्वारा किया गया है। लिखित प्रश्नों से गुणात्मक डाटा का विश्लेषण कर उसका विवरण प्रस्तुत किया गया है।

शोध अवधि - 5 माह (अप्रैल 2022-अगस्त 2022)

निदर्श - उद्देश्यात्मक निदर्श

शोध इकाई - 101

डाटा संग्रहण विधि - सर्वे विधि द्वारा

डाटा संग्रहण उपकरण - प्रश्नावली द्वारा

(शोध के उद्देश्य के अनुरूप जनसंचार एवं पत्रकारिता के विद्यार्थियों को निदर्श के रूप में लिया गया है।)

डाटा प्रस्तुतीकरण :

आंकड़ों के रूप में प्राप्त डाटा ग्राफ, चार्ट, टेबिल के माध्यम से प्रस्तुत किया जाएगा और लिखित प्रश्नों से प्राप्त उत्तरों का गुणात्मक विश्लेषण करके प्राप्त निष्कर्ष को विवरणात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है।

शोध प्रश्न :

1. क्या डॉ॰ अम्बेडकर की पत्रकारिता के सिद्धांत आधुनिक पत्रकारिता पाठ्यक्रम का हिस्सा हैं।
2. क्या विद्यार्थियों ने पाठ्यक्रम से अलग अम्बेडकर की पत्रकारिता के विषय से सम्बंधित पुस्तक या आलेख पढ़ा हैं।
3. क्या जन संचार माध्यम डॉक्टर अंबेडकर की पत्रकारिता के संबंध में विषय सामग्री प्रस्तुत करते है।
4. विद्यार्थी बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर को अधिकांशतः किस रूप में जानते हैं।
5. क्या अंबेडकर जी के पत्रकारिता सम्बन्धी विचार आधुनिक परिदृश्य में प्रासंगिक हैं।
6. आधुनिक पत्रकारिता को अम्बेडकर जी के पत्रकारिता सम्बन्धी किन सिद्धान्तों को अपनाने की आवश्यकता है।

प्रमुख निष्कर्ष :

मीडिया कोर्स-

101 responses

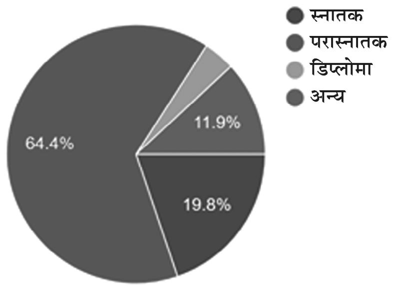

क्या आपने पत्रकारिता की शिक्षा के दौरान कभी डॉक्टर भीमराव अम्बेडकर की पत्रकारिता के विष में कभी पढ़ा? (101 responses)

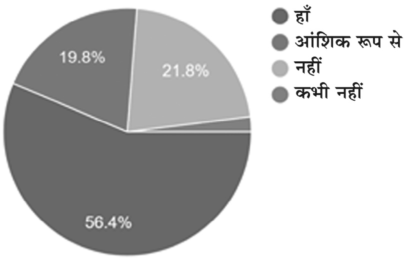

अम्बेडकर जी की पत्रकारिता के विषय में आपके कोर्स की किताबों में वर्णित है/था? (101 responses)

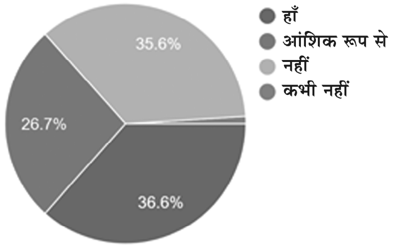

क्या आपने अलग से पाठयक्रम से अलग अम्बेडकर की पत्रकारिता के विषय से सम्बन्धित पुस्तक या आलेख पढ़े हैं? (101 responses)

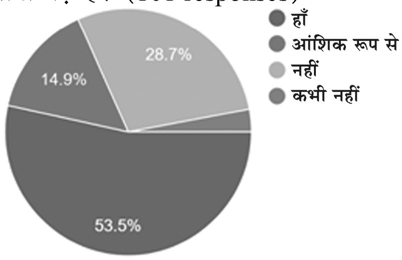

अम्बेडकर जी के विषय में आपने अधिकांशतः कहाँ सुना अथवा पढ़ा है? (101 responses)

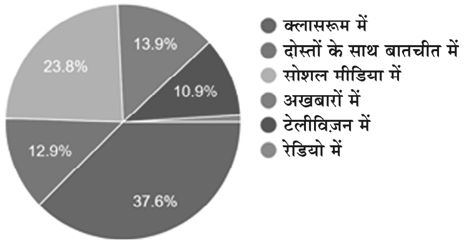

आप बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर को अधिकांशतः किस रूप में जानते आये हैं? (101 responses)

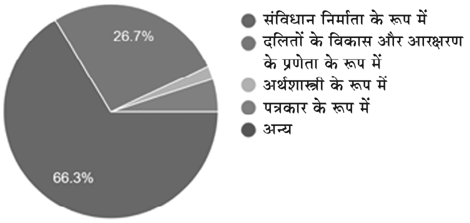

आपको क्या लगता है कि आज अम्बेडकर जी के पत्रकारिता सम्बन्धी विचार आधुनिक परिदृश्य में प्रासंगिक हैं? (98 responses)

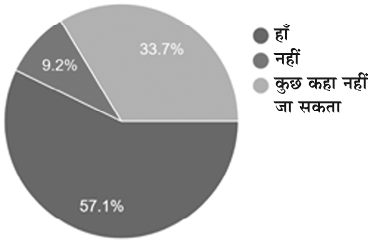

क्या अम्बेडकर जी के भारतीय पत्रकारिता में अवदान, इतिहास और उनके पत्रकारिता के सिद्धान्तों को पत्रकारिता शिक्षा में शामिल किया जाना चाहिये? (98 responses)

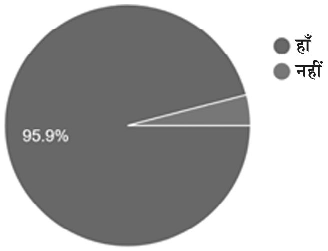

क्या आप उनके द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित पत्रिका अथवा अखबार का नाम जानते हैं। यदि हां तो कृपया लिखें।

इस लिखित प्रश्न के उत्तर में 53 मीडिया विद्यार्थियों ने उत्तर लिखा जिनमें सर्वाधिक ने मूकनायक का नाम लिखा इसके अतिरिक्त प्रतिभागियों ने बहिष्कृत भारत, जनता, जाति का विनाश, The Journalistic legacy of BR Ambedkar का नाम लिखा।

पत्रकारिता से सम्बंधित अम्बेडकर जी के सिद्धांत और विचारों को पढ़ने के लिए सर्वश्रेष्ठ माध्यम या किसी पुस्तक का नाम यदि आपको पता हो तो जरूर लिखें।

इस सवाल के जवाब में कुल 49 विद्यार्थियों ने उत्तर लिखा जिनमें से अधिकांश का उत्तर था नहीं उन्हें इसकी जानकारी नहीं है, जबकि कुछ विद्यार्थियों ने अम्बेडकर वांगमय, मूकनायक, बहिष्कृत भारत, डॉ॰ बी॰ आर॰ अम्बेडकर मूक नायक से राष्ट्र नायक, अम्बेडकर के पत्र का नाम लिखा।

आज की पत्रकारिता को अम्बेडकर जी के पत्रकारिता सम्बन्धी किन सिद्धान्तों को अपनाने की आवश्यकता है? (संक्षेप में लिखें)

इस प्रश्न के उत्तर में विद्यर्थियों ने लिखा है कि सभी वर्गों के लिए मीडिया में स्थान होना चाहिए। जो हमारे समाज में आज के समय की पत्रकारिता परिभाषा है वह अम्बेडकर की पत्रकारिता सें बहुत दूर हो चुकी है मुख्य धारा की पत्रकार और प्रिंट टीवी चैनल की स्थिति चिंताजनक है। आज के समय में सोशल मीडिया के माध्यम सें लोग अपने समाज की आवाज को आगे बढ़ाने का कार्य कर रहे है और अम्बेडकर की पत्रकारिता और दलित पत्रकारिता को मिशन के रूप में बढ़ाने के लिए सोशल मीडिया एक अच्छा माध्यम बनकर उभरा है। कुछ विद्यार्थियों ने लिखा है कि बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर को हमेशा से हमने संविधान निर्माता के रूप में और दलित एवं पिछड़े वर्गों के विकास लिए जाना है। उनकी पत्रकारिता की समझ और दर्शनिकता के संदर्भ में ना कभी शिक्षकों से सुना और न ही विद्यार्थियों में इसपर कभी चर्चा होते देखी। अम्बेडकर की पत्रकारिता

के विषय में लोगों में जागरूकता को बढ़ाने की जरूरत है।

विद्यार्थियों ने अपने उत्तर में लिखा कि पत्रकारिता को बहुसंख्यक वर्ग के तुष्टिकरण को आंख मूंदकर पूरा नहीं करना चाहिए। इसके बजाय, इसे लोकतांत्रिक विचारों को स्थापित करने में मदद करनी चाहिए। उन्हें निष्पक्ष होकर समाज के निचले पायदान पर खड़े व्यक्ति की आवाज बनना चाहिए। बाबासाहेब के पत्रकारिता के सिद्धांतों के विषय में पत्रकारिता शिक्षा के दौरान पढ़ाया जाना चाहिए जिससे भावी पत्रकार उनके संघर्ष से प्रेरित हों और उनकी भांति शोषण और अन्याय के खिलाफ आवाज़ उठाकर मूक जनता के नायक बन सकें।

उपसंहार :

बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर के पत्रकारिता संबंधी सिद्धांत एवं विचार आधुनिक पत्रकारिता को नैतिकता एवं कर्तव्यपरायणता के पथ पर अग्रसर करके उसे जनहित के लिए लाभकारी बना सकते हैं। पत्रकारों का प्रमुख कर्तव्य सभी वर्गों के मुद्दों को समान महत्व देना एवं मूक शोषितों की आवाज़ बनना है जिसे व्यवस्था के लचर रवैये ने मूक कर दिया है अथवा मीडिया के केन्द्रीकृत स्वामित्व के आधिपत्य के कारण जो महत्वपूर्ण आवाजें मौन रह जाती हैं । बाबासाहेब की पत्रकारिता के इतिहास और संघर्ष को पत्रकारिता शिक्षा के पाठ्यक्रम के दौरान पढ़ाया जाना चाहिए जिससे भावी पत्रकारों में कर्तव्यनिष्ठा का गुण जाग्रत हो और वे सच्चे अर्थों में मूक नायक बन सकें।

संदर्भ सूची :

1. (डॉ॰ भीमराव आंबेडकर को पत्रकार और संपादक क्यों बनना पड़ा, 2020)
2. (डॉ॰ आंबेडकर की पत्रकारिता : 'मूकनायक' से 'प्रबुद्ध भारत' की यात्रा, 2020)
3. ('मूक' समाज को आवाज देकर ही उनके 'नायक' बने थे बाबा साहब आंबेडकर, 2021)
4. 'मूकनायक', डॉ॰ बी॰ आर॰ आंबेडकर, अनुवाद, विनय कुमार वासनिक, सम्यक प्रकाशन, 2019।
5. बाबासाहेब, डॉ॰ आंबेडकर, संपूर्ण वांग्मय, डॉ॰ आंबेडकर शांति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली
6. डॉ॰ आंबेडकर प्रबुद्ध भारत की ओर, गेल ओमवेट, पेंगुइन बुक्स, नई दिल्ली, 2005
7. डॉ॰ बाबासाहेब आंबेडकर : राइटिंग्स एंड स्पीचेज, महाराष्ट्र सरकार, 1993
8. डॉ॰ बाबा साहेब आंबेडकर जीवन-चरित, धनंजय कीर, पापुलर प्रकाशन, मुबई, 2018
9. बाबासाहेब डॉ॰ आंबेडकर की संघर्ष-यात्रा एवं संदेश, डॉ॰ म॰ ला॰ शहारे, डॉ॰ नलिनी अनिल, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014
10. डॉ॰ बाबा साहब, आंबेडकर, वसंत मून, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली, 1991
11. 'मूकनायक', डॉ॰ आंबेडकर, अनुवाद तथा संपादन, डॉ॰ श्यौराज सिंह बैचैन, गौतम बुक सेंटर, दिल्ली, 2019
12. बहिष्कृत भारत में प्रकाशित, बाबा साहेब डॉ॰ आंबेडकर के संपादकीय। अनुवादक, प्रभाकर गजभिये, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017

References :

1. डॉ॰ आंबेडकर की पत्रकारिता : 'मूकनायक' से 'प्रबुद्ध भारत' की यात्रा। (2020, January 26). Forward Press. Retrieved April 12, 2022, from https://www.forwardpress.in/2020/01/mooknayak-100-years-journalism-ambedkar-hindi/
2. डॉ॰ भीमराव अम्बेडकर को पत्रकार और संपादक क्यों बनना पड़ा। (2020, April 13). The Print Hindi. Retrieved April 12, 2022, from https://hindi.theprint.in/opinion/why-did-dr-br-ambedkar-to-become-a-journalist-and-editor/129596/
3. 'मूक' समाज को आवाज देकर ही उनके 'नायक' बने थे बाबा साहब आंबेडकर।(2021, April 14). प्रभासाक्षी Retrieved April 12, 2022, from https://www.prabhasakshi.com/currentaffairs/dr-bhimrao-ambedkar-biography-in-hindi

Signifying Nothing : Imageries of Cultural Trauma in the Poetry of Mona Zote

Xavier Menezes
Assistant Professor, Department of English
Bharatiya Vidya Bhavan's Hazarimal Somani College of Arts,
Science & Commerce, Chowpatty, Mumbai

Abstract

This paper endeavours to explore in the work of Mizo poet Mona Zote myriad themes, concerns and approaches to the complex issue of expressing life in the North-East, tracing the tensions and doubts about the sanctity of precolonial pasts and the security of postcolonial futures that characterize Zote's stark and startling verse. Diffracted and turbulent imageries that parallel the uncertain identities and narratives of the region predominate Zote's poems, and demand in turn an equally flexible spectrum of lenses, ranging from formalism to historicism to poststructural modes of reading, all of which have been employed in concert across this paper to engage with Zote's arguments about the meaning and purpose of writing poetry in lands at once shackled to and alienated from their contemporaneity. In an examination of Zote's radical and subversive employment of poetic-cultural signification to embody meaninglessness itself, this paper hopes to draw conclusions from incompleteness, and reflect upon the indispensable perspectives that such modes of poetry provide in a frontier of regional art as transient as it is integral.

Key Words

Trauma, Identity, Memory, Postcolonial Literature, Poetry

In his collection of essays upon the workings of empire, *Culture and Imperialism*, the eminent postcolonial thinker Edward W. Said noted, "Just as none of us is outside or beyond geography, none of us is completely free from the struggle over geography. That struggle is complex and interesting because it is not only about soldiers and cannons but also about ideas, about forms, about images and imaginings." (1994, p. 7) These battles for imaginative cartography, for the space to *think* one's identity into a text as parallel to and resonant with conflicts regarding the inheritances of a network of land(ing)s, are pitched with especial intensity in the north-east of India across matrices of song and soil. Witnesses to turmoil and chroniclers of catastrophe, the poets of these regions are faced with the immense challenge of composing their works in circumstances that scour

composure and make short work of lifelong traditions, an environment that seems nearly inimical to poetry, and yet conversely renders the labours of poets all the more valuable, signalling life from tumult, a signification less of survival than of sensation itself, the sense of endings countless and continual as they spread from nerves to narratives. It is the voice of one such creator with which this paper endeavours to engage, tracing the fraught relationships between identity and culture, environment and perspective, impetus and efficacy that underpin the works of Mizo poet Mona Zote.

Terming herself a poet "disguised as a government employee" (Subramaniam, n.d.), Zote's profile, themes and approach all reflect the thrust of overdetermination, of the operation across history and culture of forces immense and impersonal upon her sense of the present, sending spiralling through her poems veins of riot and rupture that are sublimated into the lifeblood of her urgent and arresting style- from "What Poetry Means to Ernestina in peril" resounds the assertion- "*Poetry must be raw like a side of beef,/ should drip blood, remind you of sweat/ and dusty slaughter and the epidermal crunch/ and the sudden bullet to the head*." (2005, lines 11-14) Physicality predominates Zote's choices of imagery, striving across her verse in eviscerating enjambments to slice beyond the text, to cut letters into the reader, to banish the comfortable ambivalence of interpretable abstraction with solid and staggering conceits, lending her text the heft and heat of a body even as that very body recounts its dismemberment, not fading into a space beyond signification, but rather sluicing screams and suffering onto the page, narrating incoherence in paradoxical poignancy. The body with its tenuously attached and, as Zote seldom lets us forget, deeply vulnerable and unreliable mind, occupies the centres and peripheries of her art, a space of eternal return more mortal than cosmic, the barbs of immediate pain whether impending or inherited breaching at regular intervals her flow of ideas and stories to remind readers of the speaker's corporeality- in the same poem as above, "Thus she sits, calmly gathered./ The lizard in her blinks and thinks. She will answer:/ *The dog was mad that bit me. Later, they cut out my third eye*" (2005, lines 15-17).

Such looming, haunting threats of violence conjured in the curve or current of a line to leap out at the reader reflect a trend that Guha identifies in modern poetry from the North-East, wherein the "uneasy presence" (2015, p. 83) of the present seems to hound relentlessly the objectives of the text, whether it looks to seek refuge in a tribal past or locate stability in an embodied account, for there is precious little space to think unimpeded. Zote's texts thus strive to ride out the violence, to create meaning despite and against it in a *poiesis* dangerously and precariously close to life, though the poems, like lands and bodies and memories, cannot escape unscathed. The scope of the trauma borne by the people is so immense as to obscure by sheer disorienting force the exact sources, origins or progress of their collapse, producing a chasm of profound alienation from the poet's environment, a banishment from ordered lines of time and space that presents a sharp contrast to the heartening unity between individual and home-land associated with the tribal, communal and

precolonial past- towards the end of "What Poetry Means to Ernestina in peril" rises the ominous declaration, "*We are killing ourselves. I like an incestuous land. Stars, be silent.*" (2005, line 33) Constructed as a nationalized and localized subject through a history of geographic taxonomies that seem to possess no correspondence with complex ground realities, and indeed only exacerbate the confusion and distortion by trying to enforce hegemonic re-organizations of place and thought, the poetic voice aptly employs metaphors of suicide and incest to signify crossed lines, twisted family trees, counterproductive movements, dead ends and the horror of relations that ought to be natural, organic and vibrant turning into bonds of shame and distrust, casting into doubt the entirety of their identities, a present from whence past and future prove irretrievable, and no sign, song or star enjoins security.

This thread of spatio-temporal fraying is further taken up in the poem "Rez", which sets forth the metaphor of the tribal reservation to describe life in the North-East, these reserves serving not as Edenic sites of primal restoration, but rather as gaols and backwoods, as regions in a state of endless implosion where the dispossession of the peoples and the violence around their lands is re-enacted on all levels from the psychic to the geographic- "A boy & his gun: that's an image will do/ to sum up our times/ to define the red lakes/ and razor blade hills of our mind. Out here *this place never changes, never will*". (2006, lines 1-4) The diverse spaces and cultures that constitute what is now referred to via a combination of Indian-as-centred-in-Delhi nationalistic hegemony and English-cum-Hindu ethnocentrism as the 'North-East' of India were, over the past centuries, systematically transformed into cartographic coordinates and anthropological records to better facilitate their exploitation and subjugation, a flattening of their identities into strategic markings upon sheafs of paper, which have furthermore by the time of Zote's poetic writing been cruelly crumpled up into the titular 'reservations', locking the people of these lands into a cellar with their trauma, despair, frustration and oppression, balled-up maps and bills squeezing into toxic proximity the precolonial, colonial and postcolonial memories and statuses of the regions to the point where all these phases seem equally incomprehensible and indistinguishable to the present native subject- "Trenchcoat todesengel bringing *meaning to life thru death*, thru/ an intimate if facile study of pain" (2006, lines 11-12). Zote's use of 'todesengel', which translates from German into 'angel of death' (Cambridge, n.d.), is a reference to the Biblical concept of the same, referring ironically to a modern(ist) equivalent of such a figure who has orchestrated the atrocities across the North-East in service of some divine plan inscrutable to humans at present- a cutting indictment of the tactics of annexation and subjugation practiced in the area by centres colonial and neo-colonial, as well as the utter inability of the Christian doctrine that pervades contemporary Mizo society (Angom, 2020) to provide meaningful frameworks for understanding and dealing with these deep-rooted cultural traumas, its unwieldly and jarring foreignness to these lands being reflected in Zote's use of German for the term as opposed to the usual English, which is in and of itself not the

native tongue and so exposes the layering of defamiliarizations that interject and complicate the question of modern Mizo identity.

These shattered sociocultural landscapes, replete with not-quite-defining images, mixed metaphors and foreign objects that can neither replace nor displace the indigenous on account of its utter unrecognizability, find fractal refractions across the verses of "Rez", as Zote besets the reader with allusions as diverse as "*Star Trek* via Doordarshan", "the guitars of Byzantium", "sepia anime" and "*Billy Budd*" (2006, lines 47-65), all recollections of experiences that cannot quite coalesce into pillars of a stable identity and function much rather as planks of driftwood desperately grasped at in an endless bid to crystallize the quiddity of instants and identities. In keeping with Chutia's observation that the people of the North-East "internalize alteration" (2018, p. 15) as a result of rising consumerism and globalization causing intense socioeconomic and cultural upheavals with no adequate preparation for these transitions, Zote's poetic voice is painfully aware of the fleeting and insubstantial quality of its imagery, (de)composed as it is of the dregs and dust of symbols once and briefly meaningful in a cultural palimpsest, relentlessly over-written with an intensity paralleled by the poem's rapid switching of focuses and angles in the manner of a postmodern daze, unable to draw upon a metanarrative even if the speaker(s) fervently wanted to, and thus left to the catatonic meandering of their bleeding thoughts. Ultimately, the singular cornerstone that Zote can locate in the search for identity is, ironically, its utter ruin, the choking thickness of its scarified absences, the fog of its abjections, hence the lines:

Look, kid, thank you for the demonstration
    & don't forget to take your angel home
    even if you don't *feel like going back to school*
& if they ask you about life on the reservation
    if they say they want to hear about stilt houses
    and the dry clack of rain on bamboo
    and the preservation of tribal ways
    give them a slaughter. (2006, lines 32-39)

In circumstances so immensely hostile to the integrity of lasting cultural signifiers, it is understandable that Zote speaks in a 2011 interview with *The Hindu* about "my suspicion that poetry may not be the best means to deal with whatever one has been through here. Or it should be supplemented, maybe subverted." This scepticism about the efficacy of poetry in expressing the generational trauma of the region, coupled with a concerted attempt to channel these doubts into the poetic form itself to strain some relevance from the act of writing, finds vent in Zote's "Anti-Lovepoem", a subversive piece identified as, "a poem that has agreed to conspire against itself" (2006, verse 14). Zote stringently rejects cliches about patriotic and regional art, endeavouring to put into verse the experience of penning poetry under conditions of sustained conflict by enumerating all the things it cannot be, cataloguing in the manner of a record of absences and casualties a host of tropes, treatments and tenors that have been applied to and fallen through the issue of voicing the complexity of North-East life- "It is not a poem that heroically claims to revive the dead, convert the tattooed, feed

the pigs, do the laundry waiting at the start of day and search for the perfect button with a scholar's perseverance. Thread and needle at the ready." (2006, verse 8) This non-manifesto accordingly conveys the sense of alienation and ostracism felt by the inhabitant of a region relegated to the margins of the national imagination, defined as a panoply of negativities, a place not-peaceful, not-civilized, not-accessible, not-known and not-important, an *othering* at once marginal to and integral for the shaping-as-cartography of the Indian state.

The North-East, like the conjunction of prefixes that circumscribes its relativist name, is often characterized as a primordial afterthought, a place as frozen in time now as it was assumed to be in the precolonial past, and Zote's aim is to expose the constructionist nature of this stagnation, depicting by this list of reductionisms how marginality is eternally re-inscribed, the polyphony and potentialities of a diverse network of regions yoked onto some-or-the-other narrative/agenda of nationalism or liberationism or primordialism, in active resistance to which the poem largely refuses to fill up the space freed by its many refutations about the North-Eastern character with yet another view of the region's essence that claims supremacy over all others. As Tewari and Chayani note, the 'we' that is referenced in many North-East poems is not a listing of citizens, but "an evolving community of 'precarious' bodies" (2019, p. 34), an admission of transience and loss that stems for this precise reason not from nihilism, but a profound sense of love for the land and its people, a desire even and especially in the wake of clear structure and identity to *create* and *attest* to connections, bonds, values and meanings, to which end Zote, too, muses- "For to write a poem against love you must first have written a poem about love" (2006, verse 15). Accordingly, what remains and persists after a scattering of projections, stereotypes, delusions and sanctimonies is the individual, affirmed and articulated by necessity, remnant and echo and barely-breathing sign of their spaces, bearing through themselves the impressions of countless anecdotes, folktales, schemata, brandings, affections and identifications, a map measured via memories, a home that is and can *only be* where the heart beats, an heir to bloods and lines. In the final verse of the poem, Zote shifts from the metapoetic to a tone of poignant subjectivity, reaching past the flickering boundaries of the text towards a second-person, interpellative and inter-sectional with the intimacy of interpre-tability, that peculiar life which resides in poetry and is (dis)possessed by sharing, affirming the only thing that shall remain real whenever and so long as the poem is read- a signifier and her signified: "I know if I should kiss you/ your mouth would taste of love and whiskey." (2006, verse 23)

> In their analysis of the history of Mizo poetics, Thirumal et al. posit :
>
> The prehensive capacity of the Mizo corporal intelligibility helps assemble Mizo life without forsaking historical rationality. It is possible that some texts have pierced the modern edifice and have allowed the performance of '*lunglen*' or poetical compositions that are best explained as an immeasurable pouring out of the heart. (2019, p. 146)

While the poems of Mona Zote do not uplift the values of a precolonial past as a panacea to or even an available salve for the wounds that have ravaged North-Eastern modernity, they are nonetheless

deeply bound in sickness and in dearth to their environments, striving to put forth a localized voice that is by no means explanatory or inviting to the scrutiny of inquisitive foreigners looking to learn of the plight of India's eternally internalized outsiders, but is rather idiosyncratic and idiolectic in timbres strikingly human and humanly stricken. By labouring in verse to salvage from the sundering of spaces and subjectivities a sliver of signification, writing *out* of prospective waste-lands and want-lands, Zote vies to transcend the instrumentalizations of yesterday and tomorrow that have been used across centuries to (dis)orient the North-East, and provides to her readers in their place a testament of todays, a vision that is frequently ugly, unsettling, disturbing and brutal, and yet more grounded in the raw honesty of poetry than the works of any anthropologist or cartographer might prove, rupturing narratives of a monolithic North-East through pieces of art that could only have been crafted by herself.

References :

1. Angom, R. (2020). Christianization and its Impact on Mizo Culture. *Journal of Humanities and Social Sciences Studies (JHSSS)*, *2* (1), 55-61.
2. Cambridge. (n.d.). Todesengel. In *Cambridge Dictionary*. Retrieved 18 July 2023, from https://dictionary.cambridge.org/dictionary/german-english/todesengel
3. Chutia, S. (2018). Globalization and tribal identity crisis in North East India: A Challenge. *International Journal of Advanced Educational Research*, *3* (5), 14-17.
4. Guha, S. (2015). Quest for Another "New Literature": Poetic Contours of Northeast India. *Dialogue: A Journal Devoted to Literary Appreciation*, *9* (1), 75-84.
5. Said, E. (1994). *Culture and Imperialism*. Vintage Books.
6. Subramaniam, A. (n.d.). *Mona Zote-Biography*. Poetry International. https://www.poetryinternational.com/en/poets-poems/poets/poet/102-13501_Zote. Accessed 16 July 2023.
7. Tewari, R. & Chayani, P (2019). Relationality, Resistance and Mimicry: Towards an Alternate Discourse of Violence and Victimhood from the North East of India. *Rupkatha Journal on Interdisciplinary Studies in Humanities*, *11* (1), 25-36.
8. Thirumal, P., Laldinpuii & Lalrozami, C. (2019). *Modern Mizoram: History, Culture, Poetics*. Routledge.
9. Zote, M. (2006). *Anti-Lovepoem*. In *Indian Literature*, *50*(3), 21-22. JSTOR, http://www.jstor.org/stable/23340955. Accessed 16 July 2023.
10. Zote, M. (2011, January 1). Building the universe of the poem. *The Hindu*. https://www.thehindu.com/books/Building-the-universe-of-the-poem/article15502168.ece. Accessed 17 July 2023.
11. Zote, M. (2006). *Rez*. https://www.poetryinternational.com/en/poets-poems/poems/poem/103-13506_REZ. Accessed 16 July 2023.
12. Zote, M. (2005). *What Poetry Means to Ernestina in peril*. https://www.poetryinternational.com/en/poets-poems/poems/poem/103-13503_WHAT-POETRY-MEANS-TO-ERNESTINA-IN-PERIL. Accessed 16 July 2023.

प्रकीर्णक

''कुछ परिवर्तनों के साथ संभव है शास्त्रीय संगीत का व्यापक प्रचार एवं प्रसार''

डॉ. शिप्रा मणिपद सरकार

सहायक प्राध्यापक, एल. ए. डी एवं एस. आर. पी. महाविद्यालय

शंकर नगर, नागपुर

सारांश :

संगीत के शास्त्रीय नियमों के व्यावहारिक उपयोजन को ही शास्त्रीय संगीत कहते हैं। सामान्य श्रोता इसका रसग्रहण नही कर पाते। शास्त्रीय गायन विशेष रूप से मौखिक परम्परा से प्राप्त होने के कारण कुछ अनावश्यक तत्वों का उसमें अनायास ही समावेश हो गया है जैसे- आवाज का अस्वाभाविक लगाव, कुछ मुद्रा दोष, अस्पष्ट शब्दोच्चारण आदि। संगीत की आधारशिला के रूप में शास्त्रीय नियमों के उपयोजन के नाम पर गायन रूखा न हो जाए। उसमें कला की सुकुमारता अथवा नज़ाकत बनी रहे।

परिचायक शब्द :

शास्त्रीय संगीत, जनसाधारण, जनमानस, रसग्रहण, धृपद, धमार

प्रस्तावना :

संगीत कला का संबंध स्वर तथा लय से होने के कारण इसमें एक अद्भुत आनंद प्रदान करने की क्षमता होती है। चाहे कंठ संगीत हो अथवा वादय संगीत, यह मानव मन को एकाग्र करके एक अलौकिक विश्व मे ले जाने में समर्थ होता है। संगीत की मुख्य तीन विधाएँ प्रचलित है।

1. शास्त्रीय संगीत
2. सुगम संगीत
3. लोक संगीत

इनमें से शास्त्रीय संगीत का विचार यहाँ किया जाएगा। संगीत शास्त्रीय नियमों का व्यवहारिक उपयोजन की शास्त्रीय संगीत कहलाता है। इससे स्पष्ट है कि संगीत शास्त्र को जाननेवाले श्रोता ही शास्त्रीय संगीत का आनंद ले सकते है अर्थात शास्त्रीय संगीत का रस ग्रहण करने हेतु ऐसे श्रोता होने चाहिए जिन्हे शुद्ध-विकृत स्वर, रागनियम, लयतत्व आदि की कम से कम साधारण जानकारी हो। बिना किसी शास्त्रीय ज्ञान के शास्त्रीय संगीत का रसग्रहण असंभव तो नही पर कठिन अवश्य होता है।

विषय प्रवेश :

आज हमें जो शास्त्रीय संगीत का स्वरुप प्राप्त होता है वह मध्ययुग की उपज है। मुगल शासनकाल से पूर्व देश में जो संगीत पद्धती प्रचार में रही होगी उसका सटीक स्वरुप हमें आज प्राप्त नही होता। बताया जाता है कि मुस्लिम शासकों के साथ कुछ संगीतज्ञ भी भारत मे आए और भारतीय संगीत के क्रियात्मक पक्ष से आकर्षित हुए। पूर्व प्रचलित संस्कृत प्राकृत आदि भाषाओं का ज्ञान ना होने से इस काल मे प्रांतीय भाषा, विशेषतः ब्रजभाषा का चुनाव शास्त्रीय

संगीत की पद रचना हेतु उपयुक्त माना गया। शास्त्रीय संगीत के अंतर्गत ध्रुपद, धमार, ख्याल, टप्पा एवं तराना ये विधाएँ प्रचलित हैं। प्रत्येक गायन शैली भिन्न है साथ ही पद रचना भी भिन्न प्रकार की होती है। शास्त्रीय संगीत में सर्वप्रथम ध्रुपद शैली प्रचलित रही। धमार गीतों को भी इसी शैली में गाया जाता है अतः इस शैली को ध्रपद-धमार शैली कहा जाता है। यह एक ओजस्वी तथा बलिष्ठ गीतप्रकार माना जाता है। साथ ही इसमें लय तत्व की प्रधानता होती है। आरंभिक काल में गायक कलाकार इस बात का ध्यान रखा करते थे कि लयतत्व की अधिकता में पद रचना की अर्थहानि ना हो, अर्थात् विभिन्न लय कारियाँ करते समय गीत के शब्द एवं उसमें प्रयुक्त बलाघात उचित रुप मे बने रहें।

जैसा कि हम जानते हैं, मध्ययुग में संगीत को राजाश्रय प्राप्त था। स्वाभाविक ही राजाओं, बादशाहों तथा अन्य दरबारियों के मनोरंजन हेतु अथवा प्रतिष्ठा प्राप्ति हेतु बौद्धिक चमत्कारिता बढ़ती गयी और कठिन लयकारियों के बीच गीत के अर्थ एवं भाव को बनाए रखना दुष्कर होता गया। फलस्वरुप ध्रुपद शैली रूखी और नीरस बनती गई। लालित्य एवं सुकुमारता की खोज में ख्यााल शैली का अविष्कार हुआ। ख्याल शब्द का शाब्दिक अर्थ 'विचार' अथवा 'कल्पना' है। यहाँ कलाकार का कल्पनाविलास दो तरह से होना संभव है :

1. रागनियमो की मर्यादा में रहकर स्वर तथा लय को लेकर,
2. बंदिश में निहित पद रचना के भावार्थ को लेकर।

कलाकार अपनी-अपनी रुझान के अनुसार अपनी सौंदर्यकल्पना की अनुसार दोनों मे से कोई एक मार्ग चुन सकता है अथवा दोनों का समन्वय कर सकता है।

शास्त्रीय संगीत में स्वर एवं लय का आनंद मुख्य रुप से लिया जाता है। भावतत्व यहाँ कुछ गौण हो जाता है। प्रचलित शैलियों में इन सभी तत्वों का न्युनाधिक प्रयोग होता है, जैसे ध्रुपद-धमार शैली में ख्याल की अपेक्षा विस्तृत काव्य रचना होती है जिससे भावतत्व कुछ अधिक उभरकर सामने आता है। यह और बात है कि लयकारियों की अधिकता मे यह उपेक्षित रहजाता है। उपर उल्लेख किया जा चुका है कि शास्त्रीय संगीत में भावतत्व स्वर तथा लय की अपेक्षा कुछ गौण होता है किंतु ध्रुपद-धमार, ख्याल आदि शैलियों के विकास क्रम में इसकी पूर्ण उपेक्षा हो गई और शास्त्रीय संगीत स्वर तथा लय से उत्पन्न चमत्कारिता बन कर रह गया। मध्ययुग से आज तक परंपरा के नाम पर कुछ अवांछित तत्व अपना लिए गए अथवा उन्हें बढावा मिला। जैसे स्पष्टता तथा बलिष्ठता के नाम पर कंठस्वर को बलपूर्वक प्रयोग मे लाना, आवाज को रेंक कर अथवा खुरच कर गाना, घरानों के नाम पर जबडे का प्रयोग विशेषतः तानों में जबड़े की तान, इसी प्रकार अन्य अस्वभाविक कला वस्तुएँ इत्यादि।

अब तक हमने शास्त्रीय संगीत की जिस स्थिति का वर्णन किया उस के कई कारण है जो कहीं ना कहीं पुरातन परिस्थितियों में निहित है किंतु परंपरा के नाम पर उन्हें यथावत् अपनाने के स्थान पर विचारपूर्वक एवं सजग होकर कुछ परिवर्तन किए जा सकते है ऐसा मेरा विनम्र मत है। आधुनिक संगीत विद्वान पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर तथा पंडित विष्णुनारायण भातखण्डे जी के अथक परिश्रम से हमें पंरपरागत बंदिशों की अमूल्य धरोहर प्राप्त हुई है साथ ही सभी संगीत विद्वानों ने यह प्रयास किया है कि आनेवाले शिक्षार्थियों के समक्ष रागों के प्रामाणिक स्वरुप रखे जा सके। गुरु पंरपरा से भी संगीत के कई गहन तत्व हमें प्राप्त होते है। उनका सम्मान हमें अवश्य करना चाहिए किंतु आज के इस तार्किक युग में पंरपराओं को अपनाते हुए हमें अपनी वैचारिकता का भी प्रयोग करना होगा। ऐसा करने से शास्त्रीय संगीत, जो कि अबतक कुछ वर्ग शेष अथवा लोगों तक ही सीमित रहा है, उसे जनमानस तक पहुँचाया जा सकता है। इसके लिए कुछ संभाविक परिवर्तन इस प्रकार बताए जा सकते हैं:

1) भले ही शास्त्रीय संगीत में भावतत्व गौण है फिर भी शास्त्र नियमों से अनभिज्ञ श्रोताओं के लिए वही मुख्य आकर्षण हो जाता है। अतः बंदिश की पद रचना को समझ कर उसका सटीक रूप से गायन किया जाना चाहिए। यहाँ यह आक्षेप संभव है कि हमारे देश में विभिन्न प्रांतों में विभिन्न भाषाएँ प्रचलित है और सभी के लिए व्रजभाषा मे की गई पद रचनाओंको समज पाना संभव नही है और ऐसा करने से शास्त्रीय संगीत तथा सुगम संगीत आपस मे मिल जाएँगे। यह आक्षेप पुर्णतः निराधार नही है परंतु आज की विकसीत प्रौद्योगिकी (Technology) के रहते भिन्न भाषा और उसका अर्थ समझना पुर्णतः असंभव नही रहा। ब्रजभाषा हिंदी की ही एक बोली है जिसे थोड़ा ध्यान देने पर समझा जा सकता है और जहाँ तक सुगम संगीत के तत्व अधिक होने की बात है तो वहाँ हम कह सकते है कि यह गायक की अपनी सूझबूझ है कि शास्त्रीय नियमों की मर्यादा का पालन करते हुए भी वह कैसे श्रोताओं को भावतत्व का अल्प-सा आनंद प्रदान कर सकता है। प्रायः शब्दों को तानों, बोलतानों एवं कठिन कलावस्तुओं की लपेट में अस्पष्ट कर दिया जाता है। इस पर थोडासा ध्यान देने बंदिश में दोहरा सौंदर्य उत्पन्न होना संभव है। यह संगीत के कलापक्ष एवं भावपक्ष के रुप में अनुभव किया जा सकता है।

2) एक और तथ्य की और ध्यान देने की आवश्यकता है और वह है बंदिश की कविता अथवा काव्यपक्ष। ख्याल का विकास राज दरबार में होने के कारण उसमें श्रृंगाररस की अधिकता स्वाभाविक है। कई स्थानों पर यह श्रृंगारिक भाव अश्लीलता की सीमा तक आ जाता है। ऐसे में सभ्य समाज में इस प्रकार की बंदिशें ग्रहणीय नही मानी जाती। भले ही बंदिशों का काव्य संक्षिप्त हो पर अच्छे भाव अथवा विषय वस्तु यदि बंदिश का आधार बने तो जन साधारण के समक्ष ऐसी बंदिशे प्रस्तुत करने में किसी भी प्रकार की दुविधा कलाकार को अनुभव नहीं होगी। भावतत्व को छोड़ दें तो जनसाधारण के लिए शास्त्रीय संगीत केवल कुछ धुनों का संकलन है। शास्त्र नियमों के ज्ञान के अभाव में इन धुनों के साथ एक सार्थक पद रचना यदि श्रोताओं को सुनने को मिले तो वे दोहरा आनंद ले सकते हैं। कई परंपरागत बंदिशें ऐसी हैं जिनकी स्वरदेह (स्वर तथा तालबद्ध रचना) अत्यंत प्रभावकारी है। छंद भी अच्छा है किंतु शब्दप्रयोग प्रस्तुतीकरण के योग्य नही है। उदाहरण स्वरुप राग झिंजोटी की बंदिश प्रस्तुत है :

''अखियाँ जो हथी अब नैन भए
कजरा जो दियो मृग छौनन को।
तब बारी हथी अब नारी भयी।
पिया सेज के बीच बिछौनन को॥

इस बंदिश की स्वररचना इतनी सुंदर है कि इस आधार पर सुप्रसिद्ध फिल्म संगीत सम्राट तानसेन का यह गीत बना है - बदली बदली दुनिया है मेरी, जादू है क्या तेरे नैनन का'। इतनी सुंदर स्वररचना और त्रिताल में शब्दों का इतना सुंदर रखाव निश्चित ही आकर्षक है। किंतु विषयवस्तु को यदि देखे तो एक बालिका से तरुणी तक का विकास इसमें वर्णित है आर उसमें भी उसे भोग्या के रुप में दर्शाया गया है। यह और ऐसी कई बंदिशें सुंदर स्वर एवं ताल में निबदध होते हुए भी विषयवस्तु अथवा पद रचना के कारण आज के शिक्षित एवं सभ्य समाज के समक्ष प्रस्तुति योग्य नहीं होती। यह सत्य है कि श्रृंगारिक भावार्थो के अतिरिक्त ॠतुवर्णन, संगीत शास्त्र के नियमों का वर्णन, भक्तिभाव आदि कई प्रकार के भाव ख्याल गीतों में पाये जाते है किंतु अधिकता श्रृंगारिक पदों की ही देखी जाती है। अन्य भावों को भी बढावा देने की आवश्यकता है। जिससे स्वरों के साथ साथ एक सुंदर पद

रचना का आनंद भी सामान्य श्रोता ले सके। जैसा कि इससे पूर्व उल्लेख किया जा चुका है कि ध्रुपद- धमार शैली लुप्तप्रायः होने का कारण लयकारी की अधिकता है। इसमें भी थोडासा ध्यान पद रचना की और देना आवश्यक है। इसमें विषय वस्तु में परिवर्तन की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती क्योंकि ध्रुपद-धमार गीतों की विषय वस्तु पहले से ही अतिशय उन्नत है।

3) संगीत गुरुओं की विद्या है। गायन में कई बार परंपरा के नाम पर जाने-अनजाने कुछ मुद्रा दोष अपना लिए जाते हैं। ऐसी दोषपूर्ण मुद्राओं के कारण शास्त्रीय संगीत-विशेषतः कंठसंगीत का प्रस्तुतिकरण सामान्य श्रोताओं के लिए हास्यास्पद हो जाता है। गायक की मुद्राओं को लेकर लोग विरोध करने लगते हैं जबकि हम सभी जानते है कि वैदिक परंपरा से प्राप्त संगीत कोई विरोध की वस्तु नही है। अतः विचारपूर्वक 'सुधमुद्रा सुधबानी' का आदर्श अपनाया जाना चाहिए जिसमें गायक के प्रस्तुतिकरण में श्रोताओं का मन एकाग्र हो जाए और श्रोता आल्हादित हो सके।

जैसा कि हम जानते हैं कि संगीत के प्रचार में प्रसारमाध्यमों के अतिरिक्त संचार माध्यमों का भी योगदान होता है। कई बार दैनिक पत्रिका, समाचार पत्र आदि में ऐसे दोषपूर्ण दृष्य उभारकर दिखाए जाते हैं जिसमें शास्त्रीय संगीत की मौलिकता के स्थान पर एक विकृत छवि जनमानस में पनपने लगती है। यदि कुछ बातों को हम टाल सकें तो यह परिष्कार एवं सुधारणा संभव है जैसे आवश्यकता से अधिक मुँह खोलकर गाना, चेहरे और आँखो की विकृति, सिर और हाथ-पैरों का अस्वभाविक अंग विक्षेप इत्यादि।

निष्कर्ष :

शास्त्रीय संगीत के एक स्वस्थ प्रचार हेतु आवश्यक परिवर्तनों को शिक्षा के स्तर से ही किया जाना चाहिए; अर्थात् निजी कक्षाओं तथा संस्थागत संगीत शिक्षा के स्तर पर शिक्षकों को ही चाहिए कि स्वयं ही विचार पूर्वक शिक्षा प्रदान करें और छात्रों में संगीत के प्रति श्रद्धा भाव एवं जागरुकता विकसित करें। जब हम रागों को सिखाते हैं तब उनका व्यवहारिक उपयोजन छात्रों को बताएँ तो छात्रों की रुचि विकसित होगी। साथ ही शास्त्र को जानने की जिज्ञासा भी उनमें पनपेगी। व्यावहारीक उपयोजन से तात्पर्य, राग का फिल्मी गीतों, भक्तिगीतों तथा सुगम संगीत में प्रयोग से है। रागों के साथ रागाधारित गीतों के प्रस्तुतिकरण भी होने चाहिए। आज के इस यांत्रिक युग में कुछ विद्वान विभिन्न सामाजिक संचार एवं प्रसार माध्यमों पर ऐसे विचारों को सबके समक्ष लाने का सराहनीय प्रयास कर रहे हैं। जो वाग्गेयकार बंदिश रचना करते हैं वे भी अब इस ओर प्रेरित हो रहे हैं कि एक परिष्कृत विषयवस्तु ख्यालगीतों में सम्मिलित की जा सके। साथ ही हिंदी के प्रसिद्ध कवियों की अनुपम रचनाओं को ध्रुपद शैली मे प्रस्तुत करने का प्रयास भी हो रहा है। यहाँ परंपरा का विरोध नहीं अपितु परिस्थितियों की आवश्यकता अनुसार कुछ परिष्कार एवं परिवर्तन अपेक्षित है। उपर कहे गए दोषों का सुधार कर के शास्त्रीय गायन की रसग्राहिता बढ़ाकर उसका उचित प्रचार-प्रसार संभव है।

संदर्भ सूचि :

1. निबंध संगीत - लक्ष्मीनारायण गर्ग, हाथरस प्रकाशन
2. 'संगीत' मासिक पत्रिका, हाथरस प्रकाशन
3. 'संगीत चिंतामणी' - आचार्य बृहस्पती, हाथरस प्रकाशन

"The Study of Sustainable Development of Pisoli Village – Haveli Taluka, Pune District"

Prof. Deepika Mirchandani
Assistant Professor (MBA Department)
Trinity Institute of Management and Research, Pune, Maharashtra

Abstract

Natural resources are the most important part of our ecosystem and if it is continued to be exploited over humans unlimited wants it will lead to scarcity of food and water. Therefore, it is necessary to conserve natural environment along with economic development that can be done by making use of natural resources mindfully. A source is required to bridge the gap between Natural environment and Economic development which can be achieved through, "Sustainable Development." Economic Sustainability refers to the long-term economic growth and development with least hampering the environment and socio-political parameter of Sustainable Development. It consists of economic activities-Production and Consumption, Investment and savings, Banking Systems, global trade, employment, CSR, Corporate carbon footprint.

Keywords :

Sustainable, Development, Economic, Environment, Degradation

Introduction :

Sustainable Development is the organizing principle for meeting human needs and wants while at the same time sustaining the ability of natural resources which are equally important for our ecosystem and for the future generation. Pune District Consists of 14 Taluka's - Haveli, Shirur, Mulshi, Maval, Daund, Indapur, Baramati, Purandhar, Khed, Junnar, Ambegaon, Bhor, Velhe and Pune city. The area of study taken into consideration is Pisoli Village that comes under Haveli Tehsil under Pune District in Maharashtra in order to study if the economic development of Pisoli Village took place in Sustainable Manner. The **Brundtland Report** has defined it as " Sustainable development is development that meets the needs of present, without compromising the ability of future generation to meet their own needs". (Source : WCED)

The **United Nations Environment Programme (UNEP)** defines Sustainable Development as "Development which improves people's quality of life, within the carrying capacity of earth's life support systems" (Source : UNESCAP).

Research Methodology :

A questionnaire survey was carried out to collect the primary data from sample units of 120 Residents of Pisoli during this process Interviews were also conducted to collect the data for better understanding. The opinions of sample units were also Video recorded. Personal Observation of respondents was also taken into consideration while data collection. **Simple Random Sampling** was adopted for getting the right information from the sample size of 120 Residents.

Objectives of Research :

1. To know if the economic development process of Pisoli took place in sustainable manner.
2. To suggest remedies for Sustainable Development of Pisoli.

Literature Review :

Antic M, Santic D, Kasanin Grubin M, Malic A [2017] - studied the relationship between the environment and the population and its impact on the sustainability of rural development of Serbia with the help of Quantitative Topology. It is based on the net relative change of population in rural areas based on the differences of number of inhabitants at the end of the studied period 2011 and a population based on the 1961 population base year. After the detailed analysis it was found that it was possible to distinguish the rural populated areas in four basic categories-progressive, stagnant, regressive and dominant and their relation with environmental changes. Based on the defined rural areas a national rural development policy must be laid out and development plans at the local levels. **Sharon Beder [1994]-** focused and addressed the hidden agenda whilst having a comparative study on consensus vs change considering the cost-benefit analysis, economic instruments and the environment conflicts that arises due to the operations of market system. It is also addressed that the different parties of the societies like- economists, businessmen and politician has been seen as an opportunity to overcome previous difference and conflicts by forging a new consensus that environment protection and economic development go hand-in-hand. **Raju Das and Koustab Majumdar [2015]-** studied about the Jaspur Village in Jharkhand and addressed many issues on the ground level such as inequality status with regard to sex ratio and gender, agriculture failure due to lack of rain sometimes or over rainfall destroying the crops of the season, more of migration of people to cities, lack of sustainable development programmes, etc. Participatory Intervention and convergence mechanism for Sustainable Development can lead to the solvation of the problem of the village, that is making use of Sustainable agriculture methods and technique, reestablishing establishing education at the grass root levels can overcome social and gender disparity.

Data Analysis :

The data was analysed using excel Bar chart to gain insight about research objectives

1. **Gender Respondent** It was noted that out of 120 Residents respondents 80.8% are male and 19.1 % are female.

Table No. 1

	Gender	
	Frequency	Percent
Male	97	80.8
Female	23	19.1
Total	120	100

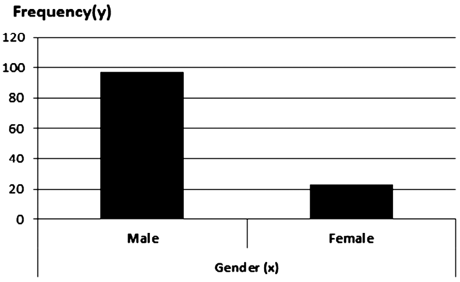

Interpretation and Reasoning- Most the male Residents are in the business of Agri- Farming, General Stores, Hotel, Retail Shops, Service shop, etc and most of the female Residents are into Beauty palour, Tailoring, Agri- Farming, General and Retail Shops. Hence majority of the range in the study are men which can be seen in above table. From the above bar chart the x axis represents Gender and y axis frequency we can clearly see on the bar chart that male is 97 which is more than female 23.

2. Income Source of the Respondent :

Table No. 2

Income Source of the Respondent		
	Frequency	Percent
Agriculture	46	38
Business	74	62
Total	120	100.0

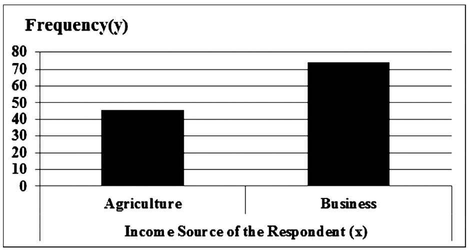

Interpretation and Reasoning- From the Frequency distribution table 38% respondents have agriculture as income source while 62% have their business and are involved in General Stores, Hotel, Retail Shops, Service shop, Beauty parlours, Salons and Tailoring, etc. From the above bar chart the x axis represents income sources (agriculture and Business) and y axis frequency we can clearly see that the Business-74 is more than Agriculture-46.

3. Since how many years you are staying in Pisoli?

Table No. 3

Since how many years you are staying in Pisoli?		
	Frequency	Percent
Less than 1 year	15	12.5
1-5 years	22	18.3
5-10 years	13	10.8
10 and above	70	58.3
Total	120	100.0

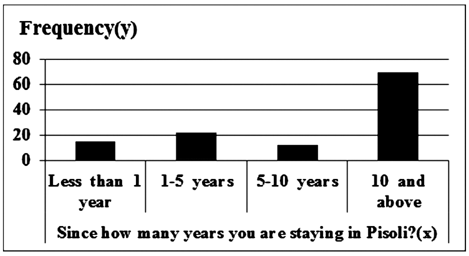

Interpretation and Reasoning- From the Frequency distribution table respondents replied that 12.5% residents have been staying in Pisoli less than 1 year,18.3% residents have been staying in Pisoli since1-5 years ,10.8% residents have been staying in Pisoli for about 5-10 years and 58.3% residents have been staying in Pisoli 10 and above years been an residents and most of them have inherited business from their parents. From the above bar chart the x axis represents the years of Residence and y axis which represents frequency, we can clearly see that through the bar chart that there are 70 Residents who are into business since more than 10 years while 15 Residents (less than one year) and 22 Residents(1-5 years) and 13 Residents from 5-10 years .

4. How much is your annual Income?

Table No. 4

What is your annual Income?		
	Frequency	**Percent**
Rs. 1 Lakh - Rs. 3 Lakh	15	12.5
Rs. 4 Lakh - Rs. 6 Lakh	80	66.6
Rs. 7 Lakh - Rs. 8 Lakh	25	20.8
Total	120	100.0

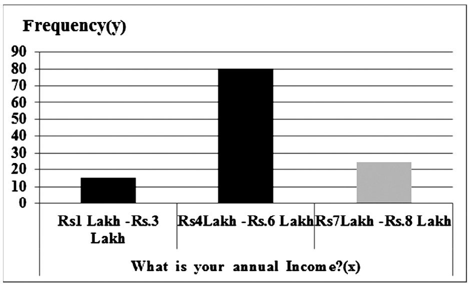

Interpretation and Reasoning - From the Frequency distribution table 12.5% respondents have annual income between Rs1 Lakh -3 Lakh , 66.66% have income between Rs4Lakh - Rs6 Lakh and 20.8% have income level between Rs7Lakh - Rs8 Lakh. The resident falling in the income level category of Rs1 Lakh –Rs.3 Lakh and Rs4Lakh - Rs6 Lakh often face challenges such as Unemployment mostly cyclical, financial Crunch, Asymmetric Information and increase in cost of living.

5. Do you think that Economic Development of Pisoli took place in Sustainable Manner?

Table No.5

Do you think that Economic Development of Pisoli took place in Sustainable Manner?		
	Frequency	**Percent**
Yes	22	18
No	98	82
Total	120	100.0

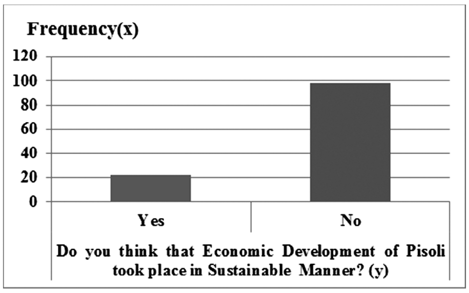

Interpretation and Reasoning - From the Frequency distribution table 18% Residents think that the Economic Development of Pisoli took place in Sustainable Manner where as 82% of the

residents feel that the Economic Development of Pisoli did not take place in sustainable manner as there has been decrease in forest cover due to increase of residential and commercial complexes.

6. **What environmental changes have you Observed?**

Table No. 6

What environmental changes have you Observed?		
	Frequency	**Percent**
Decrease in forest Cover	58	48.3
Climate change	50	41.6
Others	12	10
Total	120	100.0

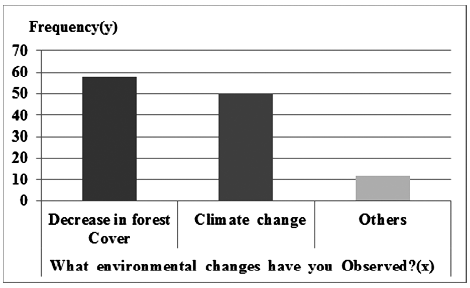

Interpretation and Reasoning - From the Frequency distribution table 48.3% Residents observed decrease in forest cover due to increase in construction activities, 41.6% observed Climate Change mainly extreme summers and less monsoon, 12% Residents observed changes like degradation of soil, land use pattern changes

7. **How is the quality of life in Pisoli?**

Table No.7

How is the quality of life in Pisoli?		
	Frequency	**Percent**
Good	22	18
Can be Better	58	48
Poor	40	33
Total	120	100.0

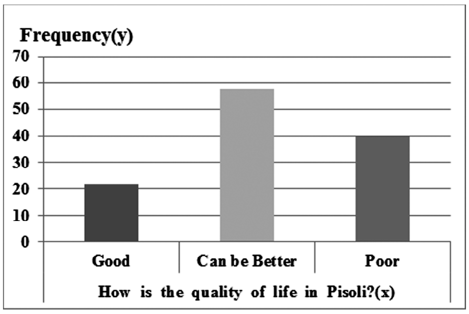

Interpretation and Reasoning - From the Frequency distribution 18% Residents feel that the quality of life is good and improved due to increase in commercial complexes, schools and health care centers where as 48% Residents feel that the quality of life can be more better if the environment is taken care, while 33% feel that the quality of life is not good because of increase in population, pollution and decrease in forest cover.

Findings :

1. It was found that 80.8% are male and 19.1 % are female respondents from residents.
2. It was found that 38% respondents have agriculture as income source while 62% have their business.
3. It was found that 12.5% residents have been staying in Pisoli for less than 1 year,18.3% residents have been

staying in Pisoli since1-5 years, 10.8% residents have been staying in Pisoli for about 5-10 years and 58.3% residents have been staying in Pisoli 10 and above years been an residents.

4. It was found that 12.5% respondents have annual income between Rs. 1 Lakh -3 Lakh , 66.66% have income between Rs. 4 Lakh - Rs. 6 Lakh and 20.8% have income level between Rs.7 Lakh - Rs. 8 Lakh.
5. It was found that 18% Residents think that the Economic Development of Pisoli took place in Sustainable Manner where as 82% of the residents feel that the Economic Development of Pisoli did not take place in sustainable manner.
6. It was found that 48.3% Residents observed decrease in forest cover due to increase in construction activities, 41.6% observed Climate Change mainly extreme summers and less monsoon, 12% Residents observed changes like degradation of soil, land use pattern changes.
7. It was found that 18% Residents feel that the quality of life is good, 48% Residents feel that the quality of life can be more better and 33% feel that the quality of life is not good because of increase in population, pollution and decrease in forest cover.

Suggestions :

1. Every Resident who uses natural resources in its business operations must make sure to use it in sustainable manner.
2. As Pisoli is prone less monsoons due to climate change it is important to have water reservoirs and along with this ground water can be recharged through Basin Tanks or Dug wells which then can be utilized for agriculture purpose.
3. The Political parties can be checked upon from time to time so as to make sure they are working for the social and economic development of Pisoli Village in a sustainable manner and are not resorted to personal monetary benefits.
4. Every Resident of Pisoli Village must be made aware about using the natural resources in a sustainable manner like water.
5. The Government or the local body must strictly prohibit the unsustainable waste disposal like dumping or burning the waste in open environment done by anyone specially at night.
6. The residents must be made aware of natural resource schemes of India like - National Mission for Green India, National Mission for Sustainable Agriculture, National Afforestation Programme, etc.
7. Local body and Residents together should focus upon Afforestation to increase the forest cover and compensate the environment degradation done so far.

Conclusion :

Sustainable Development has become a significant concept in today's time. It is necessary to preserve and conserve natural resources for future generation and at the same time development is significant for improving the standard of living. Pisoli has immense opportunity to develop in sustainable manner but this is possible if the Residents and Mahara-

shtra Government works together which will widen the scope of opportunities for the future growth of the Pisoli in Sustainable Manner.

References :

1. Antic, M., Santic, D., Kasanin, G.M., & Malic, A., (2017). " Sustainable Rural Development In Serbia- Relationship Between Population Dynamics And Environment". Journal of Environmental Protection and Ecology, ISSN-323-331, 18 (1), (pp-323-331).
2. Amrutha V.N., & S.N.Geetha.(2020). " A systematic review on green human resource management: Implications for social sustainability". Journal of Cleaner Production, ISSN-0959-6526, Vol 247, (pp-1-4).
3. Aras G., & Crowther D. (2009). " Making Sustaianble Development Sustainable". Management Decision, ISSN-0025-1747, 47(6), (pp-1-3)
4. Beder, S., (1994). "The Hidden Messages Within Sustainable Development, Social Alternatives", 13 (2), University of Wollongong, (pp8-12).
5. Borate A., Sonar P. (2016). " Site Suitability Assessment Using GIS: Case Study of Taluka Maval". Journal for studies in Management and Planning, E-ISSN- 2395-0463, 2 (1), (pp-1-10).
6. Blowers A., Boersema J., & Martin A. (2012)." Is Sustainable Development Sustainable". Journal of Integrative Environment Sciences , ISSN- 1943-8168, 9 (1), (pp-1-170)
7. Bartelmus, P. (2013). "The future we want: Green Growth or Sustainable Development". Environmental Development Journal, ISSN- 2211-4645,Vol 7, (pp-165-170).
8. Beg, D.M. (2018). "Smart and Sustainable Rural Development". International Journal of Recent Scientific Research, ISSN-0976-3031, 9 (1), (pp-23427-23429).
9. Choudhuri, S. (2019). "Research on Sustainable Development in India". International Journal of Recent Technology and Engineering (IJRTE) ISSN: 2277-3878, 8 (2), (pp-1-6).
10. Das, R., & Majumdar, K. (2015)." Sustainable Village Development Plan with People's Participation: A Case Study of a Multi-Ethnic Village of Jharkhand". The International Journal of Humanities and Social Studies, ISSN-2321-9203, 3 (7), (pp154-158).

इलेक्ट्रॉनिक एवं सोशल मीडिया का संगीत पर प्रभाव एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ॰ चित्रा चौरसिया
असिस्टेंट प्रोफेसर
आर्य कन्या डिग्री कॉलेज, प्रयागराज

सारांश :

भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों ही दृष्टि से संगीत सदैव साधना का विषय रहा है। मानव जीवन में दिन-प्रतिदिन हो रहे परिवर्तन का प्रभाव सामाजिक एसाहित्यिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों पर पड़ा और बीसवीं शताब्दी में प्रत्येक क्षेत्र में अनेक वैज्ञानिक परिवर्तन हुए जिसने मानव जीवन में डिजिटल क्रांति का रूप लिया वहीं भारतीय संस्कृति कला एवं संगीत के विभिन्न क्षेत्रों में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। संगीत के प्रचार प्रसार में संचार माध्यम का अभूतपूर्व योगदान रहा है। आज जिस प्रकार संगीत जन जन तक सर्व सुलभ हुआ उसका श्रेय इलेक्ट्रॉनिक मीडिया व संचार साधनों को जाता है। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक संगीत जीवन का अभिन्न अंग बन गया है संगीत घरानों के सीमित दायरे से निकलकर जनसाधारण तक मीडिया के विभिन्न साधनों द्वारा पहुंच कर विद्यार्थियों को संगीत विषय को करीबी से सुनने व समझने के लिए आसान अवसर प्रदान कर रहा है।

मूल शब्द :

इलेक्ट्रोनिक, मीडिया, मोबाइल, इन्टरनेट, कंप्यूटर।

बीसवीं सदी में संगीत कला तथा सांस्कृतिक धरोहरों को विश्व के समक्ष नवीन चुनौतियों के रूप में उपस्थित किया है। संगीत का विस्तार वैश्विक होने से भारतीय साहित्य में संगीत सीखने की रुचि अपेक्षाकृत बड़ी है। इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों की सहायता से संगीत सीखना उसको संग्रहित व संरक्षित करना संभव हुआ है। सिद्धांत संगीत का संग्रह प्रिंट मीडिया के माध्यम से हुआ, विद्वानों, संगीतज्ञो एवं विद्यार्थियों की शास्त्र एवं क्रियात्मक संगीत सामग्री, पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों विभिन्न ग्रंथों आदि का प्रकाशन होने लगा। संगीत को सुरक्षित रखने के प्रयास में ग्रामोफोन का विशेष योगदान रहा जिसके कारण कालांतर में संगीत कला को एक स्थायित्व मिला। यह एक ऐसा अविष्कार था जिसके द्वारा कलाकार की कला को वर्षों तक के लिए सुरक्षित रखना संभव हुआ। ग्रामोफोन कंपनियों ने भारतीय शास्त्रीय संगीत के अनेक कलाकारों के रिकॉर्ड बनाए जो आज भी संगीत की अमूल्य धरोहर के रूप में विद्यमान है

उस वक्त के उच्च कोटि के कलाकारों ने अपने गायन और वादन की रिकॉर्डिंग करके प्रसिद्धि भी हासिल की उनके प्रयोग से कलाकार की। माइक्रोफोन के प्रयोग से कलाकार की प्रतिभा हजारों श्रोताओं तक आसानी से पहुंचने लगी। आर॰ सी॰ भट्ट का कथन है- अगर हम 50 वर्ष पहले तक जाए तो

इससे पहले माइक्रोफोन हमारे देश में नहीं था और उसकी आवश्यकता भी नहीं थी इसके दो कारण हैं कि एक तो लोगों की आवाज उनकी गायन शैली इस प्रकार की थी कि वह ऊंचे स्वरों में श्रोताओं तक पहुंच सकते थे दूसरा इतने बड़े-बड़े पब्लिक आर्गेनाइजेशन उस जमाने में नहीं होते थे।

वर्तमान में माइक्रोफोन की सहायता से एक बार में लाखों श्रोताओं तक आवाज पहुंच जाती है एमाइक्रोफोन की सेटिंग के द्वारा गायक वादक की टोनल क्वालिटी, फाइन ट्यून, इको आदि को सेट किया जा सकता है जिससे प्रसारित होने वाली आवाज और संवेदनशील हो जाती है। संगीत को बंद कमरे से हॉल व ओपन थिएटर तक लाने व जनसाधारण तक पहुंचाने में माइक्रोफोन का बहुत बड़ा योगदान रहा है, वर्तमान में नई-नई तकनीक के माइक्रोफोन उपलब्ध हैं जैसे कॉलर माइक, कॉर्डलेस माइक, हैंगिंग माइक, वॉइस माइक, शार्ट गन माइक, मूविंग कॉइल माइक्रोफोन इत्यादि।

आकाशवाणी के आगमन से भारतीय संगीत के क्षेत्र ही नही वरन विश्व में क्रांति आ गई, रेडियो का आविष्कार संगीत के प्रचार-प्रसार के लिए वरदान साबित हुआ। मनोरंजन का यह सबसे सस्ता एवं सुगम माध्यम माना गया, रेडियो के कारण जनसाधारण में संगीत, सुलभ एवं नई सूचनाओं को प्राप्त करने का श्रेष्ठ साधन बन गया शास्त्रीय संगीत, लोक संगीत को लोकप्रिय बनाने में आकाशवाणी की महत्वपूर्ण भूमिका रही, संगीत के अतिरिक्त सांस्कृतिक, सामाजिक, साहित्यिक, समाचार तथा विज्ञान, कृषि, परिवार कल्याण कार्यक्रमों को जन-जन तक पहुंचाने का आकाशवाणी सशक्त माध्यम साबित हुआ।

दिन प्रतिदिन, दैनिक, साप्ताहिक, मासिक एवं वार्षिक संगीत कार्यक्रमों की भी वृद्धि होती गई। आकाशवाणी में संगीत सम्मेलन, संगीत प्रतियोगिताओं का भी आयोजन होने लगा, प्रतियोगिता से नई-नई प्रतिभाओं की खोज एवं उनको अवसर प्रदान हुआ। आज की आकाशवाणी संग्रहालय में अनेक उस्तादों, गायको एवं वादकों के रिकॉर्डिंग संग्रहित हैं, जिनका समय-समय पर प्रसारण होता है। युवावाणी से जहां नए युवक-युवतियों को कार्यक्रम की सुविधा मिली, वहीं उद्घोषक को भी अपनी प्रतिभा निखारने का अवसर मिला है।

बीसवीं शताब्दी की आधुनिक क्रांति में एक और प्रभावशाली माध्यम दूरदर्शन हुआ। चित्र पट का आविष्कार किसी चमत्कार से कम नहीं था।

ध्वनि एवं चित्र के साथ कलाकार की प्रस्तुति एवं भावाभिव्यक्ति को प्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता था, यह दुनियां का सर्वाधिक प्रभावशाली वह अपेक्षाकृत नया माध्यम था। दृश्य और श्रव्य माध्यम से दर्शकों पर कार्यक्रमों का सीधा प्रभाव पड़ने लगा, नृत्य कला के प्रदर्शन के लिए दूरदर्शन वरदान साबित हुआ, क्यों की आकाशवाणी से दृश्य सम्भव नहीं था। दूरदर्शन, शास्त्रीय गायन, वादन, नृत्य तथा शैक्षणिक एवं जनसाधारण हेतु कार्यक्रमों का प्रसारण करता था अन्य कार्यक्रमों के अतिरिक्त संगीत के विशेष कार्यक्रम भी होते रहें हैं जिनमें संगीत क्षेत्र में आने वाली प्रतिभाओं को अवसर दिया जाता रहा है अनेकों अनेकों संगीत एवं नृत्य प्रतियोगिताएं, अंताक्षरी एवं प्रतिष्ठित कलाकारों की प्रस्तुति आदि कार्यक्रम सराहनीय रहे हैं। दूरदर्शन के अविष्कार से संचार जगत में युगांतकारी परिवर्तन आया। सरकारी चैनल के अतिरिक्त निजी चैनलों का 21वीं सदी के प्रारंभ में तीव्रता से विस्तार हुआ, जिसमें गीत, संगीत और मनोरंजन की प्रचुर सामग्री उपलब्ध होने लगी तथा संगीत के स्तर पर भी विशेष ध्यान दिया जाने लगा सुबह सवेरे, मेरी आवाज सुना, सारेगामापा आदि का प्रसारण ज्ञानवर्धक तथा मनोरंजक भी रहा इसके अतिरिक्त अनेकों नृत्य-संगीत प्रतियोगिताओं का प्रसारण निजी चैनल में आज भी होता है, जिससे संगीत प्रेमी व विद्यार्थियों को बहुत अधिक लाभ मिल रहा है तथा सरकार द्वारा प्रसारित विभिन्न चैनलों के माध्यम से क्षेत्रीय संगीत का प्रचार-प्रसार दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है जिससे दूर गांव स्थित कलाकारों को अपनी प्रतिभा

को सर्वसाधारण तक पहुंचाने का अवसर प्राप्त हो रहा है। संगीत को संग्रहित करने के लिए टेप रिकॉर्डर एकैसेट सी॰डी॰, पेनड्राइव सशक्त माध्यम है जिससे न केवल संगीत को संग्रहित किया जा सकता है बल्कि कलाकारों की कला को जीवित भी रखा जा सकता है प्रत्येक कलाकार अपनी कला को सुरक्षित रखना चाहता है जोकि रिकॉर्डिंग के माध्यम से संभव हो पाई है। ऑडियो के साथ वीडियो ने भी अपना विशिष्ट स्थान बनाया गायन और वादन की रिकॉर्डिंग का काम आसान था किंतु नृत्य आदि के लिए वीडियो की आवश्यकता थी जो की वीडियो रिकॉर्डिंग के माध्यम से संभव हुई। नृत्य के अतिरिक्त अन्य सभी विधाओं की रिकॉर्डिंग वीडियो में होने लगी है जिससे संगीत प्रेमियों को इन उपकरणों के माध्यम से देखना और सुनना दोनों सुलभ हो गया है प्रत्येक कलाकार को देखकर सुनने से ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे समारोह प्रत्यक्ष हो रहा हो।

विज्ञान की नई उपलब्धियों में कंप्यूटर का संगीत के क्षेत्र में विशेष योगदान रहा है। कंप्यूटर के नए-नए प्रोग्रामों के माध्यम से संगीत निर्देशन से लेकर संगीत के रागों और धुनों की भी रचना की जा रही है कई धुनों एवं रागों को जोड़कर नई धुनों का सर्जन हो रहा है कंप्यूटर के माध्यम से एक बार में कई वाद्यों की ध्वनि एक साथ निकाली जा सकती है। एक साथ 50-50 वाद्यों की स्पष्ट ध्वनि का प्रयोग किया जा सकता है इसके अतिरिक्त सूक्ष्म से सूक्ष्म त्रुटियों को खोजकर उसकी पिच सेटिंग ठीक भी की जा सकती है, मिक्सिंग, ईको, पिचिंग दो ट्रैक को जोड़ना बास, टेंपो आदि का प्रयोग कंप्यूटर के माध्यम से संपन्न हो जाता है। इसके अतिरिक्त ट्रैक से आवाज या वाद्यों की आवाज हटाना-रखना ऑडियो से वीडियो जोड़ना आदि अन्य कार्य कंप्यूटर की सहायता से किया जाने लगा है।

संगीत में प्रयोग होने वाले अनेकों वाद्यों को डिजिटल कंप्यूटर से स्पष्ट सुना जा सकता है मैन्युअल वाद्यों से ज्यादा डिजिटल वाद्यों का वर्तमान में प्रयोग अधिक हो रहा है अतः संगीत के क्षेत्र में कंप्यूटर द्वारा कार्यों को आसानी से किया जा सकता है, पहले की तुलना में आज ध्वनि की गुणवत्ता में अनेक परिवर्तन कंप्यूटर के माध्यम से हो रहे हैं।

मोबाइल जिसे कंप्यूटर का छोटा रूप कह सकते हैं जिसका प्रयोग संगीत की सामग्रियों को संग्रहित करना तत्काल वीडियो-ऑडियो बनाना संगीत सामग्री को आदान-प्रदान करना आदि इसके अतिरिक्त यूएसबी पेनड्राइव द्वारा सामग्री मोबाइल व कंप्यूटर आदि में आसानी से अपलोड व ट्रांसफर कर वर्षों तक संग्रहित की जा सकती है।

इंटरनेट मानव की ऐसी बड़ी खोज जिसने पूरी दुनिया को आपस में जोड़ दिया है, पलक झपकते ही सभी जानकारी इस के द्वारा वेबसाइट पर उपलब्ध हो जाती है संगीत से जुड़ी सभी प्राचीन व नई सामग्रियों, सूचनाएं आदि मिनटों में इंटरनेट के माध्यम से प्राप्त हो जाती है। संगीत से संबंधित वीडियो, ऑडियो, पुस्तके, संगीत सम्मेलन, संगीत के कलाकारों के परिचय एग्रंथ आदि अंतरजाल (Internet) के कई वेबसाइट पर उपलब्ध हैं। वर्तमान में ऑनलाइन वीडियो कांफ्रेंस के द्वारा शिक्षण कार्य बहुत प्रचलन में है जिससे घर बैठे विदेशों से संगीत शिक्षा का आदान-प्रदान हो रहा है यू ट्यूब में कई चैनल इसके प्रमाण हैं। संगीत में हो रहे अनुसंधान में भी इंटरनेट का बहुत योगदान रहा है सोशल मीडिया, फेसबुक, इंस्टाग्राम द्वारा कलाकारों को अपनी कला को प्रदर्शित करने का अच्छा माध्यम मिला है। वैश्विक महामारी के बाद इंटरनेट की संगीत में और उपयोगिता बढ़ गई है, अनेकों संगीत के वेबीनार, सेमिनार कॉन्फ्रेंसेस, प्रोग्राम आदि इंटरनेट के माध्यम से संभव हो सके है।

संगीत में उपयोगी इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों ने भी अपना विशिष्ट स्थान बनाया है जैसे इलेक्ट्रॉनिक तानपुरा, इलेक्ट्रॉनिक ताल पेटा, इलेक्ट्रॉनिक तबला आदि। यह वाद्य अभ्यास करने के लिए उपयोगी है इसका प्रयोग संगत कारों के अभाव में रियाज करने

के लिए किया जा रहा है मंच प्रदर्शन के लिए यह उतना उपयोगी नहीं है, देखा जाए तो विकास के विभिन्न माध्यमों के योगदान से संगीत को उच्च स्थान तक पहुंचाने में मीडिया की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण रही है।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया हो या मुद्रित मीडिया दोनों ही सूचना या प्रसार प्रचार करने का उचित साधन है

विभिन्न मीडिया की सहायता से संगीत को बहुत विस्तार मिला है। आने वाले दिनों के लिए यह शुभ संकेत है, जिससे भविष्य में संगीत संबंधी जानकारियों व सूचनाएं पहुंचाने का एक समृद्ध साधन बन रहा है। किसी भी विषय के दो पहलू होते हैं पहला सकारात्मक और नकारात्मक इन उपकरणों से जहां लाभ मिल रहा है वहीं इन्हीं उपकरणों के कारण अच्छे कार्यक्रम बिगड़ जाते हैं लेकिन ऐसा यदा-कदा देखने को मिलता है इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का लाभ ज्यादा मिल रहा है

पंडित शिवकुमार शर्मा के अनुसार इसका फायदा यह हुआ है कि आज जो फेस्टिवल होते हैं तो 10 से 15000 तक श्रोता एक बार में प्रोग्राम सुन सकते हैं कितनी भी खुली आवाज का गवैया हो 15000 तक आवाज नहीं पहुंचा सकता था यह जो वैज्ञानिक उपलब्धियां हुई है इन्वेंशन हुए हैं साउंड सिस्टम वगैरह यह चीजें मिली उससे इतना ज्यादा लोग म्यूजिक को सुन सकते हैं। वही छोटी सी तकनीकी समस्या पूरे कार्यक्रम को खराब कर सकती है ऐसा कहा जा सकता है कि इन इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों पर कलाकार विद्यार्थी दिन-प्रतिदिन निर्भर हो रहे हैं जिसका उनको लाभ मिल रहा है संगीत के प्रचार-प्रसार देश विदेश तक हो रहे हैं जनता संगीत और संगीतज्ञ के संपर्क में आने लगी है मीडिया के माध्यम से भारतीय संगीत का परचम लहरा रहा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. भारतीय संगीत में वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयोग डॉ॰ अनीता गौतम।
2. भारतीय संगीत को मीडिया और संस्थानों का योगदान डॉ॰ राधिका शर्मा।
3. संगीत मासिक पत्रिका मई 2015 संगीत कार्यालय हाथरस।
4. संगीत मासिक पत्रिका दिसंबर 1990 संगीत कार्यालय हाथरस।
5. शब्द ब्रह्म यूजीसी जेआरएफ नेट संगीतज्ञ का संगीत चिंतन।
6. भारतीय संगीत शिक्षण प्रणाली एवं उसका वर्तमान स्तर डॉ॰ मधुबाला सक्सेना।
7. इंटरनेशनल जर्नल आफ रिसर्च ग्रंथालय आलेख (विद्या) जनवरी 2015।

Twitter - a Public Sphere of Image Building through Political Communication

Dr. Gaurav Shah
ICSSR Post-Doctoral Fellow,
Assistant Professor in Dept. of Mass Communication,
School of Management Sciences, Varanasi

Abstract :

Social media sites like Twitter have the potential to bypass the role of media professionals and let the politicos interact with the users or public directly without any intermediaries which further makes easy for politicians to project their image on Twitter. These days Twitter has become the platform that facilitates the formation of political images. In December 2019, the Government of India passed the Citizenship Amendment Act (CAA) in parliament (pib 2022). The act had elements of inter-religious conflicts. This step of the government brought a social, religious and political storm throughout the country. There were massive Pro and anti-CAA (Citizenship Amendment Act) demonstrations and protests all over the country. The most horrendous repercussion of CAA was the Delhi communal riots 2020 which let so many innocents killed and injured (economictimes.com). The feelings and sentiments running on the ground also got translated on Twitter engaging the major politicians of the country into an acrimonious debate where everyone was busy building his/her image among the Twitter users. This paper attempts to explore the utility of Twitter as a public sphere by examining the case of 2019 Delhi riots. Additionally, it analyses how do the politicians project their image on Twitter in Context of CAA?

Key Words :

CAA, Tweets, Intellectual, Political Communication, Narendra Modi

Introduction :

In India, politics is discussed almost everywhere. Public places like Chai Shop, Pan Shop, clubs, courtyards of temples, etc. are the places and meeting points where political issues are discussed and debated. These public places have been acknowledged as public sphere by Jurgen Habermas and have been called as a necessary condition of democracy (Habermas 1989). Mass media and other mass communication channels constituted such public spheres where politicians, lobbyists and civil society members interacted but their communication was shaped by media professionals (Habermas 2006). Unlike, Mass media, social media sites like Twitter have the potential to bypass the role of media professionals and let the politicos interact with the users or public directly

without any intermediaries which further makes easy for politicians to project their image on Twitter. These days Twitter has become the platform that facilitates the formation of political narratives as well as political images. In December 2019, the Government of India passed the Citizenship Amendment Act (CAA) in parliament (pib 2022). The act had elements of inter-religious conflicts. This step of the government brought a social, religious and political storm throughout the country. There were massive Pro and anti-CAA (Citizenship Amendment Act) demonstrations and protests all over the country. The most horrendous repercussion of CAA was the Delhi communal riots 2020 which let so many innocents killed and injured (economictimes.com). The feelings and sentiments running on the ground also got translated on Twitter engaging the major politicians of the country into an acrimonious debate where everyone was busy building his/her image among the Twitter users.

This paper attempts to explore the utility of Twitter as a public sphere by examining the case of 2019 Delhi riots. Additionally, it analyses *how do the politicians project their image on Twitter in Context of CAA?*

Citizenship Amendment Act (CAA) :

Parliament passed the Citizenship (Amendment) Act, 2019 on 11 December 2019. It amended the Citizenship Act of 1955. According to the new amendment, it granted Indian citizenship before December 1914 to illegal migrants of Hindu, Sikh, Buddhist, Jain, Parsi and Christian religious minorities, who had suffered religious persecution or fear of the same from Pakistan, Bangladesh, and Afghanistan. Muslims from these countries don't enjoy this provision. The amendment also relaxed the residence requirement for naturalization of these migrants from twelve years to six (prsindia.org). This act will make otherwise illegal Hindu, Sikh, Buddhist, Jain, Parsi and Christian immigrants from Afghanistan, Bangladesh and Pakistan eligible for citizenship by naturalization, after six years of residence; while similarly placed, Muslim immigrants will not be eligible for citizenship by naturalization. And even if eligible otherwise, will need to wait for 11 years (Poddar 2018). The government defends the act by saying that act protects minorities fleeing religious persecution in neighboring Muslim-majority countries (Joshua 2017).

Counter Arguments :

There has been much hullabaloo over CAA. There were pro-CAA and anti-CAA views. Academicians, politicians, journalists, political analysts and many other intellectuals had been very skeptical about the act while many welcomed the act. Campaigns and counter campaigns like #IndiaSupports-CAA and #IndiaDoesNotSupportCAA respectively were trending on Twitter (hindustantimes.com) as soon as the Citizenship Amendment Bill (CAB) was introduced in the parliament. Politicians were busy making their political image through tweets using pro and anti-CAA demonstrations.

Literature Review :

These days, mass media and social media, surround us 24X7. Therefore, it's become important for politicians to remain relevant and in spot light. McNair discuss today's political communication (McNair 2007). He defines political communication as :

> all political discourse is included in our definition. [...] not only verbal or written statements, but also visual means of signification such as a dress, make-up, hair style, and logo design, i.e. all those elements of communication which might be said to constitute a political "image" or identity.

Andreas in his article finds 'social media to be the area of political communication' (Jungherr 2014). Politicians use them in their campaigns; journalists use them as sources and topics while the public use them to debate over politics (Ibid.). Quoting Castells, Andreas says that Twitter, a microblogging site offers a horizontal network of communication (Castells 2007) that facilitates the interaction of one to many and many-to-many. According to Andreas, Twitter is extensively used by politicos and journalists to disseminate their views in the form of opinion, ideas and sometimes in the form of propaganda. The involvement of the public in discussion and debate over policy matters or other political issues with politicians and media persons makes Twitter an interactive and useful platform for political communication.

Ceron in his seminal book is of the view that nowadays, most of the heads of the state and government are active on Twitter (Ceron 2017). With the increased usage of Twitter and other social media sites, the digital data thus produced can get information about the behavior and preferences of politicians. This helps in holding politicians accountable by comparing their actual and declared behavior. Also, social media sites like Twitter help in the formation of a compliant public sphere that facilitates direct democracy allowing expression of public views on everyday political events.

In their book, Loader and others, coined a term called "Viewertariat" meaning emergence of many citizen users (Loader 2012). They believe that with the more widespread use of social media and Internet technologies and their absorption into the mundane practices of lived experience, their potential to shape social relations of power becomes all the greater. "....in contrast to traditional mass media, networked media has the potential to reconfigure communicative power relations."

Methodology :

Traditional qualitative thematic content analysis approach was adopted to analyze the tweets. Tweets in Hindi and English language tweeted by the prominent politicians of the country were collected and analyzed. I chose total of 11 Politicians as per convenience owing to their influence on social media. The number of followers that the particular politician had was the criterion of the amount of influence that the politician enjoys on Twitter. All the politicians chosen for the study had minimum over four hundred thousand followers on. Seven of the politicos were from the political party in the power that is Bhartiya Janta Party (BJP), six from the dominant opposition party Congress (INC) and rest from other political parties. The period of analysis was from 15/12/2019 to 31/12/2019. Total of 284 tweets were collected from the website www.allmytweets.net. The unit of the analysis was the individual tweet tweeted by the politician. The themes emerged from the reading of the tweets, and the literature related to the research article. The themes focused on the intellectual image that the politicians wanted to communicate through their tweets.

Reliability :

To assess inter-coding reliability for QCA, two independent researchers unfamiliar with the data independently coded the full sample that is 284 tweets. Differences between coders were found to be negligible.

Findings :

Intellectual image :

Analysis of raw tweet gave an insight into the hunger of politicos to communicate their intellectual image through the platform of social media. And CAA being such a contentious issue, it demands more debate, discussions and view sharing. Therefore, many politicians were seen conscious about their knowledge of CAA.

1	Derek O' Brien	5
2	Yogendra Yadav	2
3	Mamata Banerjee	1
4	Subramanian Swamy	7
5	Narendra Modi	2
6	Swapan Dasgupta	5
7	Sambit Patra	2
8	Amit Shah	None
9	Rahul Gandhi	None
10	Shashi Tharoor	9
11	Randeep Singh Surjewala	None

This table shows that Shashi Tharoor from Congress and Subramanian Swamy from BJP were particular about their image of being an intellectual person. Both are very well versed in their subjects. Also, Derek O' Brien and Swapan Das Gupta carry their image of intellectuals on Twitter and rightfully so as both of them are educated and knowledgeable.

Some tweets of **Narendra Modi**, show that he is conscious about his intellectual image. When he says that "*The Citizenship Amendment Act, 2019 was passed by both Houses of Parliament with overwhelming support. Large number of political parties and MPs supported its passage. This Act illustrates India's centuries old culture of acceptance, harmony, compassion and brotherhood.*", in a way Modi tries to convey the message that he is well acquainted with the India's centuries old culture of acceptance, harmony, compassion and brotherhood. That means he is well read man who has deep knowledge of the history of India's culture. Again when Modi asks people to listen to Sadhguru, he again subtly gives a message that Modi cares and respect the intellectuals and many intellectuals of the country support his cause like CAA here.

Mamata Banerjee, in one of her tweets, sends the message she cares about the intellectuals of the country. She condemns the detention of the famous historian Ram Chandra Guha.

> *This government is scared of students. This government is scared of one of India's most accomplished historians for speaking to the media on #CAB #NRC and holding a poster of GandhiJi. I condemn the detention of Ram Guha. We extend our full solidarity to all those detained*

Yogendra Yadav being an academician, psephologist and political analyst successfully conveys his intellectual image through his tweets. In one of his tweets, he mentions about his interview in a TV channel on NRC. Evidently, he is

conscious about his being intellectual and wants to communicate the same.

So, what do you think of this idea? National Register of Unemployed Instead of National Register of Citizenship

In another tweet he mentions about his deliberation in the campus of Delhi University with prominent lawyers of the nation which again symbolizes Yogendra's intellectual image

Live from Campus Law Centre Delhi University with Senior Advocates Sanjay Hegde & Colin Gonsalves. #CAA_NRC #IndiaAgainstCAA Watch Live Here: https://facebook.com/YogendraYY/videos/52281871499 1443/?sfnsn= wiwspmo&extid=TV NBKi5MUYdgMPly&d=n&vh=e

Swapan Das Gupta, being an experienced and nationally acclaimed journalist, naturally seems to be conscious about his intellectual image. Through following tweets, we get to know about his intellectual capacity.

In defence of the CAB. Correcting the injustice done to Hindu and Buddhist refugees from East Pak/ Bangladesh. Restoring social dignity to a community that played a seminal role in India's freedom struggle. My article in today's Sunday Times of India.

In the following tweet, **Swapan**, shows his intellect when he says that only those who came to India between 1972 and 2014 need to apply and secure Indian nationality

It's untrue that ALL who came from E. Pakistan/ Bangladesh since 1947 must re-register as Indian citizens. CAA requires only those whose nationality is indeterminate to apply & secure Indian nationality. This is mainly for those who came between 1972 & end-2014. DONT BE MiSLED

Derek O' Brien in the past being a quizmaster and a journalist is a profound intellectual shows his intellectual image subtly through his tweets when he mentions about his interviews with the media.

My interview to The Spine. Few media owners still have it. #CAAProtest #CAA_NRC Video.

Sambit Patra through his following tweet sends a signal about his being intellectual.

Addressed & held a QnA session at the prestigious Chamber of Commerce in Jammu yesterday on #CAA There was an overwhelming support for the Act & the courage that our PM Sh @narendramodiji has shown in resolving the unresolved issues #CAAJanJagran

Now only an intellectual can give answers in QnA session.

Out of all the politicians, **Shashi Tharoor** seems to be most conscious about his intellectual image. The following tweets are reflection of Shashi's intellectual image. In this tweet, **Shashi** projects an image of a prolific writer

My essay on Narendra Modi and what he is doing to India, written before the #CAA, for the Belgrade journal Horizons, published by @CIRSD

In these tweets, we find **Shashi** to be an excellent orator who can address thousand students

Thurs:I addressed a thousand students at StThomas'College, Thrissur, on the subject of the IndianConstitution &why it should matter to today's youth. Tremendous audience response, especially when I asked them if the India of the #CAA_NRC was their #IdeaOfIndia."NO!"they thundered

What is the #CitizenshipAmendment Act, why should we care and why are ordinary Indians out on the street against the law? A 3-min excerpt from my remarks to a group of college students on an issue that has sparked our modern civil disobedience movement!

Again here, we find **Shashi** to be a good speaker

Yesterday in Thrissur, launched three books by eminent psychologist & author Prof E Mohammed & addressed several thousand students. Though my talk was on the role of India in the 21st century world, every single question the students asked was on #CAA. Deep disquiet everywhere.

Through this tweet we come to know about **Shashi** being a good arguer.

Last night in Kozhikode @ProfCong organised an intense discussion on "the India we stand for". Roomful of professionals engaged seriously with the issues around the #CAA_NRC_ Protests. The nation is aroused! @AipcKerala

My point-by-point rebuttal of the misleading arguments made by the BJP Government & its Home Minister on the #CAA-NRC issue:

Conclusion :

As we have seen that all the selected politicians for this study have over four hundred thousand followers on Twitter. That shows the popularity of Twitter among politicians who are desperate to use it for the consolidation of their political image. In politics, it becomes pertinent to carry an image of an intellectual. With so many channels of communication, newsprints and digital media available, it becomes mandatory for a politician to convey his/her message to the public through these media. And if one doesn't have substantial knowledge about an issue, he /she won't be able to communicate effectively. That makes it important for today's politicos to know the issues that the country is struggling with.

Most apparent theme from the reading of the tweets was "intellectual image". On analysis, it was found that from BJP Swapan Das Gupta and to some extent Narendra Modi and Sambit Patra were conscious about their intellectual image. A nationally known Journalist Swapan Das Gupta by attaching his written articles in his tweets tries to communicate emphatically his image of an intellectual. From opposition, Shashi Tharoor hardly leaves any parameters of intellectualism discussed earlier in this article. Shashi is someone who knows very well how to use Twitter build up his intellectual image. Similarly, Derek O' Brien from TMC is conscious about his intellectual image. Both Shashi and Derek use their intellectual image to target the government on CAA.

References :

1. Castells, M. (2007). Communication, Power and Counter-power in the Network Society. International Journal of Communication, 1 (1), 238.
2. Ceron, A. (2017). Social Media and Political Accountability: Bridging the Gap Between Citizens and Politicians. Switzerland: Springer.
3. Habermas, J. (1989). The Structural Transformation of the Public Sphere: An Inquiry Into a Category of Bourgeois Society. Cambridge, MA: MIT Press.
4. Habermas, J. (2006). Political Communication in Media Society: Does Democracy Still Enjoy an Epistemic Dimension? The Impact of Normative Theory on Empirical Research. Communication Theory, 16(4), 411–426.

5. https://www.hindustantimes.com/india-news/indiadoesnotsupportcaa-takes-twitter-by-storm/story-SwRmAoj4tEh2DY9OUK0mBJ.html (Accessed 11 January 2023)

6. https://economictimes.indiatimes.com/news/politics-and-nation/delhi-communal-riots-timeline-a-blow-by-blow-account-of-three-fatal-february-days/articleshow/74330917.cms(Accessed 28 February 2023)

7. https://pib.gov.in/newsite/PrintRelease.aspx?relid=195783 (Accessed 21 January 2023)

8. https://prsindia.org/billtrack/the-citizenship-amendment-bill-2019 (Accessed 12 March 2023)

9. https://www.telegraphindia.com/1170131/jsp/nation/story_133255.jsp#.WL-i8vmGPb0> (Accessed 30 December 2022).

10. Jungherr, A. (2014). The Logic of Political Coverage on Twitter: Temporal Dynamics and Content. Journal of Communication, 64.

11. Loader, B. D., & Mercea, D. (Eds.). (2012). Social Media and Democracy: Innovation in Participatory Politics. London: Routledge.

12. McNair, B. 2007. An Introduction to Political Communication. 4th ed. London:Routledge.

13. Poddar, M. (2018). The Citizenship (Amendment) Bill, 2016: International Law on Religion-based Discrimination and Naturalisation Law. Indian Law Review.

Gender Norms, Culture, Structural Violence : An Analysis of Devadasi System in India

Dr. Jyotasana
Assistant Professor, Department of Law,
KCC Institute of Legal & Higher Education, Greater Noida, UP.

Abstract :

The modest attempt of this article is to understand the gender norms and Structural Violence perpetrated on women through the Devadasi system. This article intends to argue that sexual violence against women is in the form of culture and religion. Indian history dates back a long time to the Devadasi system. In which the young women are considered as 'Servants of God' and therefore must devote themselves to the deity. On one hand, in addition to performing temple services, the Devdasis studied classical dance genres, including Odissi, Bharatanatyam, Kuchipudi, and Mohiniyattam. They were revered as the divine "protectors of the arts". On another hand, this practice allowed women to be sexually exploited in the name of religion and its traditions. the Devdasi system is a kind of sexual slavery for women. Devadasi system is not as simple as structural exploitation based on patriarchal norms, gender, caste, and poverty. Therefore, this article explores the relationship between structural violence and the devadasi system in India. Further, this article also explores the role of gender norms and traditions in the exploitation of women.

Keywords :

Gender, Norms, Structural violence, Culture, Tradition, Poverty, Caste, Devadasi.

Introduction :

The devadasi system is a form of sexual exploitation of women in the name of God and culture. Many scholars, academicians, and activists have debated the traditional origin of the Devadasi system. Sexual exploitation, particularly of women and children is a worldwide problem. This is based on structurally embedded exploitative categories such as religion, caste, class, gender, region, etc. In contemporary times, an estimated 20 million commercial prostitutes live in India, and 16 million of them are female victims of sex trafficking (Nagaraj, 2017). Only a part of the overall number of people who are currently enslaved in modern India is represented by this staggering number. One contributing influence to this extreme level of exploitation has to do with an ancient Hindu tradition (Hartmann, 2019).

Devadasi means "female slave of God". Every year, thousands of young girls, some as young as five or six, are drawn into India's sex trade despite the fact that the practice is outlawed everywhere (Hartmann, 2019). Low-caste girls who have not yet reached puberty and may be as young as four or five years old are 'married' or 'dedicated' to a Hindu goddess in the Devadasi tradition. The ritual compels the girl to become sexually available for community members, which leads to the sexual exploitation of these children by temple clients and upper caste folks (Deane cited in Nagaraj 2019). According to Gail Omvedt, the Devadasi system enslaves women and oppresses Dalits in the name of religion (Omvedt, 1983). Many scheduled caste women are exploited by the Devadasi cult, which is an evil system, in the name of religion. It is closer to the states of Karnataka and Maharashtra. The devadasi cult is an important Prostitute Fitting Center through which a large number of devadasis are supplied to brothels in adjacent towns (Desai, 2007). Nash Colundalur contends that devadasis confront caste-based discrimination and indignities, are politically impotent, and suffer from extreme poverty, oppression, and exploitation (Colundalur, 2011).

The Historicity of the Devadasi System :

The first confirmed reference to a devadasi was during the Keshari Dynasty in the 6th century A.D. in South India (Sahoo, 2006). The Devadasi culture origins can be found in southern India, specifically under the Chola, Chera, and Pandya dynasties in the 7th century. Devadasis are essentially sex slaves or juvenile sex workers, to put it simply. This tradition is thought to have originated in the seventh century, when young girls were married off to the deity and afterward functioned as the temple caretakers, performing all rituals including dancing and playing music in the deity's honor (Hussain, 2022).

The girls first studied and practiced arts like *Bharathanatyam, Odissi,* and other classical dance forms before taking care of the temple and taking part in rituals. They used to hold a prominent position in society as dancing and playing music were integral parts of temple worship. As a result of British participation in the nation, they were later exploited and subjected to unequal treatment, which caused a deterioration in their social status (Hussain, 2022). On the contrary, the socio-religious institution of devadasi dedication agrees that the practice was initially constructed with noble intentions; viz., they were handmaidens intended to be of service to Gods and who had to perform the sacred arts of dance and music within and outside the temple premises (Ragini 1928).

According to ancient tradition, '*sebaets*' served God through sacred dance and music, whereas devadasi referred to a multiplicity of female communities known as '*gudisani*' (temple lady), '*bhogam'* (embodiment of enjoyment), '*kalavati'* (receptacle of the arts), and 'd*evaradiya*l' (slave of God) (Saskia, 1987). Most significantly, they were regarded as sacrosanct and were expected to be brahmacharis or celibate for the rest of their lives. They were a revered and respected cult with a high social rank (Soneji cited in Deane, 2022). They were regarded as an important part of the temple and were acknowledged as being on the same level as the brahmins (priests) They

were educated, literate in the scriptures, and learned music and dance (Deane, 2022, p. 3).

These were women who were proficient in Sahitya (literature), Sangeeta (music), and shastra (Hinduism's sacred scriptures), as well as many other art forms. At the time, the devadasi system was regarded as an artistic compass. They performed dance and music as trained artists (Deane, 2022, p.3). Dances that the devadasis learned, practiced, and performed included Sadir, Odissi, and other classical Indian artistic traditions (Deane, 2022, p.3). In different parts of India, Devadasi is referred to by different names, such as '*Maharis*' in Kerala, *'Natis'* in Assam, *'Basavis'* in Karnataka, and *'Bhavanis'* in Goa '*Kudikar*' in the West Coast; *'Bhogam-Vandhi'* or *'Jogin'* in Andhra Pradesh; '*Thevardiyar*' in Tamil Nadu; '*Murali*', '*Jogateen*', and '*Aradhini*' in Maharashtra. In Karnataka, old devadasis are referred to as '*Jogati*', whereas youthful devadasis are referred to as '*Basavi*' (Pradeep, Manjula) (Harishankar & Priyamvadha, 2016).

Theorizing Structural Violence :

Individuals who suffer damage by social structures or institutions that keep them from satisfying their basic requirements are said to be victims of structural violence. Although less visible, it is by far the most lethal form of violence, causing excess deaths that would not occur in more equal societies (Lee, 2019). According to Galtung, exploitation is a result of unfair economic and social connections. It occurs within intricate systems and after protracted, entangled legislative cycles. The threat of violence is also a type of violence. He defined violence as a 'avoidable impairment of essential human wants and life, that decreases the real degree to which someone can meet their requirements below that which would otherwise be feasible' (Galtung, 1969).

In this regard, the key factors of the structural exploitation behind the continued usage of the Devadasi system are religion, caste dominance, patriarchy, economic necessity, and social belief. One of the oldest still-existing systems of social stratification in the modern world is the Hindu caste system, which is divided into four main groups: the Brahmins (priests and religious teachers), the Kshatriyas (warriors and rulers), the Vaishyas (farmers, traders, and merchants), and the Shudras (workers). The 'untouchables' in society are the Dalits, who work as street sweepers and latrine cleaners and are exempt from this severe caste system (Deane, 2009). They are constantly mistreated by the police and higher-caste groups who are protected by the state, and they are made to work in slavery-like conditions. Dalit women experience sexual assault frequently (Deane, 2005). Today's devadasis are overwhelmingly identified from the Dalit community (Omvedt, 1983).

They are already a poor, largely uneducated, and marginalized population, hence they are subject to systemic socioeconomic oppression (Bej 2018). Devadasis today typically come from lower-class and lower-caste (SC) origins. As a result, vulnerable populations of women are attacked by caste hierarchy, poverty, illiteracy, religious superstition, and customs (Bharati, 2015). The majority of devadasis, who are sexually abused by priests and persons from higher castes, are Dalit women. Upper-caste men maintain

their claim of social and economic superiority over the lower castes by continuing to use Dalit women as prostitutes. The social problems of lower castes that are based on caste and gender, such as child marriage, the practice of dowry, and devadasi, among others, exploit the females of those castes (Deane, 2022, p. 13). Devadasis also hold the theological conviction that they are already married to God and hence are not permitted to be married. They are unable to achieve the position of a wife in society because of their belief system. Due to this, they and their children become the target of additional discrimination in the community, affecting the legitimacy and upbringing of their offspring (Sampark cited in Deane, 2022).

One of the deadliest and most severe forms of structural violence is poverty. Poverty is a socioeconomic condition that exists in various forms all across the world. The definition of poverty is 'extreme, structural, systematic, long-term economic deprivation,' which initially frequently leads to helplessness. According to Amartya Sen, such structural restrictions on basic freedom led to the agency being confined to the point that people lacked the "capability" to meet their basic needs (Sen, 1981).

The patriarchy, which is a form of systemic societal institutions-based sexism, perpetuates patterns of violence, prejudice, and exclusion against women. The underpinnings of patriarchy are gender inequity and male supremacy. Although it takes many different forms, structural violence against women only has one dimension that exists in both the public and private spheres. Domestic violence, rape, female infanticide, and state brutality are all horrifying types of violence that violate women's fundamental human rights. Inherent in patriarchy, caste, and class society, and the power dynamics that shape society are violence against women.

Although girls were only dedicated because of their religious beliefs in the past, today poverty has replaced religion as the primary motivator for dedication. To relieve themselves of the burden of poverty, many poor families make their young daughters devadasis (Harishankar &Priyamvadha, 2016). Today, devadasis are just committed to being taken to brothels in various parts of the nation, showing that commitment is done with the clear goal of only making money (Moni, 2001). Therefore, The Dalits and devadasis are particularly vulnerable to being trafficked since they come from the lowest and most disadvantaged origins and because poverty is one of the key causes of trafficking.

In the past, the devadasis were held in such high esteem that they were seen as being equivalent to the temple priests and had obligations to fulfill on behalf of the temple. There are numerous instances of wealthy and aristocratic families committing their daughters to the temple to become devadasis because it was thought to be such a privilege (Ganesan 2019). A devadasi cannot be owned by any one particular husband since the custom of devadasis is a system of the votive offering of girls to the deities of temples. As a result, the cycle of abuse and exploitation is permitted to continue with some impunity (Daena, 2022).

Devadasi in Contemporary Time :

The temple's worship, dancing and singing progressively decreased and

devadasis began openly prostituting themselves. As has been shown, the practice of surrendering young girls to the care of a deity extends back to ancient India, but nowadays in India, the custom has evolved into a defense for the exploitation of females for sexual purposes. The devadasi tradition has endured social, cultural, and economic setbacks during each shift to the point that modern devadasi practice is solely connected to social evil (Deane, 2022).

Shakunthala Narasimhan emphasizes how the Devadasi repertoire in arts and society includes their mastery of odd musical instruments in addition to their substantial contributions to music and dance in a study of the Devadasis' contribution to arts and culture.

A unique drum, known variously as the chondke, chawandga or chandike, was handled only by devadasis…. It was held tucked under one arm while manipulating the stick strung through the center of a small cylindrical drum, inside which she created fantastic rhythm patterns using her nimble fingers, to the accompaniment of a single-stringed tun tune (ektara)…In a display of extraordinary musical skill, the pitch of the rhythm patterns changed with the tension on the string attached to the drum" (Shakuntala 2014, p. 6).

In ancient times devadasis were treated like royalty and the practice of worship, dancing, and singing in the temple by devadasi was very significant in ancient times. But today devadasi is pleading for their existence rather than entertaining gods or nobility. Today's devadasi practice focuses more on the sex trade, prostitution, and the exploitation of the lower caste than it does on temple devotion or temple dancing (Shingal 2015).

Therefore, the practice of devadasi has come to be associated with child and woman enslavement as well as commercial sexual exploitation. To ensure that there is a constant supply of child prostitutes and sex slaves accessible for exploitation, dedication, and tradition are employed (Ruspini et al. 2019). Many devadasis continue to dwell in their home villages or bigger village communities despite having little hope of improving their precarious socioeconomic or low-caste 'untouchable' status. Additionally, devadasis are not even permitted to pursue any other job in several southern Indian states, ensuring their subservience to this practice (UNICEF, 2001; Shankar, 1994).

However, revered and distinguished the devadasi ritual was meant to be, due to religious or historical grounds, it is limited to business interests and socioeconomic realities today. The perpetuation of male dominance and the subordinate position of women in society is greatly aided by the dissemination of gender ideology through the endorsement of religious and cultural practices. Despite their suffering from severe prejudice, illiteracy, and fervent religious beliefs, the devadasi tradition has permitted upper-caste males to maintain a pool of Dalit women for their sex needs. The enabling environment in which the practice has persisted until the present day is one of poverty, societal pressures, discrimination against females, lax enforcement of the law, and a persistently blind belief cultivated by society, priests, and temples that dedication bestows spiritual favor (Deane, 2022, pp. 16-17).

The National Commission for the Protection of Youngsters' Rights recently recommended that the Karnataka govern-

ment should stop interrogating Devadasi youngsters about their fathers. According to official figures, Devadasi women gave birth to 45,000 children in Karnataka. Because of the father's name, there have been reports of intimidation, coercion, and application rejections by the government. The Commission has ruled that the children's legal names are those of their mothers. When filing for caste, income certificates, and other documents as well as for school admissions, it has been decided to only accept the mother's name (Hussain, 2022). In addition, The Women and Child Development Ministry has also taken action to include the 12,000 Devadasis whose names were left off the survey list (Hussain, 2022). The devadasi practice continues in some parts of India. Today the form of devadasi is completely changed because of the gender norms and gender-based violence against women.

Conclusion :

Historically, devadasi practice and devadasi culture held a prominent position in society due to its association with art and culture and temple worship. They were committed to worshipping God, and society had granted them some privileges that allowed them to lead noble lives as devadasis. However, there are some serious problems with this culture, especially in the current scenario of the Devadasi system. This is all about structural violence against women and gender-based violence against women. wherein women are abused on the grounds of an individual's caste, religion, culture, or other social structure. The modern devadasi practice places more emphasis on the exploitation of the lower caste by pushing them into sex trade, and prostitution than it does on temple devotion or temple dancing. Therefore, it is very necessary to analyze the Devadasi system beyond the prism of culture and religion.

References :

1. Bej B (2018) Tackling India's Devadasi system – A matter of policing and public order? Retrieved from http://ohrh.law.ox.ac.uk/tackling-indias-devadasi-system-a-matter-ofpolicing-and-public-order.
2. Colundalur, N. (2011). Devadasis are a crushed community. The Guardian. Retrieved from https://www.theguardian.com/lifeandstyle/2011/jan/21/devadasi-india-sex-workreligion.
3. Deane, T. (2022). The Devadasi System: An Exploitation of Women and Children in the Name of God and Culture. *Journal of International Women's Studies, 24* (1), pp. 1-27.
4. Desai. P, (2007). Exploitation of Scheduled Caste Women: A Devadasi Cult. *Journal of Global Economy, 3* (5&6), 287-295.
5. Galtung, J. (1969). Violence, Peace and Peace Research. **Journal of Peace Research, 6** (3), 4-5.
6. Galtung, J. (1980). **The true world - A Transnational Perspective**. New York. The Free Press,
7. Ganesan, P. (2019). Social Status of Devadasis during the 7th and 8th centuries in Tamil Nadu. *Journal of the East-West Thought, 9* (2), 37-45.
8. Harishankar, B. V., Priyamvadha, M. (2016) Exploitation of Women as Devadasis and its Associated Evils. National Commission for Women, New Delhi.
9. Hartmann. M. (2019). The Devadasi: Female slaves in modern India. The Exodus Road. Retrieved from https://blog.theexodusroad.com/the-devadasi-female-slaves-in-modern-india
10. Hussain, J. (2022). Explained: Who Are Devadasis, Their History, And Current Status Retrieved from https://www.indiatimes.com/explainers/news/who-are-devadasis-their-history-and-current-status-587888.html.

11. Kakar, S. (1996). **The Colors of Violence: Cultural Identities, Religion, and Conflict.** Chicago: University of Chicago Press.

12. Lee, X. B. (2019). Structural Violence. Retrieved from https://onlinelibrary.wiley.com/doi/10.1002/9781119240716.ch7

13. Moni, N. (2001). Anthropological Perspectives on Prostitution and AIDS in India. **Economic** *and Political Weekly 36* (42).

14. Nagaraj, A. (2017). Rescued child sex workers in India reveal hidden cells in brothels. Retrieved from https://www.reuters.com/article/us-india-trafficking-brothels-idUSKBN1E71R1

15. Omvedt, G. (1983). Devadasi Custom and the Fight Against it. *Manushi 19* (4), 16-19.

16. Ragini, D. (1928) *Nritanjali: An introduction to Hindu dancing.* New York: Hari G Govil.

17. Sahoo, A. P. (2006). *A brief history of the Devadasi System.* Orissa Diary. Retrieved from http://www.orissadiary.com/Showyournews.asp?id=26.

18. Sakuntala, N. (2014). Gone with the Devadasis. *Sruti 355* (42).

19. Sampark. (2015). Gender-based violence on scheduled caste girls: A rapid assessment of the Devadasi practice in India. Retrieved from https://www.sampark.org/wp-content/uploads/2021/01/ARapid-Assessment-of-the-Devadasi-Practice-in-India.pdf.

20. Saskia, C. K. (1998). **Nityasumangali: Devadasi Tradition in South India**. Delhi: Motilal Banarsidass, Delhi

21. Sen, A. (1981). **Poverty and Famines an Essay on Entitlement and Deprivation**. Oxford: Clarendon Press Oxford.

22. Shankar, J. (1994). **Devadasi cult A Sociological Analysis**. New Delhi: Ashish Publishing House.

23. Shingal, A. (2015). The Devadasi System: Temple prostitution in India. *UCLA Women's Law Journal 22* (1).

24. Soneji, D. (2012). **Unfinished gestures: Devadasis, memory, and modernity in South India**. Chicago: University of Chicago Press.

25. UNICEF, (2001). Commercial sexual exploitation and sexual abuse of children in South Asia. 2nd World Congress against Commercial Sexual Exploitation of Children. Yokohama, Japan. Retrieved from http://www.unicef.org/rosa/South_Asia_Strategy_Yokohama.pdf.

मीरा स्त्री विमर्श

डॉ॰ खुशबू
असिस्टेन्ट प्रोफेसर (तबला)
जुहारी देवी गर्ल्स पी॰ जी॰ कॉलेज, कानपुर

शोध-सार :

अनंत काल से नारी को केवल शोभा और प्रदर्शन का ही पर्याय माना जाता रहा है। जब कभी भी नारी ने इस घेरे से बाहर आने का प्रयास किया है उसे सदैव उपहास और व्यंग का ही पात्र बनना पड़ा है। वेद, पुराण, उपनिषदों आदि ने भी नारी का चित्रण इस प्रकार किया है कि समाज उसे माँ, बहन, बेटी व पत्नी से परे एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में नहीं देख पाता। सदियों से रीति-रिवाजों और परम्पराओं में जकड़ी नारी अपने स्वतंत्र अस्तित्व के लिए संघर्षरत रही है। इसी परिप्रेक्ष्य में मध्यकालीन सामाजिक रूढ़ियों और मान्यताओं के बीच आत्मसंघर्ष करती मीरा का व्यक्तित्व और कृतित्व अपने लिए नये विमर्श की माँग करता है। प्रस्तुत शोध-पत्र भक्तिकाल की सशक्त साधिका व अनन्य कृष्ण भक्त मीराबाई के सामाजिक रूढ़ियों के विरूद्ध स्त्रीवादी दृष्टिकोण को प्रकट करता है व साथ ही भक्तिकालीन संत परम्परा में मीरा के संघर्ष और उनके द्वारा स्त्री मुक्ति तथा स्त्री चेतना के संदर्भ में उनके क्रान्तिकारी कदमों का भी अवलोकन कराता है।

विशिष्ट शब्द :

पितृसत्तात्मक व्यवस्था, विद्रोह, महिला संत, स्त्री चेतना, आत्मनिर्णय।

भूमिका :

''राणा जी म्हॉने या बदनामी लागे मीठी।
कोई निन्दो करे बिन्दो, मैं चलूँगी चाल अपूठी।
साँकड़ली सरसे्याँ जन मिलिया क्यूँ कर फिरूँ अपूठी।
सत सँगति मा ग्यान सुणैद्दी, दुरजन लोगाँ ने बीठी।
मीराँ रो प्रभु गिरधर नागर, दुसरजन जलो जा अंगीठी।''(1)

उक्त पंक्तियों द्वारा पुरूष-वर्चस्ववादी पितृसत्तात्मक व्यवस्था के विरूद्ध स्त्री स्वाधीनता का एक समूचा दर्शन कराने वाली मध्यकालीन महिला संत व विश्व विख्यात भक्त शिरोमणि मीराबाई सम्पूर्ण भारतीय नारी समाज का गौरव है। मीराबाई की विचारधारा आधुनिक स्त्री से ज्यादा आधुनिक और क्रान्तिकारी है न केवल विचार बल्कि व्यवहार में भी मीरा समाज के प्रत्येक बंधन तोड़कर बाहर आती हैं तो कई बंधन और टूटतें नज़र आते हैं जिनमें पहला अन्तःपुर का, दूसरा घराने का, तीसरा वैभव का, चौथा समाज का, पाँचवा देश का, छठा काल का और सातवाँ विवाह का। मीरा कृष्ण भक्ति साहित्य की प्रतिनिधि है। उनके काव्य से स्त्री काव्य की तीखी सुगन्ध आती है जो उन्हें भक्तिकाल में अन्य कवियों से अलग करती है।

मुख्य विषय :

हाथ में तम्बूरा दिल में प्रेम और कंठ में गीत लिए मीरा चलती फिरती आग की लपट थी। मध्ययुगीन समाज में स्त्री की भूमिकाएँ आज की स्त्री से भिन्न

थी। उसके लिए उड़ान भरने के लिए अनंत आकाश नहीं था। तत्कालीन समाज में किसी स्त्री को भक्ति भी सहज, सुलभ न थी। क्योंकि स्त्री को भक्त के रूप में स्वीकार करने के लिए समाज में कोई भी तैयार नहीं था। मीरा की राह काँटों से भरी हुई सबसे कठोर डगर थी। जहाँ मीरा ही नहीं बल्कि उस युग की सभी स्त्रियों के लिए उस राह पर चलना कठिन था। मध्यकालीन समाज का पूरा ढाँचा पितृसत्तात्मक है, जिसे मीरा तोड़ देना चाहती है।

वे कहती हैं-

''माई साँवरे रंग राची।
साज सिंगार बाँध पग घूँघर लोकलाज तज नाँची।
गया कुमत लयाँ साधाँ संगत, श्याम प्रीत जग साँची।''[(2)]

उस युग में स्त्री के लिए ऐसा संघर्ष अत्यन्त कठिन था। मीरा विधवा होने के बाद भी तत्कालीन रूढ़ियों के अनुकूल सती नहीं हुई। वह लगातार लाँछन, अपमान, और यातना सहती हुई कृष्ण भक्त बनी रहीं। उन्होंने निर्भय होकर भ्रामक युगधर्म और लोकभय का सामना करते हुए स्पष्ट कहा -

''भजन करस्याँ सती न होस्यां,
मन मोहयो धण नामी।''

स्त्री के बारे में मीरा का दृष्टिकोण बाकी भक्त कवियों से सर्वथा भिन्न है। उनकी कविता में एक ओर सामंती समाज में स्त्री की पराधीनता और यातना का बोध है तो दूसरी ओर उस व्यवस्था के बंधनों का पूरी तरह निषेध और उससे स्वतंत्रता के दीवानगी की हद तक संघर्ष भी है। अतः मीरा का जीवन और काव्य उस काल के अन्य भक्त कवियों की स्त्री सम्बन्धी मान्यताओं का प्रतिकार है और प्रत्युत्तर भी। उनके स्त्री विमर्श को निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा समझा जा सकता है :

1. सती प्रथा का विरोध :

मीरा ने उस समय प्रचलित पति के साथ सती होने की प्रथा का विरोध किया। तत्कालीन व्यवस्था में सती प्रथा की अमानवीयता को महसूस न करके इसे स्त्री के त्याग व बलिदान से जोड़ा जाता था। मीरा ने पति की मृत्यु के बाद इसी क्रूर व्यवस्था को अपनाने से मना कर दिया। वे विधवा होने के बाद भी कुल की रीति नहीं अपनाती-

''गिरधर गास्याँ सती न होस्यां।
मन मोह्यो धन नामी।।''[(3)]

2. वैभव व ऐश्वर्य का त्याग :

अलंकरण, वैभव, साज-सज्जा को साधारण स्त्री आभूषण मानकर जीवन भर इन्हें संजोती है। परन्तु मीराबाई इन सबको बाह्य आडम्बर मानती हैं। उनका मत है कि नारी का असली गहना तो उसके हृदय में बसा प्रेम है। जब स्त्री अपने हृदयतल में किसी को स्थान देकर उसे सच्चा प्रेम करती है तो वह वास्तव में सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति बन जाती है। वे कहती हैं-

''हार सिंगार सभी ल्यो अपना, चूड़ा कर की पटकी।
मेरा सुहाग अब मोकूँ दरसा और न जाने घटकी।
महल किला राणा मोहि न चाहिए, सारी रेशम पटकी।
हुई दीवानी मीरा डोलै, केस लटा सब छटकी।''[(4)]

3. सजसत्ता का बहिष्कार व पितृसत्तात्मक व्यवस्था का विरोध :

घरेलू हिंसा की शिकार, तिरस्कृत और उत्पीड़ित मीरा राजसत्ता, पितृसत्ता और लोकलाज को पानी की तरह बहा देने की शक्ति रखती हैं -

''राणाजी थे जहर दियो म्हे जाणी।
जैसे कचन दहत अगनि में, निकसत बाराबाणी।
लोकलाज कुल काण जगत की, दूइ बहाय जस पाणी।
अपणो घर का परदा करले, मैं अबला बौराणी।
तरकस तीर लग्यो मेरे हियरे, गरक गयो सनकाणी।''[(5)]

मीरा का विद्रोह उन स्थितियों की पड़ताल करने की नैतिक जवाबदेही है जो अबला कही जाने वाली निरीह पराश्रित स्त्री को बौराने और आक्रामक होने

को विवश करती है। बार-बार उन पूर्वाग्रहों और जड़ताओं को छीन लेने की आकांक्षा करता है जो स्त्री की आत्मविश्वास की नैसर्गिक इच्छा को लोकलाज के उल्लंघन से जोड़ता है। उस कुत्सित मानसिकता को तुरन्त निषिद्ध कर देने की मांग करता है जो पुरूष वर्चस्ववादी व्यवस्था की हर अमानुषिकता को अनुशासन और नियमपालन का पर्याय बना देती है। मीरा ने अपने विरोधियों को सीधी चुनौती देते हुए कहा हैं-

''सीसोद्यो रूठ्यो तो म्हाँरो कोई करलेसी।
म्हें तो गुण गोविन्द का गास्याँ हों माई।
हरि रूठ् कुम्हलायाँ, हो भाई
लोकलाज की काणा न मानूँ
निरभै निसाण घुरास्याँ हो माई।''(6)

मीरा का उपर्युक्त स्वर निश्चय ही पुरूषवर्चस्ववादी व्यवस्था के प्रति खुला विद्रोह है और पितृसत्ता के निरंकुश नियन्त्रण के विरूद्ध आत्मनिर्णय के अधिकार का प्रयोग है।

4. स्त्री की वैचारिक स्वतन्त्रता का समर्थन :

मीरा आरोपित विवाह सम्बन्ध को अस्वीकार कर स्त्री द्वारा स्वयं की इच्छानुसार पति रूप में पुरूष का वरण करने की पक्षधर हैं। विवाह संस्था स्त्री की देह पर की जाने वाली द्विपक्षीय संधि नहीं और न ही प्रतिकार की अमानुषिकता। विवाह सम्बन्ध देह का कामुक खेल या कुलवृद्धि का शुष्क दायित्व नहीं बल्कि जीवन सहचर पाने की अनुराग भरी प्रक्रिया है। अतः सम्बन्ध जोड़ने में मीरा स्त्री की पूर्ण स्वतन्त्रता की पक्षधर रहीं है। उनका काव्य स्त्री की वैचारिक स्वतन्त्रता पर बल देता है। वे कहती हैं-

''माई मैं तो लियो रमैया मोल।
कोई कहै छानी, कोई कहै चोरी लियो है बजता ढ़ोल।
कोई कहै कारो, कोई कहै गोरो, लिया है अंखी खोल।
कोई कहै हल्का कोई कहै महँगा, लिया है तराजू तोल।
तन का गहना मैं सब कुछ दीन्हा, दियो है बाजूबन्द खोल।
मीरा के प्रभु गिरधरनागर, पूरन जनम का कोल।''(7)

इस तरह मीरा जिस पुरूष का वरण करती है तो यह पहली नज़र का अल्हड़ प्रेम नहीं अपितु वह हीरे जैसे अपने साँवरिया को पूरा, बराबर अपने घूँघट के पट खोलकर तोलती हैं। इस प्रकार वे अपनी वरण की स्वतन्त्रता के अधिकार का प्रयोग करती है।

5. जातिगत रूढ़ियों का खण्डन :

भक्तिमार्ग में गुरु का जो महत्व है वही महत्व मीरा भी अपने गुरु को देती हैं। यहाँ भी वह अपनी राह स्वयं चुनती हैं। वे समाज की परवाह किये बिना संत रविदास को अपना गुरु बनाती हैं जो कि जाति से चमार थे। मीरा ने अपने गीतों में गुरु रविदास का कई बार बड़े गर्व के साथ उल्लेख किया है-

''मीरा ने गुरु मिल्या है रविदास,
सुरंगा (स्वर्ग) से आयी पालकी।''

जब मीरा संत रविदास को गुरु बनने का आग्रह करती है तो वे अपनी जाति का वास्ता देते हुए कहते हैं-

''मीराबाई म्हं तो जात से चमार।
तूं तो बड़ा घरां की डाबड़ी एजी।।''
तो इस पर मीरा कहती है-
''गुरु जी जाति-पांति से कारण कोय नी,
बाई ने गुरु मिल्यो को रविदास।''

उपसंहार :

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मीरा हिन्दी काव्य जगत में स्त्री विवर्शकार के रूप में सर्वप्रथम पहचानी जाती है। एक भक्त के रूप में तत्कालीन समाज के पुरूष वर्चस्ववादी पितृ सत्ता के उत्पीड़न, अपमान, घरेलू हिंसा को झेलते हुए भी वे अपने निर्णय में दृढ़, अचल और अडोल रही। यह श्री कृष्ण प्रेम की ही शक्ति थी जो उन्हें संसार के भौतिक सुखों से विरक्त करके अति इन्द्रिय सुख में सराबोर करती हैं। संसार का कोई प्रलोभन, राजसत्ता उन्हें अपने मार्ग से विचलित नहीं कर पाया। उन्होंने जिस स्वतंत्रता से निर्णय लिया उसे जीवन पर्यन्त

निभाया। मीरा का स्वातंत्रय चेतना, खुलकर विद्रोह करने की भावना और साहस हमें आज भी प्रभावित करता है। मीरा मध्यकाल में स्त्री की अस्मिता को प्रमाणित करने वाली यशस्वी स्त्री के रूप में प्रतिष्ठित व वन्दनीय है। पं॰ गिरिमोहन गुरु नगर श्री मीरा की प्रशास्ति में लिखते हैं-

''नारियों की शाक्ति की पहचान है मीरा।
पीढ़ियों के लिए गौरव गान है मीरा।
भाव की भीनी सुरभि से युक्त है-
भक्ति कानन का सुमन अल्लान है मीरा।''

सन्दर्भ सूची :

1. मीराबाई और उनकी पदावली, प्रो॰ देशराज सिंह भाटी, पृष्ठ सं॰-227
2. वही, पृष्ठ सं॰-207
3. भक्त कवियित्री : मीरा, हिन्दी पॉकेट बुक्स, दिल्ली, संस्करण 2002, सुदर्शन चोपड़ा (सम्पादक), पृष्ठ सं॰-112
4. मीराबाई और उनकी पदावली, प्रो0 देशराज सिंह भाटी, पृष्ठ सं॰-163
5. वही, पृष्ठ सं॰-234
6. वही, पृष्ठ सं॰-230
7. वही, पृष्ठ सं॰ 170-171

Role of Tamilnadu Eminent Martyrs' in Indian Freedom Struggle

Mr. A. Selladurai
Ph. D. Research Scholar,
Namakkal Kavignar Ramalingam
Government Arts College for Women, Namakkal

Dr. (Mrs.) R. Padmavathi
Professor & Head,
Namakkal Kavignar Ramalingam
Government Arts College for Women, Namakkal

Abstract :

In India many freedom fighters played vital role in freedom movement for pursuing the sweetness of liberty. In that movement G. Ramasamsy Mudhaliyar, Veeraraghavachariar and V. Ramalingam Pillai are predominant figure and their contribution is notable one in this paper gives a vast details of those people who gave their efforts through educational elements and also as a journalist and as teacher apart from his family sectors. The foremost notable leader was Ramasamsy Mudhaliyar as a professor worked hard for getting freedom. In this paper the last freedom fighter is Ramalingam Pillai, whose vision and the contribution for the nation, his poetry depicts freedom and also bring out the thoughts of freedom and the same would be reflected among the people. Hence this paper gives sufficient information regarding freedom those who seek more.

Key words :

Veeraraghavachariar, G Ramasamsy Mudhaliyar and V. Ramalingam Pillai freedom movements

Introduction :

In freedom movements many freedom fighters have played a remarkable role among them, this paper deals the following three freedom fighters such as Veeraraghavachariar, Venkatarama Ramalingam Pillai and Ramasamy Mudaliar fulfilled the people quest of freedom in order to get freedom from the British government and also people were prompted by the leaders who dedicatedly worked for gaining freedom and leading their life. Hence this paper gives enough information regarding freedom moments.

Role of Veeraraghavachariar in freedom movement

Early life :

Veeraraghavachariar was born in Vadakapattu, a hamlet not far from Chinglepat, to a family of Vaishnavite Brahmins. He completed his formal education at Madras. A professor at Pachaiyappa's College in Madras, he found

work soon after finishing his degree. He started hanging out with G. Subramania-Iyer, another instructor about this period.

In 1878, Veeraraghavachariar, then 21 years old, and four of his companions, T. T. Rangachariar, G. SubramaniaIyer, D. Kesava Rao Pantulu, N. Subba Rao Pantulu andP. V. Rangachariar, who would become known as "The Triplicane Six," began publishing the English-language daily The Hindu. They would later become known as "The Triplicane Six." just Subramania Iyer and Veeraraghavachariar were considered to be professors; the rest of the others were just in their under-graduate years.

Salem Riots of 1882 :

Vijayaraghavachariar began seeing patients in Salem in 1882, and the city was rocked by unrest not long after. For inciting the rioting that led to the destruction of a mosque, Vijayaraghava-chariar was given a ten-year jail term. He vigorously defended himself in court and ultimately prevailed. Later, he used his persuasive skills as an advocate to have other rioters freed from Andaman Cellular Prison by petitioning Lord Ripon on their behalf.

He opposed to being removed from office as a consequence of the violence since he was a member of the Salem Municipal Council at the time of the assault. Following his appeal, not only was he reinstated to his position on the Municipal Council, but the Secretary of State for India also granted him Rs 100 in nominal damages for his troubles. In addition to that, he pursued legal action against the witnesses who had provided false evidence against him, and he was ultimately successful in having those witnesses convicted.

Vijayaraghavachariar rose to fame after his involvement in the riots in Salem in 1882. Newspapers throughout India lauded him as a great advocate of civil rights after the riot case received wide-spread coverage. Because of this, people began to refer to him as "The Lion of South India" and "The Hero of Salem".

Achievements :

Vijayaraghavachariar supported a daughter's right to receive inheritance from her father and marriage beyond the age of puberty for women. Swami Sharathananda benefited tremendously from his assistance over the course of his work with the Anti-Untouchability League. Another part of his multifaceted personality was the fact that he was involved in the establishment of the Hindu Mahasabha. In 1931, he presided over the All India Hindu Mahasabha Sessions that took place in Akola and served as the leader of the organization. In the Madras Chapter of the Passive Resistance Movement, he was one of the two Vice Presidents who served during his time there. The editor of The Hindu, S. Kasturi Ranga Iyengar, was one of its Vice Presidents with Mahatma Gandhi.

The fervor with which Vijayaraghava-chariar fought for the rights of workers and non-Brahmins is enough evidence of his big heart. He was also quite generous financially to the issues he cared about. He gave the Anti-Untouchability League and the Congress Propaganda Organization in England a lot of financial help when they were first getting started. Throughout his whole life, he struggled against imperialism as well as economic and social adversity.

His lengthy association with governors and viceroys of imperial Britain in India belied his anti-imperialist views. His Imperialist acquaintances included Lord Curzon, Lord Ripon, Lord and Lady Hardinge, Sir Conran Smith, Sir William Meyer, and Lord Pentland. He was close with Eardley Norton, the famous lawyer who defended him during the Salem Riots and prevented him from being sent to the Andaman Islands. Vijayaraghavachariar was a bright thinker, but his ideals were unrealistic, according to Edwin Montagu, the then Secretary of State for India.

The Hindu :

Not long after the firm's inception, the majority of the original "Triplicane Six" attorneys went their own ways. The only two people still there were managing director Veeraraghavachariar and chief editor Subramania Iyer. Subramania Iyer stood firm and challenged his British overlords as well as Hindu dogma. On the other hand, Veeraraghavachariar was a moderate who disagreed with Subramania Iyer's radical stances. A chasm sprang up between them due to their divergent political views. Attacks made by Veeraraghavachariar in editorials written for The Hindu directed against Iyer's friend Eardley Norton further widened the rift that already existed between the two men. The newspaper's proprietors quickly found themselves in deep financial trouble as a result of the fall in readership caused on Iyer's radical views Hindu society by Subramania.

G. Subramania Iyer took over the leadership of the Swadesamitran after leaving The Hindu in 1898. By appointing C. Karunakara Menon as the newspaper's head editor in the year 1901, Veeraraghavachariar attempted to transform the publication into a joint-stock business. The publication is now deeply in debt because of the unsuccessful scheme. Veeraraghavachariar mentioned four libel actions the newspaper has fought since its foundation and lost three of them in a special issue published to celebrate the publication's twenty-fifth anniversary. Veeraraghachariar was forced to sell the newspaper in 1905 due to financial difficulties. In April of 1905, S. Kasturi Ranga Iyengar bought a subscription to the publication. In 1906, at the age of just 47, Veeraraghavachariar passed away.

Role of Ramalingam Pillai freedom movement :

V. Ramalingam Pillai, also known as Venkatarama Ramalingam, was a poet and independence fighter from Tamil Nadu, India. He was born on October 19, 1888. His writings celebrating individuality are particularly well-known.

Among those fighting for independence, the poem "Kathiyindri-rathamindriyutthamondruvaruguthusathi yathinnithiyathainambumyarumseruveer" was a popular one. Apart from himself, he was one of seven siblings. On October 19, 1888, V. Ramalingam Pillai, later known as Namakkal Kavignar, was born to parents Venkataraman and Ammani-ammaal in Mohanur, Namakkal District, Tamil Nadu. His mother was a devout woman, while his father was a police officer in Mohanur. They had seven other children before he came up. School for Ramalingam took place in both Namakkal and Coimbatore. He graduated with a BA from Bishop Heber College in Trichy in 1909. He started off as a clerk in the Namakkal Tahsildar's office and eventually became a teacher at a local elementary school.

Hundreds of patriotic poems were written by him. In 1930, he took part in a protest against the British government called the Salt Satyagraha, for which he was sentenced to a year in prison. In 1971, the Indian government honored him with the "Padmabhushan" medal.

Role of Ramasamy Mudaliar in freedom movement :

The Bahadur Shah Zafar Reception Hall Lawyer, diplomat, and Sir Arcot Ramasamy Mudaliar was a key person in the Justice Party and held a variety of administrative and bureaucratic roles in India both before and after the country gained its independence. He was born on October 14, 1887, and passed away on July 17, 1976.

On October 14, 1887, Arcot Ramasamy Mudaliar was born in the city of Kurnool, where he also attended school. He attended Madras Christian College and then Madras Law College to get his degree in law. After completing his education, he spent some time working in the legal field before becoming involved with the Justice Party and entering public life. Following his defeat in the 1934 elections at the hands of S. Satyamurti, Mudaliar was assigned to the Madras Legislative Council, where he remained in office from 1920 till 1926. After that, during the years 1931 and 1934, he was a member of the Madras Legislative Assembly. Between the years of 1939 and 1941, he served as a member of the Imperial Legislative Council. Between the years of 1942 and 1945, he was a member of Winston Churchill's war cabinet and the Indian representative to the Pacific War Council. He also served as the Indian delegate to the Imperial Legislative Council. He was India's representative at the Conference in San Francisco, and he later went on to become the first president of the Economic and Social Council of the United Nations. Additionally, he was the diwan of the kingdom of Mysore from 1946 till 1949 at that time.

On October 14, 1887, Ramasamy Mudaliar was born to parents who spoke Tamil and belonged to the Tuluva Vellala Mudaliar community. He and his brother, Arcot Lakshmanaswamy Mudaliar, were identical twins. He attended Kurnool Municipal High and then Madras Christian College for his arts degree. Following the completion of his undergraduate education, Mudaliar moved on to pursue a career in law and was finally elected to the Madras Legislative Council. Commander V.S.P. Mudaliar's (his nephew) uncle served in World War II.

Justice Party :

Ramasamy Mudaliar was a founding member and general secretary of the Justice Party in 1917. Together with Kurma Venkata Reddy Naidu and Dr. T. M. Nair Arcot Ramasamy Mudaliar led a Justice Party team to England in July 1918 to testify in favor of communal representation before the Reforms Committee. Dr. Nair passed away on July 17, 1919, and the testimony was taken the day before.

Over time, Ramasamy Mudaliar became known as the "brain of the Justice Party" due to his increasing prominence. He helped organize conferences for non-Brahmins and facilitate communication amongst those living in various regions of India. Mudaliar was a famous orator whose talks often moved audiences to tears.

The Justice Party was soundly defeated in the 8 November 1926 elections for the Madras Legislative Council, gaining just 21 of the 98 available seats. Like many others, Mudaliar lost in the elections. After taking a break from politics for a while, Mudaliar took over as editor of Justice, the official publication of the Justice Party. He had previously been held in that role by P. N. Raman Pillai. As a direct consequence of Mudaliar's leadership, The Justice saw significant growth in its readership and gained great recognition. On March 1, 1929, Mudaliar and Sir A. T. Paneerselvam, another important leader of the Justice Party, testified in front of the Simon Commission on behalf of the Justice Party. Mudaliar served as Mayor of Madras from 1928 to 1930. His term was from 1928 to 1930. Mudaliar stepped down from his position as editor-in-chief of Justice shortly after being nominated to the Tariff Board in 1935. When Mudaliar was given the honor of being knighted in the 1937 Coronation Honours List, he was serving as a member of the Council of the Secretary of State for India. On February 25, 1937, he was presented with the distinction while present at Buckingham Palace.

Brahmin Movement :

Mudaliar kept in touch with non-Brahmin leaders' and Shahu Maharaj from Maharashtra and other regions of North India, and he facilitated the coordination and unification of these leaders and the organization of non-Brahmin conferences. On December 18, 1922, a non-Brahmin conference was held in Satara, and Mudaliar was there to take part at it. This meeting was presided over by Rajaram II. Mudaliar was lauded for his oratory talents during the All-India Non-Brahmin Conference, which took place on December 26, 1924 in Belgaum. The conference was attended by Mudaliar. At the Seventh Non-Brahmin Conference, which took place on February 8, 1925, he urged for non-Brahmins to participate together.

Following the untimely passing of Sir P. T. Theagaroya Chetty in 1925, Ramasamy Mudaliar was the only person who was able to keep Shahu Maharaj's Satya Shodhak Samaj in contact with the Justice Party. On the 19th of December in 1925, he assisted the Raja of Panagal in organizing the first All-India Non-Brahmin Confederation in Victoria Hall in Madras. This event took place in Madras. Mudaliar advocated for B. V. Jadhav, who went on to become president thanks to his backing. The second meeting was held at Amaravati on December 26, 1925, under his direction. The conference was split into two parts. The first was ruled by the Maharaja of Kolhapur, and the second by the Raja of Panagal. For Mudaliar, "it was too late in the day for me to defend what was the Non-Brahmin movement," he declared during the Conference's second session. When the Movement's influence has spread from Madras to Bombay, from the Cape Comorin to the Vindhya Mountains, the sheer vastness of the Movement and the speed with which its ideals have swept over the country will speak loudly in favor of the Movement.

When The Hindu heard what Mudaliar had to say at this conference, they took aim at him, writing, "the Speaker was desiring to produce an effect in another province, forced him to draw rather freely on his imagination."".

Member in War Cabinet :

Before the start of World War II in 1939, Ramaswamy Mudaliar was named to the Viceroy's Executive Council. In June of 1942, he was knighted again, this time as a KCSI. Prime Minister Winston Churchill appointed Ramasamy Mudaliar, one of two Indians nominated for the job, to serve in the War Cabinet in July 1942. Mudaliar was given the same voting rights and privileges as any other representative of a British colony. Oxford University granted him the title of Doctor of Civil Law in honor of his wartime service.

President in ECOSOC :

As India's representative to the United Nations at the San Francisco Conference, Mudaliar chaired over the committee that covered economic and social matters between April 25 and June 26, 1945. This committee met between April and June 1945. Mudaliar was selected to serve as the organization's first president at a meeting that took place on January 23, 1946, at Church House in London. In February 1946, while he was serving as president of the Economic and Social Council, a resolution calling for the convening of a conference on international health was passed. Delegates from 61 countries met in Geneva, Switzerland, on June 19th, 1946, to form the World Health Organization after its constitution was read and accepted at the health conference started by Sir Arcot Ramasamy Mudaliar. After his year was out, he went back to India to take over as the leader of Mysore.

Diwan of Mysore :

1946 saw Arcot Ramasamy Mudaliar take up his position as dewan. He succeeded Dewan N. Madhava Rao as the incumbent. He served as leader at a time of great upheaval. The last Viceroy of India, Lord Mountbatten, made a public announcement on 3 June 1947 that India's political leaders had agreed to split the country in two. The Indian States were profoundly affected by this news. Early in the month of June in 1947, the Dewan of Mysore convened a press conference in order to make public the state's decision to become a part of the New Dominion of India and to send members to the Indian Constituent Assembly. The location of the conference was in Bangalore. Following that, on July 15, 1947, the British Parliament voted in favor of ratifying the Indian Independence Act of 1947, and on July 18, 1947, it received the Royal Assent. As a direct consequence of the passage of this Act, on August 15, 1947, the nations of India and Pakistan became independent. The Indian states were also released from British rule by this legislation. Concerns abounded as to whether or not the over 560 Indian States should have been granted independence after suzerainty had lapsed. To formalize their submission to the Rulers' dominion government, An Instrument of Accession has been developed by the Indian government, and it tackles concerns relating to defense, communication, and foreign affairs. On August 9, 1947, the Instrument of Accession was signed by the Maharaja of Mysore, and on August 16, 1947, the Governor General of India verified the signing of the document. The leaders of the local congress gained greater confidence as a result of this, and they continued to advocate for a Responsible Government. As a direct result of this, an uprising known as "Mysore Chalo" took place. It would seem that the worried public is unaware of the

fact that the Mysore Maharaja has been ignoring the advice of the Dewan and his secretary Sir T. Thamboo Chetty to not join the Indian Union. This advice was given to the Maharaja by Sir T. Thamboo Chetty. In spite of the prevalent belief that India achieved its goal of unity much earlier, it wasn't until much later that it really did so. Recent history has seen India emerge victorious from its struggle against British colonial rule. The Maharaja of Mysore was the first person to sign the Instrument of Accession when it was first created. After receiving permission from the Maharaja, the Responsible Government was founded on September 24, 1947, and on October 25, 1947, Mr. K.C. Reddy took the oath of office to become the first Chief Minister of the nation. There were also eight other ministers there with him. However, Dewan stayed in his position to continue serving as a mediator between the Cabinet and the Maharaja. On the other hand, the Maharaja of Mysore officially adopted the Constitution of India for the state on November 25, 1949, and as a result, Mysore became a Part-B state in the Republic of India. This event took place at Mysore. During this period, the part of Dewan was deleted from the cast. When Mudaliar was the Diwan of Mysore, he organized concerts around the kingdom that included performances by Tamil musicians in order to generate funds for the reconstruction of the samadhi (tomb) of the Carnatic singer Tyagaraja at Tiruvaiyaru. When Hyderabad submitted a petition to the Security Council requesting that India not be admitted, Prime Minister Jawaharlal Nehru distressed Mr. Ramasamy Mudaliar to New York to head the Indian Delegation and defend India's position. Hyderabad's appeal was denied. The Security Council decided that Mr. Mudaliar's case in favor of India was convincing enough to accept.

Final Years :

Mudaliar was awarded the Padma Bhushan in 1954 and the Padma Vibhushan in 1970. The Industrial Credit and Investment Corporation of India (ICICI) was established on 5 January 1955 and Mr. Sir Arcot Ramaswami Mudaliar was chosen as the first ICICI Ltd. Chairman. Until his death in 1976, Mudaliar chaired both the India Steamship Company and Tube Investments of India. He also assisted the AMM group in establishing the TI cycle in India. In his honor, the AMM group in Ambattur maintains the Sir Ramaswamy Mudaliar Higher Secondary School. His loved ones continue to honor his legacy by operating A.R.L.M. Matriculation Higher Secondary School. His offspring live in the States.

Despite his strident assaults on the Hindu scriptures and Varnashrama dharma in his writings and editorials for the Justice newspaper, Ramasamy Mudaliar was widely known to be a devoted follower of the Vaishnavite religion. The Vaishnavi-tenamam was a constant on his forehead. When he was in England he was served steak, but he declined it in disgust.

Conclusion :

In this paper I dealt with the detailed study about our freedom fighters how they have contributed to our nation with dedication sacrificing their life for the people by their various activities especially by their profession and the ethics. Hence now we are pursuing the sweetness of freedom only because of freedom fighters' sincerity, hard work and

perseverance for attaining the taste of liberty.

Reference :

1. Muthiah, S. (2004). Madras Rediscovered. East West Books (Madras) Pvt Ltd. ISBN 81-88661-24-4.
2. Diwans of Mysore". Princely States of India K–Z. World-statesman.org. Archived from the original on 24 October 2008. Retrieved 4 November 2008.
3. "List of Presidents of ECOSOC". *United Nations. Archived from* the original *on 13 January 2013.*
4. *Vijayaraghavachariar, C. (1852–1944)". Parliament of India. Retrieved 6 November 2009.*
5. *Rajeswar Rao, P (1991). "Colossus of Salem". The Great Indian patriots, Volume 1. Mittal Publications. pp. 194–198. ISBN 9788170992806.*

The Children's Film Society, India : Trends, Challenges and Opportunities for growth

Jyoti Kushwaha
Assistant Professor,
Baikunthi Devi Kanya Mahavidyalaya, Agra.

Abstract :

Children's Film Society in India has played a vital role in shaping the cinematic landscape for children. This organization aims to provide children with quality entertainment that is both entertaining and didactic. CFSI is committed to strengthening the children's film movement within India and promoting Indian produced children's films across the globe. It has also been producing children's content including feature films, short films and documentaries for the past 60 years. Children's films need encouragement to create a positive ambiance and ethos in the country, which would enrich its culture and social structure by educating the future generations about personal and social values.

This research paper examines the role of Children's Film Society in India, focusing on the issues and challenges it faces in promoting quality cinematic content for young audiences. The paper delves into the historical context of this society, it's objectives, and it's contribution to children's entertainment and education. It identifies several key challenges including content appropriateness, funding constraints, distribution hurdles, and the digital shift. Through a comprehensive analysis of these challenges, the paper provides insights into potential strategies and recommendations to enhance the effectiveness of Children's Film Society in India and ensure the holistic development of children.

Key words :

Children's Film Society, issues and challenges, recommendations.

Introduction :

Across all societies, regardless of the era, mass media has consistently functioned as a catalyst for driving social change. The realm of cinema offers boundless avenues for communication, creating chances to acquire new knowledge and shed old perceptions across diverse cinematic styles. When delving into the intersection of "children and cinema," it encompasses cinema for children, cinema of children, cinema by children, cinema enacted by children, cinema of subjects related to children.

The idea of establishing a dedicated cinematic space for the youth of India was introduced by the nation's inaugural Prime Minister, Pandit Jawaharlal Nehru, renowned for his fondness for children. Pandit Nehru initiated the formation of CFSI (Children's Film Society of India) with the vision that producing homegrown and exclusive films tailored for children would nurture their creativity, empathy, and analytical skills.

Children's Film Society of India (CFSI) started functioning as an autonomous body under the Ministry of Information and Broadcasting, in 1955, with Pandit Hriday Nath Kunzru serving as its inaugural president. CFSI's maiden cinematic creation was "Jaldeep" (1956), an adventure film directed by Kedar Sharma, which won the award for the best Children's film at the 1957 Venice Film Festival. Since then, CFSI has continued to produce, exhibit and distribute quality content for children.

CFSI stands as the foremost producer of children's films in South Asia. The organization arranges film screenings throughout the nation, engaging around four million children every year. Their dedication lies in both fortifying the children's film movement in India and promoting Indian-made children's films on a global scale. Notably, CFSI has achieved a significant milestone by exhibiting its films not just within India, including the National Children's Film Festival (NCFF), but also in international film festivals and educational institutions. Over the past five years, CFSI's involvement in film festivals has seen remarkable growth, with more than 250 appearances in Indian and global festivals during this span. In 2015, CFSI took part in FICCI FRAMES for the first time, utilizing the event to identify potential scripts suitable for children. Additionally, CFSI introduced the concept of co-production to streamline production costs and increase profitability.

Activities of the Organisation

Production & Procurement :

CFSI is engaged in the production of feature films, featurettes, animation, short films, puppet films and TV serials in film as well as video format for children and young people. The organization also procures exhibition rights of certain foreign films which have been proved popular at International Film Festivals. Such imported films as well as films produced by the Society are dubbed in various Indian languages and exhibited through theatres and T.V. so as to reach as large an audience as feasible.

Digitalisation & Webcasting of CFSI Films :

a. Digitalisation: For the purpose of transparency of all CFSI films (including produced, dubbed and subtitled) from film format on to digital one for archival purpose.

b. Webcasting: Placing CFSI films (including produced, dubbed and subtitled) in the form of a digital library and make it available on the Internet/ Web.

Participation in International Children's Film Festivals: CFSI's films have been exhibited in various International Film Festivals and have won awards. This has helped to promote the children's films abroad.

Animation and Film Making Workshops :

CFSI organizes various types of workshops as promotional activity. These include Animation Workshop, Script writing Workshop, Video Workshop and Film Appreciation Workshop. CFSI organizes competitive International Children's Film Festival once in every two years. It is accorded "A" category status by the International Centre of Films for Children & Young People (CIFEJ), an international body affiliated to UNESCO controlling international children's film festivals all over the world. It is also proposed to conduct National Digital Film Festival every alternate year at the International Children's Film Festival.

Exhibition & Distribution of Films :

1. **Individual Shows :** Many schools and individuals procure films for non-commercial screenings in theatres or in schools through 35MM/ 16MM projectors on payment of fixed rentals.
2. **District & State Level Festivals :** This activity is conducted in collaboration with the District Administrations. Various Districts in different states are identified and programmes are chalked out and screened on nominal admission rates. The school going children largely from Govt./Municipal Schools/Zilla Parishad schools are encouraged to see the films. The District Education Depts. lend credible support by selling the tickets. Therefore the festival activity comprises a major source of income for the CFSI.
3. **Non-theatrical Free Shows :** In order to cater to the rural and under privileged children, who are deprived of any other source of entertainment, CFSI has started a unique scheme of conducting free shows for the Municipal and Tribal Children. Services of Non-Governmental organisaion like Nehru Yuva Kendra Sangathans are utilised for this activity. The expenditure involved in conducting the free shows is borne by CFSI out of grants in aid provided by the Govt. for the purpose. Under the Scheme even children living in remand homes, orphanages etc. are given the benefit of seeing the children's films, who otherwise are deprived of any entertainment.
4. **Shows Through Distributors :** CFSI engages distributors/organizers to conduct film shows in theatres and schools. They procure films by paying fixed monthly rentals and exhibit films in the allotted territory.
5. **Screening of films on Television:** CFSI films are shown on Doordarshan National Network and Regional channels and private channels.
6. **Sale of VHS Cassettes and VCDs:** VHS cassettes and CDs of CFSI's films are sold for personal and community screenings only.
7. **Activities in North East & J&K :** CFSI promotes films in regional languages including North-East States through production and exhibition.

However, in December, 2020, the Union Cabinet decided to merge four film media units - Films Division, Directorate of Film Festivals (DFF), National Film Archive of India (NFAI), and Children's Film Society of India (CFSI) - with the

National Film Development Corporation (NFDC). The Ministry of Information and Broadcasting transferred the mandate of production of documentaries and short films, organising film festivals and preservation of films to the NFDC, a PSU working under it with the objective of ensuring synergy, convergence of activities and better utilization of resources.

Challenges and Issues :

Ensuring that the films screened are age-appropriate and culturally sensitive is a significant challenge. Striking a balance between entertainment and education while avoiding excessive moralizing or simplification is essential.

The Children's Film Society India (CFSI) has been dedicated to producing content-appropriate films for children, taking into consideration cultural sensitivity, age-appropriate themes, and educational value. Some examples of children's films produced by CFSI that have addressed the challenge of content appropriateness are Pappu Ki Pugdandi (2015), Gattu (2012), Kima's Lode (2011), Gauru (2009), Ghatothkach (2008), Dweepa (2002), Halo (1996). "Gattu" is a film that revolves around the story of a young boy's determination to fly a kite. The film explores themes of perseverance, dreams, and competition in a relatable and child-friendly manner.

"Gauru" tells the story of a young boy's relationship with a stray dog and addresses themes of friendship, compassion, and the bond between humans and animals. While not made by CFSI but supported by them, "Dweepa" is a Kannada film that focuses on the lives of people living on an island and their struggles against the construction of a dam. The film deals with environmental issues and displacement in a way that can be understood by young audiences.

"Halo" is a heartwarming film about a young girl's relationship with an elephant. It touches on themes of conservation, empathy, and the importance of caring for animals. Pappu Ki Pugdandi, follows the journey of Pappu, a young boy who learns important life lessons through his interactions with various characters. The film address's themes of self-discovery, relationships, and personal growth. Kima's Lode, tells the story of a young girl from the Khasi tribe in Meghalaya, India, who learns to balance tradition with the modern world. It explores cultural identity, change, and the value of preserving one's heritage. "Ghatothkach" is an animated film based on the character from the Indian epic Mahabharata. It follows the adventures of Ghatothkach, the son of Bhima, as he uses his magical powers for good. The film incorporates Indian mythology and values.

These films, produced or supported by CFSI, demonstrate the organization's commitment to creating content that is appropriate for children while addressing important themes, cultural nuances, and educational aspects. Please note that my knowledge is based on information available up until September 2021, and there may have been developments or new releases since then.

Children's Film Society often struggles with limited financial resources. Dependence on government funding and lack of consistent financial support hinders the production and distribution of quality content. Children's films cater to a specific demographic, which makes it challenging

to attract the same level of funding and financial support as mainstream films that target a wider audience. Children's films may not always generate the same level of box office revenue as big-budget blockbusters, making it difficult to recoup production costs and invest in future projects.

Compared to more commercial ventures, children's films might find it harder to secure corporate sponsorships and endorsements due to their perceived niche appeal. Children's films often have fewer merchandising opportunities compared to franchises targeting adult audience. Merchandising can be a significant revenue stream for films, but this might not be as feasible for children's content. Children's films might have a shorter theatrical lifespan since their target audience ages out of the demographic relatively quickly, reducing the potential for extended revenue from theatrical releases.

The Children's Film Society prioritizes educational and cultural objectives over commercial success, which can impact its ability to secure funding from traditional entertainment industry sources. Some Children's Film Societies rely on government grants and funding, which can be inconsistent due to changing political priorities and budget constraints. The limited availability of grants and funding opportunities for arts and culture in general can make it competitive for Children's Film Societies to secure the necessary resources. Creating quality children's films, especially those with high production values, can be costly. Balancing these costs against the potential return on investment can be a challenge.

It's important to note that Children's Film Society often plays a vital role in promoting quality content for young audiences, and its work extends beyond mere financial considerations. It contributes to children's education, cultural understanding, and entertainment. The struggle with limited financial resources is a systemic challenge that many such organizations face in balancing their mission with financial sustainability.

"The cumulative contribution of all children's movies to the Indian box office amounts to less than 0.2%," remarks Shailesh Kapoor, the CEO of Ormax Media, a media consultancy. Frequently, "family-oriented" films are substituted for children's films, while in other instances, children are exposed to U/A-rated shows that contain suggestive content and violent scenes. "The film I Am Kalam, which only earned 67 lakh at the box office, is often overlooked. Parents often think, 'What will happen to our own entertainment if we take our children to such a film?'" explains Amole Gupte, a prominent contemporary children's filmmaker in India. Gupte further underscores, "In Scandinavia, a children's film earns more than a regular feature. Here it's the opposite," Gupte pauses, and then adds: "We need a renaissance in the Indian mind."

It's a classic situation of the chicken and the egg, where filmmakers point to the lack of market support, while the market blames the absence of high-quality content for its sluggish growth. To compound matters, there's the competition from abroad-the top-notch content from the West that today's youngsters have easy access to.

"They anticipate a level of quality output on par with international standards, which demands considerable resources and expertise. Unfortunately, we lack the foundational support for such endeavors, including the necessary research and dedicated effort," reveals Santosh Sivan, the director behind acclaimed children's films like Halo (1996) and Malli (1998).

Kapoor agrees and highlights the uphill battle faced by Indian filmmakers: "Creating animation of international caliber is financially demanding. Hollywood films can absorb these costs due to their global market reach, enabling substantial box office earnings." Take, for instance, The Jungle Book (2016), produced with a budget of USD 175 million (approximately 1,200 crore), which raked in over 180 crore in India alone. "An animated Hindi film can't be produced at even 5% of Hollywood's expenditure," he asserts.

However, the concern isn't solely about commerce. Reflecting on Satyajit Ray's contributions, particularly in children's literature, Gulzar poses the question: "This sort of work necessitates a certain awareness, a genuine engagement with children. Are today's filmmakers genuinely invested in this?"

Only a handful of filmmakers possess the ability to connect with children on an equal footing. Most inadvertently fall into the trap of moralizing, using stories as a pretext for delivering life lessons. A smaller fraction understands the rapidly shifting concerns of children, which evolve with time. A compelling children's film, such as Kaaka Muttai (Tamil), holds the power to bridge generational gaps, captivating both adults and youngsters alike.

Gulzar ardently and repeatedly asserts his unshakable stance: as a society, we've let children down by neglecting our duty to be engaged in their lives. He emphasizes that one of the strongest indicators of quality children's cinema lies in quality children's literature: "There's an astonishing lack of children's literature in Hindi, especially when compared to languages like Bengali or Marathi." Additionally, we've burdened our children with the weight of our expectations—bulky school bags, insurmountable exams, and predetermined career trajectories.

"The predicament is a societal issue," he declares. "It's not solely the cinema's responsibility." According to him, the realm of fine arts is a mirror reflecting society—it can't bring about change in and of itself. "Our regard and concern for children are absent. Have you observed any parks, playgrounds, or dedicated forms of entertainment designed for children? The transformation must originate within society. This extends beyond cinema. Why should the cinema alone carry this burden?"

Both Gulzar and Gupte underline the imperative need for a radical transformation in our prevailing mindset-one that refuses to acknowledge children as individuals with their own requirements and concerns. "Our words and deeds are wildly divergent. While we profess that children are the future, our actions betray the hypocrisy inherent in our words," Gulzar asserts.

While spending substantial amounts on pre-release marketing is a standard practice in the realm of Bollywood, it remains a challenge when it comes to children's films, according to the Children's Film Society of India (CFSI).

"In today's scenario, marketing has become the focal point. Executing marketing campaigns for children's films poses its own set of difficulties. Adequate funding is essential for this purpose. Furthermore, locating distributors and exhibitors is an additional hurdle, given their expectations of favorable returns from films," remarked Nandita Das, Chairperson of CFSI.

"We don't possess the same lavish resources as commercial Bollywood productions. In order to be on par with the industry, the need of the hour demands our creativity, an enhancement of marketing skills, and an augmentation of our marketing budget," she further emphasized.

Exploring non-traditional distribution channels, such as digital platforms and streaming services, might be necessary to reach a wider audience, but navigating these platforms can present its own challenges. Filmmakers need to ensure that the content they produce meets high-quality standards, which might require more time, effort, and investment. Balancing this with the need for timely releases can be a challenge. Filmmakers often need to gather feedback from their target audience, including children, and adapt their distribution strategies based on this feedback. This iterative process can take time and resources. Securing distribution rights and licensing agreements, especially for international distribution, can be complex and time-consuming.

The advent of digital platforms has transformed the media consumption habits of children. Streaming services and online content offer convenience but pose challenges in terms of content curation and quality control. With the rise of digital platforms and streaming services, audiences have access to an immense array of content. CFSI films now compete with a multitude of entertainment options for the attention of their target audience-children and families. Digital distribution often operates on different economic models compared to traditional cinema. Monetization can be a challenge, as revenue streams might differ and may not necessarily match the financial needs of CFSI.

While the digital shift has introduced challenges to films made by the Children's Film Society India, it has also opened doors to new possibilities. Digital platforms provide the opportunity for CFSI films to reach a global audience that was previously inaccessible through traditional distribution methods. Digital distribution can be more cost-effective compared to traditional theatrical releases. This might allow CFSI to allocate resources more efficiently, potentially producing more content or improving production values. Digital platforms allow for precise audience targeting, making it easier for CFSI to reach its intended demographic-children and families. The digital space can serve as an educational tool, allowing CFSI to not only distribute films but also provide supplementary educational resources and activities. Digital platforms offer the flexibility to experiment with different content formats, such as short films, web series, or interactive experiences, which can enhance engagement with the audience.

Strategies and Recommendations :

Children's Film Societies should explore diverse funding sources, including partnerships with private enterprises,

NGOs, and international organizations. This would reduce reliance on government funding and enhance financial stability. Collaborating with educational institutions, film festivals, and cultural organizations can expand the reach of children's films. Networking can also facilitate the exchange of ideas and resources. Emphasizing innovation in storytelling and production techniques can make children's films more engaging. Involving young filmmakers and animators can inject fresh perspectives into content creation. Children's Film Society must adapt to the digital shift by developing user-friendly online platforms for content distribution. Curating high-quality content and ensuring digital safety for young users is paramount.

Conclusion :

Children's Film Society in India plays a crucial role in shaping the cinematic experiences of children. Despite the challenges it faces, its efforts in promoting quality content for children cannot be underestimated. By implementing strategic approaches, fostering collaboration and adapting to the digital era, the CFSI can overcome obstacles and continue to enrich the lives of young viewers. The holistic development of children through meaningful cinema remains an achievable goal with concerted efforts from stake-holders across the spectrum.

References :

1. Arthur, A. (1947). The Unknown World of Child, London: Paul Elek.
2. Chandra, N. (2009). Merit and Opportunity in the Child-centric Nationalist Films of the 1950's in Manju Jain Ed., Narratives of Indian Cinema, Delhi: Primus Books.
3. https://www.researchgate.net/publication/290437148_'A_Brief_History_of_Indian_Children's_Cinema'
4. https://economictimes.indiatimes.com/news/india/govt-merges-films-division-dff-nfai-cfsi-withnfdc/articleshow/90550540.cms?ut m_source=contentofinterest&utm_medium=t ext&utm_campaign=cppst

"The Study of Stress Management At Workplace In India"

Prof. Deepika Mirchandani
(Corresponding Author/Main Author)
Assistant Professor (MBA Department)
Trinity Institute of Management and Research,
Budruk, Pune, Maharashtra

Ms. Priyanka Mall
(Research Student) (Co-Author)
Narsee Monjee Institute of Management Studies
(NMIMS) V. L, Pherozeshah Mehta Rd,
Vile Parle West, Mumbai, Maharashtra

Abstract :

In today's time Mental health and peace has become need of the hour extreme stress can lead to lower productivity of the employees and can also impact their personal life. Thus stress management techniques must be emphasized upon by the companies for labour welfare and long-run growth of the company. This study will reflect how stress impacts adversely on the well being of an employee and thus there is a need to mitigate stress in a right manner through scientific techniques of stress management at workplace.

Keywords :

Stress, Mental Health, Workplace, Anxiety, Depression.

1. Introduction :

Stress sets off an alert in the cerebrum, which answers by setting up the body for cautious activity. The sensory system is stimulated and chemicals are delivered to hone the faculties, animate the beat, develop breath, and tense the muscles. This reaction (in some cases called the survival reaction) is significant in light of the fact that it assists us with guarding against undermining circumstances. The reaction is prearranged organically. Everybody answers similarly, whether or not the unpleasant circumstance is working or home. Fleeting or rare episodes of stress present little gamble. Be that as it may, when upsetting circumstances go unsettled, the body is kept in a steady condition of enactment, which expands the pace of mileage to organic frameworks.

2. Objectives of the Research

1. To find out how workstress impacts mental health at work place.
2. To provide necessary suggestions for stress management at workplace.

3. Scope Of The Research

1. To study the existence or non existence of stress among the employees in the organization.
2. To know about mental health related issues due to work stress

4. **Literature Review**

(i) **Dr. Jyotindra M. Jani (2016)** – focused on Stress is a condition of mental or profound strain or pressure coming about because of unfriendly conditions. The nature of work is changing at fast speed, might be presently like never before previously. The focus is more on achievement of expert responsibilities, feelings of anxiety are at their most noteworthy point. Business related pressure emerges where work or the association requests the work which is past the limit and capacity of a representative.

(ii) **Richa Burman, Dr. Tulsee Giri Goswami (2017)** – discoveries **-** It was seen that the work pressure not just influences the physical and mental state yet in addition antagonistically affected family and public activity of workers. The discoveries likewise uncover a portion of the significant work stressors and the survival methods to diminish the pressure. This paper moreover assists with understanding the reasonable information on work pressure, its causes and outcomes in the working environment.

(iii) **Alex Aruldoss, Kellyann Berube Kowalski, Satyanarayana Parayitam (2021) -** The reason for this study is to examine the connection between nature of work-life and balance between fun and serious activities. Utilizing an organized study instrument, this paper accumulated information from cosmopolitan urban communities of India. First psychometric properties of the instrument were tried, and afterward progressive relapse was utilized as a measurable strategy for investigating the information.

(iv) **Meghna Goel , J.P. Verma (2021) -** The reason for this paper was to investigate work environment stress discernments and stress survival techniques utilized by representatives of various age-bunches in administrations. The concentrate additionally analyzed the connection between stress ways of dealing with especially difficult times and work environment stress view of representatives, by supporting writing based confirmations to results. The review researched work environment stress and survival techniques of haphazardly chosen representatives (n = 204) of three areas of administration industry.

(v) **Sanghamitra Chaudhuri, Ridhi Arora, Paramita Roy (2020) -** In the previous ten years, the quick globalization and modernisation has brought about an expanded focal point of associations on execution of family well disposed balance between fun and serious activities arrangements for upgrading worker maintenance. The motivation behind this study is to audit the significance of Work Life Balance arrangements and projects and its effect on hierarchical results.

5. **Research Methodology**

This research study is based on primary and secondary data. For primary data collection , a questionnaire survey was carried out with sample size of 154 people who are working in different organizations in Pune City. The secondary data was collected through research journals, newspaper, magazine, websites.

6. Data Collection and Analysis

1. Gender : **Table No.1**

Options	No. of respondents	% of respondents
Male	71	53.9%
Female	83	46.1%
Transgender	-	-
Prefer not to say	-	-

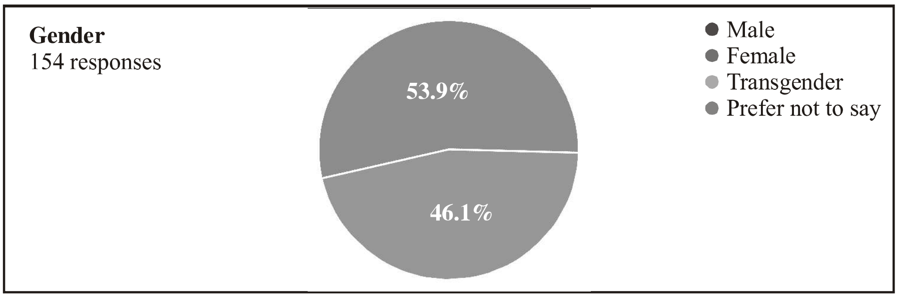

Interpretation –From the above pie chart it can be seen that out of 154 responses 83 responses are from females and 71 are from males.

2. How frequently do you feel profoundly anxious from your work?

Table No. 2

Options	No. of respondents	% of respondents
Always	10	6.5%
Very often	36	23.4%
Sometimes	74	48.1%
Rarely	27	17.5%
Never	07	4.5%

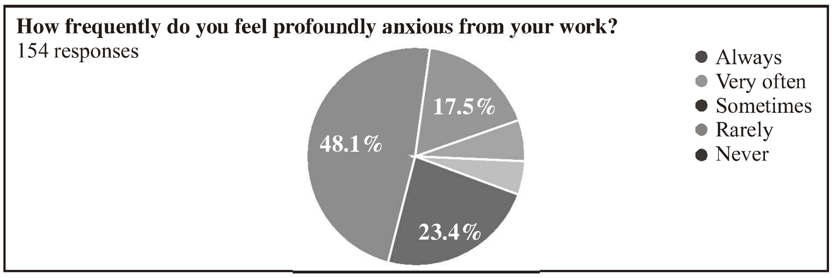

Interpretation – From the above diagram it can be seen that 48.1% people feel profoundly anxious only sometimes from their work while 23.4% feel anxious very often, 17.5% feel anxious rarely at work, 6.5% always and 4.5% never.

3. How often do you have a hard time relaxing?

Table No. 3

Options	No. of respondents	% of respondents
Always	10	6.5%
Very often	40	26%
Sometimes	59	38.3%
Rarely	36	23.4%
Never	09	5.8%

How often do you have a hard time relaxing?
154 responses

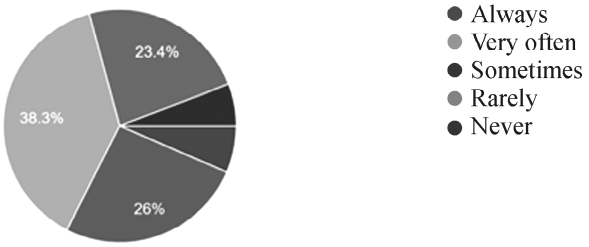

Interpretation – The above diagram shows that 38.3% sometimes find it hard to relax while the other 26% very often has difficulty relaxing, 23.4% rarely find it hard to relax, 6.5% always has a hard time relaxing and 5.8% never fins it hard to relax.

4. I work a sensible number of hours

Table No. 4

Options	No. of respondents	% of respondents
Strongly disagree	08	5.2%
Disagree	24	15.6%
Neutral	31	20.1%
Agree	68	44.2%
Strongly agree	23	14.9%

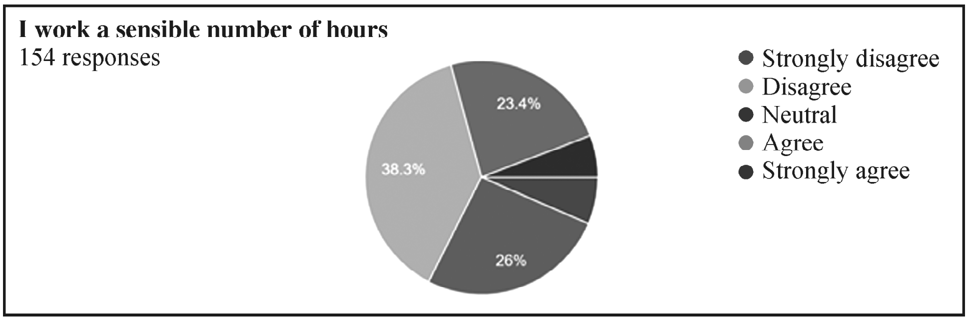

Interpretation –The above diagram shows that 44.2% agree that they work a sensible number of hours while 20.1% are neutral about it, 15.6% disagree to the fact, 14.9% strongly agree to it and 5.2% strongly disagree.

5. I have an appropriate amount of work doled out to me

Table No. 5

Options	No. of respondents	% of respondents
Strongly disagree	6	3.9%
Disagree	21	13.6%
Neutral	45	29.2%
Agree	65	42.2%
Strongly agree	17	11%

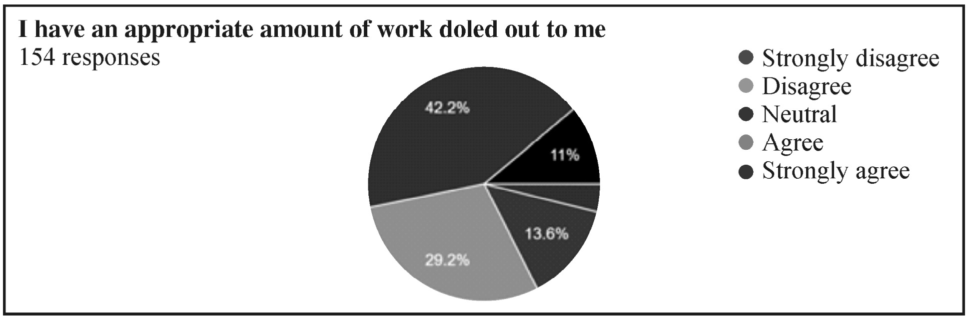

Interpretation –The above diagram shows us that 42.2% people agree to the statement that they are given an appropriate doable amount of work while 29.2% are neutral on the topic. 13.6% disagree to the statement, 11% strongly agree and the rest 3.9% strongly disagree.

6. My work is intriguing

Table No. 6

Options	No. of respondents	% of respondents
Strongly disagree	01	0.6%
Disagree	15	9.7%
Neutral	64	41.6%
Agree	48	31.2%
Strongly agree	26	16.9%

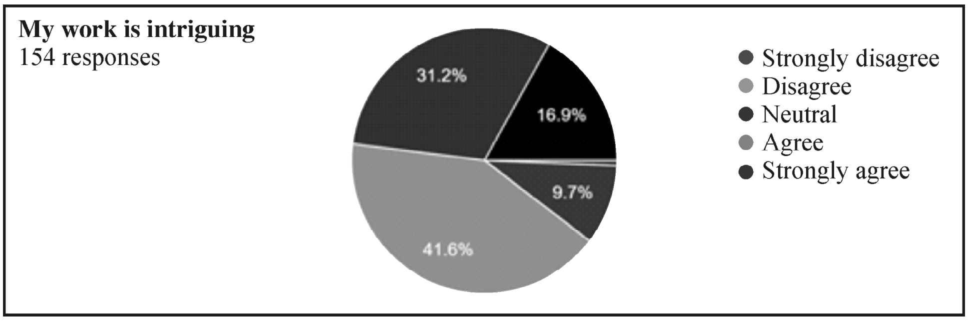

Interpretation – The above pie chart shows that 41.6% are neutral that their work is intruiging while the other 31.2% agree to the statement, 16.9% strongly agree to it, 9.7% disagree and 0.6% stronglt disagree.

7. I have sufficient opportunity to finish my work

Table No. 7

Options	No. of respondents	% of respondents
Strongly disagree	03	1.9%
Disagree	21	13.6%
Neutral	33	21.4%
Agree	79	51.3%
Strongly agree	18	11.7%

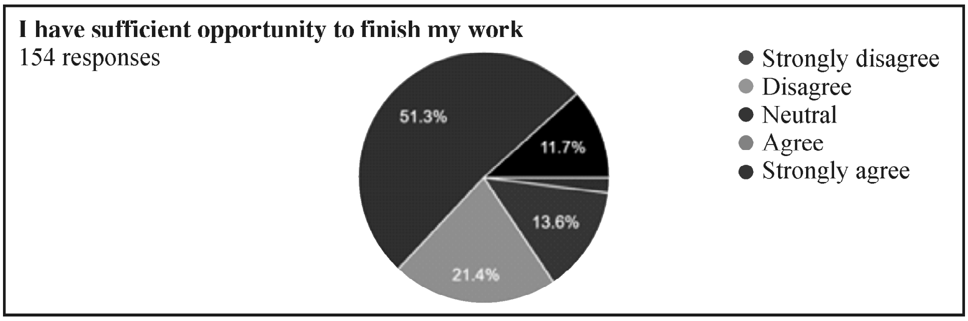

Interpretation – The above pie chart shows that 51.3% of people agree that they have sufficient time to finish their work, the other 21.4% are neutral about the statement, 13.6% disagree, 11.7% strongly agree and the remaining 1.9% strongly disagree.

8. The objectives I'm given are feasible

Table No. 8

Options	No. of respondents	% of respondents
Strongly disagree	2	1.3%
Disagree	14	9.1%
Neutral	47	30.5%
Agree	75	48.7%
Strongly agree	16	10.4%

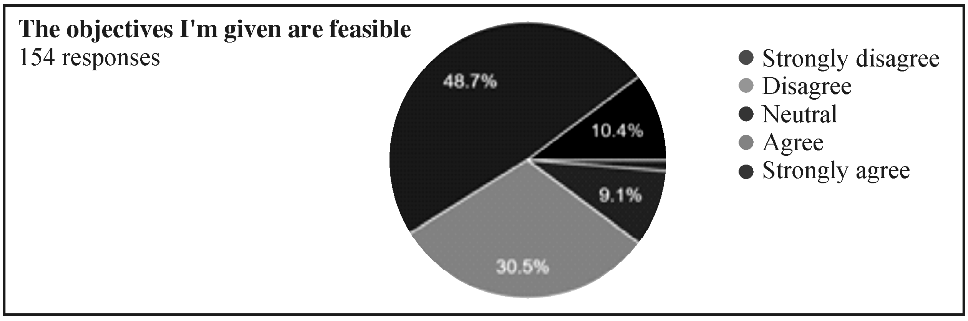

Interpretation – 48.7% agree to the statement that the objectives given to them are feasible, 30.5% are neutral on the statement, 10.4% strongly agree to it while 9.1% disagree and 1.3% strongly disagree according to the pie chart.

9. How would you rate your level of job stress?

Table No. 9

Options	No. of respondents	% of respondents
I don't experience stress from work	12	7.8%
Mild	26	16.9%
Moderate	89	57.8%
Severe	21	13.6%
Extreme	6	3.9%

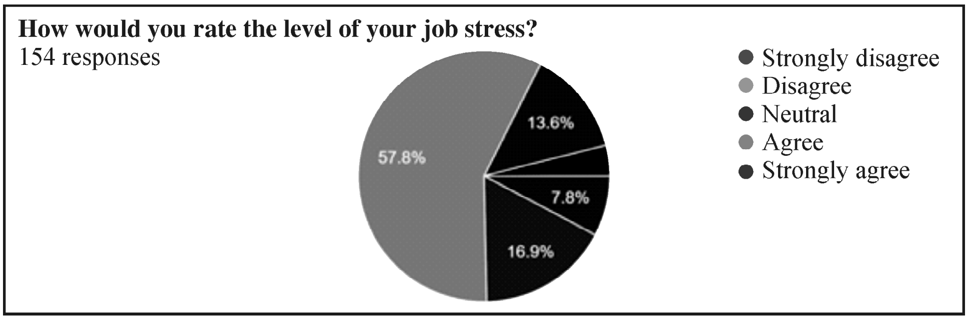

Interpretation – According to the above pie chart 57.8% rate the level of stress as moderate at work while 16.9% vote for mild stress, 13.6% rate severe stress at work, 7.8% say they don't experience stress from work and the remaining 3.9% experience extreme stress at work.

10. How long have you been experiencing stress from work (approximate time frame):

Table No. 10

Options	No. of respondents	% of respondents
Less than a month	49	31.8%
1-3 months	15	9.7%
4-6 months	24	15.6%
6 months to a year	19	12.3%
More than a year	47	30.5%

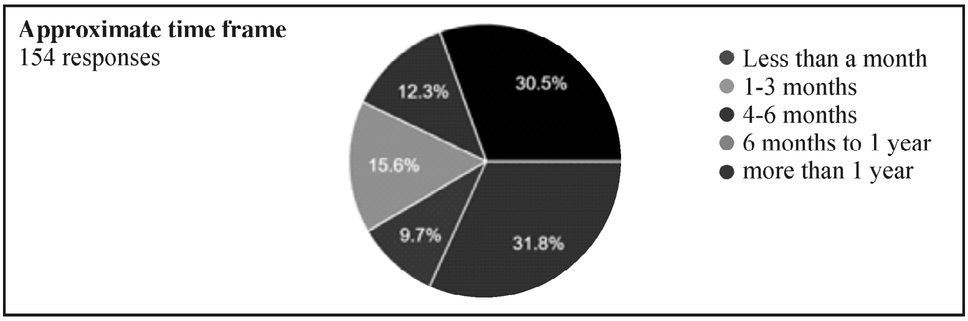

Interpretation – From the above pie chart it can be seen that 31.8% voted that they have been experiencing stress from work for less than a month while 30.5% voted more than year, 15.6% voted 4-6 months of stress, 12.3% voted 6 months to a year of stress and 9.7% voted less than 1 – 3 months of stress.

11. Frequent headaches

Table No. 11

Options	No. of respondents	% of respondents
Always	4	2.6%
Very often	18	11.7%
Sometimes	65	42.2%
Rarely	41	26.6%
Never	26	16.9%

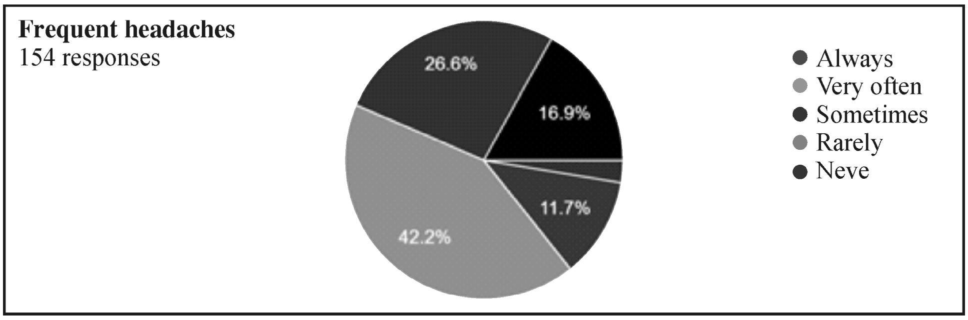

Interpretation - From the above pie chart we can see that 42.2% sometimes face frequent headaches due to work while the other 26.6% rarely experiences it, 16.9% never experience headache from work, 11.7% very often experiences headache from work and 2.6% always experiences headaches from work stress.

12. Insomnia

Table No. 12

Options	No. of respondents	% of respondents
Always	10	6.5%
Very often	22	14.3%
Sometimes	42	27.3%
Rarely	48	31.2%
Never	32	20.8%

154 responses

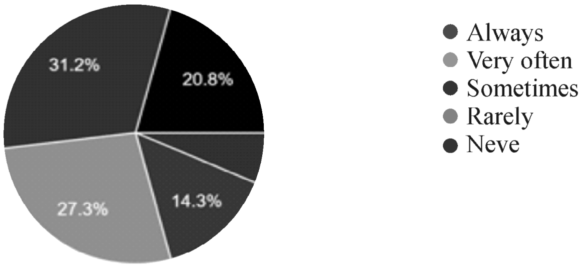

Interpretation – The above pie chart shows that 31.2% people rarely experience insomnia due to stress at work, 27.3% vote sometimes, 20.8% never, 14.3% very often and the remaining 6.5% always.

13. Depression

Table No. 13

Options	No. of respondents	% of respondents
Always	04	2.6%
Very often	16	10.4%
Sometimes	41	26.6%
Rarely	37	24%
Never	56	36.4%

Depression
154 responses

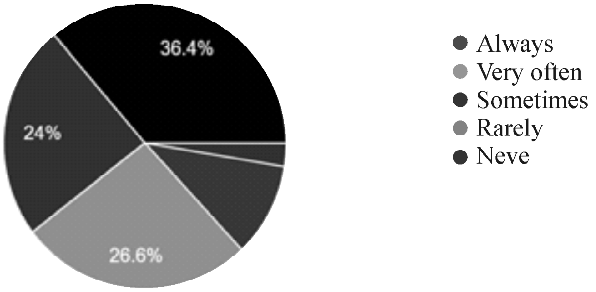

Interpretation –The above pie chart shows that out of all the responses 36.4% people never experience depression due to stress of work, 26.6% votes sometimes, 24% voted rarely, 10.4% voted very often and the remaining 2.6% voted always.

7. Findings

1. From the study it was found that out of 154 responses 46.1% are females and 53.9% are males.
2. It was found that 48.1% people feel profoundly anxious only sometimes from their work while 23.4% feel anxious very often, 17.5% feel anxious rarely at work, 6.5% always and 4.5% never.
3. It was found that 38.3% sometimes find it hard to relax while the other 26% very often has difficulty relaxing, 23.4% rarely find it hard to relax, 6.5% always has a hard time relaxing and 5.8% never finds it hard to relax.
4. It was found that 44.2% agree that they work a sensible number of hours while 20.1% are neutral about it, 15.6% disagree to the fact, 14.9% strongly agree to it and 5.2% strongly disagree.
5. It was found that 42.2% people agree to the statement that they are given an appropriate doable amount of work while 29.2% are neutral on the topic. 13.6% disagree to the statement, 11% strongly agree and the rest 3.9% strongly disagree.
6. It was found that 41.6% are neutral that their work is intruiging while the other 31.2% agree to the statement, 16.9% strongly agree to it, 9.7% disagree and 0.6% stronglt disagree.
7. It was found that 51.3% of people agree that they have sufficient time to finish their work, the other 21.4% are neutral about the statement, 13.6% disagree, 11.7% strongly agree and the remaining 1.9% strongly disagree.
8. It was found that 48.7% agree to the statement that the objectives given to them are feasible, 30.5% are neutral on the statement, 10.4% strongly agree to it while 9.1% disagree and 1.3% strongly disagree.
9. 57.8% rate the level of stress as moderate at work while 16.9% vote for mild stress, 13.6% rate severe stress at work, 7.8% say they don't experience stress from work and the remaining 3.9% experience extreme stress at work.
10. It was found that that 31.8% voted that they have been experiencing stress from work for less than a month while 30.5% voted more than year, 15.6% voted 4-6 months of stress, 12.3%

voted 6 months to a year of stress and 9.7% voted less than 1 – 3 months of stress.

11. It was found that 42.2% sometimes face frequent headaches due to work while the other 26.6% rarely experiences it, 16.9% never experience headache from work, 11.7% very often experiences headache from work and 2.6% always experiences headaches from work stress.
12. It was found that 31.2% people rarely experience insomnia due to stress at work, 27.3% vote sometimes, 20.8% never, 14.3% very often and the remaining 6.5% always.
13. It was found out of all the responses that 36.4% people never experience depression due to stress of work, 26.6% votes sometimes, 24% voted rarely, 10.4% voted very often and the remaining 2.6% voted always.

8. Suggestions

1. Begin every day by making a plan for the day of undertakings, calls to make, and messages to compose. Hourly smaller than normal breaks where you stretch your shoulders, back, and neck can give actual pressure help. This can then decrease mental pressure. Lunch is frequently skipped to the detriment of more pressure. Attempt to take lunch if possible.
2. Quit promising to accomplish beyond what you can deal with. Be pleasant as you say, "With the responsibility I have, I can't take on more as of now."
3. Consistently, plan to invest some energy very still, yet all at once not sleeping. Sit in an agreeable seat, shut your eyes, and loosen up your muscles. Then center around breathing consistently as you continue to rehash one basic word so anyone might hear or quietly. This may be a word, for example, "harmony," "unwind," or "om." Continue to do this until your muscles and brain are loose.
4. Sit or rests and shut your eyes. For 5 to 10 minutes, envision you're in a spot you love. This might be the ocean side, the mountains, or the house you experienced childhood in. A solid eating regimen wealthy in entire food varieties, natural products, vegetables, entire grains, and lean protein might diminish pressure. Vigorous activity turns out best for the vast majority. This incorporates running, swimming, or lively strolling, etc.
5. Assuming you've attempted these self improvement techniques however keep on being exceptionally worried, find support. Chat with a psychological wellness supplier who works in pressure the executives.

References :

1. Jani, J. (2016). Stress Management Practices in Indian Industry. "*Journal of Research in Humanities and Social Science", 4* (11), 141-144
2. Burman, R, Dr. Goswami T. (2017). A systematic review of work stress. *"International Journal of Managemnt Studies"*, 3(9), 112-132
3. Aruldoss A & Kowalski K.B & Travis M.L & Parayitam S. (2021). The relationship between work–life balance and job satisfaction: moderating role of training and development and work environment, "*Journal of Advances in Management Research, Emerald Group Publishing Limited"*, 19 (2), 240-271

4. Goel M, Verma J.P. (2021). Workplace stress and coping mechanism in a cohort of Indian service industry, *"Asia Pacific Management Review",* 26 (3), 113-119

5. Chaudhuri, Sanghamitra & Arora, Ridhi & Roy, Paramita. (2020). Work–Life balance policies and organisational outcomes–a review of literature from the Indian context. Industrial and Commercial Training. 10.1108/ICT-01-2019-0003.

6. Pradhan B.(2020). A Study On The Job Stress In IT Industry- A Review Of Literature, *"International Journal of Scientific and Technology Research".* 9(4).

7. Kundaragi P. B, Dr. Kadakol A.M. (2015). *Work Stress of Employee : A literature review.* 1(3), 18-23

8. Prasad, K. D. V., Vaidya, R., & Anil Kumar, V. (2015). A Study on Causes of Stress among the Employees and Its Effect on the Employee Performance at the Workplace in an International Agricultural Research Institute, Hyderabad, Telangana, India. *"International Journal of Management Research and Business Strategy",* 4, 68-82.

Interpreting Sacrifice as Signs of Omen : A Study of the Sacrificial Practices of the *Boroks* faith in Tripura

Rati Mohan Tripura
Research Scholar, Department of English
Tripura University, India

Abstract :

Borok people worship Mother Nature for prosperity, healing, happiness, good health and long life. And in their culture sacrificial rituals play an important role in their everyday life.A deity or supreme being cannot be worshipped in a ritual without offering sacrificial blood. In sacrificial rituals each and every act of sacrifice is perceived as parts of omen. There are a series of methods in sacrificial acts for understanding the omens. One of the usual understanding methods of omen in a ritual is the act of beheading the sacrificial animals which the priest performs with strict religiosity. After the act of beheading, the assistant priest collects the sacrificial blood in a container to find out the good omen and bad omen of the householder. The collection of the sacrificial blood is accompanied by strict religiosity and ceremonial cleansing. Sacrificial blood has the potentiality of envisaging one's destiny and deeds. And since the groups reside in the forests, mountains, hills, and valleys nature to them is not just a source of sustenance but also an object of love and reverence.

Keywords :

Tongkwthar, animal sacrifice, Ritual, Boroks, omen,

Introduction :

India's northeast, widely known for its unexplored natural beauty, is also home to distinctive cultures, faith, tradition, history, myths, lifestyle and philosophy. Tripura is one of the eight states of northeast and home to nineteen indigenous communities: *Tripuri, Jamatia, Reang, Uchoi, Noatia, Orang, Mog, Chakma, Lushai, Garo, Bhil, Santal, Lepcha, Halam, Bhutia, Kuki, Chaimal, Khasia and Munda*. All these tribes may linguistically be divided into three groups: Tibetan- Burman group, Kuki-chin group and the Arakan- group. There are a total of nine clans or sub-tribes speaking Kokborok which is a Tibeto-Burman language. The kokborok speaking tribes are -

1) *Tripura*
2) *Reang*
3) *Jamatia*

4) *Noatia*

5) *Uchoi*

6) *Kalai*

7) *Rupini*

8) *Debbarma*

9) *Murasing*

All these nine clans or sub-tribes are addressed as *"Borok*", "*Twiprasa*" and "*Tripuri*". The word *Twiprasa* means children of water (*'Twi'* means water and '*Phra* 'means god *'sa'* means children). Every indigenous tribe or community has its own terminology to define and describe its worldview, its beliefs in cosmology, spirituality or god. A native word can authentically and comprehensively conceptualise the belief system like no borrowed term can do. Therefore, it is useful to employ the native term "*Tongkwtha*r" to describe the *Boroks* faith and ritual system.

The word *tongkwthar* is a *kokborok* term found in *kokborok* literature and dictionary. The term *tongkwthar* means "stay sacred" or "to be purified". *Tong* means stay and *kwthar* means sacred. *Borok tongkwthar* is an unorganised religion or a folk belief which does not have any scriptures to bind together or to lead someone within the religious norms. Indigenous faith systems are quite distinct in terms of norms, practices, philosophy, propitiations and are transmitted orally through myths, folk songs, rituals, taboos, riddles, and folktales etc. The indigenous people believe in souls and worship the mountains, hills, rivers, the sun, the moon, in order to propitiate the soul within all these natural objects. Edward Burnett Tylor calls this form of folk practice as animism, derived from the Latin word anima or animus which generally means a 'Breath' or 'soul' or 'spirit'. Sacrifice in *Boroks society* is known as '*dali'* meaning "to behead". Dali has always been an integral part of *Borok tongkwthar* since ancient times. The term has different meanings and significance based on rituals. Dali in *Borok tongkwthar* is a rite in which an object or an animal is offered to a divinity in order to establish, maintain, or restore a right relationship of a human being to the sacred order. The equipment of sacrifice differs according to the deity worshipped. It is believed that through the ritual of sacrifice, the consecrated life of an offering is liberated as a sacred potency that establishes a bond between the householder and the sacred power.

The important *Borok* festivals are *Garia, Pohra, Gugrani khorok sumani* while some of the significant rituals are *khurok sumani, Lampra, kharanglamani, ayokkwtalni cholk*. The tribal deities are usually made of bamboo and iron. The propitiatory rites require mandatory sacrifice of livestock such as chicken, pigs, male goats, ducks, and pigeons. Though in some lesser significant rituals, livestock sacrifice can be replaced by eggs, mud, bananas etc. These animals are sacrificed for the welfare of all family members, for hailing and for the protection of crops from evil spirits and black magic. The sacrificed blood is then sprinkled over the malai or the heads of the deity. The sacrifice is conducted by sacred specialist priests known as *ochai, chantai, tansrai*, and it is believed that there is a portent to be decoded in every sacrificial ritual. The shaman distinguishes the good omen from bad omen by interpreting different aspects of the consecrated blood, body and organism. Interpretation of the omens is

essential for establishing a successful connection between the visible and the spirit worlds. Omen in *Kokborok* is known as '*thui' or 'samai'*.

Sacrificial Rituals in *Borok tongkwthar*:

Different rituals have different types of omen practice depending on the householder's ailment and objective of worshipping the deity. Rituals are performed in chronological orders. For instance, *Lampra* is a sacrificial ritual which is worshipped for family welfare. But, the lampra ritual cannot be performed without performing the *Khoroksumani* ritual (purification ritual) prior to it. Different omen practices are prescribed to address different ailments or maladies. For instance, *lampra* is a ritual which is held in order to cure one who is suffering from an unknown disease such as nonstop menstruation, black magic, fever, coughing etc. Usually the householder makes this ritual in order to find out the reasons of the sickness. In this ritual two chickens are sacrificed to find out reasons and remedies through interpreting the omens. The *ochai* looks for omens in the intestine of the chickens.

Nokhungni motai is a ritual performed in the corner of house corridor. In this ritual, the deity known as *Chandi* is worshipped with a male-goat sacrifice. The deity is worshipped in order to augur the beneficent and maleficent omens of the forthcoming days. In this ritual the blood is collected in a container made of banana leaf which the shaman studies for omens. The ochai has standard methods for interpreting the omens. Other rituals which have different types of omen practice are *Khoroksumani, Abhorkhoba-mani, Khoamani, Srini toksa, Kharang lamani* etc. Some rituals require two performers *Ochai* (priest) and *Tansarai. Srinitoksa*, for instance, is a ritual performed by an *ochai* in order to exchange the life of the sick man with a chicken. The *ochai* begins the propitiation by uttering the name of the deity along with the names of the devotee. The *ochai* begins the ritual by holding the required the items and put them all into a *pokiya*. He asks the ailing man to sit by facing the east then he starts chanting holly words.

After chanting, the *ochai* moves the *pokya* in circle seven times over the ailing man's head. At the end of the prayer, the devotees or the householders are asked to supplicate before the deity and simultaneously the *Tansarai* beheads the chickens. And the sacrificed blood is immediately spilled on the deity made of bamboo altars and the assistant priest collects some blood in a container made of banana leaf, known as *'thorai'*. The *ochai* reads the omen from the collected blood and interprets for the householder. It is believed that there are different ingredients found in the sacrificed blood that display the omen. Usually the sacrificed blood is kept in a container made of banana leaf known as *thorai* and the portents are interpreted based on its red or black colour. Apart from colour variation, other features in the blood may also be considered as omen like presence of bubbles, holes, cracks, dirt, impurities or coagulating in one side of the container.

Methodology of the proposed work :

The tentative research methods are participant and non-participant observation, sampling methods, interview, structured and unstructured questionnaires, transcription and archival research. The researcher has gone through for audio and video recording as the resource persons relate the myths, rituals, customs, and tales, etc.

The proposed work has required both primary and secondary sources. The primary sources of the study has included folklore of the tribe, both verbal and non-verbal genres of expression like myths, legends, songs, tales, beliefs, ritual performances, materials, material culture associated with the gods and goddesses along with cultural life of the community. Secondary sources have comprised of historical and literary works, articles, dissertations, journals, newspaper articles, monographs, theses, etc hitherto undertaken on Tripura tribe or other tribes of Tripura.

Discussion :

Diversity in *Boroks* culture is huge and not easy to focus them all in written form as well as in oral form. Something can be only perceived through visualization. Animal sacrifice and its collected blood in a holy bamboo leaf container is an integral part that has been laid down to their lives for thousands of years. The beheading and the collected blood of the sacrificial animals are very significant since it works as omen in hailing one from sickness and unknown diseases. The *Ochai* or Shaman predicts the worshiper's fortune and prescribes specific rituals depending on the reasons and problems. In *Borok s*culture sacrificial rituals can rectify one's mistakes in the sense of deeds and provide medicine along with discipline life-style. The collected blood acts as an omen in the form of colour variation and features exposing the auspicious and inauspicious of the devotee. In any incarnation of a deity sacrificial blood is assumed as omen by the indigenous people. The tribes are provided with such medicines and a way of discipline lifestyle through this practice. Through this custom the communities get assembled together which turn into a great harmony. The *Borok* tribe is highly rich in its varied cultures, traditions and religions. In this small state peoples are living in great harmony. The *Boroks* have been worshipping the Mother Nature. Though a major portion of members of the tribe have converted into Christianity and other religions but their own religious beliefs and deities still exist in the society.

End note :

1. *Pokiya:* a basket made of bamboo used to carry things.
2. *Thorai:* a container made of banana leave used to contain the sacrificial blood.
3. *Ochai:* priest who conducts prescribed rituals.
4. *Tongkwthar:* the term describes the belief system of the community.
5. *Srimaa raja:* in the Borok society a female deity is also addressed as king.
6. *Chowak:* fermented rice beer.

Bibliography :

1. Bhowmik, D. L.(2003). Tribal Religion of Tripura, Directorate of Tribal Research and Cultural Institute, Govt.of Tripura, Agartala.
2. Battacharjee, Priyabrata. (1994) Tribal Poojas and Festivals inTripura.Dictorate of Tribal Research and Cultural Institute, Govt.of Tripura,Agartala.

Personal Interviews :

3. (Tripura.Chingkheri. Personal communication, February 11, 2019).
4. (Tripura.Rassan, Personal communication July 21, 2019).
5. (Tripura. Harendra, Persona communication, April 13, 2020).
6. (Tripura. Surendra, Personal communication, September 25, 2021).

Music therapy for Parkinson's disease on the basis of Biorhythm theory of Ayurveda

Riyana Sreedharan
Ph.D. Scholar, Swami Vivekananda Yoga AnusandhanaSamsthana.

Dr. Karuna Nagarajan
Assistant Professor, Swami Vivekananda Yoga AnusandhanaSamsthana

Abstract :

Music is a powerful instrument that can affect one's physical, mental, behavioral, and emotional states. Recent studies have shown that music affects humans on all levels, from the most base to the most nuanced. Therefore, in addition to being utilised for amusement, music can also be therapeutic. Music has been used as a rehabilitation technique in numerous researches that have already been completed. However, a thorough investigation of the genre and style of music that is suitable for a neurological ailment, Parkinson's disease, is lacking. Yoga and music therapy are two examples of complementary therapies that assist in treating the illness and reducing symptoms. We have created a music-based approach that combines yoga and Parkinson's disease patients' quality of life. Music therapy is one of the treatment methods that work as a Mind-Body Medicine.

Ayurveda is an ancient science that primarily focuses on illness situations, dosha balance (or biological constitution), and a person's psychological profile. Indian tunes, or Ragas, can alter one's mind patterns by evoking positive emotions and warding off negative ones. In order to make an appropriate raga selection for the disease based on fundamental Ayurvedic principles, we have assembled a collection of ragas based on biorhythm theory.

Keywords :

Ayurveda, Yoga, Music therapy, Parkisnon's disease, Vata

Introduction :

Parkinson's Disease :

Parkinson's disease (PD) is a progressive neurological disorder associated with a wide spectrum of motor and non-motor manifestations that have varying degrees of impact on function (Jankovic, 2008). It's a chronic neurodegenerative disease that primarily affects the elderly, but can also affect children and young adults. It is the second most prevalent neurodegenerative disease (Janice M. Beitz, 2014).

It is characterised by asymmetric bradykinesia, rigidity, resting tremor (Schapira, 1999), and sluggish movements, and it is associated with gradual neuronal

death in the substantia nigra and other brain structures (Tolosa, Wenning and Poewe, 2006). Parkinson's disease (PD) is an idiopathic nervous system disorder that manifests in both the motor and non-motor systems (Sherer *et al.*, 2012). Other neurodegenerative disorders can imitate idiopathic PD. These include Dementia with Lewy Bodies (DLB), Corticobasal Degeneration (CBD), Multiple System Atrophy (MSA), and Progressive Supra-nuclear Palsy (PSP). These are results of pathophysiologic loss or degeneration of dopaminergic neurons in the substantia nigra of the midbrain and the development of neuronal Lewy Bodies(Janice M. Beitz, 2014).

Coming to the Indian traditional medical system, Parkinson's disease was well described in the very ancient Indian medicinal system of Ayurveda under the name **Kampavata** (Manyam and Kumar, 2013) before 2500 BC (Perez-lloret, 2017). it is characterised by Kampa (Tremors), Stambha (Rigidity), Chesthahani (Akinesia) and Gativikriti (Akinesia) (Gait disorders) (Verma, 2019).

Causes :

There is substantial evidence for a genetic element in the cause of Parkinson's disease (Schapira, 1999). Aging, family history, pesticide exposure, and environmental pollutants (e.g.; synthetic heroin use) are all other possible causes for idiopathic Parkinson's disease. Its critical cause(s) is (are) still unknown (Janice M. Beitz, 2014). Age is the most persuasive risk for PD (Sherer *et al.*, 2012), (MacPhee G, 2001) with an estimated age of onset of just about 50 to 60 years. Additional risk variables have been reported, albeit it is questionable how they may affect men and women differently (Savica *et al.*, 2013). Many other risk components have been hypothesized, but epidemiologic evidence is lacking. Use of well water, milk consumption, excess body weight, exposure to hydrocarbon solvents, living in rural areas, farming or agricultural work, living in urban areas or industrialised areas with copper, manganese and lead exposure, high dietary iron intake, history of anemia and higher levels of education are among them (Jankovic J, H Hurtig, 2013).

The basic pathology is the degeneration of a cluster of nerve cells in the substantia nigra, which is located deep within the brain's center. These cells make use of Dopamine, which is produced in the substantia nigra (Ja-Hyun Baik, 2020) as their neurotransmitter to signal other nerve cells (Dr. Jatinder Verma, 2018). Dopamine fails to reach the areas of the brain that regulate motor functions as these cells degenerate and fail to function (Dr. Jatinder Verma, 2018).

People with PD, also tend to have more stoic, cautious, and inflexible personalities (Redfern, Bch and Coles, 2015). Coming to the metaphysical cause, according to Louise Hay, the probable cause for Parkinson's disease is Fear and an intense desire to control everything and everyone (Louise Hay, 1995). And fear is associated with changes in the dopaminergic systems (Garcia, 2017).

Based on the Ayurvedic concept, it is hypothesized that individuals with predominant Vata constitution are at a risk for developing Parkinson's disease (PD), described in Ayurveda as **Kampavata** (Manyam and Kumar, 2013).

Quality of life :

Parkinson's disease generates significant morbidity and shortens life expectancy. It also has considerable financial consequences, such as loss of earnings, healthcare costs, and drug treatment costs (Schapira, 1999). According to studies, Parkinson's disease affects a variety of dimensions of quality of life, primarily those connected to physical and social functioning (Schrag, Jahanshahi and Quinn, 2000). Parkinson's disease does not cause death in and of itself, although it is linked to higher morbidity and mortality rates (Janice M. Beitz, 2014). The most common co-occurring disorders are mood, anxiety, dissociative, and personality disorders (Maria *et al.*, 2007). Depression, anxiety, and apathy are common mood disorders among PD patients. Mood disorders have been identified as one of the most distressing non-motor symptoms in both early and late-stage Parkinson's disease patients(Lew, 2007)(Politis *et al.*, 2010). Anxiety is the most common psychiatric mood problem in Parkinson's disease, affecting roughly one-third of patients (Chou, 2013). Apathy (lack of motivation) and abulia (lack of ability to think or act) are two more symptoms that can develop. Apathy and persistent anxiety both have a negative impact on PD patients' quality of life. Another important non-motor symptom of Parkinson's disease is sleep disruption, which affects over 98% of patients (JA Opara, W Brola, M Leonardi, 2012). Urinary problems also arise in people with Parkinson's disease that includes urgency, frequency, nocturia, and urge incontinence(Yeo, Lehana, Rajindra Singh, Mohan Gundeti, Jayanta M. Barua, 2012). In PD patients, sexual dysfunction has also been a source of distress(MM, 2007). Sexual dysfunction is frequent in both men and women with Parkinson's disease(Bronner *et al.*, 2014) . In men, these include erectile dysfunction, difficulty reaching orgasm, or premature ejaculation; and in women, it most often involves low sexual desire, difficulty with arousal, and difficulty with orgasm (Pfeiffer, 2015).

Music :

Music is a form of art that expresses feelings and meanings through the features of sounds and their relationships (Munyaradzi and Zimidzi, 2012). Music is most magnificently described as the "*Ornamentation of silence with swaras*" by Swami ChinmayanandaSaraswati (Sabat, 2021).

The root of Indian music is found in the Vedas. The *Sama Veda* is 'Geya' that can be recited musically. It is a Sanskrit word derived from the word *Saman*which means "song" and Veda which means "Knowledge". The meaning of Samaveda is the Veda of melodies and chants (Gorang, 2017). Sama Veda is considered to be the foundation of Indian classical music(Rathi and Aravind, 2015).

The roots of Indian Classical music can be traced to *Sama Veda* and its upveda *Gandharva Veda*, the science of music(Gorang, 2017).

Music therapy and its elements :

Music Therapy (MT) is described as the use of music and/or of its constituents (sound, rhythm, melody, and harmony) by an experienced music therapist, in individual or group relationships, within the context of a formally defined process, with the objective of enhancing and promoting interaction, relationships, learning, mobilisation, expression, organisation, and other relevant therapeutic goals to meet physical, emotional, mental,

social, and cognitive needs (Raglio and Gianelli, 2009). There are two major branches of MT, active and passive. In a nutshell, active MT is based on the therapist and patients improvising music together, with the patients taking an active role through the use of instruments and voice. Passive MT is performed on a patient who is at rest. The therapist plays soothing music and asks the patient to picture tranquil imagery in order to induce a state of mental relaxation. (Claudio Pacchetti, Francesca Mancini, Roberto Aglieri, Cira Fundar'O, Emilia Martignoni, 2000).

In ancient times music was called "*gândharva*", later it was called "*gîta*" or "*sangîta*". Music is the subtlest and most refined type of fine arts, known in India as *Kalâ Vidyâ* in the name of *Sangîta*, which consists of the art of singing, dancing and playing instruments (Debendra Narayan Satapathy, Sanjay Kumar Satapathy, 2018). Music according to *Sangita Ratnakara is "Gitam Vadyam tatha Nrtyam trayam Sangitamucyate"* which means, the three arts music, instrument and dance are collectively known as Music (Sarngadeva, 2007).

Indian classical music has seven basic elements and they are nada, shruti, swara, raga, tala, rasa, and that (Nagarajan, Srinivasan and Ramarao, 2015). Nada means sound. Shruti is the musical interval. Swaras are the notes used (Nagarajan, Srinivasan and Rao, 2015). *Kômal* and *Tîvra* are the names given to each note or *Svara* that is either lowered or raised in pitch (Karuna Nagarajan, Thaiyar M Srinivasan, 2014). Raga is a melodic architecture in Indian traditional music with defined notes and a system of rules (Bharavi U. Desai, Kunjal I. Tandel, 2020). Tala is the rhythm (Rejimon, 2018). Rasa or aesthetic mood is when emotion is awakened in such a way that it loses all cognitive tendencies and is experienced in an impersonal contemplative mood (Nagarajan, Srinivasan and Rao, 2015).

It is said that "*Yatho Nada Tatho Shruti, Yatho Shruti Tatho Swara, Yatho Swara Tatho Raga, Yatho Raga Tatho Geeta, Yatho Geeta Tatho Atma, Yatho Atma Tatho Nadabrahma"*. This Means: Where the sound goes, there the shruti should follow; where the shruti is, there the notes should shadow, where the notes are, there the raga should be drawn,.where the raga is, there the music should rise, where the music is, there the soul should be followed, where the soul is, there God will be experienced (Rejimon, 2018).

Relationship between music and Parkinson's diseases based on different studies :

A study shows that music therapy is effective on the motor, affective, and behavioral functions. Active music therapy helps in the above features on people with Parkinson's diseases under rehabilitation programs (Claudio Pacchetti, Francesca Mancini, Roberto Aglieri, Cira Fundar'O, Emilia Martignoni, 2000). Another study showed significant improvements in singing quality and voice range, coupled with the absence of a decline in speaking quality support group singing as a promising intervention for persons with PD (Baker, Lotan and Lagesen, 2012). A recent study showed that choral singing was perceived by people with stroke and PD to help them self-manage some of the consequences of their condition, including social isolation, low mood, and communication difficulties (Tippett *et al.*, 2016). A recent study found strong evidence that particular stimulating music affects motor coordination of

Parkinson's patients(Gunther Bernatzky, Patrick Bernatzky, Horst-Peter Hesse, Wolfgang Staffen, 2004). A study concluded that singing positively affected gait variability while having no detrimental effect on velocity, pace, or stride length (Harrison, Mcneely and Gammon, 2017). A pilot study indicated that Neurologic Music Therapy sensorimotor techniques may be employed to improve gait and other rhythmical activities for individuals with P.D. (Bukowska, Marchewka and Piotr Kr e zalek3, El zbieta Mirek, 2016). PD patients with more severe motor symptoms as assessed by Hoehn and Yahr (HY) scores displayed enhanced visual engagement of the target and this impairment was reduced during trials performed in association with accompanying preferred musical pieces(Sacrey, Clark and Whishaw, 2009). Results from a study suggest that therapeutic singing may improve swallow function by increasing laryngeal elevation and protecting the airway from foreign material for longer periods of time, and may have additional benefits on other clinical symptoms of PD (Stegemoller *et al.*, 2017). A study results suggest that singing may be a beneficial and engaging treatment choice for improving and maintaining vocal function and respiratory pressure in persons with PD (Stegemoller *et al.*, 2017). Music therapy of mentally singing while walking was useful in improving gait disturbance in PD patients. The therapy improved both the speed and the steps taken while walking a straight path and turning (Stegemoller *et al.*, 2017). It can also be hypothesized that musical training (Indian classical) can be used to improve pre-attentive auditory discrimination skills in clinical populations including those with central auditory processing disorders, learning disability, Parkinson's disease(Kumar and Kumar, 2016). A different study indicates that the use of cadence-matched, salient music to accompany walking is a feasible and enjoyable intervention for use amongst patients with mild to moderate PD. Cadence music was slected according to the patient's preference (Bruin *et al.*, 2010). A cadence is the end of a phrase in which the melody or harmony produces a sense of resolution in Western musical theory (Don Michael Randel, 2002). Each cadence can be correlated to different ragas in the Carnatic music system. Carnatic music has numerous ragas that are derived from the main 72 parent raga called melakarta ragas (Murty, 1975). Here mela 8, *hanumatodi* is the Phrygian mode; mela 20, *natabhairavi* is the Aeolian mode, mela 22, *kharaharapriya* is the Dorian mode; mela 28, harikamboji is the Mixolydian mode; mela 29, *shankarabha-ranam* is the Ionian mode, and mela 65, *Kalyani* is the Lydian mode (Morris and Ravikiran, 2000).

YOGA AND PD :

A study concluded that yoga may improve aspects of QOL and physiological functions in stages 1- 2(Neena K Sharma, Kristin Robbins, Kathleen Wagner, 2015). Yoga practice appears to increase motor function, which may be explained in part by improvements in balance, strength, posture and gait in a study conducted recently. It also says Yoga programs may give a way to preserve wellbeing and possibly quality of life for people with PD and stop its progressive nature (Yvonne Searls Colgrove*, Neena Sharma, Patricia Kluding, Debra Potter, Kayce Imming, Jessica VandeHoef, Jill Stanhope, Kathleen Hoffman, 2012). An eight-week adaptive yoga programme for ten people with Parkinson's disease resulted in near-

significant improvements in depression, lower extremity functional strength and flexibility, and motor control, according to outcome assessments(Boulgarides and Barakatt, 2016). A latest research fortifies Yoga Meditation's superiority to PRO (proprioceptive training program) in terms of enhancing balance and proprioceptive acuity in Parkinson's disease patients (Cherup *et al.*, 2021). Another recent research proposes that Yoga is a practical and acceptable approach for increasing motor function in people with Parkinson's disease (Cheung *et al.*, 2018).

The suggested mechanism of music on Parkinson's disease based on Ayurveda:

According to Ayurvedic principles, there are three categories namely, doshas, dhatus, and malas. There are three doshas that govern the physiological and physicochemical functions of the body: Vata, pitta, and kapha. Vata is capable of all movements and sensations, as well as motor functions. Pitta is in control of all physiochemical processes such as metabolism (production of heat and energy). Kapha is the material that provides the fluid matrix to the body, allowing it to maintain compactness or cohesiveness. In terms of health, these doshas are in a state of equilibrium. Any disruption in the dosha equilibrium might result in disease. The type of disturbance determines the type of disease or symptom. Nervous and mental illnesses, for example, are believed to be caused by vata humour disturbances. Neurologic illnesses are mainly studied in Ayurveda under the vata rogas (roga: disease)(Manyam, 1990). According to Ayurveda, those with a predominant Vata constitution are more likely to develop Parkinson's disease (PD) (Manyam and Kumar, 2013).

The psychological component of *Vâta* is *Rajas*(David Frawley, 1999). As discussed earlier the metaphysical cause of Parkinson's disease is also fear (Louise Hay, 1995).

Parkinson's disease (PD) is a progressive, incurable neurodegenerative disorder (VINCENT M. VACCA, JR., MSN, 2019). It is possible to lessen the severity of the symptoms, but it is impossible to exactly cure the disease. Fear is the main emotional cause of Parkinson's disease(Louise Hay, 1995). These patients will also show a lack of motivation and lack of initiation of thoughts or behaviours (Radakovic, 2017). To alleviate these factors, we can use ragas that generate vira rasa, which can contribute towards the development of self-assurance and confidence. This can be produced by the ragas which have svaras *Ga and Ni Komal* with frequencies 288Hz and 432Hz respectively (Nagarajan, 2021).

In music therapy, the principal treatment strategy is emotional healing. Emotional healing aims to replace negative feelings such as criticism, fury, guilt, and resentment with positive emotions such as affection, compassion, pleasantness, and peace.

Regardless of the medicinal system that practitioners practice, the *Sâmânya-VisesaSiddhanta* (Ch.Su.1/ 44.45.) principle in Ayurveda is relevant. Components with similar features, according to this theory, will have a higher value, and dissimilar value declines(Loon, 1981).

A pleasing rasa can be produced by a specific type of music that expresses an affirmative feeling, replacing the unpleasant rasa. Premeditated devotion to

the *ragas* from *That Kafi, Asaveri, Bhairavi and Todi* which uses *svaras* Ga and *Ni Komal*, generates *vira rasa* or the aesthetic mood of courage in the listener, helps to eliminate the emotion of fear, which is the predominant factor for the cause in patients with PD(Sobhana Nayar, 1989).

Table 1 : gives *That* and some of its important *Ragas* with prescribed timing to manage Parkinson's disease according to bio-rhythm theory.

Fig1: Biorhythm theory and lifestyle prescription according to *Āyurveda (Dinacarya)*

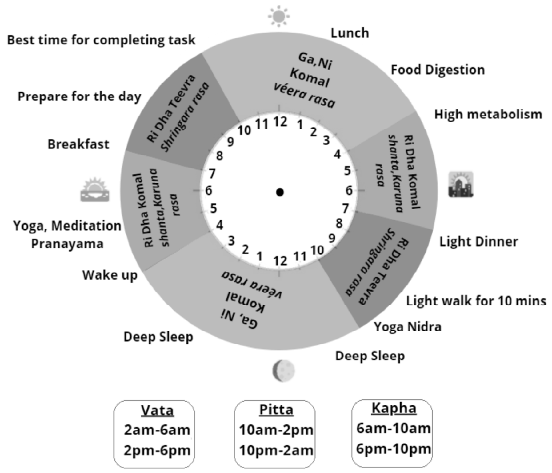

Table 1: That, Svaras and Ragas suggested for Parkinson's disease according to Biorhythm Theory.

Disturbed *Doṣa*: (Disorder)	Thāt and svarās used	Some important rāgās of this thāt	Carnatic equivalent	Some important rāgās	Time	Timing
Vāta *doṣa* : (Insomnia)	Kāfi : *Ga, Ni Kōmal*	Kāfi	Kharaharapriya	Kharaharapriya	Anytime	
		Pīlu		Pīlu	Anytime	
		Bhimpalsri		Ābhēri	Afternoon	1pm-4pm
		Brindāvani Sārang		Pushpalathika	Afternoon	1pm-4pm
		Śuddha Sārang			Afternoon	1pm-4pm
	Asāvēri : *Ga, Ni Kōmal*	Asāvēri	Natabhairavi	Natabhairavi	Morning	7am-10am
		Adāna		Darbāri Kānada	Midnight	10pm-1am
		Jaunpuri		Jonpuri	Morning	10am-1pm
		Darbāri Kānada		Darbāri Kānada	Midnight	10pm-1am
	Bhairavi: *Ga, Ni Kōmal*	Bhairavi	Hanuma Tōḍi	Sindhubhairavi	Late morning	10am-1pm
		Malkauns		HindōØam	Midnight	10pm-1am
	Tōḍi : *Ga, Ni Kōmal*	Bilakshani Tōḍi	Shubhapantuvarāli	Bahaduri Tōḍi	Morning	7am-10am
		Tōḍi		Shubhapantuvarāli	Morning	7am-10am
		Multāni		Gamakasamandam	Late afternoon	1pm-4pm
		Gurjari Tōḍi		Śēkharachandrika.	Late morning	10am-1pm
		Madhuvanti		Dharmāvati	Dusk	4pm-7pm

(Karuna, Srinivasan & H. R., 2013)

Conclusions :

Parkinson's disease is the most frequent among all neurological disorders. Aging, pesticide exposure, environmental factors, genetic component, etc are some of the causes. There are various reasons according to modern science, however, in Ayurveda, it is linked to disruptions in the Doshas. It is due to the disturbance in Vata dosha. The pathological feature of Parkinson's disease is the loss of dopaminergic neurons from the substantia nigra. Even though drugs like Levodopa, used as a dopamine supplement agent, and other drugs are available, it appears that the majority of them have negative side effects. Patients with Parkinson's disease are increasingly turning to Ayurveda and other alternatives for treatment due to the long-term side effects of Levodopa and other drugs. In today's medical system, there is no satisfactory treatment. As a result, for Parkinson's disease, a multi-modality treatment is chosen here which can be used as an add-on therapy as it provides exceptional results in the management of the disease.

Music is an effective tool that can influence one physically and emotionally. It can extract a wide range of emotions, making it a mind-body medicine tool. The most important aspects of the Indian classical music system are raga and rasa. Each raga elicits a distinct aesthetic feeling. According to Ayurveda, Parkinson's disease is *Vatavyadhi* (the disease caused due to the disturbance in vata) and the metaphysical cause is fear, ragas that induce vira rasa can help in building confidence and self-assurance to reduce fear and other related symptoms in patients with PD.

According to Parkinson's research studies, there is a range of techniques to treating the illness, the most effective of which are Ayurveda and Yoga, which provide lifestyle recommendations.There are studies based on yoga modules which include sukshma vyayama (yogic practices which loosen your joints and remove the energy blockages) and other asanas for managing Parkinson's disease. Music as an addition to lifestyle adjustments that create a natural rhythm, as well as attitudinal changes based on Ayurveda's Sadvritta and Yoga's Yama and Niyama (social and personal practices), can be effective in the management of Parkinson's disease.

References :

1. Baker, F. A., Lotan, M. and Lagesen, S. K. (2012) 'The Effect of Group Music Therapy on Mood , Speech , and Singing in Individuals with Parkinson ' s Disease - A Feasibility Study', *Journal of Music Therapy*, 49 (3), pp. 278–302.
2. Bharavi U. Desai, Kunjal I. Tandel, R. M. P. (2020) 'Essential Features Extraction from Aaroh and Avroh of Indian Classical Raag -YAMAN', *IRJET-International Research Journal of Engineering and Technology (IRJET)*, 7(3).
3. Boulgarides, L. and Barakatt, E. (2016) 'Measuring The Effect Of An Eight-Week Adaptive Yoga Program On The Physical And Psychological Status Of Individuals With Parkinson's Disease. A Pilot Study', (January). doi: 10.17761/ijyt.24.1.3775260 54663236k.
4. Bronner, G. *et al.* (2014) 'Parkinsonism and Related Disorders Correlates of quality of sexual life in male and female patients with Parkinson disease and their partners', *Parkinsonism and Related Disorders*. Elsevier Ltd, 20(10), pp. 1085–1088. doi: 10.1016/j.parkreldis.2014.07.003.
5. Bruin, N. De *et al.* (2010) 'Walking with Music Is a Safe and Viable Tool for Gait

Training in Parkinson's Disease/: The Effect of a 13-Week Feasibility Study on Single and Dual Task Walking', *Parkinson's Disease*, 2010. doi: 10.4061/2010/483530.

6. Bukowska, A. A., Marchewka, A. and , Piotr Kr e zalek3, Elzbieta Mirek, P. B. and (2016) 373 'Neurologic Music Therapy Training for Mobility and Stability Rehabilitation with Parkinson's Disease - A Pilot Study', 9(January), pp. 1–12. doi: 10.3389/fnhum.2015.00710.
7. Cherup, N. P. *et al.* (2021) 'Yoga Meditation Enhances Proprioception and Balance in Individuals Diagnosed With Parkinson ' s Disease Yoga Meditation Enhances Proprioception and Balance in Individuals Diagnosed With Parkinson ' s Disease', *Perceptual and Motor Skills*, 128(1), pp. 304-323. doi: 10.1177/0031512520945085.
8. Cheung, C. *et al.* (2018) 'Effects of yoga on oxidative stress , motor function , and non-motor symptoms in Parkinson ' s disease/: a pilot randomized controlled trial', *Pilot and feasibility studies*. Pilot and Feasibility Studies, 4 (1), pp. 1–11.
9. Chou, K. L. (2013) 'Clinical manifestations of Parkinson disease', 7(22).
10. Claudio Pacchetti, Francesca Mancini, Roberto Aglieri, Cira Fundar'O, Emilia Martignoni, G. N. (2000) 'Active Music Therapy in Parkinson ' s Disease/: An Integrative Method for Motor and Emotional Rehabilitation', *Psychosomatic Medicine*, 62(3), pp. 386–393.
11. David Frawley (1999) *Yoga and Ayurveda - Self healing and Self realization*. First indi. Motilal Banarsidas Pvt Ltd., Delhi; 2000.
12. Debendra Narayan Satapathy, Sanjay Kumar Satapathy, R. D. W. (2018) 'Effect of Music on Sleep Disorders-A Review', *Journal of Ayurveda Physicians & Surgeons*, 5(3), pp. 100–102.
13. Don Michael Randel (ed.) (2002) *The Harvard Concise Dictionary of Music and Musicians*.
14. Dr Jatinder Verma, D. S. P. and D. G. M. (2018) 'EFFECT OF PANCHKARMA THERAPY IN THE MANAGEMENT OF KAMPAVATA W . S . R TO PARKINSON'S DISEASE-A CASE STUDY', *International Journal of Advanced Research (IJAR)*, 6(9), pp. 312-318. doi: 10.21474/IJAR01/7678.
15. Garcia, R. (2017) 'Neurobiology of fear and specific phobias', *Learning & Memory*, 24(9), pp. 462-472. doi: 10.1101/lm. 044115.116.24.
16. Gorang, S. (2017) 'Vedic Mantras and Classical Music', *Upstream Research International Journal (*, V(Iii), pp. 96–98.
17. Gunther Bernatzky, Patrick Bernatzky, Horst-Peter Hesse, Wolfgang Staffen, G. L. (2004) 'Stimulating music increases motor coordination in patients afflicted with Morbus Parkinson', *Neuroscience Letters*, 361, pp. 4-8. doi: 10.1016/j.neulet.2003. 12.022.
18. Harrison, A. E. C., Mcneely, M. E. and Gammon, M. (2017) 'The feasibility of singing to improve gait in Parkinson disease', *Gait & Posture*. Elsevier B.V. doi: 10.1016/j.gaitpost.2017.02.008.
19. Ja-Hyun Baik (2020) 'Stress and the dopaminergic reward system', *Experimental & Molecular Medicine*, 52(12), pp. 1879–7890. Available at: https://doi.org/10.1038/s12276-020-00532-4.
20. JA Opara, W Brola, M Leonardi, and B. B. (2012) 'Quality of life in Parkinson`s Disease', *Journal of Medicine and Life*, 5(4), pp. 375–381.
21. Janice M. Beitz (2014) 'Parkinson's disease: a review', *Frontiers in Bioscience*, 6(3), pp. 65–74.
22. Jankovic J, H Hurtig, J. D. (2013) 'Etiology and pathogenesis of Parkinson Disease'.
23. Jankovic, J. (2008) 'Parkinson ' s disease/: clinical features and diagnosis', (1957), pp. 368-376. doi: 10.1136/jnnp.2007.131045.
24. Karuna, N., Srinivasan, T. M. and Hr, N. (2013) 373 'Review of Ragas and its Rasas in Indian music and its possible applications in therapy', *International Journal of Yoga-Philosophy, Psychology and Para-psychology*, 1. doi: 10.4103/2347-5633.123288.

25. Karuna Nagarajan, Thaiyar M Srinivasan, H. N. (2014) 'MUSIC THERAPY BASED ON INDIVIDUAL ' S " BIOLOGICAL HUMOR "-WITH REFERENCE TO MEDICAL ASTROLOGY/: A REVIEW', *International Ayurvedic Medical Journal*, 2 (4).

26. Kumar, H. and Kumar, P. (2016) 'Pre-attentive auditory discrimination skill in Indian classical vocal musicians and non-musicians', *Journal of Otology*. Elsevier Ltd, 11(3), pp. 102-110. doi: 10.1016/j.joto.2016.06.002.

27. Lew, M. (2007) 'Overview of Parkinson ' s Disease'.

28. Louise Hay (1995) *Heal Your Body: The Mental Causes for Physical Illness and the Metaphysical Way to Overcome Them*. Hay House, Inc, 1995.

29. MacPhee G, D. S. (2001) 'Parkinson's Disease.', *Reviews in Clinical Gerontology*, pp. 33-49.

30. Manyam, B. V. (1990) 'Paralysis Agitans and Levodopa in " Ayurveda ' '/: Ancient Indian Medical Treatise', *Movement disorders: official journal of the Movement Disorder Society*, 5(1), pp. 47–48.

31. Manyam, B. V and Kumar, A. (2013) 'Ayurvedic Constitution (Prakruti) Identifies Risk Factor', 19(7), pp. 644–649. doi: 10.1089/acm.2011.0809.

32. Maria, G. *et al.* (2007) 'Anxiety and Mood Disorders in Psychogenic Nonepileptic Seizures', *Journal of Epilepsy and Clinical Neurophysiology*, 13, pp. 28–31.

33. MM, B. (2007) 'Recognizing and treating nonmotor aspects of Parkinson's Disease', *ANNALS OF LONG TERM CARE*, 15 (8), p. 31.

34. Morris, R. and Ravikiran, C. N. (2000) 'Ravikiran's Concept of Melharmony:An Inquiry into Harmony in South Indian Ragas'.

35. Munyaradzi, G. and Zimidzi, W. (2012) 'Comparison of Western Music and African Music', *Scientific Research*, 3(2), pp. 193-195.

36. Murty, P. S. N. (1975) 'Simple repetitive ragas in Karnataka music', *Sangeet Natak Akademi*, (38).

37. Nagarajan, K. (2021) *An Introduction to Indian Music Therapy*. Authorvine Publishers.

38. Nagarajan, K., Srinivasan, T. M. and Ramarao, N. H. (2015) 'Immediate effect of listening to Indian raga on attention and concentration in healthy college students/: A comparative study', *Journal of Health Research and Reviews*, 2(3), pp. 103–107. doi: 10.4103/2394-2010.168367.

39. Nagarajan, K., Srinivasan, T. and Rao, N. (2015) 'Immediate Effect of Indian Music on Cardiac Autonomic Control And Anxiety: A Comparative Study', *Heart India*. Medknow, 3(4), p. 93. doi: 10.4103/2321-449x.172350.

40. Neena K Sharma, Kristin Robbins, Kathleen Wagner, Y. M. C. (2015) 'A randomised controlled study of the therapeutic effects of yoga in people with parkinson's disease', *International Journal of Yoga*, 8(1), p. 74.

41. Perez-lloret, S. (2017) 'Ayurveda Medicine for the Treatment of Parkinson ' s Disease', (April). doi: 10.5772/56251.

42. Pfeiffer, R. F. (2015) 'Non-motor symptoms in Parkinson ' s disease', *Parkinsonism and Related Disorders*. Elsevier Ltd, 22, pp. 7-10. doi: 10.1016/j.parkreldis.2015.09.004.

43. Politis, M. *et al.* (2010) 'Parkinson ' s Disease Symptoms/: The Patient ' s Perspective', 25(11), pp. 1646–1651. doi: 10.1002/mds.23135.

44. Radakovic, R. (2017) 'Apathy dimensions in Parkinson ' s disease', *Int J Geriatr Psychiatry 2017*. doi: 10.1002/gps.4697.

45. Raglio, A. and Gianelli, M. V (2009) 'Music Therapy for Individuals with Dementia/: Areas of Interventions and Research Perspectives', *Current Alzheimer Research*, 6(3), pp. 293-301.

46. Rathi, K. N. and Aravind, A. (2015) 'Education under the Kerala Style of Vedic Oral Tradition with Special Reference to Samaveda', *IOSR Journal of Research & Method in Education (IOSR-JRME)*, 5(3), pp. 45-48. doi: 10.9790/7388-05324548.

47. Redfern, C., Bch, M. B. and Coles, A. (2015) 'Parkinson ' s Disease, Religion, and

Spirituality', *Movement Disorders Clinical Practice*, 2(4), pp. 341–346. doi: 10.1002/mdc3.12206.

48. Rejimon, P. K. (2018) 'Philosophical Foundations of Indian Music', *International Journal of Innovative Studies in Sociology and Humanities ISSN*, 3(1), pp. 5–9.
49. Sabat, N. (2021) 'Impact of Yogic Practices on Classical Vocal Music', *Lokâyata: Journal of Positive Philosophy (ISSN*, 12(September).
50. Sacrey, L. R., Clark, C. A. M. and Whishaw, I. Q. (2009) 'Music Attenuates Excessive Visual Guidance of Skilled Reaching in Advanced but Not Mild Parkinson ' s Disease', 4(8). doi: 10.1371/journal.pone.0006841.
51. Sarngadeva (2007) *Sangita-ratnakara of* Sarngadeva *Sanskrit Text and English Translation with Comments and Notes · Volume 1*. Edited by R. K. S. Prem Lata Sharma. Munshiram Manaharlal.
52. Savica, R. *et al.* (2013) 'Hormones and Behavior Risk factors for Parkinson ' s disease may differ in men and women/: an exploratory study', *Hormones and Behavior*. Elsevier Inc., 63(2), pp. 308–314. doi: 10.1016/j.yhbeh.2012.05.013.
53. Schapira, A. H. V (1999) 'Parkinson's disease', *BMJ*, 318(7179), pp. 311–314.
54. Schrag, A., Jahanshahi, M. and Quinn, N. (2000) 'How Does Parkinson's Disease Affect Quality of Life/? A Comparison With Quality of Life in the General Population', 15(6), pp. 1112-1118.
55. Sherer, T. B. *et al.* (2012) 'Overcoming Obstacles in Parkinson ' s Disease', *Movement Disorders*, 27(13), pp. 1606–1611. doi: 10.1002/mds.25260.
56. Sobhana Nayar (1989) *Bhatkhande's Contribution to Music: A Historical Perspective*. Bombay: Popular Prakashan, 1989.
57. Stegemoller, E. L. *et al.* (2017) 'Therapeutic Singing as an Early Intervention for Swallowing in Persons with Parkinson's Disease', *Complementary Therapies in Medicine*. Elsevier Ltd, 31, pp. 127–133. doi: 10.1016/j.ctim.2017.03.002.
58. Tippett, L. *et al.* (2016) 'Choral singing therapy following stroke or Parkinson ' s disease/: an exploration of participants ' experiences', *Disability and Rehabilitation*, 38(10), pp. 952-962. doi: 10.3109/09638288.2015.1068875.
59. Tolosa, E., Wenning, G. and Poewe, W. (2006) 'The diagnosis of Parkinson ' s disease', pp. 75–86.
60. Verma, J. (2019) 'PARKINSON ' S DISEASE/: TREATMENT APPROACH THROUGH AYURVEDA (BASED ON PREVIOUS STUDIES AND PUBMED ARTICLES)', (June).
61. VINCENT M. VACCA, JR., MSN, R. (2019) 'Parkinson disease/: Enhance nursing knowledge', *Nursing 2020*, 49(11), pp. 24-32. doi: doi: 10.1097/01.NURSE.0000585896.59743.21.
62. Yeo, Lehana, Rajindra Singh, Mohan Gundeti, Jayanta M. Barua, J. M. (2012) 'Urinary tract dysfunction in Parkinson's disease: a review', *International urology and nephrology*, 44(2), pp. 415–424.
63. Yvonne Searls Colgrove*, Neena Sharma, Patricia Kluding, Debra Potter, Kayce Imming, Jessica VandeHoef, Jill Stanhope, Kathleen Hoffman, and K. W. (2012) 'Effect of Yoga on Motor Function in People with Parkinson's Disease/: A Yoga & Physical Therapy Effect of Yoga on Motor Function in People with Parkinson ' s Disease/: A Randomized , Controlled Pilot Study', *J Yoga Phys Ther*, 2(2), p. 112. doi: 10.4172/2157-7595.1000112.

A Study of Antiquity of Hemp in Global and Indian context along with Ethnographic Findings in Uttarakhand

Madhushree Barik
Research Scholar, Department of Anthropology and Tribal Studies, Central University of Jharkhand

Abstract

Hemp is one of the oldest cultivated crops in the history of mankind probably been utilized for more than 10,000 years. Among the four Vedas in Hinduism, the Atharvaveda mentions cannabis as one of the five sacred plants and also refers it as a source of happiness. This is also the earliest written reference of cannabis in India dating back to about 1500 BCE. Ayurveda calls this plant as 'Vijaya' and it is also said that a guardian angel resides in its leaves and is a source of mirth, a joy-giver and a liberator. In the Sushruta Samhita, an ancient Sanskrit text on medicine and surgery perhaps dating from third to eight centuries BCE, has also recommended hemp as the perfect cure for phlegm, catarrh and diarrhoea. Hemp was extensively used in construction of Ellora caves as well as by the Yadavas, who built the Deogiri Fort in 12th century. In Uttarakhand, local peoples have developed a sense of emotion, care and protection towards the hemp plant. The cultivation of hemp is done since generations in spite of various political and legal issues, and traditional use of hemp seeds in various cuisines is still an emotion for locals of Uttarakhand.

Keywords :

Culture, Hemp, Legal, Social, Political

Introduction :

Hemp (*Cannabis sativa*) plant belongs to the family of Cannabaceae and is used since ages for its bast fibres, edible seeds and also for many therapeutic and prophylactic uses. It is extremely diverse as it can be refined and used for manufacturing a variety of commercial items such as pharmaceuticals, paper, shoes, food, textiles, rope, biofuel and bioplastic. Hemp has a long and complex history associated with human beings - from being an essential commodity in the Age of Exploration to its widespread prohibition in the 20th century. Resurgence in interest in this ancient crop was sparked by recent perspective shifts. Sustainable agricultural production systems that are both socially, economically, and environmentally sound can be achieved with hemp. The advantages

of hemp production are not without drawbacks, and the crop still faces regulatory obstacles that are made worse by the industry's efforts to skirt the law.

History of hemp fibre and fabric :

Hemp is one of the oldest cultivated crops in the history of mankind probably been utilized for more than 10,000 years i.e., from the Stone age (Joshi S. , 2020). In global context, the use of hemp for fibre, fabrics, pottery and paper has been recorded long ago. Hemp's origin lies in Central Asia and the cultivation of hemp plant for hemp fibre was recorded in China back in 2800 BCE and then it spread to the Mediterranean countries of Europe in the early Christian era. Ernest Small has described in his article *Evolution and Classification of Cannabis sativa (Marijuana, Hemp) in Relation to Human Utilization* that hemp cultivation was introduced to western Asia and Egypt, and subsequently to Europe somewhere between 1000 and 2000 B.C. Ernest Small also mentioned that hemp was one of the leading fiber crops of temperate regions from the 16th through the 18th centuries, it was widely used for rot-resistant, coarse fabrics, and the majority of all twine, rope, ship sails, rigging and nets up to the late 19th century was made from hemp fiber (Small, Evolution and Classification of Cannabis sativa (Marijuana, Hemp) in Relation to Human Utilization, 2015).

The Report of the Indian Hemp Drugs Commission, 1893-94 records that throughout India, it was only in 'British Kumaon and Garhwal' that hemp was cultivated for fibre. In pre-colonial Uttarakhand, the hemp producers enjoyed the livelihood and social status of a prosperous community because of their monopoly in hempen business. However, the hempen cloth (*bhangela*) lost its market with the introduction of inexpensive and fashionable machine-made cloth by the British, which directly affected the social and economic status of those hemp producers (Joshi M. P., 2017). Before the introduction of machine-made textile in Uttarakhand, bhangela was the principal clothing fabric of the masses and it was the chief clothing fabric of the poor classes in Garhwal during the summer months, upto the last quarter of the 19th century AD (Atkinson, 1882). Then in 2018, The Uttarakhand government has issued the first ever industrial hemp cultivation license in India to the Indian Industrial Hemp Association (IIHA), to cultivate hemp for fibre to be used in textile industry.

History of hemp paper :

The first identified coarse paper made from hemp, dates to the early Western Han Dynasty, 200 years before the nominal invention of papermaking by Marquis Cai Lun, who improved and standardized paper production using a range of inexpensive materials, including hemp ends, tattered clothes and broken fishing nets to make paper around 2000 years ago (htt5). By the sixth century AD, the papermaking process spread to Korea and Japan. Hemp paper only reached Europe in the 13th century via the Middle East. In Germany it was used for the first time in the 14th century (htt4). Johannes Gutenberg's revolutionary printing press churned out Gutenberg Bibles printed on paper made from clothing rags and hemp fibres (Welle, 2022). Moving forward to 200 BC, China invented its first hemp-based paper by crushing hemp fibres, mixing them with bark and adding water. The oldest documents written on hemp

paper are Buddhist text from 2nd and 3rd centuries AD. In 1909, during the renovation of a Swedish church, five roughly 3000 year old tapestries from the Viking era were rediscovered, some of which had been made from hemp (Welle, 2022). Even if the accurate history of use of hemp paper in India is still unexplored, there are various manufacturers and suppliers of hemp paper at present such as OG Hemp, Ukhi, Moondust Paper, etc. who deal with hemp cartons, hemp paper bags, hemp paper and hemp paper crafts.

History of hemp medicine :

Cannabis has been used for its alleged healing properties for millennia. One of the earliest documented records of hemp being used as a medicine comes from ancient China, acknowledge attributed to the mythical Emperor Shen Nung and his book "Ben Cao Jing", which describes the medicinal and spiritual properties of hemp (Welle, 2022). The first documented case of use of hemp as medicine dates back to 2800 BC, when it was listed in the Emperor Shen Nung's (regarded as the father of Chinese medicine) pharmacopoeia (htt6). Therapeutic indications of cannabis are mentioned in the texts of the Indian Hindus, Assyrians, Greeks and Romans.

The sacred Atharvaveda is the earliest written reference of cannabis in India dating back to about 1500 BCE (Grierson, 1894). In the *Sushruta Samhita*, an ancient Sanskrit text on medicine and surgery perhaps dating from third to eight centuries BCE, has also recommended cannabis as the perfect cure for phlegm, catarrh and diarrhoea (Grierson, 1894). Dwarakanath has mentioned that cannabis was used in Indian folk medicine in aphrodisiacs and treatments for pain (Dwarakanath, 1965) while Sanyal observed that fumes of burning Indian hemp is used as an anesthetic since ancient times (Russo, 2005). The locals mostly use the hemp seeds to make edible thick nutty paste of hemp seeds (locally called *bhang ki chutney* or *bhangeera ki chutney*) which is a famous delicacy in Uttarakhand. This *pahadi* bhang seed paste is often labeled as superfood because of its high nutritional value and is known to help in improving digestion, metabolism and promoting cardiovascular health.

History of hempcrete technology

Hempcrete is a biocomposite material made of hemp hurds and lime, which is strong, lightweight, non-toxic and creates breathable homes. Hempcrete was first developed in France in the 1980s as a method of adding thermal performance to medieval timber frame buildings, whilst allowing the historic building fabric to continue working in the way it was intended to. In fact, the ancient Gauls used a hempcrete-like material to build a bridge over two-thousand years ago (Rapid Transition Alliance, 2020). Canada has followed France's direction in the organic building technologies sector, and hempcrete has become a growing innovation in Ontario and Quebec (Gauthier, 2020).

Probably, ancient Indians were the first in the world to practice Hempcrete technology i.e. mixing of bhang in clay or lime plaster for construction. The use of hemp in construction by ancient Indians in Ellora caves, which date back to the 6th and 11th centuries AD, was lost almost 1500 years ago but now restored through the recorded research (Joshi S. , 2020). According to a study conducted by Manager Rajdeo Singh and M M Sardesai, the use of hemp helped the Ellora caves and most

of the paintings to remain intact and no insect activity is found at Ellora (Rizwanullah, 2016). The first time that hemp-derived products have been used to build a house in India is by architect Namrata Kandwal, who conceptualized and built the house with husband Gaurav Dixit in Yamkeshwar block of Pauri Garhwal district in Garhwal division.

History of hemp in mythology :

In 5th century B.C., Greek historian Herodotus described the Scythian people who lived on the Eurasian edge of the western world, and where hemp also grew. Herodotus described burials where the Scythians would gather in a tent, throw hemp seeds onto red hot stones and then purify themselves in the steam bath (Welle, 2022). In 2020, researchers found evidence to back the theory: on the altar of the Jewish temple at Tel Arad in Israel, they found cannabis containing the active ingredient THC (tetrahydrocannabinol), which produces an intoxicating effect when smoked or ingested (Welle, 2022). In the Zoroastrian scriptures of ancient Iran (that closely resemble the Rig Veda), consumption of bhang is said to bring happiness. Islam also regards bhang as a holy plant and in the Tibbi (the Islamic system of medicine) the plant is mentioned to have benefits to treat asthma, dandruff, and urinary disorders. To certain Islamic sects, hemp is an embodiment of the spirit of the Prophet Khizer Elijah, the patron of saint water, and is often referred to as 'warak-al-khiyal' or 'fancy's leaf' (Sahu).

In Hindu mythology, Lord Shiva (An Hindu deity) is also known for having a strong affinity towards bhang. In this regard, the Indian Hemp Drugs Commission Report in 1894 recorded that "it is chiefly in connection with the worship of Lord Shiva, the great God of the Hindu trinity, that the hemp plant, and more especially perhaps ganja is associated. Lord Shiva, the supreme Godhead of many sects, was given the title 'The Lord of Bhang', because the cannabis plant was his favourite food. The ancient Hindus thought the medicinal benefits of cannabis were explained by pleasing the gods such as Shiva. The usage of hemp in drinks and offerings is also found during various festivals in India including Durga Puja in West Bengal, Holi and Maha Shivratri. Further, hemp offerings are also given as Prasad in temples throughout India such as the Mouneshwara temple in Karnataka and various temples in Varanasi (Sahu).

Conclusion

The hemp plants interact differently in relation to different species, like human beings, for sharing resources and coordinating actions. Rather than looking into hemp plants only as a species for recreational purposes, they can be viewed from a different lens as ethnographic subjects because we modern subjects being human-centered undergo an inability to notice and ponder about such plants. Hence, the boundaries of traditional ethnographic research conducted from an anthropocentric viewpoint now needs to be pushed and directed "beyond the human" towards such sessile plants which unequivocally possess parallel capacity for socializing and sensing as evidenced in the socio-cultural aspects and affective ecologies taking shape between hemp plants and people in Uttarakhand through intimate engagement with the hemp plants as well as spending time and dwelling with them, and developing a feeling for or an ethics of care towards them.

Bibliography

1. (n.d.). Retrieved from https://en.wikipedia.org/wiki/Hemp_paper#:~:text=Recycled%20hemp%20clothing%2C%20rags%2C%20and,been%20used%20for%2010%2C000%20years.
2. (n.d.). Retrieved from http://www.chinaculture.org/gb/en_madeinchina/2005-06/28/content_70172.htm
3. (n.d.). Retrieved from https://www.sydney.edu.au/lambert/medicinal-cannabis/history-of-cannabis.html
4. *Rapid Transition Alliance*. (2020, December 21). Retrieved from https://rapidtransition.org/stories/a-fast-plant-for-rapid-shifts-in-construction-how-the-ancient-supercrop-hemp-can-help-build-low-carbon-homes/#:~:text=Hempcrete%20was%20first%20developed%20in,way%20it%20was%20intended%20to.
5. Atkinson, E. T. (1882). *Gazetteer of the Himalayan Districts of the North-Western Provinces of India* (Vol. 1).
6. Dwarakanath, C. (1965). Use of opium and cannabis in the traditional systems of medicine India. *Bulletin on Narcotics, 17*(1), 15-19.
7. Gauthier, G. (2020, June 12). Retrieved from https://www.innovationnewsnetwork.com/canadian-hempcrete-the-development-of-the-hemp-construction-industry/5504/
8. Grierson, G. A. (1894). The Hemp Plant in Sanskrit and Hindi Literature. *Indian Antiquary*, 260-262.
9. Joshi, M. P. (2017). The hemp cultivators of Uttarakhand and social complexity (with a special reference to the Rathis of Garhwal). *Acta Orientalia, 78*, 173–221.
10. Joshi, S. (2020). An Introduction to Hemp Cultivation in Uttarakhand: A Historical and Economic Perspective. *Studies in Indian Place Names, 40(3)*, 6533-6543.
11. Rizwanullah, S. (2016, March 10). *The Times of India*. Retrieved from m.timesofindia.com: https://timesofindia.indiatimes.com/india/hemp-shielding-ellora-caves-from-decay-for-1500-years-study/articleshow/51334725.cms
12. Russo, E. (2005). Cannabis in India: ancient lore and modern medicine. In R. Mechoulam (Ed.), *Cannabinoids as Therapeutics* (pp. 1-22). Springer.
13. Sahu, S. (n.d.). *Legal Service India*. Retrieved from www.legalserviceindia.com: https://www.legalserviceindia.com/legal/article-7005-history-and-regulatory-land scape-of-hemp-and-hemp-products.html
14. Small, E. (2015, August). Evolution and Classification of Cannabis sativa (Marijuana, Hemp) in Relation to Human Utilization. *The Botanical Review, 81*, 189-294.
15. Welle, D. (2022, January 31). *Hindustan Times*. Retrieved from hindustantimes.com: Https://www.google.com/amp/s/www.hindustantimes.com/lifestyle/art-culture/a-brief-cultural-history-of-hemp-101643634036146-amp.html

Analyzing Social Media Dependency of Youth : A Multicultural Review Study

Naveen Kumar
Ph.D. Research Scholar
IEC University, Baddi (H.P.), India
and Associate Professor Journalism and Mass Communication, Government PG College, Sector 1, Panchkula, Haryana (India)

Dr. Vijay Kumar
Assistant Professor
Department of Journalism and Mass Communication,
IEC University, Baddi (H.P), India

Abstract :

In the current environment, social media platforms have carved out a place in the everyday lives of large populations. Their uses are rapidly increasing with improved reach, accessibility, and affordability of technology and internet services. On a daily basis, this phenomenon has a significant impact. Social media in particular is heavily used by the younger generation. However, the terms "habit" and "addiction" are frequently used for excessive use of something but perceived as harmful compulsive behaviour or even a disease. The dependency perspective under study is motivation which has defined objectives or goals, which is generally referred to need. As a matter of general observation, youth is more inclined toward usage of social media. This prompts the study question, "Why do people, especially young people, seem to be drawn to social media so much?" The Media Dependence Theory, the Uses and Gratification Theory, and a number of recent studies on social media use support the concept that users must have certain communication specific goals to achieve from usage of social media platforms. These needs or goals drive people return to social media platforms in search of the related gratification. Studying users' objectives, requirements, satisfaction, and dependence on these cutting-edge media channels will certain add some valuable insights into the audience behaviour in respect to social media. This study adopts theoretical approach by using survey and review of related relevant literature. Different social groups across the world have been included in this study consisting of LGBTQ, students and even refugees.

Keywords :

Social Media, Media Dependency, and Youth.

Methodology :

This study undertakes a systematic literature review of the research papers which are relevant to social media dependency. The secondary data is used to further and enhance the understanding of the usage patterns and concept of social media dependency among youth. Two of

the most commonly used academic search engines by researchers Google Scholar and Semantic Scholar have been used to browse the relevant research literature. The papers selected for review are those published between 2019 and 2023. A purposive approach has been adopted with the criteria of selecting the paper which are most relevant to the present study. Keywords used are: Social Media, Dependency and Youth. First hundred results of research papers/publications for each search engine have been surveyed for the study. Therefore, a total of 200 research publications were considered. 20 papers were found to be relevant to the present study after omitting the duplicate results. Papers were analysed in chronological order.

Introduction :

According to Statista, there are 5.18 billion internet users globally as of January 2023, of which 4.8 billion use social media. With around 1.40 billion people, India is one of the most populated nations in the world and strives to have one of the fastest expanding economies. According to Stastista, Facebook had 2.989 billion monthly active users in the first quarter of 2023, ahead of Youtube with 2.514 billion, Whatsapp with 2 billion, Instagram with 2 billion, and Wechat with 1309 million. According to The Global Statistics (2022), WhatsApp has 531.4 million active users, followed by Instagram (516.9 million users), Facebook (492.7 million users), Telegram (3840 million users), and Facebook Messenger (343.9 million users), while Statista estimates that there are 467 million users of YouTube. Interestingly, India has the most users worldwide across the majority of the major social media networks.

There are several forms of social media. Social networking sites, photo and video sharing, interactive media, blogging and community building, and other broad categories can be used to group these social media platforms. However, according to Koukaras et al. (2020), there are only three main categories of social media: social networks, entertainment networks, and profiling networks. One common feature which makes these social media platforms social in real sense is provision of content sharing by the users themselves.

These uses of these platforms' have a wide range and not restricted to social interaction. When these applications are used in conjunction with the accomplishment of desired goals, some form of satisfaction results. The users' need is created by their frequent use and sense of satisfaction. People start to rely on social media for their unique requirements. It is suggested that these particular demands, which make users dependent on social media, be researched. Regarding youth use or consumption of social media platforms, the study will concentrate on micro level or individual media reliance.

The Media System Dependency, or Dependency Model of Mass Media Effects, emphasises on media information resources as a critical interacting condition for changing audience ideas, behaviours, or sentiments as a result of widely disseminated information. The sort of society and its reliance on the media for information determine the degree of media dependence since some cultures rely on the media for many essential informational purposes outside of times of social upheaval, wars, etc. A methodical approach to studying how audiences are impacted

by mass media and how media, audiences, and social systems interact is known as media dependence theory. It was initially introduced in broad strokes by American communication scholars Melvin DeFleur and Sandra Ball-Rokeach in 1976. According to dependence theory, a relationship arises when one party's needs and goals must be supplied by another party's resources. One of the theory's main foci is the relationship between media and audiences. In industrialised and information-based cultures, people frequently rely on the media to fulfill a range of needs. These demands might range from the need for enjoyment to the need for information about a political candidate's policy positions.

The extent to which people and social structures rely on the media is connected to the media's overall impact. The following are two of the main concepts put out by Ball-Rokeach and DeFleur: (1) The more social functions a medium performs for an audience, the more dependent that audience is on that medium; (2) the more unstable a society is (such as during times of tumultuous social conditions and conflict), the more dependent audience is on the media, and as a result, the greater the potential effects. Three various types of consequences, including cognitive, emotional, and behavioural ones, may result from an audience's reliance on the media. "Cognitive effects" refers to changes made to an audience's attitudes, convictions, and values, particularly those brought on by the media's role in "agenda setting" politics. One example of an emotional influence is the emergence of feelings of fear and worry about living in specific neighbourhoods as a result of repeated exposure to news reports about violent occurrences in these areas. "Deactivation," which occurs when individual audience members refrain from acting in a way that they would have otherwise had they not been exposed to certain media messages, is an example of a behavioural impact.

One of the key ideas that examine the interactions between media and their viewers in a sociological setting is the Media Dependency Theory. Although this theory has a number of characteristics that have developed through time, the micro level component of a user's relationship with the media is particularly appropriate to further this investigation and look into many facets of social media dependence. The notion is also particularly pertinent because modern social media have adopted many characteristics and functions of mass media. The traditional media sources are progressively utilising social media channels to broaden their audience and access.

The uses and gratifications approach looks at media consumption from a more humanistic angle. There are several different ways that the general population consumes media, according to Blumler and Katz. They argue that there are just as many reasons to use media as there are media users. According to the theory, media consumers are free to decide how they will use and be affected by the medium. Blumler and Katz's opinions are plain to see since they maintain that media consumers have control over the influence media has on them and that users only select media as a means to a goal. The media are beneficial and fulfilling in the eyes of the optimist. The idea that the media could unintentionally affect our lives and how we view the outside world

is rejected by the hypothesis. The idea that we simply use the media to gratify a certain need does not seem to fully recognise the impact of the media on modern society. Users are satisfied when communication-related goals are accomplished. Over time, the satisfaction of particular uses creates a desire. Dependence occurs from the desire to gratify particular needs that drive consumers to use particular media, channels, or platforms. Purposes and pleasure to demonstrate the real causation between media uses and the types of gratifications people seek by consuming such media are essential.

The central research Question :

The above discussion makes a compelling argument for investigating several facets of young people's reliance on social media. The study intends to discover the causes, incentives, and outcomes of using social media in order to uncover the primary factors contributing to social media reliance in all of its various manifestations, including personal, social, emotional, public discourse, news consumption, commercial, and professional. This can be useful in resolving associated real world issues and situations in addition to improving understanding of the hot topic.

Analysis :

Chan-Olmsted and Xiao (2019). a smartphone is seen as the main platform for communication in a multiplatform media environment. Young adults' reliance on smartphones is mostly due to its social and mobile-specific features.

Information seeking, communication, and solitary play were identified as being positively related to mobile social media use on Gen Y (people born between 1981 and 1999 who touch the range of youth), according to a study by Li, Y. et al (2019). This study was conducted among China's Gen Y, and that time was seen as a way to chill out and pass time. While sharing knowledge had little impact, searching out information had a good impact on users. The latter is done out of a sense of altruism to inform others, whereas the former is done only for one's own interests. This may have shown that those who make sensible decisions do so when faced with emergencies when using mobile social media.

Anshari et al. (2019). found that the personal emotion and smartphone engagement have a significant favourable association. Person with nomophobia (fear of being unable to access mobile phone) will experience social anxiety, become introverted and have poor self-confidence; making it difficult for them to communicate their feelings in person. Instead, they prefer to use social media. Additionally, individuals will experience a mental struggle if required to give a verbal presentation in class. On their phones, they would experience and develop obsessive-compulsive disorder (OCD). Additionally, they will develop antisocial behaviours, which will make it difficult for them to interact with others in person and cause them to feel lonely, get stressed over time, and preferring text message to communicate with others.

A study by Han et al (2019) reveals that LGBT people in China have high rates of sadness and low rates of self-identification, which may cause psychological dependence on social media. The study also shows that social media reliance increases online support seeking and providing, as well as social media use, all

of which are associated with higher levels of perceived online social support.

Santoso et al. (2019). found that the satisfaction of using social media use is significantly and favourably impacted by dependency. More dependency leads to more satisfaction. Also, the satisfaction is found to be associated with habit development with respect to social media use.

Tai et al. (2019). discovered that the basic factors defined in Media System Dependency hypotheses e.g. comprehension, orientation, and play are found to be the primary motivators of social media usage, as well. However, some new trends were noticed as social media use among these students has been strongly influenced by the paths of certain assignments and projects. The students have actually identified this purpose-driven use as the main motivator influencing their social media experience.

"Routine social media use is positively associated with all three health outcomes, namely social well-being, positive mental health, and self-rated health." Bekalu et al (2019). This involves engaging with material that other people publish on social media and utilising social media as part of daily routine. Similar to social wellbeing, the two social media usage criteria performed differently in predicting good mental health: frequent use is positively connected, whereas emotional connection is negatively related. It goes without saying that you feel more social when individuals share information with you. This might be viewed as a factor in why people use and require social media.

Karim and Oyewande (2020). Social media envy can have an impact on people's levels of anxiety and sadness. According to the study, it is important to take social media's impacts into account when treating individuals who have been identified as having anxiety or depression. Due to this, research has shown inconsistent impacts of social media on users, including both positive and negative ones. Statistics, however, imply that social media sites' user bases and reach have grown. This demonstrates how consumers' demands for and reliance on social media sites are growing. This also aims to comprehend if users' relationships with social media platforms like Facebook and Instagram are similar to or dissimilar to those between mass media consumers and the mass media channels defined by the Media Dependency Theory.

Dredge & Schreurs (2020). in their review study undertaken 14 independent trials, 16 measurements of nine unique individual qualities. These factors included empathy, relational aggression, interpersonal competence, self-disclosure, attachment anxiety (general), pro-social behaviours, social competence, and the capacity to form offline friendships. They also included romantic attachment anxiety and avoidance. In all three researches examining the relationship between social media usage and interpersonal conflict, it was discovered that interpersonal conflict or aggressiveness increased with increased SNS use.

Farfieva and Karimov (2020). find that the social networks have an important role in development of scientific thinking among the youth. However, scientific thinking in young men is negatively impacted by inaccurate information, misinformation, as well as "bad information" disseminated with the aim of causing

harm, creating discord, forming negative states and emotions, and providing incentives for destructive actions.

Cheng et al. (2021). in their meta-analysis study on 32 nations found that the Africa and Asia have highest prevalence of social media addiction among all regions. Social media users belonging to the countries having collectivist culture are found to be more addictive to social media. The popularity of social media platforms in Asian countries like China and India can be attributed to the dominant collectivist culture.

Ferris et al (2021). found association of social media addiction with various individual motives and goals which steer the user towards spending time on these platforms. The study also reveals that the social media addiction has emotional and intrusive implications for users.

Wojdan et al. (2021). in a study conducted on people aged 15-21 years conclude that social media is used by young people primarily to stay connected with friends and contacts. Entertainment is found to be another major cause for using too much of social media. Around one fifth of the respondents were reported to use social media for more than 5 hours a day.

Vaingankar et al. (2021). highlight the significance of social media in the lives of today's adolescents and their study suggests that they can provide chances for positive impact, social support, and personal expression, all of which help young mental health.

Youth use Facebook regularly and are motivated to utilise social media because they find their social, intellectual, entertainment, and leisure demands are met there. Additionally, they keep up with local events by using social media. But they also come upon erroneous information. Mg, C., & Vargas, D. (2021).

Ilbury, C. (2022). contends that while some broad trends, like shifting opinions of Facebook as a "cool" social media site, can explain the digital behaviours of the young people at Lakeside (a Lodon area), the socio-demographic traits and lived experiences of the users also have an impact on the platforms they choose and use.

Venting, suppression, reappraisal, and avoidance are the communicative anxiety regulation factors that determine social media dependency. The action of avoiding people, things or presumed bad situation and SMD found to be strongly associated. This result implies that transgender people utilise social media as a means of escaping the offline world. Gorgulu, S. (2022).

Jia-Dai and Jhih-Syuan (2022). discovered that user engagement with Instagram Stories has a significant positive effect on psychological dependency, as indicated by cognitive preoccupation and compulsive use of Instagram Stories. This study suggests that different age groups should be investigated in relation to various social media platforms, regarding users' various needs or goals such as harmony, love, proximity, practicality, excitement, curiosity, liberty, ideals, stability and reliability.

Devi S.K et al (2022). conclude that the young people who are addicted to social media experience emotional sadness. The lack of interest in a variety of occupations is a result of addiction, heightened anxiousness, wired behaviour, uncertainty, and lack of assurance, etc.

Aldamen, Y. (2023). comes to the conclusion that social media is highly dependent upon by refugees for a variety of gratifications, including informational, social, commercial, educational, and cultural gratifications. The cognitive needs of Syrian refugees include the needs for knowledge, education, or assistance in developing certain skills and expertise. They find social media as something which meet some of their basic needs, including staying in touch with loved ones, learning about their legal status and rights, and forming social networks with other refugees and host communities.

Alhajeri and bin Haji Yusoff (2023). have found that the rumours on social media platforms would have a negative impact on the security and privacy of Emirati youngsters, as well as potentially cause pain and bewilderment. In addition to the detrimental effects that the dissemination of internet rumours can have on young people, the results also showed that Emirati youth had at some point in their lives participated in the production and spread of online rumours. This indicates that many young people in the UAE have created and disseminated falsehoods via social media platforms; nevertheless, these rumours were not shared explicitly to hurt or negatively impact a person, a business, or the government.

Discussion :

The use of social media is rapidly increasing at fast rate. India has emerged as world's leading country with highest social media users for multiple popular social media platforms. Not only this, but India is one of the countries with highest rate of social media addiction as revealed by the meta-analysis study conducted by Cheng et al (2021).This characteristic can be attributed to prevailing collectivist culture in the country. The results are equally applicable to other Asian and African regions having collectivist culture. This makes for a hypothesis that prevalent social media addiction and popularity of these platforms in a particular demography are having strong association. Chan-Olmsted and Xiao (2019). find the smartphone as the main platform for communication in a multiplatform media environment. Young adults' heavily rely on smartphone for social activities.

The Bekalu et al (2019). found in their study that routine social media usage is positively associated with social and mental well being of the users. The shared environment leads the users to feel good of them. The findings of Jia-Dai and Jhih-Syuan (2022). supplement the above idea as their study shows certain degree of positive effect on psychological well being of users. These finding helps in establishment of the fact that users derive certain gratification from social media use which in turn creates a desire for satisfaction or need for them in their daily routine. Specific sections of population like the refugees staying on foreign land and people belonging to LGBT are found to more depend upon social media for variety of their needs. Studies suggest that non-mainstream sections of society are more likely to rely on social media platforms to connect, communicate and garner support for them. Sense of altruism, in young adults, is related to searching the information and sharing it with others on social media. This gives people a reason to spend time on social media and draw gratification from it. People, specifically youngsters, inadvertently turn into tools of spread of falsehood and rumours.

On the other hand, Karim and Oyewande (2020). found the element of envy with one another among the social media users probably causing or adding to the level of anxiety. This also has an impact on users' psychological well being. Dredge & Schreurs (2020). discovered that the interpersonal conflicts increase with increased social media use. Ferris et al (2021). found that the amount spent on social media is associated with the intrusive addiction among the college students. Farfieva and Karimov (2020). highlight the negative impact of mis-information and inaccurate information on scientific thinking in young men. Dredge, & Schreurs (2020). make a point that interpersonal conflicts increase with increased use of Social Networking Sites.

Conclusion:

There are a host of causes affecting the social media dependency. Multiple uses and corresponding gratifications, Desire for satisfaction, Needs and Personal Goals, addictions and demographical factors are associated with dependency of youth on social media. It can, however, be concluded that users have specific objectives or satisfactions to seek while using social media platforms. Users become depend on social media platforms for a number of their needs or communication specific goals. These needs primarily related to connecting with people, self validation, information, culture, seeking support and so on. Also, social media dependency leads to both positive as well as negative outcomes for the users. Further empirical study is recommended with respect to the social media dependency among youth and their user behaviour to better define, describe and analyse this prevalent phenomena.

References:

1. Aldamen, Y. (2023). Understanding Social Media Dependency, and Uses and Gratifications as a Communication System in the Migration Era: Syrian Refugees in Host Countries as a Case Study. Social Sciences, 12(6), 322.
2. Alhajeri, A. S., & bin Haji Yusoff, K. Z. (2023). Rumors on Social Media Networking Sites and their Impact on Emirati Youth: 10.2478/bjlp-2023-0000079. Baltic Journal of Law & Politics, 16(3), 1008-1023.
3. Anshari, M., Alas, Y., & Sulaiman, E. (2019). Smartphone addictions and nomophobia among youth. Vulnerable Children and Youth Studies, 14(3), 242-247.
4. Ball-Rokeach, Sandra J (1985). "The origins of individual media-system dependency: a sociological framework". Communication Research. 12 (4): 485–510. doi:10.1177/009365085012004003
5. Ball-Rokeach, Sandra J; DeFleur, ML (1976). "A dependency model of mass-media effects". Communication Research. 3 (1): 3–21. doi:10.1177/0093650276003 00101
6. Bekalu MA, McCloud RF, Viswanath K. Association of Social Media Use With Social Well-Being, Positive Mental Health, and Self-Rated Health: Disentangling Routine Use From Emotional Connection to Use. Health Education & Behavior. 2019;46(2_suppl):69S-80S. doi:10.1177/ 1090198119863768
7. Blumler J.G. & Katz, E. (1974). The uses of mass communications: Current perspectives on gratifications research. Beverly Hills, CA:
8. Cheng, C., Lau, Y. C., Chan, L., & Luk, J. W. (2021). Prevalence of social media addiction across 32 nations: Meta-analysis with subgroup analysis of classification schemes and cultural values. *Addictive behaviors*, *117*, 106845.
9. Dredge, R., & Schreurs, L. (2020). Social media use and offline interpersonal outcomes

during youth: A systematic literature review. Mass Communication and Society, 23(6), 885-911.

10. Farfieva, K. A., & Karimov, I. (2020). SOCIAL MEDIA AS A FACTOR IN THE FORMATION OF SCIENTIFIC THINKING IN YOUTH. European Journal of Research and Reflection in Educational Sciences Vol, 8(10).
11. Ferris, A. L., Hollenbaugh, E. E., & Sommer, P. A. (2021). Applying the uses and gratifications model to examine consequences of social media addiction. *Social Media+ Society*, *7*(2), 20563051211019003.
12. Han, X., Han, W., Qu, J., Li, B., & Zhu, Q. (2019). What happens online stays online?- Social media dependency, online support behavior and offline effects for LGBT. Computers in Human Behavior, 93, 91-98.
13. https://www.theglobalstatistics.com/india-social-media-statistics/
14. Jia-Dai (Evelyn) Lu, Jhih-Syuan (Elaine) Lin, Exploring uses and gratifications and psychological outcomes of engagement with Instagram Stories, Computers in Human Behavior Reports, Volume 6, 2022,
15. Karim F, Oyewande AA, Abdalla LF, Chaudhry Ehsanullah R, Khan S. Social Media Use and Its Connection to Mental Health: A Systematic Review. Cureus. 2020 Jun 15;12(6):e8627. doi: 10.7759/cureus. 8627. PMID: 32685296; PMCID: PMC7364393
16. Koukaras, Paraskevas & Tjortjis, Christos & Rousidis, Dimitris. (2020). Social Media Types: introducing a data driven taxonomy. Computing. 102. 10.1007/s00607-019-00739-y.
17. Li, Y., Yang, S., Zhang, S., & Zhang, W. (2019). Mobile social media use intention in emergencies among Gen Y in China: An integrative framework of gratifications, task-technology fit, and media dependency. Telematics and Informatics, 42, 101244.
18. Wojdan, W., Wdowiak, K., Witas, A., Drogoñ, J., & Brakowiecki, W. (2021). The impact of social media on the lifestyle of young people. Polish Journal of Public Health, 130(1),
19. Devi S.K., Pallathadka Harikumar & Pallathadka Laxmi Kirana (2022). Reasons of Social Media Addiction among Youth: An Exploratory Study. Stallion Publication. DOI: 10.55544/IJRAH.2.6.18
20. Vaingankar, J.A., van Dam, R.M., Samari, E., Chang, S., Seow, E., Chua, Y.C., Luo, N., Verma, S., & Subramaniam, M. (2021). Social Media-Driven Routes to Positive Mental Health Among Youth: Qualitative Enquiry and Concept Mapping Study. *JMIR Pediatrics and Parenting, 5.*
21. Santoso, S., & Oetomo, B. S. D. (2019). Structural relationship between social benefit, dependency, satisfaction, and habit formation on the use of social media. *Binus Business Review*, *10*(1), 51-57.
22. Tai, Z., Lu, J., & Hu, F. (2019). Live ambience and homestead away from home: social media use and dependency by visiting chinese students in the United States. *International Journal of Communication*, *13*, 19.
23. Ilbury, C. (2022). Discourses of social media amongst youth: An ethnographic perspective. *Discourse, Context & Media*.
24. Mg, C., & Vargas, D. (2021). Social Media Use and Satisfaction among Youth during Pandemic (COVID-19) Lockdown. *SSRN Electronic Journal*.
25. Gorgulu, S. (2022). The impact of communication anxiety regulation and fear of missing out on social media dependency: A study on transgender individuals in Turkey. *Health & New Media Research.*

E-Marketing in Tourism : A Necessity after Covid-19

Divyajit
Research Scholar
Department of Tourism Studies, Pondicherry University

Ritu Rani
Research Scholar
Department of Tourism, Sikkim University

Dr Amit Kumar Singh
Assistant Professor
Department of Tourism, Sikkim University

Abstract :

Advanced technologies in the communication industry have led to changes in the modes of marketing in this era. Due to the fourfold increase in usage of internet and its tools by people in the last decade, companies have seen the need to focus on online or e-marketing modes. Tourism companies and travel agencies can now communicate directly with many targeted audiences due to the increasing number of digital media users through their mobile phones. Tourists belongs to any category of ages can be targeted and served through the online mode. The tourism industry, which COVID-19 severely hit, has focused on using various e-marketing techniques to bounce back and has succeeded to a great extent. By providing information and attracting tourists through e-marketing techniques, there has been a considerable inflow of tourists in major tourist spots worldwide. This paper focuses on e-marketing techniques in tourism and how they are being implemented in various forms to attract potential tourists.

Keywords :

Internet Marketing, Digitalization, Social media marketing

Introduction :

E-Marketing, in the simplest words, means marketing of any product or service using the internet. Major types of e-marketing processes include influencer marketing, pop-up ads, emails, social media marketing, etc. It can be described as marketing and promoting a product or service by the use of the internet through devices such as computers and mobile phones.

The increased utilization of internet from the era of late 1990s has changed how brands and marketers use technology to implement their marketing strategies. In recent times, digital marketing has become more prevalent than ever as compared to the traditional forms of marketing.

Along with all other businesses, the business that is using and benefiting the

most from e marketing is the travel and tourism industry. Various tourism departments of countries, travel agencies, hotels, etc., have been focusing on e-marketing of their products and services to potential as well as regular customers. Through applying e-marketing techniques, the companies working for the tourism industry have convincingly informed their potential customers about the range of services they can provide. This has resulted in an increased number of visitors traveling to various destinations in recent times.

Various social media platforms which mostly include applications such as Facebook, Twitter, Pinterest, Twitter, Snapchat and Instagram cover a significant part of the digital marketing spectrum. The messages posted in the forms of pictures, videos, blogs, etc., for the target groups are supposed to be of their interest. These arouse a willingness to visit and enjoy those places. Tourists and travellers nowadays are now making the use of digital media at all stages of their trip, be it researching, planning, booking, travelling process, and sharing their experiences of their trip with their friends and relatives.

E-marketing has turned out to be a beneficial, cost-effective, and competitive form of marketing as compared to the traditional marketing forms such as billboards, hoardings, newspapers & media advertisements. This is because of many reasons. First and foremost, since e-marketing does not require any physical store space, its cost is saved and so it is a costeffective process. Secondly, the internet is available all day to consumers on their mobile phones and laptops and e-marketing let them to get the information about their required service and buy items at their convenience, not just when the store is open, thus wider reach. The third and most important reason being the pricing of promotion through the internet is less than a quarter of the major traditional promotion techniques because it does not have the heavy costings of paper, printing, handling and postage.

Many industries were affected when the COVID-19 pandemic struck the world. However, tourism and hospitality industry were the worst affected, be it the hotel industry, the travel agencies, the restaurants or other service providers. All of these were in heavy debt and losses. Due to the protocols implemented during the COVID, mass gathering and traveling to new places were restricted. This led to a very significant downfall in the tourism industry worldwide. After the pandemic, when the cases of COVID were reduced, gradually people started traveling. This was the time when tourism needed a lot of promotion and marketing. Emarketing was a significant help for those who wanted to travel and also to the tourism service providers. The tourism service providers came in contact with potential tourists through emarketing, including social media marketing, email marketing, influencer marketing, and many other forms of online marketing where they can directly contact the customers. Tremendous marketing strategies were adopted to promote and increase tourism traffic in different places. Promoting various tourist destinations via Instagram posts, vlogs, and influencer marketing became a boon for the tourism industry, which helped in bounce back after a big halt due to the covid 19.

Literature Review :

Desai, (2019), in her study, defines digital marketing as a process that encompa-

ssing all marketing processes that use an electronic device or the internet. Businesses leverage digital channels such as search engines, social media, email and their websites to connect with current and prospective customers. This is also be referred to as 'online marketing', 'internet marketing' or 'digital marketing'. The most important advantage of digital marketing is the fact that marketers are able sell and market their products or services on all and 365 days. This is a major benefit for the company as this leads to lowering of cost, gaining efficiency, motivating customer for more purchase as well as also customer services (Krishan, 2018). Digital marketing includes direct marketing to the customers by the company, which treats their customers as individuals and defines them by their personal individual characteristics and behaviour. It also includes interactive marketing, which gives the company an ability to address an individual and the also to gather and analyse the response of that individual (Deighton, 1996).

Maurer in his book 'Digital Marketing in Tourism' stated that tourists use the Internet in all phases of the customer journey. Mobile phones and tablets combinedly utilize more than half of all the online time, but most people who are internet users still use a combination of mobiles and computers to access the internet. So, digital marketing together offers great opportunities for various online tourism organizations and suppliers to promote and market their offers which leads to establishing a long-lasting relationship with their customers.

Zeng &Gerritsen (2014) asserted that "Social media plays a very important role in many tourism aspects, especially in searching the valid information and decision-making behaviours, tourism promotion and to focus on the best possible practices for interacting with consumers. Capitalizing on the social media platforms to market tourism products has proven to be an excellent strategy.

A review of the literature on the effects of pandemics on human behaviour by Laato et al. (2020) revealed that little has been studied about how a pandemic affects consumer behaviour. The pandemic caused significant adjustments to planned and impulsive purchasing behaviours, altered traditional knowledge structures that consumers typically use to evaluate alternative offerings and make a decision (Kim et al., 2021), and changed how consumers traditionally interact with retailers (Roggeveen&Sethuraman, 2020). Internet is being used more often throughout the purchasing process, from searching for information and shopping online to post purchase and the electronic exchange of information and suggestions among users.

Major large-scale retailers are also being impacted by the COVID-19 pandemic because of the sudden decline in casual shopping, the disruption in the supply chain, and the rise in purchases of other critical items such as medical and hygiene products (Filimonau et al., 2021). Price of the products being offered, ease of availability, and convenience are still the key factors to consider when making a purchase. (Prasetyo et al., 2021).

Ukpabi&Karjaluoto (2018) highligh-ted the consumer-based studies as valuable sources of information for making decisions about travel. Before the examination and evaluation of the components of tourism marketing and promotion that were affected by COVID

and are expected to change as a result, it's important to remember that the influence is from both the demand and supply sides. During the outbreak, holiday spending was on average lower than in previous years, and many consumers opted to use contactless payment methods (Khan et al., 2020). Social media affects destination image and tourists' choices (Bigne, Ruiz, & CurrásPérez, 2019). There was a considerable movement in favour of online shopping.

The rules and regulations imposed by the Government along with the pandemic itself had an adverse effect on consumer behaviour. During the COVID-19 crisis, consumers of all ages were more likely to make online purchases of goods and services (Jílková&Králová, 2021). Moreover, the current expansion of social media platforms has changed the dynamics of the online market by fostering social networks for customers, and other stakeholders. Kumar et al. (2020) discovered that integrated marketing promotional messages are supposedly more successful in influencing customer's perception about product image and resulting in consumption behaviours, he provided a clear picture of the significance of social media in marketing. Thota (2018) contends that companies can utilize social media to arouse consumer's interest in their products by igniting brand discussions that advance favourable perceptions of their goods, services, or concepts. Overall digital technologies are in high demand right now (Shestak et al., 2020).

Research Methodology :

This study attempts to explore and examine the potential and prospect of changing marketing and promotional techniques in tourism marketing. The study aims to understand the new-age marketing process and procedures being adopted by travel companies to gain and retain customers. This paper uses a secondary research approach where the facts have been taken from previously published materials. The collected data has been taken from the various research articles and websites available on the internet. Most of the quantitative data were taken from various websites. The referred websites were mostly of various govern-ments and their tourist departments. The government tourism websites and other official sites provided data on the measures they were taking to promote tourism in their country. Some economic websites and e-journals were also referred to collect and extract marketing data. Few journals are considered in quoting the facts and concepts.

Findings :

The process of marketing has changed over the passage of time. Earlier marketing strategies used to be product oriented. Now the focus has been shifted to experience based marketing. Providing customer with the best services in the entire market is the sole motive. Even in the case of tourist destinations, wonderful and hedonic experiences must be provided and also advertising the same so that purpose of marketing should meet. Let us take the example of Goa, one of Indian youth's most visited destination. Earlier it was more focused on beaches and beach activities such as jet skiing, surfing, parasailing, etc., but in the last decade, Goa has come up with many clubs, and tourism fest and festivals like Goa carnival and sunburn festival etc., where the youth get exotic experience along with the entertainment. These clubs keep updating themselves from time to time to attract more and more clients.

E-Marketing in the Tourism Industry :

Advancement of technology has affected the way of functioning and marketing of the tourism industry along with all other industries. New and advanced technologies that make traveling easier and more convenient have started to be used more frequently in tourism. In the digital world, it can easily be said that tourism marketing has to be more technology-oriented and dependent than before. Communicating with the customer and online reservation systems are some of the most important changes that the tourists had to experience after the pandemic. These prevented the direct personal contact of people among each other which was a major protocol to follow during Covid 19 restrictions. This process was done in cooperation with local and foreign tourism companies which was beneficial for both. Therefore, it is correct to say that starting the digitalization during period of COVID-19 has increased and helped a lot to the tourism industry.

At this point, marketers must rethink advertising methodology by considering both present and long-term objectives. This is the ideal opportunity to be proactive, not receptive. Putting tourists' requirements at the front line and turning their own procedures, strategies, and service delivery in light of the moving interest would be very beneficial. Tour representatives and tourists need to feel connected, which is the most crucial aspect of organized tourism. Arrangements and the proper facilities should be rendered at the tour destination. The new normal may never be ordinary again. It will be unique. The manner in which we offer tourist assistance, how we sell or the approach we use to oversee groups, or how we convey, market, or interface with others should be in a skilled manner. Ensuring all required financial expense plans do not hamper the execution in the unforeseeable future. Tourism businesses need an animating climate to flourish and give greatness in tourist assistance and business advancement.

A 360º marketing methodology permits the travel industry and organizations to adjust their messages to the new setting, just as they send them through the proper diverts in a simplified way. As of now, it is essential to configure considerably more restricted and divided crusades to upgrade speculations and increment the likelihood of progress. Personalization is currently more significant than at any time in recent history. It is the ideal approach to pass on certainty and feels that all is well with the world that the buyer needs.

We are dealing with complicated and challenging instances within the tourism sector and prefer everyone to learn to evolve daily via various means of the day. The present-day situations have pressured us to reconsider and adapt our advertising techniques, stepping out of doors our comfort zone. However, now could be the time to be cognizant of the prevailing and consolidate powerful advertising techniques that adapt to the brand-new normal.

Segmentation of the Entire Market into focused sections :

In the current scenario, it is essential to work closely on segmenting the tourist information base to find specialties and new chances so that we can adjust to inform each contact's particular requirements. We need to have complete explicit interchanges on numerous events, yet

maybe our information base is not precisely segmented. One must focus on a neighbourhood, public, or global network crowd. Consequently, having an information database in hand can have many effects in promoting endeavours, permitting them to act rapidly and centeraround the requirements every second. The path is long and may not be straightforward from the outset, particularly if we are beginning without any preparation, yet it is justified. It is a process that eventually will yield results.

Customizing and adjusting to changes has a higher chance of success than at any other time. Advertising can affect the outcomes drastically. It will be convoluted and necessitate we reconsider numerous things and step outside the normal range of familiarity. However, we must keep seeking after our objectives, both old and new.

Utilizing the right Marketing Channel:

Once the filtration and segmentation is done, the next job is to target the actual audience as per the company's specialty through the right advertisement channel. The right message should be delivered to the potential customers through the brand image. Most people worked from home and spent a lot of time watching T.V. shows, ads, and web series during the lockdown. There is a shift in general entertainment, so marketing channels should be chosen accordingly and wisely. The new marketing norm will involve brands with broader scope and better targeting across digital media. Brands currently operate on several platforms, ranging from messaging applications, social media sites, ads, search engine tools, and influencer marketing. The Digital Generation has an excellent capability for creativity and innovation in messaging codecs and communication. The listing is countless and evolving, including using a matrix of videos, competitions, digital challenges, and consumer-oriented activities.

Brand Recognition and Virtual Marketing :

With tourist movement almost coming to a halt, the travel industry needs to assess its objective by promoting procedures and moving towards creative approaches to keep its customer base drawn in regardless of the restricted travel. There are still different ways to encounter an objective from the comfort of their homes.

Many tour agencies, state/country tourism boards, and travel brands have understood the significance of the virtual world in staying aware of their tourist demand and requirements. Also, the countries themselves will have to show they are safe for welcoming travelers. As the world outside has been closed out, the virtual world has become a great space for brands to grasp interesting techniques for objective advertising that are viable and effective. It is the ideal opportunity for brands to adjust and endure the virtual world and present themselves as the best option.

It is significant for all brands and associations to comprehend that they need to keep connecting with their purchaser base all through this time of isolation and quarantine. Brands need to organize at-home encounters to both connect and engage tourists. Buyers must feel that the brand is offering them something unique for them to need to encounter. The importance of tailor-made products and services should be administered. To

remain linked with the customers and give them hope that they will soon be able to witness these virtual interactions in the real world will keep them hopeful. The tour companies should rethink marketing tactics to keep the new normal in perspective is essential.

Various tourism boards can observe many insightful instances of tourism brands venturing into the difficulties during the pandemic and revamping their strategies to relaunch the tourism product and services. The usage of appealing and captivating taglines, hashtags, virtual tours and Vlogs made the relaunch virtual campaign much more lucrative. These fabulous advertising tools and techniques will undoubtedly revive the entire tourism industry. Besides targeting and segmenting travellers, numerous tourism boards have additionally dispatched elearning efforts to keep travel planners, organizations, and partners locked in. These e-learning stages permit individuals to gain knowledge from the movement and the travel industry to sharpen their abilities during the current times of restricted travel.

Tourists Adapting to the Current Technologies :

Innovative technological advances have changed the way we travel, and these new and changed improvements usually guarantee a significantly more exciting and energizing experience. Travel and technology are inseparable now. Technologies play a pivotal role in the tourism business, so we cannot neglect them. There is an urgent demand for further digital transformation of the business to meet the degree of personalization that visitors request. These devices may prompt an expansion in direct appointments and decrease the predominance of large online travel agencies. The online travel services will use markets through a significant interest in client maintenance, reliability, and procurement of devices, while lodgings are putting resources into improving visitors' remains. The "new ordinary" under COVID-19 appears to have caused the area to understand that interest in imaginative innovation is very significant in the current times. There is a need to focus on rapidly changing needs, demands, and changed purchasing methodology of tourists. Each tourist evaluates the ambiance of a place, climate, sustainability, new channels for deals and advertising, hygiene, maintenance and innovation in informing or delivering services. The new ordinary methods move in speculation, assets, and plans toward different methodologies. The advertising portfolio should be changed step by step. During this time, computerized and social channels have been used to approach tourism marketing better. For future methods to work, we need to think about the person's requirements with the desires of the undertaking to carry out adequate arrangements. Each business or manager is unique. Each business or division has an immense scope of individuals with various personas, abilities, and capacities.

Below mentioned are some of the high-yielding marketing strategies :

- **Webinar and Virtual Events**

We can use webinars and Virtual Events as long-term content tools to nurture audiences and optimize interaction with online events. This would show that the brand is a thought leader and trusted source even if participants skipped the case. Many businesses have gone interactive because of respect for the health and welfare of our clients, partners, workers,

and communities. While face-to-face experiences can never be substituted, many opportunities exist to engage other attendees.

- **Social Media Engagement :**

To create a successful brand, increase the sales, and boost the company's website traffic, social media marketing has come up to be the most crucial tool currently. The main use of various social media platforms is to communicate and engage with the audience and client. This will also attract people with similar thoughts across different social media platforms. We need to update the crowd with video content. Utilize social listening devices to get a vibe on what the clients discuss and how they respond to the current circumstance. It creates brand identity and helps in raising brand awareness. Social media helps in improving the interaction and communication with the key audience. It raises the visiting traffic of the website. The more involved the audience is on social media platforms, the more convenient it is to carry out any other marketing target on the bucket list.

- **Content Marketing**

Content marketing is a key promoting approach which is centered to create, publish, and dispense content for a focused online target market. It produces or increments online deals. The fundamental objective is to expand brand mindfulness, improve internet search rank, and create public interest. Organizations mostly utilize the content to sustain leads and empower deals by utilizing site investigation, tagline research, and focus on process suggestions. The benefit of content advertising is that it influences and instructs clients and brings deals to a close. From a general perspective, website design improvement and substance advertising are the backbone of content marketing. Higher search engine ranking, faster the sales, and massive website traffic help build improved relationships between the business and the client, which in return would enhance loyalty.

- **Revamping Email Marketing Strategy :**

Email marketing makes uses email to deliver a promotional message, usually to a group of individuals. In broadest sense, an email is sent to potential customers as well as old customers. It can include sending advertisements, brochures, asking for business or promoting sales using emails. Invitation emails, reminder emails, confirmation emails, and post-event emails are some examples used in email marketing. The Email Marketing technique is a highly successful digital marking technique.

- **Artificial Intelligence Chat Bot :**

A computer-based intelligence chatbot is a program that can stimulate user interaction with a natural language via messaging apps. A.I. chatbot is very useful in conserving time and resources and also increases customer satisfaction. These chatbots use machine learning language and natural language processing to have an almost human conversational experience. An artificial intelligence chatbot is worked to perceive, comprehend and react to explicit inquiries and issues in a flash. An A.I. chatbot settles on a choice by utilizing prior information and one that gains constantly.

- **Modifying Advertisement Strategy:**

Change is the predominant unavoidable truth in each business today. One of the

most sought-after managerial qualities has been the ability to master and manipulate shifts in the market. This is especially true in marketing, where the pace of change is constantly quickening. Every day, change becomes more costly; but not changing can still be more expensive. Moreover, an organization's marketing effort must represent an inner constancy of intent and an external image consistency even when adjusting to change. Of course, not all improvements in marketing are equally substantial. Some are limited to unique sectors. Marketing is helping clients and companies find one another and develop a mutually beneficial partnership. Developing a good view of the consumers' expectations is the secret to effective marketing. The customer experience has always been significant. Nevertheless, the way customers study and select which goods to purchase is evolving in today's increasingly digital environment.

- **Lucrative Offers and Promotions :**

Providing lucrative offers can become an eye-catching brand of the company from time to time. There is always a chance that a customer might visit the website after looking at these great deals. The plan and strategies that the company incorporates in its marketing plan to increase sales of the product or service demand are specified by a promotion strategy. A promotional strategy can be stated as an actionable plan that impact the company's sales. It improves customer interaction and satisfaction. It shows how the company can implement the marketing campaign and communicate about its product. A good strategy helps to focus on the target audience, and when & where the promotion plan needs to be implemented. There are masses of advertising methods that might not go over the small advertising budget. Some websites provide marketing and marketing cut price as a part of a unique event or online with a webinar or promotional giveaway. Digital coupons are reductions and promotions presented via means of outlets in modern-day advertising schemes.

Conclusion & Recommendations :

After reviewing various literatures, it is found that traditional marketing methods are not enough in this competitive environment and so, e-marketing tools and techniques should be adopted. Various companies and individuals are now focusing more on marketing through emarketing techniques to gain more and more customers with a wider reach. The prospective client is now spending more time on various internet devices. So, it will be beneficial for all the companies to market and do their promotional activities online through various modes.

Larger the duration of time spent online by the customers, better the organization's chances to market via this mode. Customers might come across various advertisements while surfing by the tourism departments and the travel agencies or hotels so that he can be reminded of the places he could visit.

In recent times there has been a significant dip in the sales of various tourism industry sectors due to the covid situation. However, to get out of the lump and gain more and more customers, there was an extensive need for marketing in any available forms. After the world started reopening from the lockdown, extensive, focused, and efficient marketing was the only way to boost the tourism industry.

This paper has focused on the fact that travel companies are applying various new and focused forms of e-marketing to promote their tourism products and services. Even though they are moving towards a new marketing process, they are starting from the basics of segregating and segmenting their market. By segmenting the market, they are able to find out the best possible clientele for them and market directly to them. The companies promote their destinations and products through social media platforms such as Instagram, Snapchat, etc., where they post pictures of their products, and the customers directly see them. By regularly posting pictures of the places to visit, the tourism companies place the product in the customers' subconscious minds, igniting them to wish to travel those places and enjoy the services. Travel agencies, tourism boards of various countries try to attract more and more tourists to the places so that they can recover from the gap that was caused due to the COVID restrictions where the tourist traffic was almost down to zero.

Digitalization of the tourism industry has helped the prospective clients to adapt the new technologies coming up from time to time. They go through the online advertisements and post done by the companies to get an idea about the place or services. Also, a good number of bookings are now being done online. The companies are promoting their tourist products through various webinars and virtual events that a person can conveniently attend in the comfort of his location and time.

Segmenting the tourists has also helped the tourism boards and travel agencies to do the direct content marking to the people as per their interest. This method is being used for marketing the primary tourist sector as well as the niche market.

E-marketing has turned to be an essential mode of marketing for the tourism sector so that the tourism sector can come out of the lump it had gone because of the COVID locked down and help the economy as it has always been. A large number of people are getting employment in various tourism sectors, so the tourism industry must bounce back.

Referemces :

1. Bigne, Enrique & Ruiz, Carla &Curras-Perez, Rafael, 2019. "**Destination appeal through digitalized comments**," Journal of Business Research, Elsevier, vol. 101(C), pages 447-453.
2. Blattberg, R.C. and Deighton, J. (1996) Manage Marketing by the Customer Equity Test. Harvard Business Review, 74, 136-144.
3. Christian Maurer, 2022. "**Digital Marketing in Tourism**," Springer Books, in: Zheng Xiang & Matthias Fuchs & Ulrike Gretzel& Wolfram Höpken (ed.), Handbook of e-Tourism, chapter 54, pages 1311-1333, Springer.
4. Desai, D. M. V. (2019, March 20). Digital Marketing: A Review. *International Journal Trend in Scientific Research and Development*, *Special Issue*(Special Issue-FIIIIPM2019), 196– 200. https://doi.org/10.31142/ijtsrd23100
5. Filimonau, V.; Beer, S.; Ermolaev, V.A. The Covid-19 pandemic and food consumption at home and away: An exploratory study of English households. Socio Econ. Plan. Sci. 2021, in press.
6. Jílková, P.; Králová, P. Digital consumer behaviour and eCommerce trends during the COVID-19 crisis. Int. Adv. Econ. Res. 2021, 27, 83–85.

7. Joia, L.A.; Lorenzo, M. Zoom in, zoom out: The impact of the COVID-19 pandemic in the classroom. Sustainability 2021, 13, 2531.

8. Kim, J., Yang, K., Min, J., & White, B. (2021). Hope, fear, and consumer behavioral change amid COVID-19: Application of protection motivation theory. *International Journal of Consumer Studies*. https:// doi. org/ 10. 1111/ ijcs. 12700

9. Khan, M.M.; Shams-E-Mofiz, M.; Sharmin, Z.A. Development of e-commerce-based online web application for COVID-19 pandemic. iBusiness 2020, 12, 113–126.

10. Kumar, S., Dhir, A., Talwar, S., Chakraborty, D., & Kaur, P. (2020). What drives brand love for natural products? The moderating role of household size. *Journal of Retailing and Consumer Services*, *58*. https://doi.org/ 10.1016/j.jretconser.2020.102329

11. Laato, S., Islam, A. N., Farooq, A., &Dhir, A. (2020, November). Unusual purchasing behavior during the early stages of the COVID-19 pandemic: The stimulus-organismresponse approach. *Journal of Retailing and Consumer Services*, *57*, 102224.https://doi.org/10.1016/j.jretconser. 2020.102224

12. Prajapati, K. (2018). A Study on Digital Marketing and Its Impacts. https:// www.researchgate.net/profile/Kishan-Prajapati 8/publication/345634018_A_ Study_on_Digital_Marketing_and_It's_Impacts/ links/5fa987b b 6fdcc06242044cc/A-Study-on-Digital-Marketing-and-Its-Impacts

13. Prasetyo, Y.T.; Tanto, H.; Mariyanto, M.; Hanjaya, C.; Young, M.N.; Persada, S.F.; Miraja, B.A.; Redi, A.A.N.P. Factors affecting customer satisfaction and loyalty in online food delivery service during the covid-19 pandemic: Its relation with open innovation. J. Open Innov. 2021, 7, 76.

14. Roggeveen, A. L., &Sethuraman, R. (2020). How the COVID-19 pandemic may change the world of retailing. *Journal of Retailing, 96*(2), 169–171.

15. Shestak, V.; Gura, D.; Khudyakova, N.; Shaikh, Z.A.; Bokov, Y. Chatbot design issues: Building intelligence with the Cartesian paradigm. Evol. Intell. **2020**.

16. Thota, S. (2018). Social media: A conceptual model of the why's, when's and how's of consumer usage of social media and implications on business strate- gies. *Academy of Marketing Studies Journal*, *22*(3), 1–12. https://www.abacademies.org/ articles/social- media-a-conceptual-model-of-the-whys-whens-and-hows-of-consumer-usage-of-socialmedia- and-implications-on-business-strategi-7531.html

17. Ukpabi D.C., Karjaluoto H. What drives travelers' adoption of user-generated content? A literature review. *Tourism Management Perspectives*. 2018; 28:251–273.

18. Zeng, B., &Gerritsen, R. (2014, April). What do we know about social media in tourism? A review. *Tourism Management Perspectives*, *10*, 27–36. https://doi.org/ 10.1016/j.tmp.2014.01.001

The Bhagavad Gita for Engineering Students : Nurturing Leadership Skills

Dr. Ram Avtar
Associate Professor, English
Department of Applied Sciences & Humanities,
Galgotias College of Engineering & Technology,
Greater Noida, (U.P.)

Dr. Rakhi Sharma
Assistant Professor, English
Department of Applied Sciences & Humanities,
IIMT College of Engineering,
Greater Noida, (U.P.)

Abstract :

The Bhagavad Gita, a timeless philosophical text, offers profound insights that resonate powerfully with the challenges and opportunities faced by engineering students in their pursuit of technical excellence and effective leadership. This exploration delves into how the Gita's teachings, enriched with relevant examples, provide a blueprint for engineering students to develop not just into technically adept professionals, but also compassionate and visionary leaders who drive innovation and progress in the engineering field. Through principles such as ethical decision-making, adaptability, collaboration, and personal growth, the Gita offers guidance that aligns seamlessly with the demands of engineering leadership. Drawing parallels between the Gita's lessons and the dynamics of the engineering world, this analysis showcases how the shloka "Tasmad Asaktah Satatam Karyam Karma Samachara" emphasizes the importance of commitment to duty, mirroring the focused dedication required in complex engineering projects. Similarly, the shloka "Yoga-stha% Kuru KarmâG i" highlights resilience and adaptability, qualities indispensable in navigating the rapid changes of technology. By reflecting on verses like "Vidyâ-vinaya-sampanne," students are encouraged to foster personal growth and continuous learning as they strive to be well-rounded professionals and visionary leaders. Through the lens of the Bhagavad Gita, engineering students are inspired to nurture leadership skills that encompass ethical decision-making, adaptability, collaboration, and personal growth, leading them towards a path of excellence and impactful leadership in the engineering domain.

Keywords :

Bhagavad Gita, Engineering students, Leadership skills, Nurturing, Ethical decision-making

In this context, the teachings of *the Bhagavad Gita*, a timeless philosophical text, offer profound insights that resonate powerfully with the challenges and opportunities faced by engineering students. Just as the Gita provided guidance to Arjuna on the battlefield, it presents a wealth of principles that can

shape the mindset and behaviors of engineering students, nurturing their leadership abilities. From ethical decision-making to adaptability, from fostering collaboration to personal growth, the Bhagavad Gita's teachings provide a treasure trove of wisdom that can be applied to the engineering context. This exploration delves into how the Gita's lessons, enriched with relevant examples, offer a blueprint for engineering students to develop into not just technically adept professionals, but also compassionate and visionary leaders who drive innovation and progress in the engineering field.

1. **Clarity of Purpose (Understanding and Communicating a Clear Vision):**

The Gita's emphasis on focused determination aligns with the importance of setting a clear path in engineering endeavors. By understanding their objectives and visualizing the desired outcomes, students can channel their efforts effectively. Moreover, the Gita's teachings on effective communication, as echoed in the aforementioned quote, resonate with engineering's collaborative nature. Just as Lord Krishna provided guidance to Arjuna, students must learn to articulate their ideas, plans, and concerns with clarity and confidence. This fosters a cohesive team environment and ensures that projects are executed coherently. By incorporating these principles, engineering students can navigate their academic and professional journey with purpose, fostering innovation, teamwork, and meaningful contributions to the field's advancements.

karmany-evadhikaras te ma phaleshu kadachana

ma karma-phala-hetur bhur ma te sango stvakarmani (2:47)

"Understanding and Communicating a Clear Vision" in the context of the Bhagavad Gita verse "karmany-evadhikaras te ma phaleshu kadachana ma karma-phala-hetur bhur ma te sango "stvakarmani" holds significant relevance and benefits for engineering students. This concept entails having a well-defined purpose and direction in one's actions and effectively conveying that vision to others. Let's explore how this principle aligns with the shloka and its benefits for engineering students:

i. **Understanding the Vision :** The shloka serves as a powerful reminder for individuals, including engineering students, to center their attention on their responsibilities and duties (karmani). By comprehending the broader vision and purpose behind their academic endeavors and projects, students gain the ability to transcend immediate tasks. Similar to the emphasis on "adhikaras" or rightful claims in the shloka, students should recognize their integral role in fulfilling a larger mission, be it the creation of innovative solutions, the advancement of sustainable technology, or the enhancement of societal well-being. This awareness of their responsibilities and alignment with a greater purpose not only infuses their work with meaning but also motivates them to channel their knowledge and skills toward the betterment of society, thereby contributing to a more prosperous and harmonious world.

ii. **Communicating the Vision:** Effective leadership requires clear communication. In the context of the engineering students, the shloka "ma phaleshu kadachana" advises against being

overly preoccupied with outcomes. **When the students understand that the essence lies in the process and not just the results**, they can effectively communicate this vision to their peers and team members. They inspire others to work collaboratively, focusing on the quality and impact of their efforts rather than just achieving targets.

iii. **Avoiding Selfish Motivation:** the shloka "ma karma-phala-hetur bhur" warns against being motivated solely by the desire for personal gains. When they understand that their actions contribute to a collective vision, they cultivate a sense of purpose beyond individual achievements. This understanding allows them to communicate a vision that transcends personal success and aligns with the greater good of their field and society.

2. **Lead by Example (Setting a Positive and Dedicated Example) :**

By embodying these virtues, students not only foster a culture of excellence but also motivate others to strive for their best. The Gita's teachings on self-discipline encourage students to adhere to high standards and consistently uphold them, serving as beacons of inspiration for their peers. By setting a positive and dedicated example, engineering students contribute to the betterment of their teams, academic institutions, and the field as a whole. Through their actions, they uphold the principles of the Gita and become role models who positively influence those around them, fostering an environment of growth, collaboration, and shared success.

buddhi-yukto jahatiha ubhe sukrita-dushkrite
tasmad yogaya yujyasva yogah karmasu kaushalam (2:50)

"Setting a Positive and Dedicated Example" in the context of the Bhagavad Gita verse "buddhi-yukto jahatiha ubhe sukrita-dushkrite tasmad yogaya yujyasva yogah karmasu kaushalam" holds significant importance and benefits for engineering students. This concept involves embodying qualities that inspire others through one's actions and dedication. Let's explore how this principle aligns with the shloka and its benefits for engineering students:

i. **Exercising a Balanced Mind:** the shloka emphasizes being "buddhi-yukto," which means having **a well-directed intellect.** Engineering students, by cultivating **a balanced and focused mindset**, can set an example of thoughtful decision-making, critical thinking, and rational problem-solving. It is also true that "An unruly mind is our greatest foe, and a stable mind is our greatest friend "(Radwan).

"Such an approach not only benefits their own growth but also inspires the peers to adopt a similar attitude towards their studies and projects.

ii. **Transcending Dualities:** The phrase "jahataha ubhe sukrita-dushkrite" signifies transcending dualities, such as good and bad outcomes. When they approach their tasks with equanimity, they demonstrate resilience and composure in the face of challenges. This positive demeanor becomes an example for others, encouraging them to remain steadfast and undeterred by obstacles.

iii. **Inspiring Ethical Conduct :** The concept of "yogah karmasu kaushalam"

implies excellence in action. The Engineering students who exemplify ethical conduct, integrity, and professionalism in their work, set a positive example for others. Their behavior becomes a source of inspiration, fostering an environment of trust and ethical behavior within their academic community. "An understanding of professional ethics provides a clear grounding for the global engineer" (Alpay).

iv. **Leading by Action:** "Setting a Positive and Dedicated Example" involves leading through actions rather than words alone. When the engineering students embody qualities like dedication, discipline, and ethical behavior, they become role models who inspire their peers to follow suit. Such examples create a culture of excellence and responsibility within the engineering community.

3. **Effective Communication Skill (Articulating Ideas Clearly and Empathetically):**

The Gita's emphasis on effective communication resonates deeply in engineering's collaborative landscape. By expressing ideas in a coherent manner, students foster productive teamwork and prevent misunderstandings that can hinder progress. Additionally, the Gita's teachings on empathy encourage students to consider the perspectives of their peers and mentors. This skill not only enhances interpersonal relationships but also enriches the ideation process. By imbibing these principles, engineering students develop a powerful combination of technical proficiency and emotional intelligence, enabling them to articulate innovative ideas with clarity, collaborate harmoniously, and contribute meaningfully to the field's growth and innovation.

Shraddhavanllabhate jnanam tat-parah sanyatendriyahs

Jnanam labdhva param shantim achirenadhigachchhati (4:39)

"Articulating Ideas Clearly and Empathetically" in the context of the Bhagavad Gita verse "jnanam tat-parah sanyatendriyahs Jnanam labdhva param shantim achirenadhigachchhati" holds profound significance and benefits for engineering students. This concept involves not only acquiring knowledge but also effectively conveying it to others with clarity and consideration. Let's explore how this principle aligns with the shloka and its benefits for engineering students:

i. **Deep Dedication to Learning:** the shloka emphasizes having **"Shraddha"** or unwavering dedication towards knowledge. For the engineering students, this implies pursuing subjects with **genuine passion and curiosity**. When they approach their studies with dedication, they naturally acquire a deep understanding of complex concepts, which they can then express more clearly.

ii. **Dedicating the Senses to Learning: "Tat-parah sanyatendriyah"** signifies focusing the senses towards the pursuit of knowledge. In the context of presenting thoughts, this means channeling one's attention and senses towards understanding and expressing complex topics accurately and lucidly.

iii. **Empathetic Expression of Knowledge:** The phrase **"jñânam labdhva param shantim"** refers to **attaining supreme peace through**

knowledge. When engineering students express their ideas **empathetically,** considering the perspective of their audience, they foster understanding and harmony. Clear and empathetic communication enables others to grasp their ideas more effectively. "Having gained this (empathetic expression of knowledge), one at once attains the supreme peace" (Satpathy).

4. **Decision-Making Skill (Engaging in Conscious and Moral Decision-Making) :**

The Gita's emphasis on righteous action guides students to make decisions that align with their values and have a positive impact on society. By deliberating on the ethical implications of their choices, students cultivate a heightened sense of responsibility and integrity. The Gita's wisdom on self-awareness complements this, as students learn to assess their motivations and intentions before making decisions. This introspective approach fosters a culture of ethical behavior and transparency, which are integral to the engineering profession's integrity. By internalizing these teachings, engineering students develop not only technical skills but also a strong moral compass, enabling them to navigate their careers with conscious decision-making that upholds ethical values and contributes to the betterment of society.

tasmad asaktah satatam karyam karma samachara

***asakto hyacharan karma param apnoti purushah* (3:19)**

"Engaging in Conscious and Moral Decision-Making" in the context of the Bhagavad Gita verse "tasmad asaktah satatam karyam karma samachara asakto hyacharan karma param apnoti purushah" holds profound significance and benefits for the engineering students. This concept involves making choices that are guided by awareness, ethics, and a sense of responsibility. Let's explore how this principle aligns with the shloka and its benefits for engineering students:

i. **Conscious Decision-Making:** The shloka emphasizes being "**asaktah"** or unattached to the fruits of actions. In the context of decision-making, this signifies making choices without being swayed solely by personal gain. The students who engage in conscious decision-making consider the broader impact of their choices on their studies, projects, and peers. They weigh the ethical effects and long-term consequences before making decisions. They also well know, " They are assumed to choose among alternatives on the basis of their expected consequences, but those consequences are not known with certainty" (March).

ii. **Consistent Ethical Conduct: "Satatam karyam karma samachara"** advises performing one's duties consistently. For the students, this implies adhering to ethical standards in every decision they make. By making moral choices aligned with their values, they set a positive example for their peers and contribute to a culture of integrity within the engineering community.

iii. **Unattached Action:** The shloka states that one should not be **"asakto hyacharan"** or attached to inaction. In the realm of decision-making, this means avoiding indecisiveness or a

lack of ethical action. Engineering students who engage in conscious decision-making recognize the importance of taking a stand when faced with ethical dilemmas, even if the choice is difficult.

iv. **Fostering Ethical Leadership:** Engaging in conscious and moral decision-making prepares the engineering students to become ethical leaders. Their ability to make principled choices even in challenging situations inspires their peers to follow suit. They contribute to an environment of ethical conduct, responsibility, and trust within the engineering community.

5. **Resilience and Adaptability Skill :**

This quality enables students to bounce back from setbacks, learn from failures, and grow stronger in the process. Additionally, the Gita's wisdom on adaptability aligns with the dynamic nature of the engineering field. Just as Lord Krishna's guidance helped Arjuna adapt to changing circumstances, engineering students can also learn to swiftly adjust their strategies and approaches when facing unexpected hurdles. By incorporating these teachings, they foster a mindset of perseverance, enabling them to overcome challenges, innovate in the face of uncertainty, and emerge as competent, agile, and impactful professionals in the field of engineering.

yoga-sthah kuru karmani
sangam tyaktva dhananjaya
siddhy-asiddhyoh samo bhutva
samatvam yoga uchyate **(2:48)**

"Resilience and Adaptability" in the context of the Bhagavad Gita verse "yoga sthah kuru karmanisangam tyaktva dhananjaya siddhy-asiddhyoh samo bhutva samatvam yoga uchyate " holds profound insights and benefits for engineering students. This concept involves maintaining composure in success and failure, adapting to changing circumstances, and persevering through challenges. Let's explore how this principle aligns with the shloka and its benefits for the aspirants:

i. **Steadfastness in Action:** "yoga kuru karmani" emphasizes performing actions with equanimity. For the students, this means approaching their tasks with unwavering dedication and focus, irrespective of outcomes. "Resilience is the ability to adapt successfully in the face of stress and adversity" (Wu).. It is about staying committed to their work, even when faced with difficulties or setbacks.

ii. **Detachment from Outcomes:** the shloka advises "sangam tyaktya"-
◀
letting go of attachment to results. The aspirants who practice this principle understand that success and failure are transient. By focusing on the process and learning rather than just results, they cultivate resilience and maintain a balanced perspective.

iii. **Equanimity in Success and Failure:** "Siddhy-asiddhyoh samo bhutva" emphasizes treating success and failure with equanimity. Adapting this attitude, the engineering students are prepared to face both achievements and setbacks with grace. This quality helps them navigate the dynamic challenges of the engineering field

with resilience.

iv. **Cultivating Adaptability:** the shloka suggests that "samatvam yoga uchyate"- maintaining balance is the essence of yoga. Engineering students who embrace adaptability thrive in the ever-changing landscape of technology and innovation. They quickly adjust to new information, approaches, and technologies, ensuring their skills remain relevant.

In conclusion, the Bhagavad Gita offers engineering students a rich tapestry of insights that go beyond technical proficiency, nurturing leadership skills that encompass ethical decision-making, adaptability, collaboration, and personal growth. By internalizing these principles, engineering students not only excel academically but also develop into well-rounded professionals and visionary leaders who can navigate the complexities of the engineering field while contributing positively to society's technological advancement. Just as Lord Krishna guided Arjuna, the Bhagavad Gita guides engineering students toward a path of excellence and impactful leadership in their chosen domain. Hence, it is well to be said, "A leader's presence affirms what the leader says, is an indication of what he or she believes" (Baldoni).

References :

1. Prabhupada, A.C. Bhaktivedant Swami. "Bhagavad Gita" (Second Edition). California: Bhaktivedant Book Trust International, Inc., 2004. Print.
2. Sachdev, Anil, and Vidya M. Iyer. "Inspired Leadership and Indian Wisdom in Managing Crisis." Global Perspectives on Indian Spirituality and Management: The Legacy of SK Chakraborty. Singapore: Springer Nature Singapore, 2022. 309-326.
3. Radwan, Jon. "Leadership and Communication in the Bhagavad Gita: Unity, Duty, and Equanimity." Managing by the Bhagavad Gita: Timeless Lessons for Today's Managers (2018): 87.
4. Alpay, Esat. "Student-inspired activities for the teaching and learning of engineering ethics." Science and engineering ethics 19 (2013): 1455-1468.
5. Satpathy, Biswajit, and Balakrishnan Muniapan. "The knowledge of "Self" from the Bhagavad-Gita and its significance for human capital development." Asian Social Science 4.10 (2008): 143-150.
6. March, James G. Primer on Decision Making: How Decisions Happen. Simon and Schuster, 1994.
7. Petersen, Anders. "Authentic self-realization and depression." International Sociology 26.1 (2011): 5-24.
8. Van Linder, Bernd, Wiebe van der Hoek, and J -J. Ch Meyer. "Actions that make you change your mind." KI-95: Advances in Artificial Intelligence: 19th Annual German Conference on Artificial Intelligence Bielefeld, Germany, September 11–13, 1995 Proceedings 19. Springer Berlin Heidelberg, 1995.
9. Jagyasi, Prem.Dr Prem: "Quotes & Thoughts".https://drprem.com/quotes/you-are-your-own-best-friend-and-worst-enemy-only-you-can-take-yourself-higher-or-make-yourself-fall-even-lower/
10. Chambers, A. B. "The Mind is its Own Place: Paradise Lost, I. 253–255." Renaissance News 16.2 (1963): 98-101.
11. Seibert, Scott E., Maria L. Kraimer, and Peter A. Heslin. "Developing career resilience and adaptability." Organizational Dynamics 45.3 (2016): 245-257.
12. Downing, Joyce Anderson, Theresa Earles-Vollrath, and Mary B. Schreiner. "Effective

self-advocacy: What students and special educators need to know." Intervention in school and clinic 42.5 (2007): 300-304.

13. Haynes-Mendez, Kelley, and Jill Engelsmeier. "Cultivating cultural humility in education." Childhood Education 96.3 (2020): 22-29.

14. Adams, Jonathan Paul, et al. "Improving problem solving and encouraging creativity in engineering undergraduates." development 3 (2007): 5.

15. McFadzean, Elspeth. "Encouraging creative thinking." Leadership & Organization Development Journal 20.7 (1999): 374-383.

16. MAMATHA, M., and E. CHITTI BABU. "Building Trust Relationship among Peers using Self Organizing Trust Model." (2014).

17. Winterburn, Kathryn. "Adapting for change: action learning as a method of working with uncertainty." Action Learning: Research and Practice 18.3 (2021): 257-258.

18. Magolda, Marcia B. Baxter. Authoring your life: Developing your internal voice to navigate life's challenges. Taylor & Francis, 2023.

19. Agbor, Emmanuel. "Creativity and innovation: The leadership dynamics." Journal of strategic leadership 1.1 (2008): 39-45.

Collaborative Nature and Challenges of Folkloristic Study as Historical Science

Amit Kumar
Assistant Professor,
Arunachal Institute of Tribal Studies,
Rajiv Gandhi University (A Central University),
Rono Hills, Doimukh, Arunachal Pradesh,

Abhishek Prasad
Assistant Professor,
Department of Management,
Rajiv Gandhi University (A Central University),
Rono Hills, Doimukh, Arunachal Pradesh

Abstract :

Folkloristic studies, a multidisciplinary field that examines the oral traditions, myths, legends, folk narratives, and cultural practices of diverse communities, have gained significant recognition as a valuable resource for understanding historical phenomena. This study delves into the intersection of folklore and historical science, elucidating how folkloristic research contributes to the comprehension of past societies, their events for better society in today's world. By analyzing the rich tapestry of folklore, researchers can discern hidden cultural motifs, societal norms, and collective memories that often elude conventional historical sources. This paper explores various methodologies employed in integrating folkloristic perspectives into historical inquiry, highlighting the synergistic relationship between these two disciplines. This study delves into the intersection of folklore and historical science with consulting various literatures, elucidating how folkloristic research contributes to the comprehension of past world. Through systematic analysis and comparison with corroborative historical evidence, folkloristic studies offer valuable insights into the human experience across time, enriching our understanding of the past and its influence on the present. This study emphasizes the need for interdisciplinary collaboration, emphasizing the role of folkloristic studies as an indispensable tool in the arsenal of historical research, ultimately fostering a holistic and nuanced comprehension of our shared history.

Keywords :

Folklore, Historical Science, Oral Traditions, Cultural Practices, Collective Memory, Marginalized Voices, Historical Inquiry.

Introduction :

A concept of folklore is seen as the face-to-face discussion between the two or more people which is known to them since the past, i.e., they do not talk about the new thing but the widely known thing which has been passed from the previous generation to them. The word folklore is made by the combination of 'folk' and 'lore,' which was coined by the Englishman

William Thomas in 1846. Here the word folk is meant as two or more people belonging to a social group having common traits, who expresses their shared identity through distinctive traditions. 'Lore' comes from old English lar 'instruction', i.e., knowledge in form of tradition most frequently passed down by word of mouth in particular group or community. Folklore is all about expression body of culture shared among individuals and groups belonging to particular community. It includes the customs or culture typical to that group, subgroup, or community. This comprises stories, proverbs, riddles, songs, and jokes that are passed down orally. They include items from the group's material culture, such as attractive toys and traditional building methods. Customary lore, acting on behalf of traditional beliefs, the forms, and rituals of festivities like Christmas, Diwali, Id, Muharram, Dusshera, Chhath, Karwachauth, Ramnavami, Lohri, Mahavir Jayanti, Vatsavitri and weddings, folk dances, and lighting rites are also included in folklore. Each of them is regarded as a folklore item, whether alone or in combination. History is the scientific study of past knowledge acquired by investigation which has been evolved from Greek word 'historia', means 'inquiry'.

Folklore is the term used to describe the traditional values and narratives of an individual, a group, or a whole community. Those narratives are mostly oral in form of Folktales, myths, stories, notions, customs, superstitions, etc. This demonstrates how folklore spans a broad spectrum. One may say that a certain group of people's folklore was created in line with their culture. Folklore is used by people to make sense of the world around them. This cultural legacy is the result of the different superstitions, tales, and beliefs. History is a narrative of the happenings in human history, including the rise and fall of states, as well as other significant shifts that have impacted the political and social state of the human race. History is one form of culture. Different cultures shape different histories. Without resort to falsification, historians select different facts and arrange them differently because they live in different society's governed by different needs. Writers throughout Europe drew liberally as well on story collections from the Near East, such as the pre-eighth century Sanskrit fable book the *Panchtantra* and *Somdeva's* eleven-century work *Kathasaritsagara*. Because of the tendency and freedom among writers of the time to copy, recopy and edit, many of the same stories appeared in writing again and again. Such tales became even more widely known as individuals who learned them from written sources told them to live audiences in varied settings, including courts, churches, marketplaces, drinking establishments, and homes.

Folklore emerged as a new field of learning in the nineteenth century, when antiquaries in England and Philologists in Germany instigated to look closely at the lifestyles of the subordinate classes. In 1812, the German brothers Jacob and Wilhelm Grimm commenced publishing influential volumes of oral folk narratives and interpretations of Germanic mythology. The word they used to denote this subject was '*Volkskunde*.' Then, on 22nd August 1846, an English antiquary, William John Thomas, sent a letter to the Athenaeum, a magazine catering to the intellectually curious, suggesting that the new word "Folklore" be then forth adopted

in place of the cumbersome phrase "popular antiquities".

The term caught on and proved its value in defining a new area of knowledge and subject of inquiry, but it has also caused confusion and controversy. To the layman and to the academic man too, folklore suggests falsity, wrongness, fantasy, and distortion at the same time it becomes important in cultural transmission. Or, it may conjure up pictures of granny woman spinning traditional tales in mountain cabins or gaily costumed peasants performing seasonal dances. In the present work, folklore will mean both a field of learning and the whole subject matter of that field. History as a term possesses the same ambiguity, standing for the discipline and for the content, but it does not create the same possible misunderstanding.

A concept of folklore and an interest in the expressive traditions from which the concept is derived existed along before the word folklore was coined. From the beginning of recorded history, writers called attention to what they considered fantastic stories and exotic customs. The ancient Greeks were among the first to commit to writing opt-told tales they called myths and to make such narratives the subjects of discussion and debate. Folk history and academic history cannot be sundered by truth, for both are as true as their practitioners can be sundered by significance for both are meaningful in context absurd when shattered into fragments. Differences do remain.

A minor difference between folk and academic histories is to be found in the medium of communication. In oral history it is difficult to preserve the unmemorable, the welter of dull detail and fine webs of qualification that make written arguments seem complex and convincing do not belong in good tales. Oral history cannot be boring. Yet, in oral history, it is harder to lie. Face to face with a small and knowledgeable audience, the historian is checked constantly and prevented from drifting off along lines of thought that shift, shifting permute into falsehood in the solitude of the study.

It was earlier known as the fantastic stories about anything before the folklore term was coined, means even the folklore was not coined, the fantastic stories and exotic customs were being transmitted to each other.

Ancient Greeks were the first one to discuss or debate the folklore which was known as Myth. The Chi-Cheng was developed as Chinese anthology during 551 BC to 479 BC. Roman historian talks about the traditions and customs of German Tribes in his text 'Germania' (Tacitus, 98). Kojiki (712AD, English edition in 1882) and Nihongi (720 A.D, English edition in 1896) was Japanese historical text which mentioned about the myths, legends and folksongs for the chronological narratives which has further developed as the folkloristic study after the decline of the ancient civilization [(Alexandria, 2009) & (Aston, 2013)]. Early Chroniclers venerable Bede (Rochester, 2017) and William of Malmesbury (Giles, 2015) discussed the popular stories of Vergin Mary miracles and Christian Saint lives into the text. Many short moral compilations were used as the source by the medieval priests as sermons to be passed to their people. Writers of European region even compiled many texts influenced from the Sanskrit Texts drawn from the *Panchtantra* and

Kathasaritsagara, and therefore with the repetition of same stories again and again mentioned in the writings become widely spread to the people and influenced them to spread the discussion in to various settings including courts, churches, market places, drinking establishments and homes. Folklore became as the source for the authors, researchers from the middle century through the first half of 18th century as many writes like Italian writer Giovanni Boccaccio in his book "The Decameron" in 1492 (Rebhorn, 2015) and English poet Geoffrey Chaucer in his book 'The Canterbury Tales' (Chaucer, 1392) discussed many oral storytelling or folktales. Many humorous stories were widely told during Renaissance for the entertainment purposes later on passed through generations and become the widely known story. Stories like fools cutting the branch of tree on which he was sitting and burning homes to kill the rodents and insects.

History stands for series of past events in the existence of nation, individual, etc. As per dictionary connotation it is chronological record or narrative of past events. In academic circles the primary meaning of term history is that it is the scientific study of events. Historiography represents the writing of history, especially of the writing of history based on the critical examination of sources, the selection of particulars from the authentic materials in those sources, and the synthesis of those particulars into a narrative that will stand the test of critical methods. The term historiography refers to the theory and history of historical writing. History is the study of life in society in the past, in all aspect, in relation to present developments and future hopes. It is the story of man in time, an inquiry into the past based on evidence. Indeed, evidences is the raw material of history teaching and learning. It is an inquiry into what happened in the past, when it happened, and how it happened. It is an inquiry into the inevitable changes in human affairs in the past and the ways these changes affect, influence or determine the patterns of life in the society. History and folklore both explains about the past events but history as the subject provides us the chronology of the events with the help of primary or secondary sources whereas folklore too explains about the past events and cultures but as a subject it does not provides us the chronology nor it have the reasonable sources to prove.

Folklores comprises traditional creations of peoples, primitive or civilized. These are achieved by using sounds and words in metric form and prose and include folk beliefs or superstitions, customs and performances, dances and plays. Moreover, folklore is not a science about a folk, but the traditional folk-science and folk-poetry. Folklore is the generic term to designate the customs, beliefs, traditions, tales, magical practices, proverbs, songs, etc., in short, the accumulated knowledge of a homogenous unsophisticated people, tied together not only by common physical bonds, but also by emotional ones which color their every expression, giving it unity and individual distinction (Sahoo, 2022).

Even folkloristics themselves have widely divergent views about what constitutes folklore. One of the reasons for this is that the concept about the nature of folklore itself has undergone considerable change over the years. By Archer Taylor, folklore is the material handed down

traditionally is either by word of mouth or by custom and practice (Bronner, 2007). By W. R. Bascom, says that folklore comprehends all knowledge that is transmitted by word of mouth and all crafts and techniques that are learnt by imitation and example as well as the product of such crafts (Bascom, 1954).

Folklore has a history that predates human civilization itself. There has never been a society or community where information, beliefs, practices, etc. have been shared and passed down, with the exception of the notions touching oldest or most basic society. According to Bascom, there is no known civilization that does not include folklore as one of the crucial components that contribute to creating the culture of a particular people. Folklore studies have only been studied for a short 200 years. The systematic gathering and preservation of folklore, according to academics, began in Europe-specifically, in Germany-in the latter half of the 18th century, practically simultaneously with the two intellectual revolutions of Romanticism and Nationalism. Jacob and Wilhelm Grimm, two young German brothers, diligently undertook the process of compiling, analyzing, and publishing German folktales and myths in a methodical manner (Parekh, 2016). It is a generally agreed that the history of modern folklore studies began with the publication of the volume of German folktales under the title "*Kinder und Hausmarchen"* (children's and house-holders' tales) in 1812 by the Grimm brothers. However, the new discipline was known in Germany by the designation *Volkskunde* and the term continues to be used even now (Dorson, Folklore and Folklife An Introduction, 1972).

The same word history denotes both successive movement of events that from the basic raw materials as well as the academic discipline that is concerned with the systematic investigation into such raw materials. Often phrases such as Folklore studies and folklore research were used to refer to the study, as distinguished from the materials. Folkloristic has been coined to mean the discipline, as the scientific study of folklore. However, the use of such terms as folklore studies and folklore research and even folklore to identify the field of study, still continues. It is called as folklore studies, folklore research or folkloristic, this particular field of knowledge as reminded a more or less minor and marginal subject both inside and outside the groves of academe.

Indian folklore also figured prominently in the development of modern folkloristics. Once J. Grimm (1835) had postulated a connection between Indian and European mythology, and Max Muller (1856) had detailed it, the study of Indian folklore became essential to the development of folklore theory in the latter half of the 19th century. That was the initial stage of the study of Indian folklore along modern academic lines which Indian folklore research was dominated by philologist and linguist working in Sanskrit, Persian or Arabic with little, if any, direct knowledge of India. The second phase was market by the shift from classical text to field collection in India done mostly by the British Government officials, both civil and military, and their wives, as well as Christian missionaries. In the third period there was combination of the methods of field collection and philology, again engaged in the mostly by western scholars, with only one or two Indian scholars

occasionally joining in. In fourth period, beginning around the 1950s, anthropologists and language specialists began to record the major genres of verbal folklore in most regions of India. During this time, the primary role in the study of India including the field of folklore passed from Britain to America. Soon after independence, "the nationalist movement spurred new respect for, interest in, folk traditions". Starting from the around this time folklore programs were setup in some Indian Universities. It is certainly a matter of pride and honor for us that one of the earliest such programs was started at Gauhati University by the late Birinchi Kumar Barua, way back in 1955 (Datta, 2002).

The fifth and current period of research in Indian folklore started approximately in 1980s. extensive field research, particularly explorations in to new fields as well as the induction of new perspectives characterizes this period. There have been closer and deeper academic exchanges between Indian and foreign scholars. The result has been that the conceptual basis of the field is shifting, ethnographic and linguistic skill in South Asian research have now been enriched by the comparative reach and specialized focus of folklore studies. This combination of new materials and new approaches promises to find new meanings for India folklore (Gaur, 2010).

Folklore : A Historical Science?

As we have seen in the preceding section, folkloristics has from the beginning been involved with a past-oriented perception. Folklore, according to this perception, belonged to an earlier age oand had come to be retained in the present age in the beliefs, practices, tales, myths, ballads, etc., of the peasantry living in the countryside. The business of the folklorist was to identify such folklore items to collect them, and if possible, to interpret them. It is significant that before the coining of the term 'folklore' the phrase that was in vogue in the English language to designate folklore items happened to be "popular antiquities", the very word antiquity suggesting pastness. William J. Thomas description of folklore itself reveals in no uncertain terms that folklore was made only of material that belonged to bygone days the manners, customs, observations, superstitions, ballads, proverbs, etc., of the olden time, record of old time, some recollection of now neglected custom, some fading legend, local tradition, or fragmentary ballad (Roud, 2010).

In fact, Thomas' description of folklore represented the 19th century attitude towards folklore. Folklore then was conceived of as things surviving from the past that were fast disappearing. It was thus incumbent upon the folklorists to concentrate their efforts in the collection and preservation of these fast-vanishing survival. Collect or perish seems ot have been watchword making the rounds in the world of folklore at that time.

In the 19th century currents of nationalism and romanticism induced many to engage in the collection of oral traditions, preferably from peasants in rural areas. These traditions, as it was thought, were dying out. As such, it was urgent to collect them before they were totally lost.

Collaboration between historian and folklorist : the common ground

1. **Transmission of information and source material :**

   Historical research in the term applied

to the work necessary for the establishing of occurrences, happenings, or events in the field with which the historian is concerned. It is clearly stated here that the facts the historians deal with are not their own experience but only relics, tracks or traces of the occurrence based on accounts of the occurrences, or something that is the end product of such occurrences, which could be written, verbal or material.

This expert opinion on historiography, apart from displaying an open-minded and pragmatic attitude towards traditional source material of history, also underlines a few others relevant points which are of vital importance for our discussion here, and with which we will deal more elaborately in this section and also in the next. These points are

a) Verbal accounts can be and have been original sources for historiography,

b) The distinction between verbal and the written is not of fundamental significance, and

c) The subjective element may be present in both written and traditional sources, and it is for the historian to make allowances for it in both.

However, there appears to be among many historians a kind of distrust or guarded skepticism about the admissibility of verbal or unwritten material for the purpose of constructing history. There are several reasons for the distrust or skepticism but some of the reasons for such distrust or skepticism may be listed as follows:

a) Whatever is unwritten or in the oral tradition is unreliable;

b) Good history must be based on the facts supported by documents or other tangible evidences; and

c) Illiterate peoples do not care for chronology and thus do not have a sense of history.

2. The Question about Orality and Writing :

Whatever is written is more prestigious and trustworthy than whatever is not this idea somehow seems to be ingrained in many sections of the scholastic world, including that of history and historiography. But this excessive veneration for the written material is clearly misplaced. There is no necessary or inevitable dichotomy between the oral and written traditions. In fact, often the written tradition starts with the putting down of the oral material into writing and the occurrence of various types of oral material is a common feature of all written traditions.

Bynum examines this oral written issue in the context of history in the following way: According to a famous doctrine, the only documented, academic tradition of western historiography that exists is that of *Herodotus* and *Thucydides*. Writing undoubtedly promotes thoughtful contemplation and truthful assertion. These characteristics in other men's depositions concerning what happened in the past must be highly prized by a meticulous historian. Although every historian has occasionally had to accept evidence of someone's oral account of historical events, at the very best, not every valuable eye-witness or participant in historically significant events has had time or inclination to write down what he knows. Furthermore, accepting such oral histories as reliable historical sources does not always require deviating from the norms of historical evidence (Dorson, Folklore and Traditional History, 1973).

3. The Concern About Objectivity :

On the question of objectivity too, we are in the company of Carr who takes a bold stand and makes some extremely sensible observation. It can thus be concluded that although one has to be more careful with oral materials as sources of history because it has no proof written somewhere and was transmitted orally mostly, the problems and methods for treating such materials are basically the same as with written materials. As Per Bynum, If there is any greater or unique difficulty about oral sources of historical information as opposed to written or archaeological ones, perhaps it is only that oral sources so soon become unrefusable. Therefore, some of the issues and approaches to dealing with oral history are similar to those that Western historiography has been using since Thucydides, whose own sources of history were frequently oral. When compared to written or archaeological sources of knowledge, oral sources may present a bigger or more specific challenge since they are so quickly rendered irrefutable. Oral sources, properly speaking, are individuals. They pass away quickly, and once they are gone, there is no reliable means to contact them (Dorson, Folklore and Traditional History, 1973).

4. History and the 'Non-literate' Communities :

The wish to understand historical events rationally is (not) an exclusive property of the historians; on the contrary, all mankind manifestly shares it with them. The problem is only that one man's reason is another man's prejudice or superstitions, and one man's history is another man's fable (Dorson, Folklore and Traditional History, 1973). Raglan further states that the peasants and non-literate peoples have no concept of history and thus can have no interest in it. History is the recital in chronological sequence of events which are known to have occurred. Without precise chronology there can be no history, since the essence of history is the relation of events in their correct sequence (Roud, 2010).

5. Reconstructing History from Tradition: The African Experience:

As we have seen in the previous sub-section, the non-literate communities do have history as well as a sense of history-although of a different kind-in spite of the fact that European ethnocentric thinking has persisted in denying this fact. Of course, scholars- particularly anthropologists and folklorists- have endeavored to highlight the important of utilizing the oral traditions of non-literate peoples for the purpose of history-writing.

This fundamental belief in the continuity of life is an essential element of traditional African historiography. All over sub-Saharan Africa, the relevance of the dead to the life of the present and future generations is a common feature. There is a deep-seated belief that each community was founded by an ancestor or group of ancestors and the community owed all their possessions to them. Each community- family, clan, village, town or state-however large or small had an established tradition concerning its origin. The community might split up, migrate and assimilate new elements, or be conquered by others or absorbed by new immigrants. At each stage of transformation, the tradition was recrystallized to accommodate changed conditions and a new tradition of origin was formulated by the new community. This tradition became the core of the community's view of

history. The very process of tradition-making and acculturation in the community, and of transmission of tradition to succeeding generations developed a consciousness of history that became widespread in Africa. (Sciences, 2023)

6. Oral Tradition Validates Historical Research :

The study of traditional history can bring together historians and folklorists. Personal, family, neighborhood, and township historical traditions may be a part of this history. Professional historians dismiss or mock conventional history in societies where formal education, literacy, and written materials are the norm. However, many individuals and organizations continue to practice their own traditions in these communities. They are very different from traditional written history (Dorson, Sources For The Traditional History of The Scottish Highlands And Western Islands, 1973).

A distinguished professor of history and folklore, Dorson knew what he was talking about. What he calls the, folklore tradition' here, and which is also designated as the 'oral tradition' is definitely a potential source from which historical material can be culled with profit. However, it should be made clear that the connection between history and the oral tradition is not a direct one but the dependence has some special significance in literature. Oral tradition encompasses a variety of components and thus, they must be treated with appropriate methodologies to extract historical material. But there is another specific field which is quite close to oral tradition, though not always a part of it. Known as 'oral history', this field has a limited scope compared to, oral tradition and as the nomenclature it suggests, it comes almost directly under the purview of history. We shall now try or illumine the respective natures of these two fields form the academic point of view.

7. Oral History :

According to one definition, oral history is essentially an account of first-hand historical experience, recalled retrospectively and communicate to an interviewer for historical purposes. Another definition state that "oral history is the recording and interpretation of spoken testimonials about an individual's past.

Oral history itself has a long history, dating back to the time of the ancient Greeks, when historians like Thucydides collected memories of the experiences of the individuals for the purpose of historical records. Oral history is considered to be an ideal method for holding the mirror up to the experiences, attitudes and ideologies at the grassroots level in the recent past. This method has been characterized as the recovery mode by some- since it helps in the recovery of experiences of those who are marginalized. Oral history may take more than one form. Oral testimonial may be used for the purpose of giving a detailed account of a person's life: it is then called life history of personal narrative. When it is used for historical reconstruction and analysis of social change, cross-analysis is resorted to. Life history interviews are structured or semi-structured. When cross analysis is done on oral testimony, larger samples with more structured interviews are brought into play. While oral history accounts were in the form of written transcripts, the coming of sound recording by the end of the 19^{th} century changed the picture. Today, of course, the tape recorded and the video camera have revolutionized the field.

8. Oral Tradition :

We had the occasion to say something on tradition in a preceding section in another context- that of the association of tradition with the, historical sense. Etymologically, tradition is traced back to the Latin word, tradition which means transmission or handing down. Francis Bacon is known to have used it in the sense expressing and transferring knowledge as far back as 1605. However, tradition came to be associated in the 18th century more intimately with folklore material like songs, ballads, tales, proverbs, customs and so on, when romantic nationalism prompted societies to look back with nostalgia at their respective national heritages. Such folklore material, it was agreed, belonged to the oral tradition.

As per R.M. Dorson, as mentioned in his publications *Folklore and Folklife an Introduction*, suggests some important criteria for evaluating the historical validity of oral traditions (Dorson, Folklore and Folklife An Introduction, 1972), which are listed below:

a) Identification of folklore material grafted onto historical settings;

b) Allowance for personal and emotional bias has coloring a tradition;

c) Cross-checks of multiple traditions;

d) Corroboration of a tradition from printed records;

e) Corroboration of a tradition from geographical landmarks;

f) Corroboration of a tradition from material culture; and

g) Knowledge of the character of an informant.

If such guidelines are carefully followed, it is possible for the historian to handle historical traditions effectively and profitably. Oral traditional fiction, observes Bynum, is always a rich and ready source of reasonable explanations for past experience. Historians have deplored this fact, while literary people have reveled in it, but whether they like it or not, it is a fact, and a fact of central importance to both the humanities and social sciences (Dorson, Folklore and Traditional History, 1973).

Challenges and Limitations :

The integration of folkloristic studies with historical research offers a compelling avenue for uncovering hidden narratives and cultural nuances of the past. However, this interdisciplinary approach also comes with its fair share of challenges and limitations. This discussion aims to highlight some of these challenges while recognizing the inherent value of folkloristic studies in enriching historical understanding.

I. **Subjectivity and Interpretation:** Folklore often presents itself in the form of oral narratives, songs, and traditions, which can be open to various interpretations. Researchers must navigate the subjective nature of these sources, acknowledging that meanings can evolve over time and across cultures. This subjectivity can complicate attempts to extract objective historical data from folklore.

II. **Transcription and Documentation:** Converting oral narratives into written records involves decisions about translation, transcription, and

presentation. These processes can inadvertently alter the original meaning or context, potentially leading to misinterpretations or loss of authenticity. The challenge lies in accurately capturing the essence of oral traditions while adapting them to a written format.

III. **Temporal and Cultural Gaps:** Many folk narratives and traditions have been transmitted across generations, often spanning centuries. This temporal gap raises questions about the accuracy of details and the potential distortion of historical events. Additionally, as cultures evolve, the meanings of symbols, metaphors, and rituals may shift, making it challenging to connect folklore directly to historical contexts.

IV. **Lack of Authorship and Attribution:** Unlike written historical documents, folk narratives rarely have clear authorship or attribution. This absence of individual authorship can hinder efforts to trace the origins and motivations behind specific narratives. As a result, identifying the context in which certain stories emerged becomes challenging.

V. **Selective Preservation:** The preservation of folklore has not been consistent across societies and time periods. Certain narratives may be favored for preservation, while others are overlooked or lost. This selective preservation can skew the representation of historical events and social dynamics present in folkloristic materials.

VI. **Cultural Variability:** Folklore is deeply embedded in cultural contexts, and the meanings of symbols and narratives can vary widely among different communities. Applying folkloristic studies to historical research requires sensitivity to cultural diversity and a nuanced understanding of context to avoid overgeneralization.

VII. **Limited Corroboration:** While folkloristic materials can provide unique insights, corroborating them with other historical evidence can be challenging. Without corroborative sources, verifying the accuracy of folk narratives can be difficult, particularly when trying to establish causal relationships or specific historical events.

VIII. **Interdisciplinary Skill Set**: Successfully integrating folkloristic studies and historical research demands proficiency in both disciplines. Researchers need to possess a deep understanding of folklore methodologies alongside historical research techniques. This interdisciplinary requirement can limit the pool of experts who can effectively navigate this complex terrain.

Despite these challenges, folkloristic studies remain a valuable complement to historical research. By acknowledging these limitations and adopting rigorous methodologies that combine oral traditions with other forms of evidence, researchers can harness the power of folklore to enrich our understanding of history in innovative and nuanced ways.

Conclusion :

In this article, Authors have made a humble effort to establish that the two-academic associated with folklore and history-although apparently removed from each other- have much common ground

in various respects. Co-operation between the folklorist and the historian is not only a possibility but also a necessity, in the interest of a fuller and better comprehension of the past as related to the present. In India, where the two levels of the classic and the folk have been operating in a close symbiotic relationship since ancient times, thus co-operation assumes all the more significance. It focusses on Indian folklore and Indian History which is largely not given that much importance till now but the recent trends assume the implication of it in larger interest. And more so in North-East India which offers such a great wealth of material to work with- in terms of the written and the unwritten the tangible and the believed the documented and the oral-the prospects of a meaningful dialogue, not only between folklore and history but also encompassing several others disciplines such as cultural anthropology, archaeology, social work, tribal studies and linguistic- seem to be very bright indeed.

References :

1. Alexandria, L. o. (2009). *The Kojiki.* Alexandria, Egypt: Library of Alexandria.
2. Aston, Y. O. (2013). *The Nihongi: Chronicles of Japan from the Earliest Times to A.D. 697.* USA: Createspace Independent Pub.
3. Bascom, W. (1954). Four Functions of Folklore. *Journal of American Folklore, 67*(266), 333-349. doi:https://doi.org/10.2307/536411
4. Bronner, S. J. (2007). *The Meaning of Folklore: The Analytical Essays of Alan Dundes.* Logan: Utah State University Press. Retrieved from https://digital commons.usu.edu/cgi/viewcontent. cgi? params=/context/usupress_pubs/article/1077/&path_info=Meaning_of_ folklore.pdf
5. Chaucer, G. (1392). *The Canterbury Tales.* United Kingdom: D. Appleton and Company.
6. Datta, B. (2002). *Folklore and Historiography.* National Folklore Support Centre.
7. Dorson, R. M. (1972). *Folklore and Folklife An Introduction.* London: The University of Chicago Press.
8. Dorson, R. M. (1973). *Folklore and Traditional History.* Berlin, Boston: De Gruytor. doi:https://doi.org/10.1515/9783111559537
9. Dorson, R. M. (1973). Sources For The Traditional History of The Scottish Highlands And Western Islands. In R. M. Dorson, *Folklore and Traditional History* (pp. 75-112). Berlin Boston: De Gruyter Mouton. doi:https://doi.org/10.1515/9783111559537-008
10. Gaur, V. (2010). *Haryanvi folk narratives: a study of emerging semantics intransmission and translation.* New Delhi: Jawahar Lal Nehru University. Retrieved from http://hdl.handle.net/10603/16724
11. Giles, J. A. (2015). *William of Malmesbury's Chronicle of the Kings of England From the Earliest Period to the Reign of King Stephen.* London: J. Haddon Printer, Castle Street, Finsbury. Retrieved from https://www.gutenberg.org/files/50778/50778-h/50778-h.htm
12. Parekh, D. K. (2016). *Socio-Cultural Ethos as Reflected in the Tribal Songs and Tales of Rathawa Community of Vadodara District in Gujarat.* Arts and Commerce College, Kakanpur, Ministry of Human Resource Development. Pune: University Grants Commission. Retrieved from http://sctrust.in/SUMMARY%20OF%20PROJECT.pdf
13. Rebhorn, G. B. (2015). *The Decameron: A Norton Critical Edition.* London, UK: W.W. Norton and Company.

14. Rochester, T. E. (2017). *Sanctity and Authority: Documenting Miracles in the Age of Bede.* Birmingham: University of Birmingham.
15. Roud, G. B. (2010). Death in Folklore : A Selective Listing from the Journal of the Folklore Society. *Mortality, 02*(03), 221-238.doi:https://doi.org/10.1080/713685868
16. Sahoo, M. R. (2022, June). Conceptualizing the Multi-Dimensional Nature of Folk Practice from Examples. *ShodhKosh: Journal of Visual and Performing Arts, 03*(01), 321-340. doi:https://doi.org/10.29121/shodhkosh.v3.i1.2022.115
17. Sciences, I. E. (2023, August 23). *Historiography*. Retrieved September 08, 2023, from Encyclopedia.com: https://www.encyclopedia.com/social-sciences/applied-and-social-sciences-magazines/historiography
18. Tacitus, P. C. (98). *Germania.* Roman Empire.

Feminist Concerns : Elevating and Enriching the Consciousness of Women through the celebration of Female Solidarity and Sisterhood in the Works of Suniti Namjoshi

Meena Shanker
Assistant Professor of English,
Govt, College Kasaragod

Dr. S. Kalamani
Professor, Department of English
Avinashilingam University

This paper is an insight into the agony of the portrayal of the female self and depicts how the female psyche and female identity overthrows gender myths and sexist paradigms to address feminist concerns and discourse on feminist apprehensions by celebrating female solidarity and sisterhood as a means of emancipation as addressed in the select works of Suniti Namjoshi. The theme of gender and sexual orientation is articulated by the author in her fables and tales wherein she proclaims that women must overcome the male dominant man-made culture and create a new cultural space for women so that mutual concern and respect for each other help to overcome women's issues, differences of opinions and controversial debates to encounter the cultivated exclusionary policies that perimeter the spheres of the marginalized women. Namjoshi defies the patriarchal code that marginalizes women and disrupts the blockades of the stereo-types of class, race, gender and sexuality with a dynamic approach to deconstruct language to reconnoitre the opacities of the socio-cultural economic inequalities and power politics of patriarchy by capsizal of myths and fables. Critique of patriarchal discourse, weaving of fantasy and decolonization of female sexuality redefine the need for women to work together to address the common hitches and glitches faced by women to provide moral care to women because women's issues are better solved through female solidarity. The presentation of traditional gender roles in the family structures and liberation of the individual by fighting against socio-economic injustice, divorce, unequal labour, laws of marriage, sex role stereotyping and patriarchal sexist oppression can be overthrown by gynesis, a female discourse, that has evolved by valorisation of repressed feminity which is once again the redefinition of power and equal rights to emancipate all genders. This is worked out by empowering women from domesticity and liberating them from the maternal duties by redefining the theory of sexuality, otherness and difference by challenging male hegemony to emancipate all genders. The paper

reaffirms the new paradigms of feminist consciousness echoed by Namjoshi to reinforce feminine power in the protagonists by encoding discourses that challenge patriarchal ideologies through portrayal of her revisionist reworkings that voice gender rights. The gender dynamics she presents reinforce gender appropriate roles and gendered stereotypes in the gendered scripts through addressing feminist epistemology, gender essentialism and sexual orientation in her works. Lesbian identity and sisterhood can be celebrated by the rediscovery and redefinition of the heroine as strong ,aggressive, bold and confident. Thus the commodification of female sexuality and the reconceptualization of female identity to overthrow male gender sexist paradigms through subversion of stereotypes is an attempt to emancipate all genders. This generates a female discourse that interrogates stereotypical fixation of gender roles by subverting the canonical versions that fictionalized women's causes to liberate them from traditional servitude by celebrating female solidarity and sisterhood.

Namjoshi, celebrates the autonomy of the female as a feminist lesbian who believes that women can create selfhood and identity through female solidarity and sisterhood. The definition of the female by the male authors in literature and the discussions on the female instinct, the female psyche and female self, coaxes Namjoshi to project the problems of the feminine to depict an upheaval of male gender sexist paradigms that project the machismo in female sexuality by focusing on the self-reliance and strength innate in every woman. She envisions a world where all women would stand up for each other irrespective of race, class, caste, creed and sexuality. The theme of gender and sexual orientation is expressed in her fables and tales where she asserts that women must overcome the male dominant man-made culture and stylize a new cultural panache for women so that mutual concern and respect for each other help to create and display a bravura that help women grapple feminine issues, differences of opinions and controversial debates with elan. This camaraderie empowers women to encounter the cultivated exclusionary policies that limit the spheres of the marginalized women. She defies the patriarchal code that marginalizes women as this is the only solution to deconstruct cultural constructs that disrupts the barriers of the stereotypes of class, race, gender and sexuality. She espouses a dynamic approach to critique language to reconnoitre the opacities of the socio-cultural economic inequalities and power politics of patriarchy by inversion of myths and fables.

The element of fantasy in her narrative addresses' feminist and lesbian concerns by fictionalizing myths and legends that outline identity and culture through the expression of women's potential with fluidity of meaning and diction. The inversion of conventional roles contests male hegemony and involves the readers in the construction, deconstruction and reconstruction of the female protagonist to indorse the self-esteem and poise of the female self by empowering them to fight suffering and injustice. Thus the reimagination of a post-structural self-proclaims the requirement to subvert the male dominated language to recreate and refabricate a new feminist consciousness. Patriarchal discourse

colonized tales and pointed out the need for women to reinvent themselves to create a new feminine culture that exists in the subconscious of the women. This feminist utopia queries the monopolistic designs of power politics and the perpetuation of hierarchical power structures. The enigmatic identity of the Black piglet, the ambitious achiever of Rap, the patriarchal stereotype, the conjugal bliss in Cinderella, the ubiquitous nature of Little Red and more resonates with the theme of fashioning new feminist cultures which define feminist emancipation and empowerment. Class and gender presented in The Solidarity Fables discusses the need for a woman to elevate herself. *In The Ubiquitous Lout* , she mocks at feminists who attempt to dominate lesbian feminists. Her *War Diary* is about the presence of evil in this world. The story," Back in the Woods" and , "Evolving Further is an acceptance of her lesbian identity while *The Trials of the Saint* is about the hazards faced by lesbian women. *The Line-Up* is about Suniti's quest for sainthood, where she asserts that lesbians (saints) are also human beings. Empowerment of women is possible by sharing of experiences and sharing struggles by sharing positive attitudes that uplift women. The notion of subjugation of women against male dominance has been addressed by Namjoshi in the cross-cultural contexts and she expresses her faith in overthrowing hierarchical stereotypes through female bonding and lesbian identity.

The transcendence of the bias of caste, creed, race, nationality and gender must be the collective effort of women to battle heterosexuality as the norm against the othering of marginalized victims of society. Subversion of stereotypes authorize lesbians and women to find their own galaxies in female friendships. This upraises women in pursuing their passion for literary pursuits in their endeavours in music, aesthetics, politics, social work and leadership roles to interrogate heterosexist patriarchy. The commodification of female sexuality and the reconceptualization of female identity is a comment on gender stereotypes. Through concepts of eco-femininism, she connects women with the human and animal world and signifies women to deconstruct the myth of the canonical archetype and paradigms individualities based on the fixation of identities. The writer talks to the flowers, birds and stones and redefines the allegory. In *The Jack ass and the Lady*, she rejects gender stereotyping and feels that she can identify herself with the birds and beasts and forms of nature in the male dominated universe. She vouches "…in a humanistic universe which has been male centred historically, women are 'the other' together with the birds and beasts and the rest of creation." (Namjoshi; India 28). In Namjoshi's gynocentric world, all the characters are women and she debates on the topic of female desire, the variances and discernments in a matriarchal society and lodges divergent manifold lesbian standpoints. The dialogic aspects of literature are explored in the interpolations of her fairy tales, pagan and Christian mythologies in an ionic manner to subvert conventional motifs. As Savita Goel opines, The 'Solidarity Fables' deal with social systems, cultural and literary traditions, power and domination through subtle inversion of stereotypes and the writer's disapproval of the replica of patriarchal hierarchy in the feminist

groups (Goel 9). Daughters are praised in The Mothers of Maya Diip and lesbian mothers champion their daughters. The *Conversations of Cow* question's identity and *The Blue Donkey* addresses the human rights issue. Thus these tales address feminist appropriation of androcentric theories and focusses on shared experiences as a genre which unsettles fixed meanings to explore the gynocritical paradigm.

Namjoshi's search for identity as a lesbian feminist and as a "woman-identified woman" reveals her commitment to lesbian issues and women's problems. As Vijayasree communicates, "an Indian living and writing in a predominantly white world, as a woman working in a large male academia, as a Hindu in an all-Christian world." (Vijayasree 52). Eisenstein opines that as a Lesbian woman, she has "refused to buy into the limitations and restrictions placed upon her by the social expectations of acting like a true woman." (Eisenstein, 51). Namjoshi asserts that the female identity inherent in women was distorted down the ages by male authors who always projected the docility, foolishness and vulnerability of women. Most of the texts spoke about women craving to find solace in marital relationships and conjugal bliss as they were unable to stay strong on their own. Almost every line of her texts echoes Simone de Beauvoir, "One is not born a woman, one becomes one". She vetoed the inkling that marriage and motherhood were the only options for women. She questioned her remonstrations for social justice for women through the conquest of women in society and inspired women to wipe out the social and economic injustice that they were facing in their lives. Namjoshi addressed issues on the subjugation of women and raised voices of gender debates on sexual/textual politics in her Feminist Fables. As a liberal feminist, she advocated the fact that oppression of women is biological and blames sexuality as the cause of oppression because women were solely responsible in taking up child bearing, child care and being conquered. All her works reflect on how feminist consciousness is the consciousness of victimization. The presentation of traditional gender roles in the family structures governed by capitalist patriarchy reduce women to inferior positions. Hence lesbianism reassures liberation of the individual by fighting against socioeconomic injustice, divorce, unequal labour, laws of marriage, sex role stereotyping and patriarchal sexist oppression. She champions women's rights to assert women's identity. Like Betty Frieden's *The Feminine Mystique*, she contests the concept that women seek fulfilment in submissive domesticity. She too believes that through gynesis, a female discourse has evolved by valorisation of repressed feminity. In all her tales she voices of the need to redefine power and equal rights by emancipating women from domesticity and the maternal duties that domesticate her. The theory of sexuality, otherness and difference is essential to challenge male hegemony and emancipate all genders. Women's vulnerability during pregnancy , childbirth and reproduction are taken for granted and their sacrifice in tireless striving in domestic labour are undermined. Adriene Rich says that the "social relations of the sexes are disordered and extremely problematic; if not disabling, for women, all seek paths towards change (24).

The assigning of sex roles across cultures reveals how domestication of women in marriage that results in suffering due to poverty, sorrow and fate offer damaging role models to young girls. The new paradigms of feminist consciousness echoed by Namjoshi reinforce feminine power in the protagonists. The inner conflict and psychological turmoil of the women characters is subverted by Namjoshi who provides suitable solutions. Namjoshi does not eulogize the valour of the male but reworks women as equally courageous. She critiques contemporary life and points out how women are demoralized by the existence of male gender sexist paradigms. Namjoshi's women do not conform to romantic paradigms. Marriage is not the ultimate end in the life of a woman and there is no necessity to limit female vision to romantic patterns. Women's experiences, once ignored by male writers need to be addressed and gender concepts reworked to fight for equality of gender. Hence Namjoshi encodes discourses that challenge patriarchal ideologies through her revisionist reworkings to voice gender rights. The gender dynamics she presents reinforce gender appropriate roles and gender stereotypes in the gendered scripts. She reworks subordination of the female traditional tales by subverting patriarchal paradigms of a sexist society in her feminist fables. Thus she focusses on lesbian identity and gender construction of her heroes and heroines to present heroines as gendered icons. Namjoshi throws light on feminist epistemology, gender essentialism and sexual orientation in her works She asserts that male physical power must not be a reason for male domination over the female and that lesbian identity and sisterhood can be celebrated. Rediscovery of women from the woman centred point of view is essential to overthrow male domination and male prowess. The redefinition of the heroine in her works is deliberately constructed to alter the fairy tale distinctions of sexuality and sexual transgression. The bold heroines of Namjoshi assert identity by being strong aggressive, bold and confident. Thus the commodification of female sexuality and the reconceptualization of female identity through female sexuality is a comment on gender stereotypes and projects the problems of the feminine to overthrow male gender sexist paradigms. The subversion of stereotypes is an attempt to emancipate all genders to generate a female discourse evolved by a valorisation of feminity called gynesis is the need of the hour. Cyberfeminism can enrich the digital space of women and empower them through the web of words to address feminist and lesbian concerns.

The interrogation of the stereotypical fixation of gender roles by the reinterpretation of fairy tales and myths is possible by subverting the established versions that fictionalized women's causes to liberate them from traditional servitude. Questioning the situate of other genders in the androcentric patriarchal domain, and addressing the socio-political, economic, sexual and psychological realities of the subalterns enables the understanding of identities. Thus, Namjoshi addressed the problems of third world women writers by deconstructing stereotypical ideas about gender, societal constructs and culture. The genres she explores subverted the undisputed canonical versions that fictionalized women's causes to liberate them from

traditional servitude. Thus women's oppression, patriarchal subjugation, lesbianism and analysis of the idiosyncrasies of gender in subverting fables for pedagogic purposes helped to break cultural typecasts to explore newer feminist visions of identity. The theme of addressing lesbian identity and feminist concerns helped to elevate and enrich the consciousness of women through carnival of female solidarity and sisterhood in depicted in the works of Namjoshi .

Bibliography

1. Namjoshi, Suniti. *Feminist Fables*. London: Sheba Feminist Publishers, 1981.
   - *An Autobiographical Myth*. Melbourne, Australia : Spinfex, 2000.
   - The Conversion of Cow, London: The Women's Press, 1985.
   - *The Blue Donkey Fables*. London: The Women's Press,1988.
   - *The Mothers of Maya Diip*. London: The Women's Press, 1989.
2. Jackson, Rosemary. *Fantasy: The Literature of Subversion*. London:Methuen,1981.
3. Jamie, Kathleen. "Female -Centred Fables." Times Literary Supplement, 14 Sept.1990.
4. Kannan, Lakshmi. "Fables for the Future", The Times of india.18 December. 1988. Rich. Adrienne, Of Woman Born: Motherhood as Experience and Institution. New York:W.W.Norton.1976.Print.
5. Vijayasree, C. *Writers of the Indian Diaspora Suniti Namjoshi: The Artful Transgressor*. Ed. Jasbir Jain. Jaipur and New Delhi: Rawat Publication.2001.Print.

Social and Psychological Trauma among The Transgenders : A Study on the Selected Life Writings

Muktha Manoj
Department of English
Amrita Vishwa Vidyapeetham, Amritapuri, India

Pranamya Snehajan
Department of English
Amrita Vishwa Vidyapeetham, Amritapuri, India

Shilpa M. Chandran
Department of English
Amrita Vishwa Vidyapeetham, Amritapuri, India

Social and Psychological Trauma of Transgenders In Selected Life Writings

Abstract :

Trauma regarding the gender identity of a transgender individual since childhood affects one's growth as a person. This study aims to contribute to the existing body of literature in transgender experiences in India by examining the specific traumas faced by this community. It explores the psychological distress arising from societal rejection including depression, anxiety and pervasive sense of isolation. By amplifying their voices and shedding light on their struggles this study seeks to foster a better understanding of the challenges faced by these individuals and promote more compassionate and inclusive society. Through the selected life writings, The Truth About Me: A Hijra Life Story by A. Revathi, Transgender in India: Achievers and Survivors by Dr. C.K. Gariyali IAS, We are not the others by Kalki Subramaniam, this study examines the psychological and socio-cultural ramifications of the 'colonizer colonized' dynamic.

Key word :

Trauma, Isolation, inclusive society, colonizer-colonized, Transgender experiences.

Trauma is defined as a psychological and emotional response to an event or experience that deeply distresses or disturbs an individual's mind. It typically involves a sense of extreme fear, helplessness, or horror. Traumatic events can vary widely and may include experiences such as physical or sexual assault, natural disasters, accidents, combat or witnessing violence. Trauma can have a profound impact on an individual's wellbeing, functioning, and overall quality of life. It can disrupt a person's sense of safety and security, and may lead to a range of psychological, emotional, and physical symptoms. These symptoms can manifest immediately after

the traumatic event or may appear later, sometimes even years afterward. Trauma can challenge a person's sense of self and their beliefs about the world. It may lead to a negative self-perception, feelings of guilt or shame, and distorted beliefs about personal worth or safety. This can affect their self-esteem, self-confidence, and overall identity. Support from loved ones, social networks, and community resources can play a crucial role in the recovery and healing process for the individuals who have experienced trauma. Trauma may be faced by anyone but is usually experienced by refugees, war survivors, accident survivors, people who have experienced and witnessed violence, rape survivors and transgenders as well.

Transgender individuals face unique challenges and experiences that contribute to trauma. They face significant discrimination, prejudice, stigma in most important and basic necessities like education, employment, healthcare and housing. This systematic marginalization can result in traumatic experiences including verbal and physical abuse, harassment, and rejection from family, friends, and society. During their childhood, the transgender individuals struggle with the complex psyche of being stuck with in between two genders which leads to a confusion regarding their identity. This confusion leads to a distressing state which is known as gender dysphoria. Trauma usually results from adverse life experiences such as natural disasters, accidents, sexual abuse, and close encounter with violence such as assault, discrimination, poverty, racism, oppression and so on. Trauma that they face as a child when they begin to realize their affiliation towards the other gender gets added with the family's inability to accept their child's gender orientation and oppress them for this behavior. To prevent childhood traumas, it is crucial for parents to recognize and respect their child's right to self-determination in terms of gender identity. Gender cannot be solely determined by genitalia, and parents should prioritize understanding their child's evolving emotions and needs. Safeguarding their mental and physical well-being becomes paramount, shielding them from individuals who exploit their gender identity. Additionally, parents must ensure their child receives equitable opportunities just like any other child.

This paper attempts to study the postcolonial aspect of the trauma experienced by the transgender community of India through selected life writings. The book selected for this study are *The Truth About Me: A Hijra Life Story* by A Revathi, *Transgenders in India: Achievers and Survivors by* Dr. C.K Gariyali IAS and her daughter Priyadarshini Rajkumar *We Are Not the Others* by Kalki Subramaniam.

The Truth About Me: A Hijra Life Story by A Revathi, an activist, talks about her life since childhood and her fights against odds to become a transwoman and live as one. It was never an easy journey, but a path of pain, marginalization, mockery and more. Her story also reflects her struggles to reach the denied basic human rights and how she finds joy being a transwoman despite being put to the peripheral by society.

The book *Transgenders in India: Achievers and Survivors by* Dr. C.K Gariyali IAS and her daughter Priyadarshini Rajkumar is a collection of real-life stories

and struggles of a few famous transwomen. These accounts convey how deep rooted the discrimination towards the community is and how each trans individual had to fight in order to the survive the war of life.

The book *We Are Not the Others* by Kalki Subramaniam is reflection against the cisgender narrative of the transgender community and its people. Kalki, a transgender artivist says "I speak because we need to be heard, I write because we need to be understood, I dare because we need to survive'' (Subramaniam, 17). She talks about their community is "othered" by outsiders and she protests against this through her writings.

Historically, colonizers have often imposed their own beliefs and cultural norms onto the colonized, leading to the erasure and suppression of indigenous cultures and identities. This has resulted in the imposition of a gender binary system on many colonized societies, which has created challenges for transgender individuals seeking to express their gender identity. The legacy of colonization has also impacted the ways in which transgender individuals navigate their own gender identity. Transgender individuals in colonized societies have often been subjected to violence, discrimination, and marginalization, as their identities do not conform to the norms imposed by colonial powers. The imposition of Western gender and sexual norms has resulted in marginalization of the transgender community and have been forced to assimilate into the dominant culture or risk being ostracized by the accepted genders of the society.

The relationship between the colonized colonizer can be explored through the lens of family of the transgender individuals. Within the family of the transgenders, the family acts as the colonizers and that individual as the colonized. This portrays that the family owns the control of the identity of the transgenders, and they are emotionally and physically suppressed. Family is like a home where they are supposed to understand and stand by every member in their family irrespective of their gender or sexuality but become a reason for transgenders to feel ashamed and pained by their own sexuality and body. This paper analyzes the aspect of colonizer colonized through certain life experiences of people from the transgender community.

The autobiographies of transgender people stand as a genuine expression of their thought, experience, and trauma, and it serves as a testimony. Since "autobiography is an art of expression from oneself", it serves as a platform for individuals to reflect on their past, explore their identity, and convey their thoughts and emotions to others. It empowers individuals to embrace their voice, celebrate their journey and connect with others on a profound level.

In *The Truth About Me: A Hijra Life Story* by A Revathi, the author shares her experience exploring her own sexuality as a child and growing up as a hijra. She used to go to school with girls and played girls' games. On holidays she would dance and sing imagining herself to be a girl. All these feelings led them to a psychological dilemma which moulded their identity in future. Society views them as a regular source of amusement. They are deeply hurt when they realize that they are not accepted by most in this world. There is an urge for the transgender people to establish their sexuality amidst all the

troubles because they are unwilling to lead a double life any longer when they realize their actual identity. Even though they are aware of the consequences of their decision, they take bold steps to break free of the maleness in them. Those periods are the most crucial periods in their life. It is analyzed that, at points they were confused and troubled with their idea of sexuality, but the femininity in them broke all the doubts and chains and craved to come out. The psychological trauma leads to self-inflicted injuries and provokes the tendencies to kill themselves. There has been a growing rate of suicide among the transgender community which is provoked by the harsh world around them. Their family disregards their feelings and refuses to accept. During Revathi's schooling, she was afraid when she saw big boys older than her. Those boys from higher secondary would always bully her for her feminine traits and would yell at her as "girl-boy". They would hit her on the head, pinch her chest and often abuse her. These big boys here act as the colonizers and Revathi becomes the colonized. She was always confused about her identity and she could not talk or describe her feelings to anyone around her be it her parents, brothers or classmates. She knew she would be beaten up by her family and would be bullied by the villagers if she openly reveals her identity. This terrible situation caused trauma in the mind of Revathi. She dressed up as a "kurathi" which was a free expression of all her deeply suppressed feminine emotions. As she grew older, her deeply repressed femaleness started to haunt her in such a way that she felt trapped inside a male's body. Her brothers were also oppressing her by literally abusing her almost every day due to her feminine nature and also because she was poor in her studies. She was scared of her brothers due to their violent nature and aggressive behavior towards Revathi.

Revathi during her school days would sit and even play with girls. She would dream of becoming and dressing up like a girl one day and showing off herself as a woman to the world one day. Her PET teacher would cane her for having the body language of a girl and speaking like one. He would often humiliate her, ask her to behave like a boy and would strip her to make sure that she was a boy. It added on to her trauma as other children who looked at this humiliation only supported the teacher and laughed at her along with the teacher. No one questioned the kind of harassment that the teacher was putting on her. The PET teacher exhibited the traits of a colonizer with a cruel mindset and oppressed her by establishing himself as civilized and brave.

After, Revathi grew up a bit more, she met a group of men in Namakkal who were feminine like her and she found friendship in them and would refer to them as "thozhis". They would behave and address each other as women whenever they met at the hills and as soon as they leave, they would become men in front the society. While they used to gather up in the hills, some rowdies would catch them and forcefully perform sex with them. These rowdies acted as the agents of power and suppressed the already marginalized people. They knew that these people are weak enough to fight them and hence, assert their power and Revathi and her thozhis felt totally helpless in fighting them.

Further, Revathi got agonized with an undergo with a police officer in Bangalore where she worked as a sex worker and was randomly caught while she was walking in the Cubbon Park. As soon as the police officers came to know that she was a transwoman, they took her to custody. In the police station, they made her sweep and clean the entire surroundings. Despite treating her like dirt, they put her in jail. A policeman kicked her and forcefully stripped her. He inserted his lathi into her private parts until she screamed with pain. He sexually humiliated her in front of another prisoner who was inside the cell. The police officer here used his power not just as an officer but sense of an authority that he is a man, and he can assert his colonial power by killing and humiliating her identity using her own body against her. This traumatized her to an extent that she could not sleep the whole night and was shivering with fear in her eyes. She was even asked to eat the food that fell on the floor and this act was totally inhuman and traumatic. Not just this, she was threatened by the policemen not to speak about the beatings she got or the pain she endured in the police station the previous night, in the court. Additionally, she was asked to pay a certain amount as a penalty to be released. The whole incident throws light upon how police stations or courts where usually people are supposed to seek and get justice are not just denied but also a failure as a system. The power of the colonizers to keep them marginalized, oppressed, and controlled despite the advancement of laws shows the cruelty to which the transgender community is subjected to. Revathi was first caught in the streets of Bangalore by a well-built man in civilian clothes. He forced her into an auto informing her that she'd be put in the jail and is being taken to the police station. She panicked but soon realized that she was in the dark and he was forcing her to have sex with him. As soon as the man realized that she is a transwoman, he robbed her, took away all her money, snatched the copper chain around her neck assuming that it was made of gold. He left her in a dark, isolated place. When she narrated the whole incident to her guru, she realized that he caused harm to her lives, blackmailed their clients and looted all the money. This highlights how insensitive people in power are. Instead of ensuring better livelihood to the community, they end up torturing these transgender individuals and giving them a whole traumatic experience for a lifetime. This treatment is much like how colonizers treated their slaves or how they treated the marginalized, they made the lives of the colonized even worse. The policeman here looted her and humiliated her because he understood that she was from the transgender community. This depicts he asserts his superiority over her by making her feel submissive and helpless before him.

The book, *Transgender in India: Achievers and Survivors* by Dr. C.K. Gariyali IAS has several accounts of lives of transgenders who were constantly inflicted with pain by their own family members, and this led them to run away from their homes to join big transgender communities where they were adopted as daughters. In the book, *Transgender in India: Achievers and Survivors* Gariyali mentions about Dr. Narthaki Nataraj, an accomplished Indian classical dancer and choreographer. She is recognized as one of the leading exponents of Bharata-

natyam. She began her dance training at a young age under the guidance of eminent gurus, including K.P. Kittappa Pillai and K.J. Sarasa. Over the years, she honed her skills and developed a distinctive style that blended tradition with innovation. Dr. Narthaki Nataraj's contributions to Bharatanatyam have been widely acknowledged, and she has received numerous awards and accolades throughout her career. In 2019, she became the first transgender person to be honored with the prestigious Padma Shri, one of India's highest civilian awards, for her exceptional contributions to the field of dance. Her performances showcase a deep understanding of the traditional Bharatanatyam repertoire, while also incorporating contemporary themes and narratives. Dr. Narthaki Nataraj's expressive abilities, technical prowess and dynamic stage presence have captivated audiences both in India and abroad, In addition to her performing career, Dr. Narthaki Nataraj is also involved in teaching and choreography. She has trained numerous students in the art of Bharatanatyam and has choreographed several productions that have been well-received. Dr. Narthaki Nataraj's journey as a transgender artist has been significant in breaking barriers and challenging societal norms.

She has been an inspiration for many, both within the dance community and beyond, as she continues to push boundaries and create meaningful art through her performances. One of the life accounts was that of Padmashri Dr. Narthaki Nataraj, an eminent Indian transwoman Bharatanatyam danseuse who struggled and broke the barriers of the conventional society to establish herself and her identity as a transwoman as well as a dancer. Her words go this way, "I could not say that I am a wonderful woman inside a male body. My femininity was like a bright glowing light inside me" (Gariyali, 57). This conveys how a mental pressure was built up inside her where she did not have any space to speak about her own identity or sexuality. She further describes how despite being part of a joint family, she felt lonely like an orphan. Nobody treated her with the respect that she deserves as a human. She was continuously humiliated and abused and she sarcastically says that "these were the gifts given to me by the visitors and the family alike." Further she says, "My body was different, but my soul was screaming that I am a woman, but no one cared. My family, relatives, society, decided everything for me. What I should think, feel, or want, was all decided by others. I had no say or voice." (Gariyali,58).Hear family acted as colonizers by whom she was suppressed for being different from the accepted societal norms she was forced to think, act, and behave in the way her family wanted her to. All this kind of treatment added up to the trauma that haunts her lifelong. This depicts how the institution of family exercised their control over the individual and their identity. They were put in isolation by their own families itself which adds on to a mental conflict with their inner selves.

Grace Banu is an Indian transgender rights activist and engineer. She hails from Tamil Nadu, India, and has been actively working towards promoting the rights and inclusion of transgender individuals in society. Banu is known for her advocacy work in education and employment opportunities for transgender people. As an engineer, Banu completed her Bachelor

of Engineering in Computer Science and Engineering from the Thiagarajar College of Engineering in Madurai, Tamil Nadu. She then pursued her Master of Engineering in Computer Science and Engineering from the same institution. Banu faced various challenges and discrimination due to her transgender identity, which motivated her to become an advocate for transgender rights. She co-founded the organization Trans Rights Now Collective, which aims to empower transgender individuals through education and employment. The organization focuses on providing scholarships and mentorship programs for transgender students and professionals. Banu has actively campaigned for transgender rights in India, highlighting issues such as discrimination, violence, and lack of opportunities faced by trans-gender individuals. She has spoken at numerous conferences, universities, and events to raise awareness about trans-gender rights and the need for inclusivity. In recognition of her significant contributions to transgender rights activism, Grace Banu has received several accolades and awards. She was listed in the BBC's 100 Women list in 2020, which recognizes influential women from around the world. Grace Banu's work continues to inspire and drive positive change for transgender individuals in India and beyond. Grace Banu is the first among the transgender community to be known as an engineer and an activist. She faced double oppression, firstly as a Dalit and secondly, as a transgender. During her school days, she was not allowed to sit inside the classroom and was asked to leave the school premises half an hour before the other students left. This humiliation forced her to drop out from school and the situation turned worse when she explained her mental conflict to her illiterate parents who took her to a private mental asylum where she was treated for 'gender disorder' problem with many sedatives and injections. She continues saying that "Even doctors in our country do not fully understand what we undergo. They do not know that within us an inner voice is talking and telling us 'who we are'. It is saying that we do not belong to the gender assigned to us by society. This voice cannot be silenced." (Gariyali, 91). Her illiterate parents and the doctors in the asylum unknowingly acted as the colonizers who tried to control her repressed feelings. A person who breaks away from the socially constructed gender norms was treated as a person with gender disorder.

Jeeva Subramanian, a growing transwoman actor in the Tamil industry who won several awards for portrayal of a transgender characters in several short films. At a noticeably early age itself, she loved to dress up like a woman and due to this, was scolded and called certain names like Pottai Kudhi, Ombodu. "When I was seven, my father left me with a workshop in Coimbatore. When we started from home, he told me aunt I went happily with him. I was shocked when he just dumped me for six years, in a goldsmith's workshop with strangers in exchange of 1000 rupees." (Gariyali,129). This depicts that families treated transgenders in their own home as a burden and something that they need to get rid of as they feel their honor is questioned by the society if they allow trans child to stay in their homes. Another transwoman, Dr. Sudha, founder, and director of Tozhi, an organization that

adopts and helps young transgenders, had suffered deeply under her family's rage over her being inclined towards feminine traits. Sudha felt trapped and alienated by her family. She even decided to run away from her because she could not accept or bear the constant torture inflicted upon her by her family. She was even taken to a psychiatrist by her family, to change her sexuality and mannerisms.

In *We Are Not the Others,* according to Kalki, the society in general is the colonizer and she and people like her are the colonized. She wishes to smash patriarchy when men desire their bodies only for lust and not for love. "They were all grim and caged and trapped in their pasts and uncertain futures" (Subramaniam, 25). Kalki talks about the trauma they face due to society's approach towards them. They wish to lead a successful married life which remains a dream unfulfilled even today. She says how men desire her for lust and not for love and even if love happens, the Indian men wishes to keep it a secret as they fear that they will be ostracized by the people around them. Since the men wish to keep their relationship a secret, Kalki knows that they can be easily controlled and manipulated by them and hence acting like colonizers. People like Kalki will be trapped in this cage and like the colonized will have to accommodate as the colonizers suggest them to. This is seen unacceptable by Kalki or her friends from the community.

Every human being has their own right to choose and identify themselves with a gender their minds are aligned to and not to be subjected to society's norms. It is not their mistake to be born in the opposite gender and desire to live like the one they desire. While the people around mocks them, disrespects and humiliated them just because of the label that they are transgenders, they need to understand that these individuals too have the same flesh and blood as they do, they have the right to breathe and live like any other human. Analyzing the relationship between the society in general and the transgender individuals, it can be seen as that of colonizer- colonized where the colonizers are the people in the society be it family relatives or friends and the colonized are the transgenders. A home is supposed to be a safe place for anyone but if the same place makes them feel like being put in a caged wall, then that subject to trauma for the life ahead. The amount of trauma that family and society, gives a transgender individual is a mental health issue that needs to be addressed and hence lower the suicide rates in the transgender community.

Reference :

1. Abbott, Traci B. "The History of Trans Representation in American Television and Film Genres." *Springer eBooks*, 2022, doi:10.1007/978-3-030-97793-1.
2. Giovanardi, Guido, et al. "Attachment Patterns and Complex Trauma in a Sample of Adults Diagnosed With Gender Dysphoria." *Frontiers in Psychology*, vol. 9, Frontiers Media, Feb. 2018, doi:10.3389/fpsyg.2018.00060.
3. Leonard, Jayne. *What Is Trauma? What to Know*. 3 June 2020, www.medicalnewstoday.com/articles/trauma.
4. Mizock, Lauren, and Thomas Lewis. "Trauma in Transgender Populations: Risk, Resilience, and Clinical Care." *Journal of Emotional Abuse*, vol. 8, no. 3, Taylor and Francis, Oct. 2008, pp. 335–54, doi:10.1080/10926790802262523.

5. Pugh, Mary Jo, and Daniel Hart. "Identity Development and Peer Group Participation." *New Directions for Child and Adolescent Development*, vol. 1999, no. 84, Wiley-Blackwell, Jan. 1999, pp. 55–70, doi:10.1002/cd.23219998406.
6. Revati. *The Truth About Me: A Hijra Life Story*. Penguin Books India, 2010.
7. Subramaniam, Kalki. *We Are Not the Others: Reflections of a Transgender Artivist*. Notion Press, 2021.
8. Tarafder, Rabin, and Ajay Majumder. *A Scientific Aspect of Transgenders*. 2019.
9. Thukral, Pankhuri. *Transgender: Position and Identity in Family Law in India*. 11 Apr. 2022, papers.ssrn.com/sol3/papers.cfm?abstract_id=4107679.
10. *Transgender in India, Achievers and Survivors: An Ode to Transwomen*. 2021.
11. *What Is Gender Dysphoria?* www.psychiatry.org/patients-families/gender-dysphoria/what-is-gender-dysphoria.

शास्त्रीय एवं उपशास्त्रीय संगीत विधा में होली और धमार (गायन शैली) के विविध आयाम

प्रेरणा अग्रवाल

रिसर्च स्कॉलर (कथक)

श्री श्री यूनिवर्सिटी, कटक, उड़ीसा

सारांश

भारतीय शास्त्रीय संगीत की उत्पत्ति वेदों से मानी जाती है। सामवेद में संगीत के बारे में गहराई से चर्चा की गई है। भारतीय शास्त्रीय संगीत हमेशा से ही गहराई तक आध्यात्मिकता से ओत प्रोत रहा है। अतः इसका प्रारंभ ही मनुष्य जीवन के अंतिम लक्ष्य, मोक्ष प्राप्ति के साधन के रूप में हुआ। हमारी संस्कृति अनेक कलाओं को सहेजे हुए है और इसमें मुख्य स्थान संगीत अर्थात गायन, वादन तथा नृत्य का है। शास्त्रीय गायन पद्धति में अनेक शैलियां प्रचलित हैं, जैसे कि ध्रुपद, धमार, खयाल, तराना, टप्पा, चतुरंग, त्रिवट, होली, ठुमरी आदि। धमार और होली भी अपने एक विशिष्ट तरीके के साथ गायन शैली में अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। उनकी विशेषता है कि इसमें राधा-कृष्ण, कृष्ण-गोपियों के होली प्रसंग श्रृंगारिक और चंचल रूप में वर्णित होते हैं।

संकेत-शब्द :

शास्त्रीय गायन शैली, धमार, होली, राधा-कृष्ण, फाग, बसंत।

प्रस्तावना :

संगीत मानव जीवन के साथ प्राचीन काल से लेकर वर्तमान काल तक सतत् गतिशील है। संगीत की महत्ता इस बात से और अधिक पुष्ट हो जाती है कि भारतीय आचार्यों ने इसे 'पंचम वेद' या 'गंधर्ववेद' की संज्ञा दी है। भरत मुनि का 'नाट्यशास्त्र' पहला ऐसा ग्रंथ था, जिसमें नाटक, नृत्य और संगीत के मूल सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया।

कोई भी गायन, उसकी शैली पर आधारित होता है। 'शैली' अर्थात् 'विशिष्ट नियमों तत्वों में बंधी हुई'। एक गायन शैली के आधार पर ही एक बंदिश दूसरी बंदिश से पृथक हो जाती है। 'बंदिश' ऐसी खूबसूरत साहित्य रचना को कहा जाता है, जो स्वर तथा तालबद्ध हो। वर्तमान समय में सभी गेय रचनाओं को बंदिश की संज्ञा दी गई है। शास्त्रीय संगीत में अनेक प्रकार की बंदिशें मिलती हैं, इन्हीं में से होली या होरी भी एक मुख्य प्रकार है। इसकी संरचना के कारण इसे 'धमार' भी कहा जाता है। जब भी हम किसी गायक के गीत को सुनते हैं तब सर्वप्रथम उसकी शैली को पहचानने का प्रयत्न करते हैं। गायन शैली के भी अनेक प्रकार हैं, जैसे- ध्रुपद, धमार, तराना, चतुरंग, त्रिवट, ख्याल, भजन, ठुमरी, टप्पा आदि।

होली/होरी :

'होली' गायन मूलतः होली त्यौहार के साथ जुड़ा है। इसे अधिकतर फाल्गुन में तथा होली के अवसर पर गाया जाता है। प्राचीन काल से ही सम्पूर्ण भारत में बसंत ऋतु में होली मनाने और होली के गीत गाने की परंपरा अनवरत रूप से चली आ रही है किंतु अवध और ब्रज क्षेत्रों में होली पर गाए जाने वाले गीतों की एक सुदीर्घ परंपरा देखने को मिलती है।

'होली' शब्द मूल रूप से हिंदी भाषा की एक बोली 'ब्रजभाषा' में होरी अर्थात खुशी था। आज भी ब्रज के लोग होली को 'होरी' कहते हैं। समय के बदलाव के साथ-साथ होरी ने लोक शैली से लेकर शास्त्रीय और उपशास्त्रीय तथा अर्धशास्त्रीय शैलियों तक अनेक नए-नए रंग प्राप्त किए हैं। होरी अर्धशास्त्रीय गायन की एक शैली है, जो वर्तमान भारत के उत्तर प्रदेश के ब्रज, अवध तथा बिहार आदि क्षेत्रों में लोकप्रिय है। 'होली' शब्द की उत्पत्ति का संबंध शास्त्रीय संगीत की धमार शैली के साथ जोड़ा जा सकता है, क्योंकि इसके साहित्य में प्रायः होली का वर्णन मिलता है। होरी मूलतः ब्रज शैली का गायन है, जिसमें राधा-कृष्ण और कृष्ण तथा गोपियों की फाल्गुन मास की और होली खेलने की श्रृंगार से ओत-प्रोत लीलाओं का वर्णन रहता है।

धमार :

धमार शब्द का मूल अभिप्राय 'धम्माली' से है, जिसका शाब्दिक रूप उत्साह-पूर्वक नाचना गाना है। इसे मूलतः होली के अवसर पर गाया जाता है। धमार शैली ध्रुपद की तुलना में कुछ हल्की एवं चंचल गायकी है। धमार विधा में जो होली गाई जाती है, वह ध्रुपद के अंग से शास्त्रीय संगीत के अंतर्गत गाई जाती है, इसलिए ठुमरी अंग से गाई जाने वाली होली 'कच्ची होरी' और ध्रुपद अंग से गाई जाने वाली होली 'पक्की होरी' कहलाने लगी। इसकी शैली लय प्रधान है। इसमें भी ध्रुपद के समान नोम तोम आलाप और लयकारियां विशेष महत्व रखती हैं। इसका गायन मध्यलय में किया जाता है। इस गायन शैली द्वारा प्रमुख रूप से श्रृंगार व हास परिहास युक्त रसों व भावों को व्यक्त किया जाता है। इस गीत शैली में प्रायः चार खंड-स्थाई, अंतरा, संचारी व आभोग होते हैं। कुछ धमार चार खंड से कम के भी प्राप्त होते हैं। आधुनिक काल में स्थाई व अंतरा युक्त अनेक धमार प्रचलित हैं। इस गीत शैली में नोम तोम के आलाप व बंदिश की उपज करते हुए विभिन्न प्रकार के गमक जैसे- कण, मींड, मुर्की, खटका, आंदोलन, तिरिप, हुम्फित, कम्पित आदि का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है। धमार की गायन शैली निबद्ध गान के अंतर्गत आती है। उदाहरण के तौर पर हमसूरदास जी का पद देखेंगे :

''औरन सों खेलें धमार
श्याम मोसो मुखहू ना बोलें
नंद महर को लाडलो
मोसे ऐंठ्यो ही डोले,
राधा जू पनिया निकसी,
बाको घूंघट खोले,
सूरदास प्रभु सांवरो,
सायरा विच डोले।''

विशेषताएं :

होली दो अंग से गाई जाती है- एक ध्रुपद अंग से तथा दूसरी ख्याल या ठुमरी अंग से। उपशास्त्रीय संगीत प्रधान होली का ढांचा ठुमरी एवं धमार के समान ही होता है और अधिकांशतः उन्हीं रागों पर आधारित होता है। इसमें रागों की शास्त्रबद्धता, नियम एवं लय-ताल का कठोरता से पालन किया जाता है। जब इसे शास्त्रीय गीत के रूप में गाया जाता है, तब यह ध्रुपद शैली की अगली कड़ी होती है। ऐसी होली ताल धमार पर आधारित होती है। अधिकांशतः होरी-ठुमरी राग काफ़ी में गाई जाती हैं। राग काफ़ी के अलावा पारंपरिक होली कई अन्य रागों जैसे मिश्र काफ़ी, खमाज, सारंग, पीलू, पहाड़ी, भैरवी, राग देस, मिश्र, बसंत, बहार, हिंडोला इत्यादि रागों में

भी गाई जाती है। इसमें सभी सात स्वरों का उपयोग आरोही और अवरोही क्रम में किया जाता है। गांधार और निषाद कोमल है और अन्य सभी स्वर शुद्ध (पूर्ण) हैं।

एक ख्याल गायक जब होली संबंधी गीतों को विभिन्न तालों जैसे- दीपचंदी, त्रिताल, कहरवा, अद्धा आदि तालों में गाते हैं, तब उन्हें होरी कहा जाता है, किंतु जब इन्हीं गीतों की संरचना धमार होली ताल में अर्थात 14 मात्राओं के काल में की जाती है, तब उसे धमार कहा जाता है और उन्हें उस समय ध्रुपद की तरह शास्त्रीय शैली में गाया जाता है। धमार तथा होली दोनों की गायन शैलियों अलग-अलग होती हैं। होली गायन शैली आलाप प्रधान होती है। ख्याल की तरह इसमें तानों है का प्रयोग नहीं किया जाता किंतु मुर्की तथा खटके आदि का प्रयोग किया जाता है। हालांकि यह गायन शैली श्रृंगार रस से ओत प्रोत है किंतु धमार में गायन के समय इसकी गायकी की प्रवृत्ति गंभीर हो जाती है।

पहले इसकी संगत पखावज और झांझ पर की जाती थी किंतु वर्तमान समय में तबले का प्रचलन अधिक हो जाने पर अब तबले पर संगत की जाने लगी है। होली के उत्साह को धमार रूप में दुगुन, तिगुन, चौगुन, आड़ जैसी विभिन्न लयों में बोल-तान और गमक इत्यादि के प्रयोग के साथ गाया जाता है।

होरी और धमार का विकास :

होरी गायन का प्रचलन ब्रज के क्षेत्र में लोकगीत के रूप में बहुत काल से चला आ रहा है। लोकगीतों का वर्ण्य-विषय है राधा-कृष्ण के होली खेलने का, रस है श्रृंगार तथा भाषा है ब्रज। ग्रामों के उन्मुक्त वातावरण में द्रुत गति के दीपचंदी, धुमाली, कहरवा और कभी अद्धा जैसी तालों में सभी वय के लोगों द्वारा यह लोकगीत गाए और नाचे जाते थे। ब्रज के संपूर्ण क्षेत्र में होली और रसिया जन-जन में व्याप्त है।

कोई भी लोक संगीत परिष्कृत होकर शास्त्रीय नियमों से युक्त होकर ही शास्त्रीय संगीत कहलाता है। लोक संगीत ने ही शास्त्रीय संगीत को वह अबाध गति से बहने वाली धारा दी है जिसका उदाहरण है धमार, ठुमरी होरी आदि। लोक संगीत सामान्य जन की भावना का प्रतीक हैं। हमारे पूर्वाचार्य ने इसका अनुभव कर लोक संगीत को नियमों में बांधकर परिष्कृत किया और शास्त्रीय रूप दे दिया। 15वीं शताब्दी के अंत तथा 16वीं शताब्दी के प्रारंभ तक कव्वाली, गजल तथा शास्त्रीय संगीत के नाम पर छोटा ख्याल प्रचलित हो चुके थे। जौनपुर के शर्की सुल्तानों द्वारा ख्याल का प्रचार-प्रसार किया गया। यह गायकी सरल थी व द्रुत गति से गाई जाती थी; जनता का ध्यान आकर्षित कर मुस्लिम प्रभाव और संस्कार डाल रही थी। संभवत इन्हीं कारणों से प्रभावित होकर राजा मानसिंह तोमर और नायक बैजू ने धमार गायकी की नींव डाली। उन्होंने ब्रज का होरी नामक लोकगीत लिया और उसे प्राचीन चर्चरी प्रबंध के सांचे में ढाल दिया जो चर्चरी ताल में ही गाए जाते थे। होरी गायन का प्रिय ताल आदि चाचर (चर्चरी) दीपचंदी बन गया। होरी की बंदिशें तो पूर्ववत ही रहीं किंतु वह विभिन्न रागों में निबद्ध कर दी गईं। गायन शैली वही रही पहले विलंबित तथा अंत में द्रुत कर श्रोताओं को रससिक्त कर देने वाली।

प्रमुख कलाकार एवं उनकी होरी/धमार :

शोधकर्ता द्वारा इस शताब्दी के कुछ श्रेष्ठ कलाकारों द्वारा गाई हुई प्रसिद्ध होरी और धमार की सूची बनाई है, जो नीचे वर्णित है :

1. उड़त अबीर गुलाल लाली छाई रे...।
   बनारस घराने की प्रसिद्ध गायिका पंडिता सिद्धेश्वरी देवी (राग काफी) (ताल दीपचंदी)
2. ऐसी होरी ना खेलो....।
   पण्डिता गिरिजा देवी (राग पीलू) (ताल दादरा)
3. आज बिरज में होरी रे रसिया...।
   पण्डिता शोभा गुर्टू
4. कैसी धूम मचाई रे कन्हैया...।
   पण्डिता गिरिजा देवी

5. रंग डारूंगी नंद के लालन पे...।
पंडित छन्नूलाल मिश्र जी

6. तुम तो करत बरजोरी...।
पण्डिता गिरिजा देवी (राग काफ़ी)

7. होली खेलत नंदलाल बिरज में...।
मोहम्मद रफी (राग काफ़ी)

8. कैसी ये धूम मचाई कन्हैया...।
बेगम अख्तर जी (राग जिला काफ़ी)

9. आए श्याम मोसे खेलन होली...।
जयपुर अतरौली घराने की प्रसिद्ध गायिका सुश्री केसरबाई केरकर (राग खमाज)

10. होली खेलन कैसे जाऊं...।
बेगम अख्तर जी (राग पीलू)

11. कन्हैया घर चलो मोरी...।
पण्डिता शुभा मुद्गल

12. रंगी सारी गुलाबी चुनरिया रे...।
पण्डिता शोभा गुर्टू जी (राग पहाड़ी)

13. सारी डार गए मोपे रंग की गागर...।
श्री अजोय चक्रबर्ती जी

14. ना मारो भर पिचकारी...।
पंडित कुमार गंधर्व जी (राग भैरवी)

15. होरी होरी खेलत नंदलाल...।
पण्डिता वीना सहस्त्रबुद्धे (राग अदाना)

16. मोहन खेलत होरी...।
पंडित संजीव अभ्यंकर (राग तिलंग)

17. होरी खेलन जाऊं न जाऊं...।
उस्ताद बड़े गुलाम अली खां साहब (राग देस) (विशुद्ध शास्त्रीय होरी ठुमरी)

18. होरी खेलत नंदकुमार...।
पंडित भीमसेन जोशी (राग काफ़ी)

19. खेले मसाने में होरी दिगंबर...।
पंडित छन्नूलाल मिश्र जी

20. उड़त अबीर गुलाल लाली छाई रे...।
सविता देवी (राग काफी) (ताल दीपचंदी)

21. अंखियां न डारो जी गुलाल...।
शोभा गुर्टू (राग मांड)

22. कन्हैया घर चलो गुइयां आज खेलें होरी...।
मालिनी अवस्थी

यूं तो होरी ठुमरी और धमार की सूची अनंत हैं। सिर्फ उदाहरण के तौर पर यहां कुछ का ज़िक्र किया गया है।

साहित्य में होली :

ये तो हमने बात की होली गायन शैली की किंतु साहित्य में भी होली का अपना विशेष स्थान और महत्व है।

प्राचीन काल के संस्कृत साहित्य में होली के अनेक रूपों का वर्णन है। अनेक संस्कृत रचनाओं में 'रंग' नामक उत्सव का वर्णन है।

जिसमें हर्ष की प्रियदर्शिका व रत्नावली तथा कालिदास की कुमारसंभव तथा मालविकाग्नि मित्र शामिल है। कालिदास रचित ऋतुसंहार में एक पूरा सर्ग ही बसंत उत्सव को अर्पित है। भारवि, माघ और कई अन्य संस्कृत कवियों ने होली की खूब चर्चा की है। चंद्रवरदाई रचित हिंदी के पहले महाकाव्य 'पृथ्वीराज रासो' में होली का वर्णन है। भक्ति काल और रीतिकाल के हिंदी साहित्य में होली और फाल्गुन माह का विशेष महत्व रहा है। आदिकालीन कवि विद्यापति से लेकर भक्तिकालीन कवि सूरदास, रहीम, रसखान, पद्माकर, जायसी, मीराबाई, कबीर और रीतिकालीन बिहारी, केशव, घनानंद आदि अनेक कवियों को यह विषय विशेष प्रिय रहा है। महाकवि सूरदास ने तो बसंत एवं होली पर 78 पद ही लिख डाले हैं।

इस विषय के माध्यम से कवियों ने एक ओर जहां नायक-नायिका के बीच प्रेम और अनुराग की होली का वर्णन किया है, वहीं राधा- कृष्ण के मध्य खेली गई प्रेम और छेड़छाड़ से भरी होली के माध्यम से भक्ति के सगुण साकार रूप का निष्पादन किया है।

सूफी संत हजरत निजामुद्दीन औलिया, अमीर खुसरो और बहादुर शाह जफर जैसे मुस्लिम संप्रदाय का पालन करने वाले कवियों ने भी होली पर सुंदर रचनाएं लिखी हैं, जो आज भी जन सामान्य में लोकप्रिय हैं।

- **पद्माकर**

  फाग के भीर अभीरन में,

  गहि गोविन्द ले गई भीतर गोरी।

  भाई करी मन की पद्माकर,

  ऊपर नाई अबीर की झोरी।

- **मीरा बाई**

  रंग भरी राग भरीएराग सूं भरी री।

  होली खेल्यां स्याम संग, रंग सूं भरी री।

- **सूरदास**

  सूर जैसे नेत्रहीन कवि भी फाल्गुनी रंग से बच ना सके।

  हरि संग खेलति हैं सब फाग...।

  डफ, बांसुरी, रंज अरु महुआरि,

  बाजत ताल मृदंग...।

  चरजीयो होरी को रसिया चिरजीयो...।

  नित नित आओ होरी खेलन को।

  सूरदास प्रभु तुम्हारे मिलन को,

  पीत पिछोरी कटि कसिया चिरजीयो...।

- **रसखान**

  फागुन लाग्यो जब तें तब तें ब्रजमंडल में धूम मच्यो है,

  नारि नवेली बचे नहीं, एक बिसेख मरै, सब प्रेम अच्यौ है।

वर्तमान स्थिति :

उपरोक्त वर्णन से हमें होली गायन की विशेषताओं के बारे में ज्ञात होता है। ब्रज क्षेत्र में राधा कृष्ण की प्रसिद्ध श्रृंगारिक होली को सिर्फ अष्टछाप के कवियों ने ही नहीं उपकृत नहीं किया वरन उसमें बनी-ठनी जैसी साधिका, स्वामी हरिदास जैसा गवैया, मुस्लिम कवियत्री एवं कवि आदि भी शामिल थे। यह होली की विशेषता है कि राम, कृष्ण और शिव तीनों को ही उनके भक्तों ने अपने-अपने ढंग से वर्णित किया है। ब्रज में आज भी होली के अवसर पर अबीर और गुलाल के गोलों और पिचकारी के रंगों के बीच

'होली खेलन आयो श्याम
आज याहे रंग में बोरो री'

चारों तरफ सुनाई पड़ता है तो अयोध्या में

'ऐ री दोनों राज दुलारे,
होरी खेलत सरजू तीर'

गाते हुए आनंद लुटाते हैं।

हालांकि आधुनिक समय में यह सारी आधुनिक परंपराएं सिर्फ याद करने के लिए ही बची हैं, जिनको हम वर्चुअल संसार के माध्यम से मना कर खुश हो लेते हैं।

ठीक इसी प्रकार इस गायन शैली पर दृष्टिपात करने पर ज्ञात होता है कि इसके शास्त्रीय रूप के प्रचार के लिए उस प्रकार के समारोहों का आयोजन नहीं होता, जिस प्रकार कि अन्य शास्त्रीय गायन शैलियों, जैसे- ध्रुपद या ख्याल गायन आदि का। आज भी इसे एक लोक संगीत का ही प्रकार माना जाता है।

अध्ययन का उद्देश्य :

शास्त्रीय संगीत की गायन शैलियां आज भारतीय कला जगत में ही नहीं वरन विदेशी संस्कृति में भी बहुत प्रसिद्ध हैं। इस शोध पत्र का भी यही उद्देश्य है कि अन्य शास्त्रीय गायन शैलियों के समान ही इस गायन शैली के विकास और लोकप्रियता को समझा जा सके और इसका प्रसार प्रचार किया जाए। इसे मात्र एक लोक संगीत न मान करके उसके शास्त्रीय एवम उपशास्त्रीय पक्ष को भी समझा जा सके और गाया जाए।

साहित्यवलोकन :

प्रस्तुत शोध पत्र के लिए उपलब्ध साहित्य का अवलोकन किया गया है। प्रमुख रूप से संगीत संबंधी पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, जनरल्स और विभिन्न ऑनलाइन वेबसाइट के अध्ययन द्वारा लेखन में सहायता ली गई है।

संकल्पना तथा परिकल्पना :

प्रस्तुत शोध पत्र की संकल्पना यही है कि होली/होरी/धमार नामक शास्त्रीय एवं उपशास्त्रीय गायन शैलियों के मुख्य पहलुओं को संक्षिप्त किंतु उपयोगी रूप में एक स्थान पर एकत्रित किया जाए जिससे कि उनके बीच के अंतरसंबंध को समझा जा सके।

प्रस्तुत शोध पत्र की परिकल्पना यही है कि शास्त्रीय संगीत की अनेकों गायन शैलियों में से इन दोनों शैलियों में ऐसी कौन सी विशेषताएं है जिनके कारण ये शैलियां आज भी लोगों के मध्य लोकप्रिय हैं एवम उनके आकर्षण का केंद्र बनी हुई हैं।

अनुसंधान रेखा चित्र :

प्रस्तुत शोध पत्र के लेखन में सिद्धांत विधि का उपयोग किया गया है, जिसका स्रोत अनेक प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों के साथ ही साथ, संगीत संबंधी विश्वसनीय पुस्तकें, पत्र पत्रिकाएं, जर्नल्स एवं ऑनलाइन वेबसाइट्स हैं।

जांच परिणाम :

उपर्युक्त लेख के विवरण से यह स्पष्ट होता है कि धमार एवं होली/होरी गायन शैलियों भी उतनी ही प्राचीन हैं जितनी कि अन्य शास्त्रीय गायन शैलियां। उनकी प्रस्तुति शास्त्रीय एवं उपशास्त्रीय/अर्धशास्त्रीय कलाकारों के द्वारा ज्यादातर होली के अवसर पर विभिन्न मंचों पर की जाती है। संगीत शिक्षण संस्थानों में पाठ्यक्रमों के अंतर्गत भी विद्यार्थियों को इन गायन शैलियों को सीखने का अवसर प्राप्त होता है, जिससे इनका प्रचार-प्रसार अनवरत गति से हो रहा है।

निष्कर्ष :

शास्त्रीय गायन शैलियों में धमार और होरी/होली हमेशा एक दूसरे के पूरक के रूप में सामने आते हैं, या यूं कहे कि ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक ओर धमार को विशुद्ध शास्त्रीय रूप माना जाता है, वहीं दूसरी ओर होली को उपशास्त्रीय या अर्धशास्त्रीय रूप। दोनों का कलेवर तो एक ही है। होली त्यौहार की विषय वस्तु का आश्रय लेकर ही ये दोनों गतिशील होते हैं एवं संगीत में अपना एक स्थान बनाए हुए हैं।

सुझाव :

इन गायन शैलियों को विभिन्न पाठ्यक्रमों में स्थान अवश्य दिया गया है, किंतु मात्र इससे उनके भविष्य को सुरक्षित नहीं किया जा सकता। इसके लिए अन्य माध्यमों पर विचार करना भी आवश्यक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची/पत्र-पत्रिकाएं/जर्नल्स/ऑनलाइन वेबसाइट्स :

1. श्रृंखला एक शोधपरक वैचारिक पत्रिका-अप्रैल 2019 RNI-UPBIL/2013/55327
2. प्रभात खबर डिजिटल डेस्क (Mar 1,2023)
3. facebook.com/Bharatkivirasat (March 26,2013)
4. जनसत्ता/2023
5. संगीत शास्त्र/BAMI 201/you.ac.in/sites
6. pushtimarg.wordpress.com/category/होली के पद
7. Indian Classical Music (Vocals) icmu 533.blog post.com/2018/01/blog.pot.html
8. hi.uniunon.pedia.org
9. www.ivcrt.org (volume 10, issue 11 November 2022 ISSN:2320-2882
10. सिंह, डॉ॰ ठाकुर जयदेव, भारतीय संगीत का इतिहास, प्रथम संस्करण-1996
11. शर्मा, डॉ॰ स्वतंत्र, भारतीय संगीत का ऐतिहासिक विश्लेषण, प्रतिभा प्रकाशन

12. m.bharatdiscovery.org/India/धमार
13. Saraswati sangit sadhana.in/Dhammar 18/09/2021
14. saptswatgyaan.in/hori.gayan-shaili, 20 December 2021
15. ignca.gov.in/coilnet/braj 001.htm, ब्रज वैभव
16. www.jagranjosh.com
17. शास्त्रीय संगीत के प्रचार हेतु बंदिश के माध्यम / volume 3
18. Global research analysis issue -3/March - 2014 तेजिंदर सिंह -ISSN No.2227-8160
19. डॉ॰ मृदुला पूरी। संगीत मीमांसा
20. पंडित भोलादत्त जोशी-संगीत शास्त्र तथा रागमाला वसंत, संगीत विशारद
21. डॉ।॰ उमा मिश्र-काव्य और संगीत का पारस्परिक संबंध
22. शर्मा, डॉ॰ संजीव कुमार/भारतीय संगीत परंपरा/कल्पना प्रकाशन/2021
23. चंद, डॉ॰ हुकुम/आधुनिक काल में शास्त्रीय संगीत/ ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली संस्करण-1998
24. मिश्रा, शंकरलाल, संगीत निबंध संग्रह
25. परांजपे, शरदचंद्र, भारतीय संगीत का इतिहास
26. indiatales.com/Hindi/holi-ke-rang-holi-ke-sang/ March 06/2019 by Anuradha Goyal

The Socio-cultural Significance of Ladishah in Kashmir, A Study of the Evolution of a Satirical Folk Song

Yasmeena Bano
Research Scholar
Sarojni Naydu Govt. Girls college, Bhopal India

Ishtaiq Ahmad Raina
Research scholar
Department of Performing Arts Music
Lovely Professional University Punjab India

Abstract :

Kashmir's cultural heritage, a treasure trove spanning centuries, thrives in its exquisite geography, cuisine, and artistry. Anchored in a history that spans over a thousand years, the core elements of Kashmir's traditional folk art including music, dance, and theatre radiate cultural richness. This paper explores folk songs with cultural relevance and the societal impact of Ladishah folk songs in the context of Kashmir. Deeply embedded in the region's cultural heritage and significantly influential in shaping its identity. This paper, subjected to historical and contemporary analysis, reveals the role of Ladishah songs as custodians of cultural memory, offering unique insights into the rich tapestry of Kashmiri traditions, values, and emotions.

Key words :

Ladishah, folksong, Culture, Kashmir

Introduction :

Ladishah, a genre of traditional Kashmiri folk songs, often emerges as an unexpected and subtle vehicle for satire. In the serene beauty of the Kashmir Valley, these musical compositions have been cherished form generations, lies a distinct layer of social commentary and critique woven into the fabric of Ladishah. While Ladishah songs are renowned for their captivating melodies and soulful expressions, they also serve as a unique platform for the satirical exploration of societal norms, cultural idiosyncrasies, and human foibles. Ladishah forms a humor, commentary, or art that uses irony, sarcasm, ridicule, or hyperbole to criticize or mock human behavior, societal issues, institutions, or individuals. It is often employed to high-light the flaws, absurdities, or contradictions in various aspects of society and human nature. Ladishah in using satire to reflect upon and question the complexities of Kashmiri society, revealing a rich and

multifaceted tradition that invites both appreciation and contemplation.These melodic compositions are deeply embedded in the region's cultural heritage and have significantly influenced its identity, historical and contemporary importance. Ladishah songs serve as repositories of cultural memory, offering unique insights into Kashmiri traditions, values, and emotions.

The term 'Ladishah' holds various connotations within the literary context. Its root, 'Ladi,' translates to 'row' or 'line,' with the addition of 'Shah' accompanying the influence of Islamic culture. Initially, the phrase was closely linked with folk artists who employed tragic, critical, and humorous verses in their compositions. An exhibition titled 'Ladishah' was recently curated, featuring diverse painters. The verses incorporated in 'Ladishah' primarily originate from renowned or lesser-known poets. Nevertheless, there were instances where the artists themselves adapted the genre and presentation, resulting in the creation of innovative and original works. In the context of the exhibition, 'Ladishah' transformed into a representation akin to the game of hopscotch. The showcase was accompanied by a melancholic musical undertone or intermittent melodies, contributing to the overall ambiance of the event. The term 'Ladishah' holds significant historical significance. It flourished during the era of imperialism and colonialism when our state was under the rule of foreign powers. Despite its transient nature, Ladishah provided the local Kashmiri population with a source of brief respite and amusement during those challenging times. A Ladishah would typically be attired in a turban, donning a white cotton scarf draped around the neck, along with a long white robe fashioned from traditional Kashmiri sleeper material made of dried paddy. Furthermore, the distinctive presence of long mustaches formed an integral part of the traditional Ladishah persona.

Ladishah performances were often impromptu, taking place amidst the paddy fields, within the confines of a courtyard, or along the streets of a local community. These performances typically commenced with the resonating notes of a musical instrument, now recognized as the 'Dehra,' previously referred to as the 'Trum Trum.' Gradually, a gathering of the entire village community would assemble to revel in the Ladishah's act, ensuring a memorable and entertaining experience for all. Upon the conclusion of the performance, the singer would be generously rewarded with handfuls of rice grains and various other prized tokens of appreciation.

Two crucial notes, 'sa' and 'ma,' are customarily employed in the melodic rendition of a Ladishah, usually sung in the dadra taal, comprising six beats. These aforementioned notes, as discussed earlier, are employed in both ascending and descending orders. Each Ladishah composition maintains a consistent 'laya,' performed in the 'Madhya laya,' which typically spans a duration of 20 to 30 minutes. An example of a Ladishah composition vividly captures the public's initial reaction in Kashmir upon witness-ing an airplane for the first time. Ladishah poets adeptly crafted satirical verses to depict this historical event.

Among the well-known poems written by ladishah are :

In Kashmiri language	**Translation in English**
''Asalam Alaikum Ladishah Aav"	"Ladishah has arrived wishing you the best."
"Kadam Thav Pather Haez Kan Mekun Thav"	"Come on sit and listen to me"

Sa	Ma	Ma	Sa	Ma	Ma
A	Sa	La	Ma	Li	Kum
Sa	Ma	Ma	Sa	-	-
La	Di	Sha	a-	-	Av
Sa	Ma	Ma	Sa	Ma	Ma
Ka	Dam	Thav	Pa	Ther	Haz
Sa	Ma	Ma	Sa	Ma	Ma
Kan	Me	Kun	Tha	-	V

In Kashmiri language	Translation in English
''Illahi raham kar miskeenan"	"Oh God save poor people of Kashmir"
"Kum kum khar kaer sehlaban"	"Let's there be no flood it caused havex"
	"God save us and our country"

Sa	Ma	Ma	Sa	Ma	Ma
I	La	Hi	Re	Ham	Kar
Sa	Ma	Ma	Sa	Ma	Ma
Mi	S	Kee	Nan	-	-
Sa	Ma	Ma	Sa	Ma	Ma
Ka	M	Kam	Kha	Ar	Kari
Sa	Ma	Ma	Sa	Ma	Ma
Se	H	La	Ban	-	-

Conclusion :

Unfortunately, the allure of Ladishah gradually waned with the advent of technology, a fate shared by various other folk-art forms in Kashmir. However, the recent introduction of Ladishah on television channels has reignited the public's interest, leading to a resurgence in its popularity. Among the many Kashmiris dedicated to reviving this lost art, Areej Safvi stands out as the first female Ladishah of Kashmir. She

emphasizes that Ladishah enables discussions on topics that might otherwise remain unaddressed. The televised Ladishah series has significantly influenced her approach to the art form. Consequently, governmental participation in preserving cultural identity, combatting discrimination, and safeguarding artistic heritage is imperative for the revitalization of this tradition. Additionally, fostering global cooperation is equally essential in preserving and promoting the cultural legacy of Ladishah.

References :

1. Dr. Sunita Dhar 2003. The Traditional Music of Kashmir, Kanishka publishers Distributors New Delhi.
2. Biala Ahmad Dar 2017.A Study of Kashmiri Folk Singing Form Vanvun and Ladishah, International Journal of Advanced Educational Research.
3. Dr Waheeda Akhter 2017. Ladishah, A Kashmiri Melody, National Journal of Multidisciplinary Research and Development.
4. B.C Deva. Musical instruments, published by the director National Book Trust India A-5 Green Park New Delhi.
5. Dr. Fayaz Farooq, A Study in Historical Perspective.
6. Fidah Pandit 2021, Impact of Local Arts, Bhand Pather and Ladishah on the people of Kashmir.
7. Dr. Hanan Khalid Khan, Misbah Mehraj 2021.Ladishah, A Conceptual Analysis and Study of Kashmiri Folklore. International Journal of Research Publication and Reviews.